कहै कबीर मैं पूरा पाया

अनुक्रम

1. सावधान पांडित्य से...2
2. शून्य में छलांग...28
3. साधो, शब्द साधना कीजै...56
4. आनंद पर आस्था...78
5. क्या मेरा क्या तेरा..104
6. सदगुरु की महत्ता...131
7. प्रभु-प्रीति कठिन...153
8. प्रेम का अंतिम निखार--परमात्मा...177
9. मन लागो यार फकीरी में...205 10...एकांत की गरिमा 233

कहै कबीर मैं पूरा पाया
पहला प्रवचन

सावधान पांडित्य से

सूत्र

पंडित वाद बदंते झूठा।
राम कह्या दुनिया गति पावे, खांड कह्या मुख मीठा।।
पावक कह्या पांव ते दाझै, जल कहि तृषा बुझाई।
भोजन कह्या भूख जे भाजै, तो सब कोई तिरि जाई।।
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबाहुं उड़ि जाय जंगल में, बहुरि न सुरतैं आनै।।
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिए का होई।
धन के कहे धनिक जो हो तो, निरधन रहत न कोई।।
सांची प्रीति विषतु माया सूं, हरि भगतन सूं हांसी।
कहै कबीर प्रेम नहिं उपज्यौ, बांध्यो जमपुर जासी।।

चलन चलन सब को कहत है, ना जानै बैकुंठ कहां है।
जोजन परमिति परमनु जानै। बातनि ही बैकुंठ वखानै।।
जब लगि है बैकुंठ ही आसा। तब लगि नहिं हरि चरण निवासा।।
कहै सुनै कैसे पतिअइए। जब लगि तहां आप नहिं जइए।।
कहै कबीर यहु कहिए काहि। साध संगत बैकुंठहि आहि।।

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
साध संगति हरिभजन बिन, कछू न आवै हाथ।।
मेरो संगी दोइ जन, एक वैष्णो एक राम।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम।।
हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन मांहि।
कह कबीर जग हरि विषे, सो हरि हरिजन मांहि।।

कठोर राहें
जो उलझे धागों का एक गुफ्फा सा बन गई हैं
न इनको रंगों की तेज बरखा से कुछ गरज है
वो तेज बरखा जो मुंह-अंधेरे
किसी पुजारिन के कंपकंपाते सफेद होठों पे नाचती है न इनकी मंजिल वो शामे-गम है जो एक मैला-सा तश्त लेकर मुसाफिरों से लहू के कतरों की भीख रो-रो मांगती है दहकते तारे, हजीं दुआएं, लरजते हाथों से बांटती हैं कठोर राहें जो आगे बढ़ कर, अदा दिखा कर पलट गई हैं पलट के पहलू बदल गई हैं
घनेरी शब अपनी काली कमली में गुम खड़ी है
ये सोचती है
भंवर की बेनूर चश्मेतर जमीं
कोई-सा सीधा सफेद रस्ता उभर के चमके
तो शब का राही उधर को लपके
ये शब का राही
समय के धारे पे बहते-बहते भंवर की सूरत उभर गया है
हजार राहों में घिर गया है!
रात है-और अंधेरी रात है। और रास्ते सब बुरी तरह उलझ गए हैं।
इस उलझन में फंसा है आदमी। न पता है कहां से आता है; न पता है कहां जाता है। न पता है कि किस राह को चुने, कैसे चुने। कोई कसौटी भी हाथ नहीं है। कोई उजाला और रोशनी भी साथ नहीं।
कठोर राहें जो आगे बढ़ कर, अदा दिखा कर पलट गई हैं

पलट कर पहलू बदल गई हैं
और कभी राह ठीक भी लगती है; थोड़ी ही दूर जाकर बदल जाती है, पलट जाती है; पहलू बदल जाता है। कुछ का कुछ हो जाता हो।
कठोर राहें
जो उलझे धागों का एक गुफ्फा सा बन गई हैं
जैसे सुलझाओ और उलझता है गुफ्फा; सुलझने का कोई उपाय नहीं मालूम होता। और बड़ी अंधेरी रात है।
घनेरी शब अपनी काली कमली में गुम खड़ी है
ये सोचती है
भंवर की बेनूर चश्मेतर जमीं
रोशनी जरा भी नहीं है। खोजते, टकराते राही की आंखें आंसुओं से भर गई हैं।
भंवर की बेनूर चश्मेतर जमीं
कोई-सा सीधा सफेद रास्ता उभर के चमके
तो शब का राही उधर को लपके
कोई सफेद सीधा रास्ता दिखाई पड़ जाए। कोई सीधी-सीधी गैब मिल जाए तो राही लपके।
ये शब का राही।
समय के धारे पे बहते-बहते भंवर की सूरत उभर गया है
हजार राहों में घिर गया है!
और ऐसा नहीं कि यह राही आज ही चल रहा है- चल रहा है जन्मों-जन्मों से। न मालूम कितने जन्मों से! अनंत काल से चल रहा है। चलते-चलते ही उलझ गया है। इतना चल चुका है, इतनी राहों पर चल चुका है, कि इसकी सब राहों का इकठ्ठा परिणाम इसके भीतर उलझे धागों का एक गुफ्फा बन गया है।
यह सच हैः रात अंधेरी है और रास्ते उलझे हुए हैं। लेकिन दूसरी बात भी
सच हैः जमीन कितनी ही अंधेरी हो, कितनी ही अंधी हो, अगर आकाश की तरफ आंखें उठाओ, तो तारे सदा मौजूद हैं। आदमी के हाथ में चाहे रोशनी न हो, लेकिन आकाश में सदा रोशनी है। आंख ऊपर उठानी चाहिए।
तो ऐसा कभी नहीं हुआ, ऐसा कभी होता नहीं है, ऐसी जगत की व्यवस्था नहीं है। परमात्मा कितना ही छिपा हो, लेकिन इशारे भेजता है। और परमात्मा कितना ही दिखाई न पड़ता हो, फिर भी जो देखना ही चाहते हैं, उन्हें निश्चित दिखाई पड़ता है। जिन्होंने खोजने का तय ही कर लिया है, वे खोज ही लेते हैं।
जो एक बार समग्र श्रद्धा और संकल्प और समर्पण से यात्रा शुरू करता है- भटकता नहीं। रास्ता मिल ही जाता है। ऐसे रास्तों के उतरने का नाम ही संतपुरुष, सदगुरु है।

एक परम सद्गुरू के साथ अब हम कुछ दिन यात्रा करेंगे-कबीर के साथ। बड़ा सीधा-साफ रास्ता है कबीर का। बहुत कम लोगों का रास्ता इतना सीधा-साफ है। टेढ़ी-मेंढ़ी बात कबीर को पसंद नहीं। इसलिए उनके रास्ते का नाम हैः सहज योग। इतना सरल है कि भोलाभाला बच्चा भी चल जाए। वस्तुतः इतना सहज है कि भोलाभाला बच्चा ही चल सकता है। पंडित न चल पाएगा। तथाकथित ज्ञानी न चल पाएगा। निर्दोष चित्त होगा, कोरा कागज होगा तो चल पाएगा।
यह कबीर के संबंध में पहली बात समझ लेनी जरूरी है। वहां पांडित्य का कोई अर्थ नहीं है। कबीर खुद भी पंडित नहीं है। कहा है कबीर नेः "मसि कागद छूयौ नहीं, कलम नहीं गही हाथ।"-कागज-कलम से उनकी कोई पहचान नहीं है।
"लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात"-कहा है कबीर ने। देखा है, वही कहा है।
जो चखा है, वही कहा है। उधार नहीं है।
कबीर के वचन अनूठे हैं; जूठे जरा भी नहीं। और कबीर जैसा जगमगाता तारा मुश्किल से मिलता है।
संतों में कबीर के मुकाबले कोई और नहीं। सभी संत प्यारे और सुंदर हैं। सभी संत अद्भुत हैं; मगर कबीर अद्भुतों में भी अदभुत हैं; बेजोड़ हैं।

कबीर की सब से बड़ी अद्वितीयता तो यही है कि जरा भी उधार नहीं है। अपने
ही स्वानुभव से कहा है। इसलिए रास्ता सीधा-साफ है; सुथरा है। और चूंकि कबीर पंडित नहीं हैं, इसलिए सिद्धांतों में उलझने का कोई उपाय भी नहीं था। बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग कबीर नहीं करते। छोटे-छोटे शब्द हैं जीवन के-
सब की समझ में आ सकें। लेकिन उन छोटे-छोटे शब्दों से ऐसा मंदिर चुना है कबीर ने, कि ताजमहल फीका है।
जो एक बार कबीर के प्रेम में पड़ गया, फिर उसे कोई संत न जंचेगा। और अगर जंचेगा भी तो इसलिए कि कबीर की ही भनक सुनाई पड़ेगी। कबीर को जिसने पहचाना, फिर वह शक्ल भूलेगी नहीं।
हजारों संत हुए हैं, लेकिन वे सब ऐसे लगते हैं, जैसे कबीर के प्रतिबिंब। कबीर ऐसे लगते हैं, जैसे मूल। उन्होंने भी जान कर ही कहा है, औरों ने भी जान कर ही कहा है-लेकिन कबीर के कहने का अंदाजे बयां, कहने का ढंग, कहने की मस्ती बड़ी बेजोड़ है। ऐसा अभय और ऐसा साहस और ऐसा बगावती स्वर, किसी और का नहीं है।
कबीर क्रांतिकारी हैं। कबीर क्रांति की जगमगाती प्रतिमा हैं। ये कुछ दिन अब हम कबीर के साथ चलेंगे-फिर कबीर के साथ चलेंगे। कबीर को चुकाया भी नहीं जा सकता। कितना ही बोलो, कबीर पर बोलने को बाकी रह जाता है। उलझी बात नहीं कही है; सीधी-सरल बात कही है। लेकिन अकसर ऐसा होता है कि सीधी-सरल बात ही समझनी कठिन होती है। कठिन बातें समझने में तो हम बड़े कुशल हो गए हैं, क्योंकि हम सब शब्दों के धनी हैं, शास्त्रों के धनी हैं। सीधी-सरल बात को ही समझना मुश्किल हो जाता है। सीधी-सरल बात से ही हम चूक जाते है। इसलिए चूक जाते है कि सीधी-सरल बात को समझने के लिए पहली शर्त हम पूरी नहीं कर पाते। वह शर्त है-हमारा सीधा-सरल होना।
जटिल बात समझ में आ जाती है, क्योंकि हम जटिल हैं। सरल बात चूक जाती है, क्योंकि हम सरल नहीं है। वही तो समझोगे न-जो हो? अन्यथा कैसे समझोगे? इसलिए कबीर पर मैं बार-बार बोलता हूं; फिर-फिर कबीर को; चुन लेता हूं। चुनता रहूंगा आगे भी। कबीर सागर की तरह हैं-कितना ही उलीचो, कुछ भेद नहीं पड़ता।
कुछ बात कबीर के संबंध में समझ लो, वे उपयोगी होंगी।
एक-कि कबीर के संबध में पक्का नहीं है कि हिंदू थे कि मुसलमान थे। यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। संत के संबंध में पक्का हो ही नहीं सकता कि हिंदू है कि मुसलमान है। पक्का हो जाए, तो संत संत नहीं; दो कौड़ी का हो गया। जब तुम कहते होः गांव में जैन संत आए हैं; जब तुम कहते होः गांव में हिंदू संत आए हैं-तब तुम अपमान कर रहे हो संतत्व का। और अगर जैन संत भी मानता है कि जैन संत है, तो अभी संत नहीं। संत और विशेषण में! जैन-और हिंदू- और मुसलमान! संत होकर भी ये क्षुद्र विशेषण लगे रहेंगे तुम्हारे पीछे? कभी सीमाओं से बाहर आओगे कि नहीं? घर छोड़ दिया, समाज छोड़ दिया; लेकिन समाज ने जो संस्कार दिए थे, वे नहीं छोड़े। जिस घर में पैदा हुए थे, वह जैन था, उसको छोड़ दिया; मगर जैन तुम अभी भी हो-संत होकर भी! तो कही कुछ बात चूक गई। तीर निशाने पर लगा नहीं; मेहनत तुम्हारी व्यर्थ गई।
संत होने का अर्थ ही है कि अब न कोई हिंदू रहा, न कोई मुसलमान रहा, न कोईईसाई रहा। संत का अर्थ हैः सत्य के हो गए; अब संप्रदाय के कैसे हो सकते हो? संत का अर्थ हैः धर्म के हो गए; अब पंथों के कैसे हो सकते हो?
पर कबीर के संबंध में तो बात बहुत साफ है। कुछ पक्का नहीं बैठता-हिंदू
थे कि मुसलमान। हिंदुओं का दावा हैः हिंदू थे; मुसलमानों का दावा हैः मुसलमान थे। यह बात प्रीतिकर है।
जब भी संत होगा, तो ऐसा होगा। हिंदू दावा करेंगे-हमारे; मुसलमान दावा करेंगे-हमारे। ईसाई दावा करेंगे-हमारे। ईसाइयों को जीसस दिखाई पड़ जाएंगे कबीर में, और मुसलमानों को मोहम्मद दिखाई पड़ जाएंगे, और हिंदुओं को कृष्ण मिल जाएंगे, और बौद्धों को बुद्ध का दर्शन हो जाएगा।
संत तो दर्पण है; तुम अपनी जो भावदशा लेकर आओगे, उसी को झलका देगा। ऐसा
तो सभी संतों के साथ होता है, होना चाहिए। लेकिन कबीर का जन्म भी कुछ

रहस्यमय है। मीठी कहानियां हैं। मनगढंत भी हो सकती हैं, मगर फिर भी महत्त्वपूर्ण हैं।
हिंदू कहते हैंः एक विधवा ने संत रामानंद के चरण छूए। रामानंद अपनी मस्ती में होंगे। उन्होंने ख्याल ही न किया कि कौन चरण छू रहा है। स्त्री थी, चरण छूती थी, घूंघट डाले होगी या... चेहरा भी नहीं देखा, कपड़े भी नहीं देखे, और आशीर्वाद दे दिया। संत तो बिन देखे ही आशीर्वाद दे देते हैं। देख-देख कर जो आशीर्वाद दे, वह कोई संत थोड़े है। तुम मांगो तब दे, वह कोई संत थोड़े है। संत तो आशीर्वाद है। संत का तो होना ही आशीर्वाद है। उसके चारों तरफ तो आशीर्वाद बरसते ही रहते हैं। आशीर्वाद दे दिया की पुत्रवती हो। और वह थी विधवा। अब बड़ी मुश्किल हो गई।
यह कहानी बड़ी मधुर है। ऐसा हुआ हो या न हुआ हो, यह सवाल ही नहीं है। इतिहास का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है। मेरे लिए तो मूल्य है शाश्वत, चिरंतन सत्यों का।
तो एक शाश्वत सत्य कि संत, मांगो तो आशीर्वाद दे, ऐसा नहीं। संत देख-देख कर आशीर्वाद दे, ऐसा भी नहीं। संत तो आशीर्वाद देता ही चला जाता है। आशीर्वाद के अतिरिक्त उसके पास कुछ देने को है भी नहीं। आशीर्वाद उसकी रोशनी है। आशीर्वाद उसकी सुगंध है। और आशीर्वाद ही उसकी श्वास-प्रश्वास है।
तो यह विधवा को आशीर्वाद दे दिया कि पुत्रवती हो। यह आशीर्वाद भी अर्थपूर्ण है। स्त्री जब तक मां न बन जाए, तब तक कुछ अधूरा रह जाता है। पुरुष के पिता बनने से कुछ खास फर्क नहीं पड़ता।
पुरुष का पिता बनना बहुत औपचारिक है, संस्थागत है। स्त्री का मां बनना औपचारिक नहीं है; प्राणगत है। पुरुष का काम तो बच्चे के जन्म में बड़े दूर का है; कुछ खास नहीं है; ना के बराबर है। लेकिन स्त्री का काम ना के बराबर नहीं है। स्त्री अपने गर्भ में बच्चे को पालती है; अपना प्राण उंडेलती है। फिर बच्चे को बड़ा करती है। लंबी साधना है।
तो जो स्त्री मां नही बन पाती, कुछ अधूरा रह जाता है; कुछ कमी रह जाती है; कुछ खाली-खाली रह जाता है; कुछ भराव कम रहता है। इसलिए इस देश में संत आशीर्वाद देते रहेः पुत्रवती हो!
दे दिया आशीर्वाद, देखा भी नहीं कि विधवा है, सफेद कपड़े पहने हुए है, हाथ में चूड़ियां नहीं हैं, माथे पर तिलक-टीका नहीं है। इतना तो देख लेते! फिर कहानी यह कहती है कि जब संत आशीर्वाद दे दे, तो आशीर्वाद पूरा होना ही चाहिए। संत का आशीर्वाद खाली तो नहीं जा सकता। यह बात भी समझने जैसी है।
सत्य से जो स्वर उठेगा, वह खाली नहीं जा सकता। सत्य से जो तीर निकलेगा,
वह निशाने पर लगेगा ही। और संत कह दे, तो अस्तित्व को उसे पूरा करना ही होगा। क्योंकि संत अपने से तो कुछ कहता नहीं; किसी अहंकार-अस्मिता से तो कहता नहीं। निर-अहंकार भाव से कहता है। संत खुद तो कहता ही नहीं; परमात्मा ही उससे जो कहता है, वही कहता है। परमात्मा के हाथ बांसुरी की भांति है संत।
विधवा थी, विवाह तो कर न सकती थी; संत ने आशीर्वाद दे दिया था, तो बच्चा हुआ। इसलिए "कबीर" नाम। हिंदू कहते हैं कबीर नाम, क्योंकि इस विधवा के हाथ, कर से कबीर का जन्म हुआ-तो "करवीर"; उससे कबीर बना। यह तो केवल प्रतीक-घटना है। इसको इतिहास मत मानना। हाथों से बच्चे पैदा होते नहीं।
जैसे जीसस की कहानी है कि कुंवारी मरियम से पैदा हुए; कुंवारी स्त्री
से कोई पैदा नहीं होता। लेकिन यह हो सकता है कि मरियम इतनी पवित्र स्त्री रही हो, इतनी निर्दोष रही हो, कि उसका कुंवारापन आत्मिक है। उसकी ही सूचना है कुंवारापन। कुंवारापन यानी अकलुषित भाव, निर्दोष भाव।
और जीसस जैसा व्यक्ति पैदा हो, तो साधारण स्त्री से हो भी नहीं सकता। कोई असाधारण स्त्री चाहिए। फल से ही तो हम वृक्ष का पता लगाते हैं। जीसस से पता लगता है कि मरियम भी अनूठी रही होगी।

इसलिए सभी संतपुरुषों के साथ अनूठी कहानियां जुड़ जाती है। कहानियां मूल्य की नहीं हैं। लेकिन संत इतना अनूठा पुरुष है कि हम यह स्वीकार नहीं कर पाते कि वह वैसे ही जनमता होगा, जैसे और सब जनमते हैं।
इन कहानियों में हमारी इसी पीड़ा की सूचना है।
हम यह स्वीकार नहीं कर पाते कि जीसस ऐसे ही पैदा होते हैं, जैसे और सब लोग पैदा होते हैं; या कबीर ऐसे ही पैदा होते हैं, जैसे और सब लोग पैदा होते हैं। कबीर को कुछ गिन्नढंग से आना चाहिए। कबीर इतने अनूठे हैं कि अनूठे ढंग से आना चाहिए। हम स्वीकार कर नहीं पाते कि कबीर और उन्हीं चले-चलाए रास्तों से आएंगे, जिनसे और लोग आते हैं। इसलिए कहानियां हैं।
लेकिन मुसलमानों की अपनी कहानी है। और "कबीर" शब्द वहां ज्यादा सार्थक मालूम होता है, बजाय इस हिंदू-कथा के-"करवीर" से। यह तो ऐसा लगता है जैसे किसी ने ईजाद कर लिया-कबीर में से। लेकिन कुरान में कबीर अल्लाह का एक नाम है। इसलिए मुसलमान कहते हैं कि कबीर अल्लाह का नाम है; करवीर नहीं। यह आदमी अल्लाह की जीती-जागती प्रतिमा है-इसलिए कबीर।
कुछ भी हो, कबीर का जन्म रहस्य में छिपा है।
नीरू जुलाहा और उसकी पत्नी नीमा ने... दोनों लौट रहे थे। नीरू जुलाह गौना करा के लौट रहा था, काशी की तरफ आ रहा था, अपने घर की तरफ आ रहा था, और काशी के पास लहरतारा तालाब में हाथ-पैर धोने को रुका था कि वहीं उसने रोने की आवाज सुनी, पास की झाड़ी में, तो भागा; देखा, तो यह बच्चा पड़ा था।
इतना प्यारा बच्चा नीरू जुलाहे ने कभी देखा नहीं था। उसकी आंखें ऐसी थीं, जैसे मणि-ऐसी रोशनी थी उसकी आंखों में; और उनके चारों तरफ प्रकाश था। और वह साधारण-सी झाड़ी एक अपूर्व आनंद से भरी मालूम पड़ती थी। एक गहन शांति और एक आनंद!
नीमा तो डरी कि कुछ झंझट होगी, लोग क्या कहेंगे; अपवाद होगा; मगर उसने
भी जब बच्चे को देखा, तो उसका भी दिल डोल गया। वे उठाकर कबीर को घर लाए। शायद यहां दोनों कहानियां जुड़ जाती हैं; शायद कबीर विधवा से पैदा हुए थे, विधवा उन्हें छोड़ गई थी-तालाब के पास। और नीरु जुलाहा और नीमा उसकी पत्नी, ये तो मुसलमान थे, इन्होंने कबीर को पाला।
कबीर, ऐसा लगता है कि हिंदू घर में पैदा हुए और मुसलमान घर में पले।
इसमें एक अपूर्व संगम हुआ। इससे एक अपूर्व समन्वय हुआ।
कबीर में हिंदू और मुसलमान संस्कृतियां जिस तरह तालमेल खा गईं, इतना तालमेल तुम्हें गंगा और यमुना में भी प्रयाग में नहीं मिलेगा; दोनों का जल अलग-अलग मालूम होता है। कबीर में जल जरा भी अलग-अलग मालूम नहीं होता। कबीर का संगम प्रयाग के संगम में ज्यादा गहरा मालूम होता है। वहां कुरान और वेद ऐसे खो गए कि रेखा भी नहीं छूटी।
लेकिन कथा रहस्यपूर्ण है और उसमें और भी हिस्से जुड़े हैं। जरूर रामानंद का कुछ न कुछ हाथ रहा होगा। या तो उनके आशीर्वाद से इस विधवा को यह बच्चा उत्पन्न हुआ है या इस विधवा को बच्चा उत्पन्न हुआ है और रामानंद की करुणा है इस विधवा पर, इस बच्चे पर। यद्यपि इसे छुड़वा दिया है या छोड़ दिया है; मगर रामानंद उस बच्चे की चिंता लेते रहे। तो नीरू जुलाहे ने मुसलमान की पूरी संस्कृति दी, और रामानंद के रस ने हिंदू-भाव को कायम रखा। दोनों बातें मिल गईं और एक हो गईं।
कबीर युवा हुए, तो स्वभावतः वे रामानंद के शिष्य होना चाहते थे, लेकिन
यह अड़चन ही बात थी, क्योंकि दुनिया तो जानती थी कि वे मुसलमान हैं। रामानंद मुसलमान को कैसे दीक्षा देंगे। रामानंद के शिष्यों में बड़ा विरोध था। तो मीठी घटना है कि कबीर ने एक उपाय चुना।
अगर गुरु को खोजना ही हो शिष्य को, तो शिष्य खोज ही लेगा। सारी व्यवस्थाएं, औपचारिकताएं, शिष्टाचार, समाज के नियम इत्यादि पड़े रह जाएंगे।
तो कबीर जाकर नदी के तट पर कंबल ओढ़ कर सो रहे। सुबह-सुबह पांच बजे, अंधेरे में आते हैं रामानंद स्नान करने, उनके रास्तें में सो रहे। रामानंद का पैर लग गया अंधेरे में; चोट खा गया कोई, तो रामानंद के मुंह से

निकलाः राम-राम। और कबीर ने उनके पैर पकड़ लिए और कहा कि "मंत्र दे दिया फिर!" ऐसे मंत्र लिया! इसको कहते हैंः खोजी! इसको कहते हैंः मुमुक्षु! गुरु टाल रहा था, व्यवस्था अनुकूल नहीं पड़ रही थी, समाज विरोध में था; लेकिन मंत्र-दीक्षा तो लेनी थी। गुरु का वचन तो लेना था। गुरु का आशीर्वाद तो लेना था।
इजिप्त में एक पुरानी कहावत है कि जब तक शिष्य, गुरु से चुराने को तैयार न हो, तब तक कुछ भी नहीं मिलता। यह कबीर के संबंध में तो बड़ी लागू होती है। गुरु से चुरा लिया। गुरु ने तो राम-राम कहा था ऐसे ही; पैर की किसी पर चोट लग गई, पता नहीं कौन है, राम-राम निकल गया होगा; लेकिन कबीर ने पैर पकड़ लिए और कहा कि अब आशीर्वाद दो, मंत्र तो दे ही दिया! ऐसे कबीर
दीक्षित हुए।
कबीर ने कहा हैः "काशी में हम प्रकट भए हैं, रामानंद चेताए।" इतना ही मंत्र और कबीर कहते हैंः चेता दिया। फिर कोई फिक्र भी नहीं है। कहाः इतना बहुत है-राम-राम। एक "राम" से काम चल जाता, दो बार राम-राम कह दिया, अब और क्या चाहिए? चेता दिया।" काशी में हम प्रकट भए हैं, रामनंद चेताए।"
यह झगड़ा कबीर के जीवन में चलता रहा-कि वे हिंदू हैं कि मुसलमान। मुसलमान भी पूजते रहे; हिंदू भी पूजते रहे। लेकिन बुद्धि तो छोटी होती है, वह झगड़ा चलता रहा, चलता रहा। वह मरने तक चला!
कबीर जब मरे, तो लाश पड़ी है, कफन डाल दिया गया है। हिंदू कहते हैंः हम जलाएंगे और मुसलमान कहते हैंः हम गड़ाएंगे। सोचो, कबीर जैसे व्यक्ति के पास रहकर भी लोग चूक जाते हैं। अंधेपन की भी एक सीमा होती है! लेकिन अंधेपन की सीमा को भी तोड़कर अंधे बने रहते हैं। कबीर के पास रहे, कबीर को चाहा, और इतना भी न समझ पाए! जिंदगी भर कबीर के संगम में नहाए, और कुछ भी मल न धुला। मरते वक्त भी झगड़ा खड़ा हो गया। लाश पड़ी है और शिष्य झगड़ रहे हैं कि जलाएं कि गड़ाएं! और जब चादर उघाड़कर देखी, तो पाया कि कबीर वहां नहीं है; कुछ फूल पड़े हैं।
यह भी प्रतीक-कथा है। ऐसा हुआ हो, मैं नहीं कहता हैं। चमत्कारों में मेरा कोई आग्रह नहीं है। मगर कथाओं में अर्थ है; वे चमत्कारों से ज्यादा मूल्यवान हैं। चमत्कार से कुछ तुम्हारी प्रज्ञा निखरती भी नहीं। चमत्कार से तो तुम्हारी प्रज्ञा और धूमिल हो जाती है। इसलिए चमत्कारों की बकवास में मत पड़ना कि ऐसा हुआ। लेकिन इतनी बात समझ लेना कि संत का जीवन तो फूलों जैसा है। वह अपने पीछे कुछ फूल ही छोड़ जाता है; कुछ सुगंध ही छोड़ जाता है। बस, इतना ही समझना।
संत का जीवन स्थूल नहीं है; सूक्ष्म है। संत का जीवन पत्थरों जैसा नहीं है, फूलों जैसा है; अभी है, अभी उड़ जाएगा।
और संत को समझना हो, तो फूल की अवस्था समझनी चाहिए। कितना कोमल! फिर भी कितना जीवंत! क्षणभर को टिकता है, लेकिन क्षण भर में भी शाश्वत की झलक दे जाता है। क्षण भर को है; अभी है, अभी समाप्त हो जाएगा; सुबह है, सांझ नहीं होगा-लेकिन इस थोड़ी-सी देर में परमात्मा का प्रतीक बन जाता है; परमात्मा का सौंदर्य झलका जाता है।
कुछ फूल पड़े रह गए। सभी संतों के पीछे कुछ फूल पड़े रह जाते हैं। फूलों
पर झगड़ना मत। फूलों पर झगड़ा क्या है? जितना अपनी नासापुटों में भर सको, उस गंध को भर लेना। उन फूलों को जितना अपने प्राणों में ले जा सको, ले जाना। क्योंकि जो फूल प्राणों में ले जाएगा, उसके भीतर का फूल खिल जाएगा। थोथी बातों में मत पड़ना। थोथे झगड़ों में मत पड़ना।
लेकिन आदमी तो आदमी है। उन्होंने फूल ही बांट लिए। उन्होंने कहाः "कोई फिक्र नहीं, बांट कर तो रहेंगे; बंटवारा तो होगा।" फूल बांट लिए। अब आधे फूल जलाए गए और आधे फूल गाड़े गए। अब फूल न तो जलाने चाहिए और न गाड़ने चाहिए। फूल के साथ यह दुर्व्यवहार होगा। मगर यही हुआ।
ये आदमी के अंधेपन की और नासमझी की कहानियां हैं। उस जगह पर आज आधे में कब्र है-और आधे में समाधि। एक ही छोटा-सा मकान है मगहर में, जिसमें आधे में मुसलमानों ने कब्र बना रखी है, क्योंकि वहां उन्होंने फूल गड़ाए थे; और हिंदुओं ने समाधि बना रखी है; बीच में बड़ी दीवाल उठा रखी है।

कबीर ने जिंदगी भर जोड़ा और शिष्यों ने फिर तोड़ दिया। कबीर ने गंगा- यमुना को मिलाया, शिष्यों ने फिर अलग-अलग बांट लिया।
कबीर जैसे व्यक्ति को समझना हो, तो उसके साथ जितनी कहानियां जुड़ी हैं,
उन सभी का मनोवैज्ञानिक अर्थ खोजने की कोशिश करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिक अर्थ-ऐतिहासिक नहीं। उनके भीतर क्या तत्त्व हो सकता है, यह खोजने की कोशिश करनी चाहिए।
काशी के पंडित उनसे नाराज थे। अब पंडितों को कहोगे "पंडित वाद बदंते झूठा"-तो नाराज न होंगे, तो और क्या होंगे? कि पंडित बकवासी हैं, कि व्यर्थ के वादविवाद में लगे हैं-व्यर्थ की मारा-मारी में, शब्दों की झूठी खींचतान में बाल की खाल निकालनें में। पंडित नाराज थे। हिंदू पंडित नाराज थे, मुसलमान मौलवी नाराज थे।
मौलवी और पंडितों दोनों ने मिलकर, सिकंदर लोधी उस समय बादशाह था, उससे प्रार्थना की कि कबीर को दंडित किया जाना चाहिए। और कसूर वही, जो सदा से संतों का रहा है। सिकंदर लोधी ने पूछा कि "कसूर क्या है इस आदमी का? इसे दंडित क्यों किया जाना चाहिए?" तो इन्होंने कहा कि इसका दावा है कि यह भगवान है। "कहै कबीर मैं पूरा पाया!" पूरा भगवान पा लिया है। रत्तीभर बाहर नहीं छूटा है। यह कबीर वैसी ही घोषणा कर रहा है, जैसे उपनिषद कहते हैंः अहं ब्रह्मास्मि! यह कबीर वैसी ही घोषणा कर रहा है, जैसा मंसूर ने की थीः अनलहक! कि मैं सत्य हूं।
सिकंदर लोधी को भड़काया। और तुम यह जान कर आश्चर्यचकित होओगे कि पंडित में और राजनीतिज्ञ में सदा से संबंध रहा है। वह जो पंडित है, मौलवी है, पुरोहित है, वह-और जो राजनेता है-उन दोनों में सदा की सांठ-गांठ है। वे दोनों एक ही षड्यंत्र में लागू रहे हैं, एक ही षड्यंत्र में सम्मिलित रहे हैं। और वह षड्यंत्र हैः किसी तरह धर्म न जम पाए पृथ्वी पर। क्योंकि धर्म पंडित को भी, मिटा देगा-और राजनेता को भी; क्योंकि धर्म सारे अहंकारों को जला डालता है। इसके पहले कि धर्म उन्हें जला दे, स्वभावतः वे धर्म को जलाने में तत्पर हो जाते हैं।
तो कहानी है कि कबीर को आग में फेंका गया। सिकंदर लोधी राजी हो गया और कबीर को आग में फिंकवाया। आग उन्हें जला नहीं पाई। सत्य को आग में जलाने का उपाय नहीं है, इतना ही जानना। जैसा कृष्ण ने गीता में कहा हैः नैनं छिन्दंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। न तो मुझे शस्त्र छेद सकते हैं; और न आग मुझे जला सकती है। इतना ही समझना। ऐसा मत सोचना कि कबीर ने कोई मदारीगिरी की। प्रतीक हैं ये तो।
आग में जलाने का मतलब ऐसा नहीं है कि सच में ही आग में जलाया। आग में जलाने का मतलब हैः गालियां दी होंगी, अपमान किए होंगे, झूठी अफवाहें उड़ाई होंगी, सब तरह की लपटें फैलायी होंगी। उन सब लपटों के बीच में कबीर को घिरा दिया होगा। और सभी नाराज थे।
और मजा यही है कि संतों के साथ सभी नाराज हो जाते हैं। जिनके साथ होना चाहिए, जिनके साथ राजी होना चाहिए, उनसे नाराज हो जाते हैं! और ऐसे अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेते हैं।
आग का मतलब यह मत समझना कि लकड़ियां लाए, और तेल डाला, और आग लगायी। आग
का मतलब यही है कि जलाने का सब तरह उपाय किया। किसी तरह कबीर उद्विग्न हो जाएं, जल-भुन उठें। किसी तरह फफोले उठ आएं उनकी आत्मा में। किसी तरह क्रोधित हो जाएं। किसी तरह गालियों का उत्तर गाली से देने लगें, तो जीत हो जाए। लेकिन कबीर की शांति अखंडित रही, उनका मौन अविच्छिन्न रहा। उनके प्रेम की धारा वैसी ही बहती रही। उनकी प्रार्थना में कोई खलल न पड़ा।
कहते हैंः एक पागल हाथी को उनके ऊपर छोड़ा। लेकिन पागल हाथी उनके सामने आकर ठिठककर खड़ा हो गया; झुक कर उसने प्रणाम किया। पागल हाथी तुम्हारे तथाकथित समझदार आदमियों से कम पागल होते हैं। इतना ही समझना। और यह कहानी कुछ नयी नहीं है; कोई कबीर के साथ ही जुड़ी है, ऐसा नहीं है।
औरों के साथ भी जुड़ी है। बुद्ध के साथ भी। मतलब इतना ही है कि पागल हाथी भी तुम्हारे तथाकथित समझदार पंडित-पुराहितों से, मुल्लाओं से, राजनेताओं से, राजाओं से, तुमसे कहीं ज्यादा समझदार होता है।

पागल हाथी को छोड़ा और पागल हाथी ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने देखा होगा कबीर को। उसने देखा होगा-इस रोशन व्यक्तित्व को। उसने देखी होगी यह लपट, यह रोशनी, यह प्रकाश! उसने देखी होगी यह गंध। उसने देखा होगाः यह परम सौंदर्य, यह खिला हुआ कमल। ठिठक गया होगा।
ऐसा सौंदर्य कभी-कभी होता है। आदमी नहीं देख पाता, क्योंकि आदमी हिंदू है, मुसलमान है; आदमी ईसाई है, जैन है। आदमी की आंखों पर हजार धारणाओं के परदे हैं। हाथी बेचारा न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है। कोई शास्त्र नहीं है हाथी के सिर पर; कोई शब्दों का जाल नहीं है। निर्दोष आंखें हैं। इसलिए देख लिया होगा। इसलिए पहचान गया होगा।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि पशु भी पहचान लेते हैं और आदमी नहीं पहचान पाते!
संत फ्रांसिस के संबंध में बहुत-सी कहानियां हैं कि पशु पहचान लिए और आदमी नहीं पहचाना। क्योंकि पशु का अर्थ हैः सरलता। आदमी का अर्थ हैः जटिलता। आदमी पागल न दिखाई पड़े तो भी पागल है; और पशु पागल भी हो तो भी इतना पागल नहीं होता है; फिर भी कुछ होश कायम रह जाता है।
इन कहानियों पर ध्यान करना। इन कहानियों को सिर्फ कहानियां मत मान लेना।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो कहेंगे कि हां, ऐसा हुआ। नासमझ हैं वे। कहेंगेः ऐतिहासिक है यह बात; सच में ही पागल हाथी छोड़ा, और सच में ही पागल हाथी ठिठक गया।
मैं इस तरह के लोंगो से राजी नहीं हूं। क्योंकि इस तरह के लोग संतों
की गरिमा को नहीं समझ पाते और व्यर्थ की बातों में उलझ जाते हैं। फिर इनके ही कारण दूसरा वर्ग पैदा हो जाता है। वह कहता हैः ऐसा हो ही कैसे सकता है? पागल हाथी पागल हाथी है। फिर व्यर्थ का विवाद चलता है।
मैं इस विवाद के बाहर तुम्हें निकाल लेना चाहता हूं। मैं तुमसे इतना
ही कहना चाहता हूं कि ये कहानियां सूचक हैं। ये बोध-कथाएं हैं। बड़े प्रतीक इनमें छिपे हैं, इनको खोलो तो खूब रस मिलेगा। वह रस इतना ही है कि आदमी पागल हाथियों से भी ज्यादा पागल है।
और मतलब ही इतना है कि पागल आदमियों को छोड़ा होगा। आदमियों को पागल किया होगा। पंडितों ने, पुरोहितों ने भड़काया होगा, जलाया होगा लोगों को, लोगों को उकसाया होगा कि "हिंदू-धर्म खतरे में है; कि इसलाम धर्म खतरे में है; कि शास्त्र को डुबा देगा यह आदमी! और यह आदमी होकर दावा करता है कि मैं परमात्मा हूं! यह बात बरदाश्त नहीं की जा सकती। इस आदमी को दंड देना होगा।" ऐसे लोगों को पगलाया होगा। भीड़ को पागल किया होगा। भीड़ उत्तप्त हो गई होगी। इतना ही अर्थ है।
और इतना भी अर्थ है कि पागल पशु भी तथाकथित बुद्धिमानों से ज्यादा बुद्धिवान होता है।
सोचना, और शर्म खाना। सोचना, और दुखी होना। और देखना कि कहीं ऐसा तुम्हारे साथ भी तो नहीं हो रहा है? क्योंकि ये शाश्वत कथाएं हैं। इसलिए हर संत के जीवन में घटती हैं।
पश्चिम के लोग जब कबीर, बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, इन सबके ऊपर अध्ययन करते हैं, तो वे बड़े हैरान होते हैं कि वही-वही कहानी! सब के जीवन में कैसे घट सकती है! यह कहानी तो झूठी मालूम पड़ती है, मनगढंत मालूम पड़ती है; संतों के साथ लोग इसे जोड़ देते हैं।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः हर संत के साथ वही घटता है। कहानी की मैं नहीं कर रहा हूं; लेकिन हर संत के साथ वही घटता है। क्योंकि आदमी वैसा का वैसा है; आदमी में कुछ फर्क नहीं हुआ है।
बैलगाड़ी चली गई, बैलगाड़ी की जगह जेट हवाई जहाज आ गए; लेकिन आदमी वैसा
का वैसा है। आदमी जमीन पर से चलना छोड़ कर चांद पर चलने लगा है, लेकिन आदमी वैसा का वैसा है।
अगर बुद्ध आएंगे, तुम फिर गाली दोगे। और जीसस आएंगे, तुम फिर सूली लगाओगे। और सुकरात आएगा, तो तुम फिर जहर पिलाओगे। तुम वैसे के वैसे हो। तुम्हारी चेतना में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। तुम्हारे आस-पास का

सामान बदल गया है, लेकिन तुम नहीं बदले। वस्तुएं बदल गई हैं, लेकिन तुम्हारी चैतन्य की दिशा में कोईक्रांति घटित नहीं हुई। इसलिए कहानी वही की वही है, क्योंकि आदमी वही का वही है।

कबीर के इन वचनों को समझो। "पंडित वाद बदंते झूठा।"
कहते हैंः वाद-विवाद झूठ है।
साधारणतः हम कहते हैं... । अगर दो आदमी विवाह कर रहे हों, तो हम कहते हैंः उसमें एक सच है, एक झूठ है। जो तुम से मेल खाता है, वह सच है; जो तुम से मेल नहीं खाता, वह झूठ है। तुम सत्य की कसौटी हो जैसे! अगर हिंदू और मुसलमान विवाद करते हों और तुम हिंदू हो, तो कहोगेः हिंदू ठीक हैं, मुसलमान गलत हैं। मुसलमान हो, तो कहोगेः मुसलमान ठीक हैं, हिंदू गलत हैं। लेकिन कबीर कहते हैंः वाद-विवाद झूठा है। जब दो व्यक्ति विवाद कर रहे हों तो विवादी में कोई भी ठीक नहीं होता। विवाद ही गलत है। विवाद ही अंधे और नासमझ करते हैं। विवाद का अर्थ होता हैः शब्दों की खींचतान; तर्कजाल। विवाद का अर्थ होता है कि जैसे शब्दों के ही आयोजन से, तर्क के प्रमाण से हम सत्य का निर्णय कर लेंगे।
सत्य का अनुभव होता है; निर्णय नहीं होता। सत्य कोई गणित की पहेली नहीं है। सत्य तो जीवन का अनुभव है, जैसे प्रेम जीवन का अनुभव है।
प्रेम के संबंध में क्या विवाद करते हो? अगर किसी आदमी ने कहा कि मैं
इस स्त्री को प्रेम करता हूं, इस स्त्री से सुंदर स्त्री दुनिया में कोई भी नहीं, तो तुम विवाद करते हो? तुम कहते हो, "रुको जी! मेरी पत्नी के होते हुए तुम ऐसा कैसे कह रहे हो?" नहीं, तुम विवाद नहीं करते। तुम समझते हो कि यह आदमी क्या कह रहा है। यह असल में यह कह ही नहीं रहा है कि दुनिया में इस जैसी सुंदर कोईस्त्री नहीं। यह इतना ही कह रहा है कि मुझे दुनिया में इससे ज्यादा सुंदर कोईस्त्री मालूम नहीं पड़ती। यह अपनी बात कह रहा है। यह अपना अनुभव कह रहा है। यह कोई वैज्ञानिक सत्य की उद्घोषणा नहीं कर रहा है। यह केवल एक काव्यात्मक सत्य की उद्घोषणा कर रहा है। यह अपनी पसंद दिखला रहा है।
अगर कोई आदमी कहता है कि गुलाब का फूल मुझे सबसे ज्यादा सुंदर मालूम पड़ता है, तो तुम विवाद नहीं करते हो। तुम यह नहीं कहते कि, "सुनो, कमल भी है, और कमल के रहते तुम यह किस तरह की बात कर रहे हो? और मैं इस तरह का झूठ न चलने दूंगा।" तुम कहते होः ठीक है, पसंद-पसंद की बात है। तुम्हें जो पसंद है... । जिसे जो रुचे।
लेकिन जब कोई आदमी कहता है कि कृष्ण से प्यारा कोई आदमी नहीं, तो तुम झगड़ा करने खड़े हो जाते हो! तुम कहते हो; मैं मुसलमान, मैं जैन, मैं बौद्ध। तुम कृष्ण की चर्चा कर रहे हो, कृष्ण में रखा क्या है? अरे, देखो महावीर को! कृष्ण में रखा क्या है?
देखो बुद्ध को!
वहां तुम वही भूल कर रहे हो। कबीर कहते हैंः वाद-विवाद से निर्णय होने वाला नहीं है। इसलिए समझदार वाद-विवाद नहीं करता।
जितनी शक्ति वाद-विवाद में लगाते हो, उतनी शक्ति से तो सत्य को जाना
ही जा सकता है। जितनी मेहनत से पंडित बनते हो, उतनी मेहनत से तो प्रज्ञा का जन्म हो सकता है। जितनी मेहनत से यह कूड़ा-करकट इकट्ठा करते हो शास्त्रों का, उतनी मेहनत से तो परमात्मा ही तुम्हारे द्वार आ जाए; शायद उससे कम मेहनत से द्वार आ जाए।
पांडित्य नहीं, प्रार्थना चाहिए। तर्क-वितर्क नहीं, अनुभूति चाहिए। "पंडित वाद बदन्ते झूठा।"
"राम कह्या दुनिया गति पावे"... । अगर राम-राम कहने से मोक्ष मिलता होता; सिर्फ राम-राम दोहराने से अगर मोक्ष मिलता होता... "खांड कह्या मुख मीठा"... तब तो शक्कर कह देते और मुंह मीठा हो जाता। "पावक कह्या पांव ते दाझै"... तब तो आग कह देते और पैर जल जाता। और "जल कहि तृषा बुझाई"... और जल कह देते और प्यास बुझ जाती। हम सब जानते हैंः जल कहने से प्यास नहीं

बुझती। सच तो यह हैः जल कहने से प्यास दबी पड़ी हो, तो उभरकर प्रकट हो जाती है।े
तुम मुझे बैठे-बैठे सुन रहे हो, शायद तुम्हें याद भी न आए प्यास की। और
फिर कोई कह देः "ठंडा जल"-तो प्यास बुझेगी नहीं; वह जिसकी याद नहीं आ रही थी, उसकी याद आ जाएगी।
राम-राम कहने से राम मिलता नहीं। राम-राम कहने से इतना ही हो सकता है
कि राम मुझे अब तक नहीं मिला, अब मैं क्या करूं? कैसे पा लूं? प्यास जग सकती है; प्यास बुझ नहीं सकती।
लेकिन लोग हैं, जो सोचते हैंः राम-राम-राम की रट लगा देने से पहुंच जाएंगे। "राम कह्या दुनिया गति-पावे"... तब तो सारी
दुनिया मोक्ष चली जाए। क्योंकि राम-राम कहने में लगता क्या है? खर्च
भी कुछ नहीं होता। कभी भी बैठे राम-राम कह लिया।
लोग माला रख लेते हैं, दुकान चलाते जाते हैं, माला भी चलाते जाते हैं! थैली में माला छिपाए रखते हैं; किसी को दिखाई भी न पड़े, नहीं तो किसी की, नजर लग जाए! अपनी माला घुमाते रहते हैं! एक हाथ से लोगों की जेब काटते रहते हैं, दूसरे हाथ से माला घुमाते रहते हैं। मुख में राम, बगल में छुरी। राम कहने में हर्ज भी कहां है; मेहनत भी कहां है; श्रम भी क्या लगता है! यंत्रवत आदत हो जाती है!
"भोजन कह्या भूख जे भाजै"... और अगर "भोजन" कहने से भूख बुझ जाती होती-
तो "सब कोई तिरि जाई"-तो सभी तिर जाएं। फिर तो कोई अड़चन नहीं। फिर राम-राम कह दिया-और तिर गए फिर तो बड़ी सस्ती हो गई बात। फिर तो कदम भी न उठाना पड़ा। जीवन को बदलना भी न पड़ा; जीवन को सुंदर भी न बनाना पड़ा। जीवन को शुद्ध भी न बनाना पड़ा। कुछ साधना भी न करनी पड़ी।
कबीर कहते हैंः ऐसी झूठी कहानियां गढ़ रखी हैं। ऐसी तक कहानियां गढ़ रखी हैं कि अजामिल मर रहा था, तो उसने अपने बेटे नारायण को बुलाया। नाम था बेटे का नारायण। और ऊपर के नारायण समझे कि मुझे बुला रहा है! ऐसे बेटे को बुलाते हुए मर गया। मोक्ष चला गया। यह तो हद हो गई!
"पंडित वाद बदंते झूठा"। झूठ की भी सीमा होती है! थोड़ा लाज करो, थोड़ा संकोच करो। यह तो बहुत ज्यादा बात हो गई। तुमने परमात्मा तक को धोखा दे दिया! और यह अजामिल पापी था, चोर था, हत्यारा था-सब भूल गया मामला। और मजा यह है कि इसने राम को पुकारा भी न था, बुला रहा था अपने बेटे को; और किसी को पता नहीं; किसलिए बुला रहा था। जहां तक संभावना तो यही है कि बेटे को बुला रहा होगा कि चोरी की, हत्या की तरकीबें बता जाए। मरते वक्त बाप वही बताता है जो जानता है। और तो क्या बताएगा?
जिंदगी भर पाप किए थे, तो कुछ कुंजी दे जाए बेटे को। इसलिए बुलाया होगा नारायण को। क्योंकि जिंदगी भर की पूंजी उसकी यही थी। शायद कुछ गुर दे जाए कि "देख बेटा, मैं कभी पकड़ा गया था, इस तरह की भूल दुबारा मत करना। चोरी-चोरी को जाए तो इस-इस बात की सावधानी रखना। किसी की हत्या करे, तो हाथ-पैर के निशान मत छोड़ आना। मैं फंस गया था या फंसते-फंसते बच गया था। तू जरा ध्यान रखना।" कुछ तरकीबें होंगी। कुछ जो उसने कभी अपने बेटे को नहीं कहीं, अब मरते वक्त कह जाना चाहता है। मरते वक्त लोग वही कहते हैं, जो जिंदगी भर छिपाए रखा।
अब तो जाने का वक्त आ गया। शायद बता जाए कि धन कहां गड़ा रखा है; वह जो राजा कि तिजोड़ी गायब हो गई थी, वह अपने घर के आंगन में कहां गड़ी है। कुछ कह जाए। या कह जाए कि कौन-कौन दुश्मन मेरे बचे रह गए हैं; जिनको मैं नहीं मार पाया, बेटा, तू मारना। मेरी आकांक्षा पूरी करना।
मैंने सुना हैः एक आदमी ऐसा मर रहा था। बड़ा उपद्रवी था। जिंदगीभर अदालत, अदालतबाजी-इसके सिवा उसे कोई काम नहीं था। अदालत उसकी मंदिर, उसकी मसजिद। अदालत उसकी पूजा, उसकी प्रार्थना। बस, उठता सुबह और चला अदालत! गांवभर को परेशान कर रखा था। हर किसी पर मुकदमा चला देता था। किसी भी बहाने मुकदमा चला देता था। मुकदमा चलाने में उसको रस था।
तो जब मरने लगा तो उसने अपने बेटों को पास बुलाया। जरा बेटे डरे हुए थे, क्योंकि बाप की आदतों से परिचित थे। कहा कि मेरी एक इच्छा है, उसे पूरी

कर देना; अब मैं तो जा रहा हूं। बड़े बेटे तो तीन थे, वे तो दूर ही खड़े रहे। उन्होंने कहा कि पता नहीं कहां की खतरनाक इच्छा में आखिरी वक्त फंसा जाए! छोटा बेटा जरा छोटा था, नासमज था, वह पास आ गया-उसने कहाः आप कहिए, आपकी आखिरी इच्छा हम जरूर पूरी करेंगे।
उसने कहाः "बेटा पास आ। कान में कहा कि ये तीन तो लफंगे है। मैं मरा रहा हूं----दगाबाज!" मेरा खून इनकी हड्डी-मांस में बह रहा है और ये झुके नहीं; मेरे पास आए नहीं। तू आया, तू मेरा असली बेटा है। एक काम करना। जब मैं मर जाऊं, तो मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े काट कर पड़ोसियों के घर में फेंक देना। मेरी आत्मा बड़ी प्रसन्न होगी, अगर ये लोग जंजीरों में बंधे अदालत की तरफ जा रहे होंगे। इनके घर में फेंक देना। मैं तो मरा ही गया, अब तो काम ही खतम हो गया, तो आखिरी मजा क्यों न ले लिया जाए! और मेरे हाथ-पैर काटकर पड़ोसियों के घर में फेंक देना; पुलिस में रिपोर्ट लिखा देना कि मेरे बाप की हत्या हो गई। सब बंधे चले जाएंगे, तो मेरी आत्मा बैकुंठ की तरफ जाती हुई बड़ी प्रसन्न होगी कि देखो, चले!"
तो अजामिल भी कुछ ऐसा ही करना चाहता होगा। इससे ज्यादा की आशा उससे नहीं हो सकती। लेकिन पंडितों ने खूब कहानी गढ़ी है! इन्हीं कहानियों के आधार पर आदमी को धोखा दिया गया है। आदमी को खिलौने दे दिए गए हैं।
असली बातें तो देने की पंडित के पास नहीं हैं। सत्य तो नहीं दे सकता। राम तो नहीं दे सकता, लेकिन "राम" शब्द दे सकता है। राम तो वही दे सकता है, जिसने खुद जाना हो।
कबीर के संबंध में भक्तमाल में नाभाजी ने लिखा हैः "आरूढ़ दसा ह्वै जगत परमुख देखी नहीं भनी।"-कबीर ने उस स्थिति में बैठ कर ही जो कहा-वही कहा। "परमुख देखी नहीं भनी"। दूसरों के मुख से कही हुई बातों को नहीं दोहराया- और दूसरों के द्वारा
देखी गई बातों को नहीं दोहराया। उस दशा में स्वयं आरूढ़ हो गए, तब कुछ कहा।
पंडित खुद भी नहीं उस दशा में आरूढ़ हुआ है। पंडित उतना ही दूर है, जितना पापी-और कभी-कभी पापी से भी ज्यादा
दूर। इसलिए मैं बहुत खोजता रहा कि अजामिल, चलो मान भी लो कि यह पापी था
और किसी तरह कुछ बात हो गई, जम गई बात किसी तरह; चला गया होगा!
मगर पंडित भी यह कथा नहीं गढ़ पाए अब तक कि कोई पंडित चला गया हो अजामिल जैसा। पापी था, चला गया; चलो जाने दो- चलेगा; लेकिन पंडित भी इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाए, कि उन्होंने ऐसी कोई कथा गढ़ ली हो कि कोई महापंडित था, जिंदगी भर शास्त्रों में उलझा रहा, शब्दों में उलझा रहा, वाद-विवाद में पड़ा रहा और मरते वक्त अपने बेटे को बुलाया "नारायण" और भगवान समझे कि मुझे बुला रहा है-और मोक्ष चला गया हो। पंडित भी इतनी हिम्मत नहीं कर पाए। पापी को तो भिजवा दिया किसी तरह कहानी में, लेकिन पंडित नहीं।
मेरे देखे भी पापी शायद कभी पहुंच भी जाए, पंडित कभी नही पहुंचता। क्योंकि पापी शायद किसी दिन पछताए। यह बहुत असंभव है कि पापी न पछताए। क्योंकि जब तुम पाप करते हो, तब तुम्हारी पूरी अंतरात्मा कहती हैः मत करो, मत करो, मत करो!
जब तुम पाप करते हो, तब तुम कभी पूरे-पूरे उसमें नहीं होते; तुम्हारा अंतरतम तो बाहर ही रहता है। वह तो कहता है; बचो, अभी भी बच जाओ; रुक जाओ! पुकारता जाता है। हालांकि उसकी आवाज धीमी और तुम्हारी आवाजों का तुम्हारा शोरगुल बहुत है। हालांकि अंतरतम की आवाज बहुत-बहुत धीमी है और तुम्हारी आदतों की आवाजें बड़ी गहरी हैं। शायद तुम सुनो न सुनो, यह दूरी बात है। तुम गुनो न गुनो, यह दूसरी बात है। लेकिन तुम्हारा अंतर्तम सदा कहता हैः रुको, ठहर जाओ मत करो; पीछे पछताओगे।
पापी भी इतनी पापी नहीं होता कि उसके भीतर आवाज न उठती हो। ऐसा कोई पापी नहीं होता, क्योंकि परमात्मा, तुम चाहे कितना ही पाप करो, तुम्हारे भीतर अपनी आशा लगाए रहता है कि आज नहीं कल जागोगे; आज नहीं कल पहुंचोगे।
तुम्हारे भीतर पुकारे चला जाता है।

लेकिन पंडित को पछतावा नहीं होता। पंडित को पछतावा क्यों हो? उसने कुछ पाप तो किया नहीं। वह तो सोचता है, उसने बड़े पुण्य का कार्य किया।
पंडित तो सोचता है कि मैं तो शास्त्रों में ही रमा रहा; उसकी ही याद में लगा रहा; राम-राम जपता रहा।
तो पंडित कैसे पछताएगा! और जो पछताएगा नहीं, वह पहुंचेगा नहीं। क्योंकि जो पछताएगा नहीं, वह झुकेगा नहीं। क्योंकि जो पछताएगा नहीं, वह समर्पित नहीं होगा।।
पंडित अहंकार से भरा रहेगा। पापी का क्या अहंकार हो सकता है! अहंकार कहने योग्य क्या है उसके पास? मंदिर नहीं बनवाए, मस्जिदें नहीं बनवाईं, धर्मशालाएं नहीं खुलवाईं; लोगों को लूटा-खसूटा मारा! क्या उसके पास है- अहंकार को सजाने के लिए? अहंकार पर घाव ही घाव हैं; शृंगार तो बिल्कुल, नही।
पंडित के पास तो बड़ा शृंगार है। तपस्वी के पास बड़ा श्रृंगार है। साधु
के पास बड़ा शृंगार है। अहंकार सजा हुआ है। सजे हुए अहंकार से छुटकारा पाना बहुत मुश्किल है।
चलो इसलिए मैं मान भी लेता हूं कि अजामिल पहुंच गया हो; लेकिन पंडित? पंडित कभी नहीं पहुंचा।
पंडित वाद बदंते झूठा।
भोजन कह्या भूख जो भाजै, तो सब कोई तिरि जाई।
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
और तुमने देखा कि आदमी के साथ रहते-रहते तोता भी "हरि-हरि" बोलने लगता है। तुम जो बोलते हो, वही बोलने लगता है। लेकिन हरि-हरि दोहराने से तोते को कुछ हरि का प्रताप तो पता नहीं चलता; हरि की कुछ महिमा तो पता नहीं चलती। तोता लाख जपता रहेः हरि-हरि, तोता संत तो नहीं हो जाता? सुना नहीं कभी कि कोई तोता बुद्ध हो गया हो!
और पंडित तोता है। तोते से ज्यादा नहीं। उसे भी हरि के प्रताप का कोई पता नहीं। प्रताप का तो पता तभी होता है, जब तक उसके प्रताप में प्रविष्ट हो जाओ। प्रताप का तो पता तभी होता है, जब तुम उस दशा में आरूढ़ हो जाओ। प्रताप का पता तो तभी होता है, जब तुम समाधिस्थ हो जाओ। प्रताप तो स्वाद से पता चलता है। फिर महिमा बढ़ती ही जाती है। फिर महिमा इतनी सघन हो जाती है कि कितना ही नाचो, और कितना ही गाओ- चुकती नहीं। कहना चाहो, कही नहीं जाती; अभिव्यंजना नहीं हो पाती। अपूर्व वर्षा होती है अमृत की। लेकिन वह तो तभी पता होगा, जब तुम हरि में प्रविष्ट हो जाओ और हरि तुम में प्रविष्ट हो जाए। तोते बने रहने से यह न होगा।
नर को संग सुवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबहुं उड़ि जाए जंगल में, बहुरि न सुरतैं आनै।
और अगर कभी मौका मिल जाए तो तोते को, खुला छूट जाए पिंजरा, निकल भागे,
तो फिर जंगल, में भूलकर भी हरि-हरि नहीं दोहराएगा। किसलिए? हरि से लेना- देना क्या? "बहुरि न सुरतैं आनै।" फिर सुरति न करेगा। फिर स्मरण न करेगा। फिर जंगल में बैठ कर नहीं कहेगा; हरि-हरि-हरि! क्या लेना-देना हरि से? बात खतम हो गई। वह तो आदमी के साथ फंस गया था झंझट में, तो हरि-हरि दोहराने लगा था।
ऐसे ही पंडित शास्त्रों की झंझट में हरि-हरि दोहराने लगता है। पढ़ता है, प्रभाव पड़ता है, दोहराने लगता है। लेकिन ऐसे प्रभाव का कोई मूल्य नहीं है-जो तुम्हारी प्रभा न बन जाए। जो तुम्हारे ऊपर संस्कार की तरह ही रहे, उससे तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी।
"बिनु देखे, बिनु अरस परस बिनु, नाम लिए का कोई।" यह शब्द बड़ा प्यारा है। "बिनु देखे"... जब तक देखोगे ना हरि को, कैसे उसका प्रताप अनुभव होगा? आंखें भरें उससे, हृदय भरे उससे, स्पर्श हो उसका! बिनु देखे, ... बिना दर्शन के कुछ भी न होगा। विश्वास किए मत बैठे रहना; विश्वास धोखा है। "पंडित वाद बदंते झूठा"। अनुभव करना। विश्वास किए मत बैठे रहना। विश्वास करके गंवाया, बहुत पछताओगे।
और ऐसे ही लोग गंवा रहे हैं, लोग विश्वास किए बैठे हैं कि ईश्वर है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि "हम मानते हैं कि ईश्वर है।" मानने से क्या होगा? तुम मानते हो, इससे ही जाहिर होता है कि जानते नहीं।
हम उन्हीं बातों को मानते हैं, जिनको जानते नहीं। जिनको जानते हैं, उनको तो कोई नहीं कहता कि हम मानते हैं। तुम यह तो नहीं कहते कि ये हरे वृक्ष जो यहां खड़े हैं, हम इनको मानते हैं! तुम जानते हो, मानने का सवाल नहीं है। सूरज उगा हुआ है, तुम यह तो नहीं कहोगे कि हम मानते हैं कि सूरज उगा हुआ है। तुम कहोगे कि हम जानते हैं कि सूरज उगा हुआ है। लेकिन अंधा आदमी कहेगा कि हम मानते हैं कि सूरज उगा हुआ है। अंधा कैसे कहे कि हम जानते हैं कि सूरज उगा हुआ है?
मानना तो उसी का होता है, जिसको तुमने जाना नहीं। मानना दो कौड़ी का है; असली सवाल जानना है। मानने से क्या होगा? और मानने का कारण क्या होगा तुम्हारे भीतर? क्यों मानते हो कि ईश्वर है?
अक्सर तो लोग डर के कारण मानते हैं; भय के कारण मानते हैं; मृत्यु के कारण मानते हैं। असहाय हैं, इसलिए मानते हैं। ये कोई बातें मानने की हुईं? कहीं भय से प्रेम का जन्म हुआ है? कहीं भय से प्रार्थना उठी है? भय से तो वासना उठती है। और जिससे हमारा भय का संबंध है, उससे हमारा संबंध ही नहीं। भय से कहीं सेतु बनता है?
मंदिर और मसजिद में लोग प्रार्थना कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं-घुटनों
पर झुके हुए हैं; सिर नवाए हुए हैं। मगर जरा गौर से इनके भीतर देखोः शरीर ही झुका है; अहंकार जरा भी नहींझुका है। और यह भी हो सकता है कि वहां सिर झुकाए झुकाए देख रहे हों कि लोग देख रहे हैं कि नहीं मुझे, कि कितनी प्रार्थना कर रहा हूं; कितनी नमाज पढ़ रहा हूं! दिन में पांच बार नमाज पढ़ता हूं। यह पापी कोई एकाध पढ़ लेता है; तो समझता है कुछ हो गया। मैं पांच पढ़ता हूं। वर्षों से नहीं चूका हूं। भीड़-भीड़ देख ले कि मैं कितना पूजा कर रहा हूं, कितनी प्रार्थना कर रहा हूं!
यह भी अहंकार हो गया।
"तुम्हारी महक मन को मोह लेती है। बड़ी प्यारी व मीठी गंध है तुम्हारे पास। दुनिया में तुमसे अधिक सुवासित कोई भी नहीं होगा"-फूल से किसी ने कहा।
फूल ने उत्तर दिया-
"नहीं, ऐसी बात नहीं, धरती की सुगंध मुझसे बहुत श्रेष्ठतर है। मैं तो कुछ भी नहीं हूं। यह छोटी-सी सुगंध मुझ में है, यह भी धरती से आती है और धरती में अनंत गंध भरी है।"
जब धरती से यह प्रश्न पूछा गया, तो उसने कहा कि-
"मैं क्या! मैं कुछ भी नहीं1 असली गंध तो मेघ में होती है। जब मेघ बरसता है, तो उसी की गंध मुझ में समा जाती है। मेघ के बिना तो मैं बिल्कुल रूखी-सूखी हुं, मरुस्थल हूं। वे जो आकाश में मेघ घिरते हैं आषाढ़ के, गंध देखनी है, उनकी देखो! मुझ में क्या रखा है?"
इस प्रकार पूछे जाने पर मेघ ने इंद्र को इशारा किया कि-
"मेरा क्या, उसकी आज्ञा! सब उसके इशारे से होता है! उसकी अंगुली में इतनी गंध है कि उसका इशारा आया कि गंध फैल जाती है।"
इंद्र से पूछा, तो इंद्र ने विष्णु को बताया कि-वही सम्हाले है सब को; मुझको भी वही सम्हाले है। जो भी गंध है, उसकी है। जो भी महिमा है, उसकी है। विष्णु ने ब्रह्मा को बताया। उसने कहा-"मैं सम्हालता क्या, अगर ब्रह्मा न बनाते? उन्होंने बनाया सब! सब सुगंध उनकी!"
और जब ब्रह्मा से पूछा गया, तो ब्रह्मा ने कहा-"सर्वाधिक सुवासयुक्त
तो मानव ही हो सकता है, क्योंकि मेरी महिमा इतनी ही है कि मैंने मनुष्य बनाया। और मेरी महिमा क्या है?"
स्वभावतः चित्रकार की महिमा यही है कि उसने चित्र बनाया। और कवि की महिमा यही है कि उसने काव्य रचा। और मूर्तिकार की महिमा और क्या है?-उसकी मूर्ति।
तो ब्रह्मा ने कहाः "मनुष्य को देख लो, बस! मनुष्य में है सारी गंध का वास!"

और जब मनुष्य से यह प्रश्न पूछा गया, तो वह अहंकार में अकड़ कर बोलाः "अरे मूर्ख! भला मुझसे भी अधिक कोई सुवासित हो सकता है? मैं परम सुगंधमय हूं!"
और अब तुम जान सकते हो कि सुगंध कहां है। सुगंध हमेशा निर-अहंकार में है। फूल में भी सुगंध थी; और धरती में भी सुगंध थी-और मेघ में भी-और इंद्र में भी-और विष्णु में भी-और ब्रह्मा में भी। मनुष्य सुगंधहीन हो गया। यह अहंकार कि मैं परम सुगंधमय हूं! और चिल्ला कर बोलाः "अरे मूर्ख, यह भी कोई पूछने की बात है? मुझे दिखाई नहीं पड़ता कि मैं मनुष्य हूं? भला मुझ से भी अधिक कोई सुवासित हो सकता है?"
अहंकार से दुर्गंध उठती है। निर-अहंकार से सुगंध उठती है। तो तुम्हारी पूजा, प्रार्थनाएं, तपश्चर्याएं अगर तुम्हारे अहंकार को ही सजाती हैं, तो थोथी हैं।
"पंडित वाद बदंते झूठा।"
"बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु"... देखना होगा प्रभु को। आंखों में आंखे डालकर देखना होगा प्रभु को। उसकी सूरत समा जाए भीतर। रोएं-रोएं में समा जाए। धड़कन-धड़कन में समा जाए। तुम कह सको कि मैने जाना है, मैने देखा है। मैंने देखा-अपनी आंखों से देखा है। "बिनु अरस परस बिनु"... । अरस-परस हो, स्पर्श हो। अनुभव हो। उसके संग नाचो। उसके साथ रास हो। उसके साथ गीत गुनगुनाओ। उसके साथ बैठो-तो जाना। और जाना-तो कुछ होगा।
"नाम लिए का होई"... । ऐसा राम-राम जपने से कहीं कुछ होता है? "राम कह्या दुनिया गति पावे, खांड कह्या मुख मीठा। पंडित वाद बदंते झूठा।"
व्यर्थ की बकवासें हैं। राम-राम कहने से कुछ न होगा-राम को जानने से कुछ होगा। तुम कितना ही राम-राम चिल्लाते रहो, तुम्हारा हृदय कुछ और ही चिल्ला रहा है। तुम अगर धन के प्रेमी हो, तो ऊपर तुम राम-राम कह रहे हो, और भीतर धन की गुहार चल रही है; धन से अरस-परस हो रहा है। यह राम की तो फिजूल बकवास लगा रखी है। शायद इसी आशा में कि राम-राम कहते रहो, तो ज्यादा धन मिल जाए। राम की प्रार्थना भी धन के लिए! राम की प्रार्थना भी यश के लिए! जिस दिन तुम राम की प्रार्थना राम के लिए ही करोगे, उस दिन सार्थक होगी।
एक आदमी मरकर स्वर्ग के लोहे के फाटक के पास पहुंचा। उसने दरवाजा खटखटाया। दरवाजे पर एक देवदूत प्रकट हुआ।
देवदूत ने उस आदमी से नाम पूछा। उस आदमी ने कहाः "मुल्ला नसरुद्दीन!" देवदूत ने कहाः "हमें तुम्हारे यहां आगमन की कोई सूचना नहीं मिली। कहीं कुछ भूल-चूक हो गई!"
"फिर भी, उसने कहा कि "जब धरती पर थे, तो तुम काम क्या करते थे? अपने बाबत ब्यौरा दो, ताकि मैं रजिस्टर में जाकर
देखूं कि मामला क्या हैः भूल-चूक कहां हो गई है?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः "कबाड़ी था साहब, कबाड़ी। पुराना लोहा खरीदा
और बेचा करता था।"
"तुम यहीं ठहरों, देवदूत बोला। "मैं भीतर से तुम्हारा खाता देख कर अभी आता हूं।"
"थोड़ी देर बाद देवदूत वापस आया, तो मुल्ला नसरुद्दीन गायब था और साथ में लोहे का फाटक भी।"
कबाड़ी तो कबाड़ी! जिंदगी भर पुराना लोहा खरीदना बेचना! देवदूत भीरत गया और उसने देखाः यह मौका छोड़ने जैसा! स्वर्ग छोड़ दिया; ले भागे लोहे का फाटक!
तुम्हारा अंतरतम क्या है, वही निर्णायक है। तुम्हारे अंतर्तम में जो है, वही तुम हो; ऊपर-ऊपर के धोखे में मत पड़ना। ऊपर-ऊपर कहे राम-राम और भीतर चलता हो कुछ, तो ध्यान रखना कि जो भीतर है, वही निर्णय करेगा तुम्हारे जीवन का।
बिनु देखे बिनु अरस-परस बिनु, नाम लिए का होई।
धन के कहै धनिक जो हो तो निरधन रहत न कोई।

अगर धन कहने से धनिक हो जाते, तो सभी धनिक हो गए होते। धन ही धन तो लोग
कह रहे हैं। लेकिन धन कमाना पड़ता है, तब कोई धनिक होता है। राम भी कमाना पड़ता है, तब कोई राम का होता है।
"सांची प्रीति विषय माया सूं, हरि भगवत सूं हांसी।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बांध्यो जमपुर जासी।"
"सांची प्रीति विषय माया सूं----"। और ये तथाकथित जो पंडित हैं, जो राम-राम की बकवास लगाए रखे हैं और बड़ा विवाद और तर्क फैलाए रखे हैं, और प्रमाणित करते हैं कि ईश्वर है, या नहीं; ऐसा है, वैसा है; उसका रूप, उसका रंग, उसका ढंग सब ब्यौरे से समझाते हैं-इनको अगर गौर से देखोः "सांचि प्रीति विषय माया सूं!" इनकी सच्ची लगन तो विषय और माया में है! इन पंडितों को खरीद लेना बड़ा आसान है। ये पंडित तुम जो चाहो, वही कहने लगेंगे; इनकी आकांक्षा पूरी कर दो। ये तुम्हारे घर सौ रुपये महीने पर आकर प्रार्थना कर जाते हैं; पूजा कर जाते हैं। तुम सोचते हो, तुम किसको धोखा दे रहे हो! पूजा भी किसी और से करवा रहे हो!
यह तो ऐसे ही हुआ कि तुम्हें प्रेम करना हो अपने बेटे से, और एक नौकर
रख लो; कि "मुझे तो फुरसत रहती नहीं, तो तू आकर कभी-कभी इसका सिर थप-थपा दिया कर; कभी इसको गले लगा लिया कर-मेरी तरफ से!" यह बात बेहूदी लगती है। लेकिन परमात्मा के साथ लोग यही करते हैं। आदमी रख लेते हैं किराए का कि तू पूजा कर जाया कर रोज। मैं तो, इतना समय नहीं है कि घंटी बजाऊं, कि थाली सजाऊं, कि आरती उतारूं-तू उतार दिया कर; यह काम तू कर दिया कर, फल में ले लूंगा; तू अपना रुपया ले लेना।
तुम किसको धोखा दे रहे हो? पंडित को कुछ लेना नहीं; उसे रुपये लेना है।
कल अगर उसे कोई और ज्यादा रुपये देने वाले मिल जाएगा, तो तुम्हें छोड़ जाएगा। कल अगर उसे कोई और धन देनेवाला मिल जाएगा, तो वह हिंदू धर्म छोड़ कर मुसलमान हो सकता है; मुसलमान छोड़ कर ईसाई हो सकता है।
तुम देखते होः ईसाइयों ने इतने लोग ईसाई बनाए हैं-सब प्रलोभन के आधार पर! रोटी-रोजी; नौकरी मिल जाती है, शिक्षा मिल जाती है, अच्छा मकान मिल जाता है। ठीक है; आदमी ईसाई हो जाता है।
मुसलमानों ने कितने लोग मुसलमान बना लिए-तलवार के बल पर! यह बड़े मजे
की बात है-तलवार के बल पर आदमी धार्मिक हो गया, मुसलमान हो गया! घबड़ा गया मरने से; सोचाः चलो ठीक है, जान बचाओ। "लौट कर बुद्धू घर को आए, जान बची और लाखों पाए!" चलो, जान बचाओ, मुसलमान हो जाओ, इसमें रखा क्या है? वह मुसलमान हो गया!
तुम्हारा हिंदू, मुसलमान, ईसाई-वास्तविक तुम्हारे हृदय के अनुभव से निकला है, कि ऐसी ही कुछ बाहरी बातों से तय हो गया है? और न तुम तलवार से झुके हो, न तुम रोटी-रोजी से झुके हो-फिर भी तुम्हारा हिंदू-मुसलमान होना कितने मूल्य का है! हिंदू-घर में पैदा हो गए तो हिंदू, क्योंकि मां-बाप ने दिमाग में हिदूं-धर्म घुसा दिया। न उनके पास हिंदू-धर्म था, न उनके मां-बाप के पास था। उधार उनका था, उधार तुम्हें बना दिया। यह सब थोथा है।
इसलिए कबीर कहते हैंः "पंडित वाद बदंते झूठा। सांची प्रीति विषय माया सूं।"
पंडित से कहते हैः तेरी प्रीति हमें राम में नहीं लगती। तेरी प्रीति
तो हमें लगती है धन, पद, प्रतिष्ठा-इसमें।
देखते हो तुमः इलाहाबाद हाई-कोर्ट में मुकदमा चल रहा है वर्षों से। शंकराचार्य की एक गद्दी पर दो आदमियों का दावा है कि असली शंकराचार्य कौन! अब यह बड़े मजे की बात है कि शंकराचार्य होने का निर्णय भी अदालत करेगी, कि असली शंकराचार्य कौन! और ये जो दो आदमी अदालत में मुकदमा लड़ रहे हैं शंकराचार्य होने का, इनको शंकराचार्य से कुछ भी लेना-देना है? इनको पद की फिक्र है। उस गद्दी पर करोड़ों रुपये है, पद-प्रतिष्ठा है। उस गद्दी पर जाना है। ये राजनीतिज्ञ हैं। इनका धर्म से क्या लेना-देना!
इनको अगर कल कोई और ज्यादा बड़ी गद्दी देने को मिल जाए, कोई कहे कि "आओ, चलो, पोप हो जाओ वेटिकन के, कहां तुम यह छोटी-मोटी बात में पड़े हो, इसमें रखा क्या है! शंकराचार्य की गद्दी का मूल्य कितना है? आ जाओ, पोप हो जाओ।"

पोप की तो बड़ी ही महिमा है। आधी पृथ्वी ईसाई है। अरबों-खरबों रुपयों का फैलाव है। सम्राट है पोप। तो ये वहां चले जाएंगे। इनको क्या लेना-देना है। मैंने सुना हैः एक पादरी रोज प्रवचन देता था, तो गांव का सब से बूढ़ा आदमी सामने ही बैठता था-बड़ा प्रतिष्ठित धनी आदमी। और न केवल सामने बैठता था... । उम्र भी कोई अस्सी-बयासी साल की हो गई-थका- मांदा जिंदगी भर का। मगर वह दानी भी था। चर्च को उसने दान भी दिया था। और सब से बड़ा प्रतिष्ठित नागरिक भी था, मेयर भी रह चुका था। और कई बातें थीं। तो वह सामने ही बैठता और पुरोहित को बहुत अखरता, क्योंकि वह दो-तीन मिनट में ही सो जाता। सिर हिलाने लगता। न केवल इतना-घुर्राता भी! सामने ही घुर्राता-बैठ कर। तो वह पुरोहित बड़ा परेशान होता। उसको बड़ी बाधा पड़ती। उस बूढ़े के साथ उसका छोटा नाती भी आता था-सात-आठ साल का लड़का।
उसने तरकीब निकाली। पुरोहित ने उसके नाती को एक दिन अलग से बुलाया और कहा कि "देख, तू अपने दादा को जगा दिया कर, मैं तुझे चार आने दिया करूंगा। जब भी वे सोएं, जगा दिया। जरा-सा धक्का मार दिया।"
चार आने के लोभ में उसने कहा, "अच्छा, कर देंगे।" तो जैसे ही बूढ़ा सोता,
वह लड़का उसको जगा देता। ऐसी तीन सप्ताह तक तो बिल्कुल ठीक चला। वह पुरोहित बड़ा प्रसन्न था। लेकिन चौथे सप्ताह देखा कि बूढ़ा सो रहा है, घुर्रा रहा है; लड़का बैठा है और जगा नहीं रहा। उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने एक-दो दफे इशारा भी किया; लड़का इधर-उधर देखे। उसने उसको फिर इशारा किया कि----। उस लड़के ने इशारा कर दिया कि "नहीं"। पीछे उसको बुला कर पूछा कि "बात क्या है! हम तेरे को चार आने देते हैं, काहे का
देते हैं? चार आने रोज हम तेरे को देते हैं। तू जगाता क्यों नहीं?"
उसने कहाः "दादा आठ आने देने लगे है। उन्होंने कहा हैः मुझे जगाना भर नहीं, आठ आना ले लिया कर। अब मैं नहीं जगा सकता। अब आप सोच लो। अगर रुपये का इरादा हो... !"
तुम्हारी चाहत क्या है, उससे सब निर्भर होगा।
"सांची प्रीति विषय माया सूं, हरि भगतन सूं हासी।" और ये पंडित-पुरोहित-धन के पीछे दीवाने, पद के पीछे दीवाने, प्रतिष्ठा के पीछे दीवाने, घने अहंकार से भरे हुए लोग-और भक्तों के लिए हंसते है। "हरि भगतन सूं हांसी"।
कबीर अनुभव से कह रहे हैं। कबीर में रहे हैं-पंडितों के घर में रहे। कबीर की खूब हंसी उड़ायी होगी उन्होंने कि कबीर पागल है, कि कबीर के वंश का कुछ ठिकाना नहीं है-कि हिंदू है कि मुसलमान, कुछ पक्का नहीं है; भ्रष्ट है; जुलाहे के घर में पला है, शूद्र है। कबीर की खूब हंसी उड़ायी होगी उन्होंने। कबीर के भक्तों की हंसी उड़ायी होगी कि कहां जाते हो, किसके पास जाते हो?
तो कबीर कहते हैं कि खुद का तो मन विषय-माया में लगा है-हरि भगतन सूं हांसी-और जो हरि के भक्त हैं, उनके प्रति हंसते हो!
भक्तों के प्रति हमेशा पंडित हंसा है। भक्त को पंडित बरदाश्त नहीं कर सकता। क्योंकि भक्त होता है हृदय से; और पंडित जीता है खोपड़ी में। खोपड़ी सदा हृदय पर हंसती है।
इसलिए तो लोग कहते हैः "प्रेम अंधा होता है।" कौन कहता है यह?-यह खोपड़ी कहती है कि प्रेम अंधा होता है। प्रेम आता हृदय से। खोपड़ी कहती हैः हृदय की बकवास में मत पड़ना, नहीं तो झंझट में आओगे। मेरी सुनो, मेरी मानो, अगर होशियारी से जीना हो, अगर दुनिया में कुछ कर जाना हो। धन कमाया हो, पद कमाना हो-मेरी सुनो। हृदय की सुनी-कि गए। न घर के रहोगे, न घाट के। हृदय की बात में पड़ना ही मत, यह भावनाओं का मामला है; भावनाएं तो अंधी होती हैं। यह दुनिया कहीं भावना से चलती है? यहां हिसाब-किताब चाहिए, तर्क-बुद्धि चाहिए। यहां होशियारी चाहिए, चालाकी चाहिए, कपट-कुशलता चाहिए। यहां राजनीति-कूटनीति चाहिए। यह प्रेम-व्रेम से नहीं होगा। प्रेम-व्रेम को हटाकर रखो अलग करो। बीच में मत आने दो। अगर प्रेम को बीच में लाए, तो मुश्किल, पड़ेगी!

प्रेम मुश्किल लाता है। इसलिए तो लोगों ने प्रेम को बिल्कुल बांधकर
रख दिया है। प्रेम मुश्किल लाता है सच है; लेकिन प्रेम आनंद भी लाता है। और इसलिए तो लोग निरानंद हो गए हैं। प्रेम को बांध कर रख दिया है; मुश्किल से डर गए हैं। तो जीवन से सारा सुख, सारा संगीत खो गया है। जी रहे हैं-मरुस्थल की तरह। मरूद्यान भी नहीं। एक जरा-सा जल का झरना भी नहीं। सूखे-साखे लोग, जिनके जीवन में कोई रसधार नहीं बहती!
सांची प्रीति विषय माया सूं, हरि भगतन सूं हांसी।
कहै कबीर प्रेम नहिं उपज्यौ, बांध्यो जमपुर जासी।
और कबीर कहते हैः समझ लो इस बात को। यह खोपड़ी के खेल से कुछ भी न होगा, तर्क से कुछ भी न होगा, विचार से कुछ न होगा, ज्ञान से कुछ न होगा। होगा, तो प्रेम से होगा। "कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ"... अगर प्रेम नहीं उपजा, अगर भावना नहीं जगी, अगर भाव नहीं उठा-तो याद रखो; "बांध्यो जमपुर जासी" जल्दी ही यम के दूत आएंगे और ले जाएंगे नरक। क्योंकि प्रेम ही केवल स्वर्ग ले जाता है। क्योंकि प्रेम ही प्रार्थना बन सकता है। और प्रार्थना ही परमात्मा के चरणों तक ले जा सकती है।
धन्यभागी हैं वे, जो प्रेम कर पाते हैं। मृत्यु से वे ही बच सकेंगे, जो प्रेम कर पाते हैं।
प्रेम ही एकमात्र अमृत की झलक है-इस मृत्यु के लोक में। इस अंधेरी रात में, जहां सब रास्ते उलझ गए हैं- प्रेम ही एक रोशनी है, एक दीया है।
प्रेम की सुनो। प्रेम की मानो। और प्रेम जो गंवाने को कहे, गंवा दो। प्रेम के साथ जो भी गंवाया, वह कमाना है। और बुद्धि के साथ जो भी कमाया, वह एक दिन गंवाना सिद्ध होगा।
होशियारी छोड़ो। समझदारी छोड़ो। नासमझी में बड़ा रस है। अज्ञानी हो रहो, क्योंकि अज्ञान निर्दोष है। ज्ञान की अकड़ डुबाएगी। यह ज्ञान का पत्थर तुम्हारी छाती से बंधा रहा, तो डूबोगे। " बांध्यो जमपुर जासी।"
"चलन चलन सबको कहत है, ना जानै बैकुंठ कहां है।" और यह पंडित लोगों से कहता है कि "चलो, चलो, उठो, परमात्मा को पाने चलो, स्वर्ग को खोजो, मोक्ष की यात्रा करो।
"चलन चलन सबको कहत है, ना जानै बैकुंठ कहां है।" और इसको खुद भी पता नहीं कि बैकुंठ है कहां! इसने खुद देखा नहीं आंख से! इसने परमात्मा की तस्वीर देखी नहीं, क्योंकि परमात्मा की तस्वीर देखी होती, तो इसका जीवन और होता। इसका जीवन तो गवाही नहीं देता। इसका जीवन तो प्रमाण नहीं देता कि इसने परमात्मा को देखा।
जिसने एक बार देख लिया परमात्मा को, एक झलक भी, एक बार कौंध गई उसकी बिजली-फिर वह आदमी कुछ और ही ढंग का आदमी हो जाता है। वह आदमी इस जगत में बिल्कुल अजनबी हो जाता है। इस जगत में वह इस जगत का नहीं होता-इस जगत के पार का प्रतीक हो जाता है। और वह एक दफे झलक जाए, तो भूलती नहीं याद; सतत बनी रहती है।
साधारण प्रेम में ऐसा हो जाता है तो परमात्मा के प्रेम का तो कहना ही क्या? यह गीत सुनो-
कुछ दिनों से, करीबे दिल है वो दिन
जब अचानक, इसी जगह, इक शक्ल
मेरी आंखो में मुस्कराई थी
एक पल के लिए तो-एक वो शक्ल
जाने क्या कुछ थी, झूठ भी, सच भी
शायद इक भूल-शायद इक पहचान
कुछ दिनों से तो, जान-बूझ के, अब ये समझने लगा हूं, मैं ही तो हूं जिसकी खातिर ये अक्स उभरा है कुछ दिनों से तो, अब मैं दानिस्ता इस गुमां का फरेब खाता हूं
रोज, एक शक्ल, इस दोराहे पर
अब मेरा इंतिजार करती है

एक दिवार से लगी, हर सुबह टिकटिकी बांध, नीमरुख, यकसूं अब मेरा इंतजार करती है
मैं गुजरता हूं-मुझको देखती है मैं नहीं देखता-वो देखती है उसके चेहरे की साख्त, साऊते-दीद जर्द ओठों की पतडियां, पीतल सुर्ख आंखो की टुकड़ियां कुरमज! रोगनी धूप में, धंसते हुए पांव मुंतिजर-मुंतिजर, उदास-उदास
एक यही चेहरा, एक पल के लिए
जाने क्या कुछ था-लेकिन अब तो मुझे अपनी ये भूल भूलती ही नहीं!
एक दिन ये शबीह देखी थी
कुछ दिनों से करीबे-दिल है वो दिन कुछ दिनों से तो बीतते हुए दिन इसी एक दिन में ढलते जाते हैं
दिन गुजरते हैं अब तो यूं जैसे उम्र इसी दिन का एक हिस्सा है
उम्र-गुजरी ये दिन नहीं गुजरा
जिस तरफ जाऊं-जिस तरफ देखूं
मुझसे ओझल भी-मेरे सामने भी
शक्ल एक-टीम के वर्क पे वही
शक्ल एक-दिल के चौखटे में वही!

यह गीत तो साधारण प्रेम का है। अगर तुमने किसी के चेहरे को चाहा एक क्षण को; एक क्षण को किसी के चेहरे का सौंदर्य तुम्हें भावभिभूत कर गया; एक क्षण को कोई चेहरा तुम्हारी आंखों में उतर गया; एक क्षण को-जब विचार बंद हो जाते है; एक क्षण को-जब मन में कोई तरंग नहीं होती; एक क्षण को-जब हृदय के द्वार खुले होते हैं; एक क्षण को-जब यह अक्स, यह प्रतिबिंब तुम्हारे हृदय में उतर जाता है और बैठ जाता है-फिर भूले नहीं भूलता।
एक यही चेहरा-एक पल के लिए
जाने क्या कुछ था-लेकिन अब तो मुझे
अपनी ये भूल भूलती ही नहीं!
एक दिन ये शबीह देखी थी
कुछ दिनों से करीबे-दिल है वो दिन
कुछ दिनों से तो बीतते हुए दिन इसी एक दिन में ढलते जाते हैं
दिन गुजरते हैं अब तो यूं जैसे उम्र इसी दिन का एक हिस्सा है
उम्र गुजरी-ये दिन नहीं गुजरा
जिस तरफ जाऊं-जिस तरफ देखूं
मुझसे ओझल भी-मेरे सामने भी
शक्ल एक-टीम के वर्क पे वही
शक्ल एक-दिल के चौखटे में वही!
तो परमात्मा का तो कहना ही क्या! एक बार दरस-परस हो जाए। "बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिए का होई।" एक बार क्षणभर को, पल भर को दर्शन हो जाए तो तुम चकित हो जाओगे। जन्मों-जन्मों चिल्लाने से जो नहीं हुआ, वह हो जाता है।
"चलन चलन सब को कहत है", ना जानै बैकुंठ कहां है।
"जोजन परमिति परमनु जानै। बातनि ही बैकुंठ बखानै।"
हालांकि पंडितों से पूछो, तो वे नक्शा रख कर बता देते हैं कि बैकुंठ यहां है। यहां से यहां जाना पड़ेगा, यहां से यहां जाना पड़ेगा; यहां स्वर्ग

है; यहां नरक है; यहां सात नरक हैं, यहां सात स्वर्ग हैं-सारा नक्शा बता देते हैं!
गए कहीं नहीं। अनुभव कुछ भी नहीं किया है। नक्शे खोलकर रख देते हैं। सीमा बता देते हैं-कि ये सीमाएं हैं। और यह सब बातचीत है।
"बातनि ही बैकुंठ बखानै"... । क्योंकि बैकुंठ बाहर नहीं है, भूगोल का हिस्सा नहीं है। इसलिए बैकुंठ का कोई नक्शा नहीं हो सकता है। बैकुंठ तो भीतर की दशा है-अंतर-दशा है। बैकुंठ तो अपने भीतर डूब जाने का नाम है। मोक्ष बाहर नहीं है। मोक्ष तुम्हारा स्वभाव है। उसका नक्शा नहीं हो सकता है। ये सब नक्शे झूठे हैं। "पंडित वाद बदंते झूठा"।
"जब लगि है बैकुंठ की आसा। तब लगि नहिं हरिचरन निवासा।"
और कबीर कहते हैः यह भी तू समझ ले पंडित कि जब तक बैकुंठ की आशा लगाए रखे है, तब तक हरि के चरण न मिलेंगे, क्योंकि यह आशा ही बाधा बन जाएगी। प्रभु-चरण की मांग एक बात है; बैकुंठ की आशा दूसरी। यह तो फिर सुख की
ही इच्छा है। यहां धन चाहते थे, वहां भी धन चाहते हो। यहां पद चाहते थे, वहां भी पद चाहते हो। यहां महल चाहते थे, वहां भी महल चाहते हो। जो यहां नहीं मिला, वह सब वहां चाहते हो।
"जब लगि है बैकुंठ की आसा, तब लगि नहिं हरिचरन निवासा।"
जब तक तुम और मांगते हो, तब तक परमात्मा न मिलेगा। परमात्मा उसे मिलता है, जो कहता हैः सब छिन जाए, बस मैं तुझे चाहता हूं, तेरे चरण चाहता हूं। इसलिए भक्तों ने कहाः छोड़ो बैकुंठ, हमें बैकुंठ नहीं चाहिए। मोक्ष, रखो तुम अपना, हमें नहीं चाहिए। हमें तुम्हारे चरण की रज बन जाने दो। हम तुम्हारे पैरों के पास पड़ जाएं, बस इतना बहुत है। और क्या चाहिए-अगर उस पड़ जाने में ही मोक्ष है!
जिसने मोक्ष की वासना की, वह मोक्ष से वंचित रह जाएगा। क्योंकि मोक्ष
का अर्थ ही होता है-निर्वासना में मिलता है जो। मोक्ष की वासना भी वासना है। मोक्ष तो तभी है, जब कोई वासना न रही। मोक्ष वासना का अभाव है।
"कहै सुनै कैसे पतिअइए। जब लगि तहां आप नहिं जइए।" और कहते हैं कबीर
कि पंडित, जब तक तू वहां नहीं गया, कहै सुनै कैसे पतिअइए-कहने-सुनने से कहींप्रतीति होती है? अंधे को लाख कहो कि रोशनी है, क्या प्रतीति होगी? और बहरे को लाख कहो कि संगीत है, क्या प्रतीति होगी? "कहै सुनै कैसे पतिअइए?"प्रतीति ही नहीं होगी। "जब लगि तहां आप नहिं जइए।" जब तक वहां स्वयं नहीं पहुंच जाओगे, तब तक कुछ न होगा।
"कहै कबीर यहु कहिए काहि।" कबीर कहते हैः यह मैं किससे कहूं? यह मैं किसको समझाऊं? पंडितों ने लोगों के चित्त विकृत कर दिए हैं। "कहै कबीर यहु कहिए काहि! साध संगति बैकुंठहि आहि।"
कबीर कहते हैंः शास्त्रों की संगति नहीं-साध-संगत। शब्दों की व्यवस्था नहीं-साधु-संघ। वहीं बैकुंठ है।
परमात्मा तो दूर है। हमें उसका कोई अनुभव नहीं। और कबीर कहते हैंः जब
तक उसका अनुभव न हो, तब तक कुछ हो नहीं सकता। फिर हम करें क्या? हम जाएं कैसे उसके पास? शास्त्र से जा नहीं सकते; राम-राम रटने से जा नहीं सकते। वह तोता-रंटत हो जाएगी। वाद-विवाद से जा नहीं सकते। पुण्य करें, तो अहंकार बनता है। तप-तपश्चर्या करें, तो अहंकार बनता है। मंदिर-मस्जिद सब आदमी के बनाए हुए हैं। तो फिर हम करें क्या? तो कबीर रास्ता बताते हैं।
कबीर कहते हैः रास्ता है। रास्ता हैः "साध-सगति बैकुंठहि आहि।" साधु
की संगत करो। सद्गुरुकी संगत करो। खोजो। जरूर कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाएगा, जिसमें तुम्हें झलक मिलेगी पार की। फिर उसका हाथ पकड़ लो, फिर उसकी छाया बन जाओ। फिर उससे कहोः
सखा ओ
छाया दो!
मन की तपन को
देखा-अनदेखा मत करो

अपनी ही मरजी रेखा मत करो

चित्त के इस तट पर
किरनें ही किरनें
कहां तक सहूं
ध्यान दो-थोड़ा ही सही
छाया-छाया की मेरी
इस रट पर
सखा ओ, छाया दो!
छाया भी चाहिए
विरक्ति का प्रकाश पड़ चुका
अनुरक्ति की माया भी चाहिए!
सखा ओ, छाया दो!

फिर किसी साधु का, किसी सद्गुरु का संग करो। फिर उसकी छाया मांगो। उससे कहो; बस पास बैठे जाने
दो। उससे कहोः तुम बरसो और मेरे खाली घड़े को पास रहने दो।
साधु तो बरस ही रहे हैं। तुम्हारा खाली घड़ा रख कर पास बैठ जाओ। साध-संगत! तो यहीं से तुम्हें धीरे-धीरे अनुभव मिलेगा।
तुमने तो नहीं जाना, लेकिन किसी ने जाना है। तुमने देखा, तुम तो बगीचे नहीं गए थे, कोई और बगीचा गया था। लेकिन जब बगीचे से कोई घूमकर आता है, तो उसके वस्त्रो में फूलों की थोड़ी सुगंध आ जाती है। तुम तो बगीचे नहीं गए, लेकिन कोई बगीचा घूमकर आया है-सुबह की ताजी हवा में; फूलों की गंध उस पर पड़ी है; पक्षियों के गीत उस पर पड़े है; चला है घास पर, जहां रात भर की ठंडी जमी हुई ओस थी-जब यह आदमी बगीचे से लौटता है, तब कुछ बगीचा अपने साथ ले आता है। अगर तुम गौर से देखो, तो इस आदमी में थोड़ी हरियाली पाओगे; थोड़ी फूलों की लरजती हुई गंध पाओगे; थोड़ी ताजगी पाओगे। सुबह की ताजगी इसकी आंखों में दिखाई पड़ेगी। यह साध-संगत। इसके संग हो लो। इसे बगीचे का पता है। कभी इसके संग लगे-लगे तुम भी पहुंच जाओगे।
साधु का अर्थ हैः जो परमात्मा में हो कर आता है; या परमात्मा में जीने लगा है। इसके पास बैठो। इसका एक हाथ परमात्मा में है। इसका दूसरा हाथ तुम पकड़ लो। हालांकि परमात्मा से तुम अभी सीधे नहीं जुड़े, लेकिन फिर भी संपर्क हो गया। यही संपर्क बढ़ते-बढ़ते एक दिन परमात्मा से संबंध बन जाता है। "मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।" चाहे मथुरा जाओ, चाहे द्वारिका, और चाहे जगन्नाथ। "साध-संगत हरि भजन बिन, कछू न आवै हाथ।" साध-संगत के बिना कुछ भी हाथ न आएगा; और साध-संगत में ही जो स्मृति आती है प्रभु की, वह तोता-रटंत नहीं होती; वह हरि-भजन बन जाता है।
पंडित से सीखा-तो तोता-रटंत। उसके पास ही नहीं है खुद; वह खुद ही उस बगीचे में नहीं गया। साधु से सीखा-तो हरि-भजन। बड़ा फर्क है। ऊपर से देखने में एक जैसा ही लगेगा।
"साध-संगति हरि भजन बिन, कछू न आवै हाथ।"
पहले साधु की संगत करो, फिर तुम्हारे भीतर अपने आप भजन उठने लगेगा। उसके संग-संग रहते-रहते उसका रोग तुम्हें भी लगेगा, यह रोग संक्रामक है। उसकी तरंग तुम्हें भी पकड़ लेगी। उसकी लहर तुमको भी लहराने लगेगी। उसकी मत्तता तुम्हारे भीतर भी शराब की तरह उतरने लगेगी; तुम भी डोलने लगोगे; तुम भी मस्त होने लगोगे; तुम भी नाचने लगोगे। "साध-संगत हरि-भजन बिन, कछू न आवै हाथ।"
मेरो संगी दोइ जन एक वैष्णो एक राम।
यो है दाता मुकति का, वह समिरावै नाम।
बड़ा प्यारा वचन है-बड़ा बहुमूल्य। कबीर कहते हैंः मेरो संगी दोई जन! दो
से मेरी दोस्ती है; बस दो ही से मेरा संगसाथ है। बस दो ही साथ-योग्य भी हैं। "एक वैष्णो, एक राम।" एक तो राम और एक राम को जिसने अनुभव कर लिया, वह है वैष्णव। वैष्णव का अर्थ होता हैः विष्णु को जिसने अनुभव कर लिया। तो दो ही संगी-साथी हैं इस जगत में-एक तो सत्य और एक तो सत्य को अनुभव कर लिया, सद्गुरु।

मेरो संगी दोइ जन, एक वैष्णो एक राम।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम।
राम से तो मिलती है मुक्ति; वह तो दान देनेवाला है मुक्ति का। लेकिन राम को कौन याद दिलाएगा? वो सुमिरावै नाम; वह जो वैष्णव है। वह जिसने सुमर लिया है। वह जिसने जान लिया है।
ये दो ही दोस्तियां करने जैसी है। और तुमने न मालूम कितनी दोस्तियां
की हैं, और ये दो से तुम बचे हो। और स्वभावतः राम से दोस्ती बाद में होगी, पहले दोस्ती तो राम के किसी प्यारे से होगी। राम के पास जाना हो, तो हनुमान को पकड़ो; राम के किसी प्यारे को पकड़ो। कृष्ण के पास जाना हो, तो राधा के पीछे लग जाओ; कृष्ण के किसी प्यारे को पकड़ो।
"यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम।" तो पहले तो जो तुम्हें उसका नाम सुमिरा दे... । और पंडित से बचना, नहीं तो तोता बन जाओगे; राम-राम जपने लगोगे। न उसके पास राम था, न तुम्हें मिल सकता है। जिसे मिल गया हो, उससे लेना हरि-भजन। मंत्र उससे लेना, जो पहुंच गया हो; उससे लेना दीक्षा, जो पहुंच गया हो। जो बैकुंठ में निवास कर रहा हो, वही तुम्हें स्मरण दिला सकेगा बैकुंठ का। दिलाने की जरूरत भी नहीं पड़ती; तुम उसके पास ही बैठते- बैठते धीरे-धीरे स्मरण से भर जाओगे।
"हरि सेती हरिजन बड़े"-यह वचन खूब बांध कर रख लेना। हीरों में तौला जाए,
तो भी वजनी सिद्ध होगा। "हरि सेती हरिजन बड़े"। कबीर कहते हैः हरि से भी बड़े हैं हरिजन। जिन्होंने हरि को पा लिया, वे हरि से भी बड़े हैं। क्यों? "हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन मांहि।" खूब समझ लो इस बात को, कबीर कहते हैं। "कह कबीर जग हरि विषे, सो हरि हरिजन मांहि।" जगत हरि में है, अस्तित्व हरि के भीतर है। सारा जगत, अस्तित्व हरि के भीतर है। जगत हरि में है और हरि हरिजन में है। तो स्वभावतः कौन बड़ा? यह जगत तो हरि के भीतर है; जैसे हरि के हृदय में यह जगत धड़क रहा है। उसके बिना यह नहीं हो सकेगा। यह जगत हरि के हृदय में बैठा है; औ हरि? भगत के हृदय में बैठे है। तो भगत तो बड़ा हो गया; भगवान से बड़ा हो गया।
तुम उसी दिन भगवत्ता को उपलब्ध हो जाते हो-भगवत्ता से भी ऊपर ऊठ जाते हो-जिस दिन तुम्हारे हृदय में राम बैठ जाते हैं। राम में सारा जगत समाया है-और राम के भगत में राम समाए हैं।
हरि सेति हरिजन बड़े, समझि देखु मन मांहि।
कह कबीर जग हरि विषे, सो हरि हरिजन मांहि।

जैसे जगत हरि में समाया है, ऐसे हरि हरि के भगत में समाया हैं। वैष्णवजन!
नरसी मेहता का वचन है-"वैष्णवजन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे।" उसको कहते हैं वैष्णव जन, जो दूसरे की पीड़ा जानने लगा। दूसरे की पीड़ा तुम तभी जानोगे, जब राम से मिलन हो जाएगा। तब तुम पाओगे कि सारा जगत राम को बिना पाए तड़प रहा है। तब तुम पाओगेः तुम्हारा तो उत्सव का क्षण आ गया, तुम्हारा तो महोत्सव आ गया, और सारा जगत पीड़ा में सड़ रहा है। और अकारण! जब कि राम सभी को मिल सकते हैं। सब हकदार हैं। यह हमारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है। लेकिन अपने हृदय में टटोलोगे, तो ही राम को पा सकोगे। वहां राम बसे हैं। और राम में सारा जगत है।
ऐसे हरिजन की बड़ी महिमा कबीर ने गायी है-सभी संतों ने गायी है।
सार-सूत्र उससे सीखना, जो जानता हो; उससे नहीं, जो मानता हो। उसके पास बैठना, जो परमात्मा के पास बैठा हो; उसके पास नहीं, जिसके पास केवल शब्द हों। उसे खोजना, जिसके प्रेम में डूबे सको; जिसकी भाषा में नहीं-जिसके प्रेम में पग सको। किसी वैष्णवजन को खोजना। किसी हरिजन को खोजना। उसके ही साथ बैठते-बैठते हरि हरिभजन उठेगा।
साध-संगति हरिभजन बिन, कछू न आवै हाथ।
मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
जाओ कहीं-जगन्नाथ, कि मथुरा, कि द्वारिका, कि काशी, कि कैलाश, कि काबा; जाओ जहां जाना है-कुछ भी हाथ नहीं आएगा।

साध-संगति हरिभजन बिन, कुछ न आवै हाथ।
मेरो संगी दोइ जन, एक वैष्णो एक राम।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम।।
हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन मांहि।
कह कबीर जग हरि विषे, सो हरि हरिजन मांहि।।

सावधान पांडित्य से। और अगर मिल जाए कोई साधु-जन, तो पागल होने में संकोच मत करना। मिल जाए कोई हरि का प्यारा, तो फिर सब दांव पर लगा देना।
फिर जुआरी बन जाना। इसके जुआरीपन का नाम ही दीक्षा है। और जो दीक्षित हुआ, वही पहुंच सकता है।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
दूसरा प्रवचन

शून्य में छलांग

पहला प्रश्नः मैं शून्य होता जा रहा हूं; अब क्या करूं?

भई, अब किए कुछ भी न हो सकेगा! थोड़ी देरी कर दी। थोड़े समय पहले कहते, तो कुछ किया जा सकता था। शून्य होने लगे--फिर कुछ किया नहीं जा सकता। करने की जरूरत भी नहीं है। क्योंकि शून्य तो पूर्ण का द्वार है।
तुम शून्य होओगे, तो ही परमात्मा तुम में प्रविष्ट हो सकेगा। तुम अपने से भरे हो, यही तो अड़चन है। पर खाली होने में डर लगता है। तुम्हारा प्रश्न सार्थक है, संगत है।
जब भी शून्यता आएगी, तो प्राण कंपते हैं; भय घेर लेता है। क्योंकि शून्यता ऐसी ही लगती है, जैसे मृत्यु; मृत्यु से भी ज्यादा। ज्ञानियों ने उसे महामृत्यु कहा है। क्योंकि मृत्यु में तो देह ही मरती है, शून्यता में तो तुम ही मर जाते हो। शून्यता में तो अस्मिता गल जाती है। कोई मैं-भाव नहीं बचता।
अब तुम पूछते होः "मैं शून्य होता जा रहा हूं," क्या करूं? कुछ करने की जरूरत भी नहीं है। आने दो शून्य को; स्वागत करो; सन्मान करो; बंदनवार बांधो; उत्सव मनाओ। क्योंकि शून्य ही सौभाग्य है। और तो कोई सौभाग्य कहां है?
इस जगत में जो मिट जाते हैं, वे धन्यभागी हैं। लेकिन मिटने में अड़चन
तो आती ही है। "मिटना" शब्द ही काटता-सा लगता है।
मिटते-मिटते भी आदमी चेष्टा करता है कि बच जाए? आखिरी-आखिरी क्षण तक तुम किनारे को पकड़े रहोगे। और दूसरे किनारे का बुलावा आ गया है। नाव तट पर खड़ी है--पाल खोल दिया है। वही तो ध्यान है--पाल खोल देना। वही तो समर्पण है--पाल खोल देना। वही तो संन्यास है--पाल खोल देना।
हवाओं ने पाल को भर दिया हैं, नौका उस पार जाने को तत्पर खड़ी है और तुम किनारे को पकड़े हो! और तुम किनारे से जंजीर नहीं छोड़ते! और तुम चिल्ला रहे हो कि बचाओ! किनारा छूटा जा रहा है! और अब तक इसी किनारे को छोड़ने के लिए चेष्टा की। क्योंकि इस किनारे पर सिवाय नरक के अैार कुछ भी पाया न था। तुमने होक र पाया क्या है? होने से मिला क्या है? होने की दौड़ का नाम
ही तो संसार है। खूब तो दौड़ कर देख लिए। थक गए जरूर, पहुंचे कहां हो? धूल-धवांस से भर गए; मंजिल कहां है? मार्ग तो बहुत चल लिए, मंजिल का दूर से भी दर्शन तो नहीं होता।
अब भी थके नहीं? अब भी शून्य होने से घबड़ाते हो? होने में कुछ नहीं पाया, अब जरा न-होने की भी हिम्मत कर लो। अब न-होना भी सीख लो। अब न-होने को भी देख लो। क्योंकि जिन्होंने पाया है, उन सब ने यही कहा हैः नहीं हो गए--तो पाया।
शून्य तो समाधि है। निश्चित ही तुम मिटते हो, मगर यह एक हिस्सा है। जैसे सुबह होती है; रात तो मिटती है, मगर वह एक हिस्सा है। सूरज ऊग रहा है। सुबह हो रही है। आकाश प्रकाश से भर रहा है। बादलों में नये रंग आ रहे हैं। पक्षी गीत गाने लगे हैं। वृक्ष जागने लगे हैं प्राण का संचार हुआ है। इसे भी देखोगे या नहीं? या यही देखते रहोगे कि रात टूटी जा रही है! रात बीती जा रही है! रात को ही छाती से लगाए बैठे रहोगे?
निश्चित ही जब प्रकाश होगा, तो अंधेरा जाएगा। तुम अंधेरे हो; तुम्हारा परमात्मा से मिलना नहीं हो सकता। तुम्हारे न-होने में ही मिलन है।
कहीं अंधेरा और प्रकाश का मिलना हुआ है? तुमने संतों की वाणी बहुत सुनी है। सभी संत कहते हैं; परमात्मा प्रकाश है। लेकिन तुमने कभी यह सोचा है कि अगर परमात्मा प्रकाश है, तो मैं कौन हूं? निश्चित ही तुम अंधकार हो।
और प्रकाश आएगा, तो अंधकार टूटेगा। और अंधकार टूटे--यही शुभ है।

कबीर ने कहा हैः शून्य हो जाने से बड़ी और कोई घटना नहीं है। उस दशा को सहज--शून्य--अवस्था कहा है।
एक बड़ा प्यारा शब्द है, संतों ने बहुत उपयोग किया है। दो अर्थों में उपयोग किया है, इसलिए शब्द बहुत प्यारा है। शब्द है--"खसम"। संस्कृत में एक अर्थ है "खसम" का, अरबी में दूसरा। संतों ने दोनों अर्थों का एक साथ प्रयोग किया है और चमत्कार ला दिया है इस शब्द में। अरबी में अर्थ होता हैः पति। और परमात्मा पति है। परमात्मा कृष्ण है; और भक्त उसकी गोपी है। और अस्तित्व रास है।
परमात्मा पति है, मालिक है, प्यारा है, प्रियतम है। संतों ने इस शब्द
का भी उपयोग किया इस अर्थ में और चमत्कार ला दिया।
संस्कृत में इसका अर्थ दूसरा है। "खसम" का, अर्थ होता है--ख--सम--आकाश जैसा शून्य, ख यानी आकाश। इसलिए पक्षियों को खग कहते हैं। खग यानी जिनकी गति आकाश में है। ख यानी आकाश; ग यानी गति। खसम--आकाश जैसा शून्य।
तो संस्कृत में "खसम" का अर्थ है महाशून्य और अरबी में "खसम" का अर्थ हैः परम प्यारा। भक्तों ने दोनों को जोड़ दिया। भक्तों ने कहाः दोनों ही ठीक हैं। क्योंकि वह परम प्यारा आकाश जैसा होने से मिलता है।
संस्कृत के अर्थों में "खसम" हो जाओ, तो अरबी के अर्थों में जो "खसम" है, वह मिल जाता है।
तुम घबड़ा रहे हो। पूछते हाः "मैं क्या करूं--शून्य हुआ जा रहा हूं? घबड़ाओ मत। उतरो इसमें। इसी में उतर कर कुछ मिले, तो मिले। ये सीढ़ियां उतरो--शून्य की।
डर तो लगेगा। डर के बावजूद उतरो। इसलिए मैं कहता हूंः साहस चाहिए सत्य की खोज में। असत्य छोड़ना पड़ता है, वही साहस की जरूरत है। अंधेरा छोड़ना पड़ता है। देह छोड़नी पड़ती है। मन छोड़ना पड़ता है। सब छोड़ना पड़ता है। जब छोड़ने को कुछ भी नहीं रह जाता, तुम खाली सेज रह जाते हो, उसी क्षण पिया उतरता है। जब छोड़ने को कुछ भी नहीं बचता, उसी परम शून्य अवस्था में मिलन है।
तो डरो मत। बचो मत। बड़ी मुश्किल से शून्य होने का क्षण आता है। इसी की
तो हम तलाश कर रहे हैं।
अब यह रोज यहां होता है। जिनको शून्य का अनुभव नहीं हुआ, वे पूछते हैं
कि कैसे शून्य का अनुभव हो जाए? और जब होने लगता है, तो वे ही आकर कहने लगते हैं कि अब हो रहा है; अब रोको। क्योंकि तुम्हें साफ नहीं है कि शून्य का अनुभव महासुख तो लाएगा; लेकिन महासुख के पहले महापीड़ा से गुजरना जरूरी है।
तुम सिर्फ सुख ही सुख की बात सुनते हो। तुमने सुनाः समाधि--महासुख है,
तो लोभ पैदा होता है। चलो, समाधि लग जाए। मगर तुमने यह नहीं सोचा कि समाधि के उस महासुख के लिए कीमत भी चुकानी पड़ती है।
सस्ता नहीं है धर्म; प्राणों से चुकाना पड़ता है मूल्य। बिना मूल्य चुकाए कुछ भी नहीं है--कुछ भी नहीं मिल सकता है।
तो तुमने यह तो सुन लिया कि समाधि में बड़े फूल खिलेंगे--हजार-हजार कमल खिलेंगे, बड़ी सुगंध होगी; बड़ा नृत्य होगा; बड़ा उत्सव होगा, तो लोभ से भर गए। तुमने यह सोचा ही नहीं कि रास्ते में कांटे भी बहुत गड़ेंगे। गुलाब को तोड़ने जाओगे, तो गुलाब की झाड़ी में हजार कांटें हैं। और जब कांटें चुभेंगे, तब तुम चिल्लाओगे। मगर जरूरी हिस्सा है यात्रा का।
थकोगे, टूटोगे, मिटोगे। कई बार बचोगे। लौट-लौट पड़ोगे मगर जो चल पड़ा इस राह पर, वह वस्तुतः लौट नहीं पाता; ज्यादा से ज्यादा देर-अबेर कर सकता है। अब तुम पूछते होः "शून्य होता जा रहा हूं... ।"
अब तुम चाहो तो देर-अबेर कर सकते हो; अगर जोर से किनारे को पकड़े रहोगे,
तो देर लग जाएगी। लेकिन अब लौट कर किनारे पर बस न सकोगे। जो होना शुरू हो गया है, वह पूरा होकर रहेगा। किनारे पर बस नहीं सकोगे इसलिए--कि किनारे पर तो बस-बस कर देख लिया है। उसी दुख से घबड़ा कर तो शून्य की तलाश शुरू की थी। और अब शून्य आ रहा है!
माखन चोरी कर तूने

कम तो कर दिया बोझ ग्वालिन का लेकिन मेरे श्याम बता
अब रीती गागर का क्या होगा? युग-युग चली उमर की मथनी
तब झलकी घट में चिकनाई
पिरा-पिरा हर सांस उठी जब तब जाकर मटकी भर पाई
एक कंकड़ी तेरे कर की
किंतु न जाने आकर किस दिशा से पलक मारते लूट ले गई
जनम-जनम की सकल कमाई
देख समय हो गया पैठ का
पथ पर निकल पड़ी हर मटकी
केवल मैं ही निज देहरी पर सहमी-सकुची, अटकी-भटकी
पास नहीं अब गोरस कुछ भी
कैसे तेरे गोकुल आऊं?
कैसे इतनी ग्वालिनियों में लाज बचाऊं अपने घट की
या तो इसको फिर से भर दे
या इसके सौ टुकड़े कर दे
निर्गुन जब हो गया सगुन तब इस
आडंबर का क्या होगा
माखन चोरी कर तूने
कम तो कर दिया बोझ ग्वालिन का
लेकिन मेरे श्याम बता अब
रीती गागर का क्या होगा?
गागरों से हमारे बड़े नाते हैं; पुराने नाते। गागर को ही जाना है हमने। गागर से ही हमारी पहचान है। गागर ही हमारा अनुभव, हमारा ज्ञान; और एक दिन आता है श्याम; और कंकड़ी मार कर तोड़ देता है गागर को। लूट लेता है मक्खन। वही जो तुमने जनम-जनम में मथ-मथ कर इकट्ठा किया था। मथ-मथ कर जो इकट्ठा किया था, मंथन कर-कर के जो इकट्ठा किया था, वही तो मन है; वही तो मक्खन है।
एक दिन लूट लेता है श्याम; मटकी टूट जाती है।
टूटी मटकी मन को बड़ी पीड़ा देती है। क्योंकि इसी मटकी के साथ तुमने तादात्म्य कर लिया था। इसे ही समझा थाः यही मैं हूं।
अब यह मटकी छोड़ो। अब यह मटकी भूलो। जिस दिशा से यह कंकड़ी आई है, अब उस दिशा की तरफ आंखें उठाओ। जिस दिशा से श्याम ने यह कंकड़ मारा, अब उस दिशा में आंखे ले जाओ। अब उसी दिशा में चलो। यह छोड़ो अतीत।
शून्य हुए जाते हो--इसका अर्थ हैः अतीत छूटा जाता है हाथ से। मगर अतीत
को पकड़ने से भी क्या सार है? जो हो गया, हो गया। जो जा चुका, जा चुका। अब भविष्य की तरफ देखो।
उस किनारे पर नजर अड़ाओ। यह किनारा व्यर्थ हो गया। जी लिया बहुत; अब उस किनारे जीएंगे।
साहस चाहिए होगा। अभियान की हिम्मत चाहिए होगी--दुस्साहस... । क्योंकि दूर का किनारा साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ता।
यह किनारा बिल्कुल साफ है। यद्यपि दुख ही पाया यहां, लेकिन साफ-सुथरा है; जाना-माना है। इसी पर रहे हैं, इसी पर जीए हैं। दूसरा किनारा तो दूर धुंध में छिपा है। है भी या नहीं--यह भी भरोसे को बात है!
कोई आ जाता है दूसरे किनारे से और कहता हैः मैं होकर आया हूं। कोई कबीर, कि कोई नानक। भरोसा आता है। शक भी नहींं किया जा सकता। क्योंकि कबीर किस कारण झूठ बोलें। यह आदमी ऐसा तो नहीं, कि झूठ बोले। इसकी आंखों में प्रामाणिकता है। इसके वचन में बल हो। और इसके आसपास सुगंध भी है--किसी और जगत की; जो इस जगत की नहीं है; इस किनारे की तो कतई नहीं है। और इसके पास एक

मस्ती है, जो किसी और के पास नहीं है। सम्राट हैं, धनी-मानी हैं, उनके पास नहीं--जो इस फक्कड़ के पास है।
तो कुछ तो है इसके पास। कुछ देखा है; कुछ दरस-परस हुआ है। कहीं होकर आया है। इसके वस्त्रों में गंध है--अपरिचित, आकर्षक, जादूभरी। यह कुछ पीकर आया है, यह भी पक्का है। इसकी मस्ती कहती है। इसकी मदभरी आंखें कहती हैं। इसकी चाल कहती हैं। इसके रंग-ढंग और हैं!
ऐसा आदमी इस तट का तो होता ही नहीं। इस तट पर तो बहुत हैं। लेकिन यह किसी और तट से यात्रा करके आ रहा है। तो बात पर भरोसा आता है, श्रद्धा आती है।
लेकिन दूसरा तट दिखाई नहीं पड़ता। दूसरा तट दूर है। इसलिए तो इसको हमने भव-सागर कहा है। नदी जैसा नहीं है--कि इस पार खड़े हैं, दूसरा किनारा दिखाई पड़ रहा है, सागर जैसा है--भव-सागर।
यही किनारा दिखाई पड़ता है, दूसरा किनारा तो दिखाई पड़ता ही नहीं। दूर-दूर तक तरंगें--और तरंगें। जहां तक मनुष्य की आंखें जाती हैं, वहां तक तरंगें ही तरंगें हैं। इसलिए तो आस्था का इतना मूल्य है।
आस्था का क्या अर्थ है। आस्था का इतना ही अर्थ हैः इस किनारे से खड़े होकर दूसरा किनारा दिखाई पड़ता ही नहीं। अब किसी की बात पर भरोसा करो, तो ही यात्रा हो सकती है।
मगर यात्रा करनी ही होगी। क्योंकि इस किनारे पर कुछ मिलता ही नहीं। खोद-खोद मर गए, कोई खजाना हाथ नहीं लगा। मिट्टी की मिट्टी--ढेर लगा ली है! सोने की तलाश करते रहे हैं। सोने का दर्शन भी नहीं हुआ; सपने में भी नहीं हुआ।
तो यह तट तो खोज लिया; यह तट तो व्यर्थ हो गया। अहंकार की यात्रा सार्थक नहीं हुई है। तो अब ये जो निर-अहंकारी संत हैं, ये कहते हैंः चलो, उस किनारे। वहां है आनंद। वहां सदा-सदा शाश्वत का वास है। वहां अमृत की वर्षा है। वहां रोशनी ही रोशनी है। और वहां अनहद का नाद हो रहा है। चलो। श्रद्धा से ही चलना पड़ेगा। श्रद्धा इसलिए कमजोर के जीवन में नहीं होती; शक्तिशाली के जीवन में होती है।
आमतौर से लोग सोचते हैं कि श्रद्धालु आदमी कमजोर होता है। गलत। सौ प्रतिशत गलत। श्रद्धालु आदमी ही शक्तिशाली आदमी
है। बड़ी हिम्मत चाहिए--अनजान पर भरोसा ले आने के लिए; अपरिचित पर भरोसा कर लेने के लिए। बड़ी हिम्मत चाहिए; बड़े जुआरी की हिम्मत चाहिए। और चल पड़ना है। और जो जाना है, वह छोड़ देना है। जो पहचाना है, वह छोड़ देना है। वह सब छूट जाएगा। और जिसको कभी जाना नहीं, उसकी तलाश में निकल जाना है। वही घड़ी करीब आद गई है। तुम्हारी जंजीरें टूटी जाती हैं--इस किनारे से। अब अपने को व्यर्थ मत रोको। चलो। श्रद्धा रखो।
इस शून्य को श्रद्धा से जोड़ लो। यही शून्य नाव बन जाएगा। यह तुम्हें
उस पार लगा देगा। इसी शून्य की नाव ने बहुतों को पार लगाया है। जिनको भी पार लगाया है, इसी नाव ने पार लगाया है।

दूसरा प्रश्नः "मैं पूरा पाया" कहने वाले कबीर साहब, जिनका एक पांव इसलाम में था और दूसरा हिंदू-धर्म में, धर्मगुरु के रूप में उतने प्रभावी क्यों नहीं हुए, जितना होना चाहिए था?

पहली तो बातः धर्मगुरु और सदगुरु में फर्क कर लेना। धर्मगुरु तो अक्सर थोथा होता है। जैसे पोप धर्मगुरु है। अगर पोप को धर्मगुरु कहते हो, तो जीसस को धर्मगुरु मत कहना। वह जीसस का अपमान हो जाएगा। जीसस के लिए कुछ और शब्द उपयोग करो--सदगुरु।
पूरी के शंकराचार्य धर्मगुरु हैं। लेकिन आदि-शंकराचार्य को धर्मगुरु
मत कहना; नहीं तो भाषा में कोई अर्थ ही न रह जाएगा। आदि-शंकराचार्य; सदगुरु है।
कबीर सदगुरु हैं--पहली बात--धर्मगुरु नहीं। धर्मगुरु पहले से चली आई परंपरा का हिस्सा होता है। सदगुरु एक नई परंपरा का जन्मदाता।

धर्मगुरु की पुरानी साख होती है; उसकी दुकान पुरानी है; वह किसी पुरानी दुकान का हकदार है, चाहे उसकी अपनी कोई संपदा न भी हो, लेकिन बाजार में उसकी प्रतिष्ठा है।
सदगुरु अपने पैरों पर खड़ा होता है; अ ब स से शुरू करता है। उसकी कोई पुरानी प्रतिष्ठा नहीं है। इसलिए सदगुरु को कठिनाई होती है; उसे सब काम फिर से, नये सिरे से जमाना है। जैसे कि तुम एक पैसा भी न लेकर बाजार में खड़े हो जाओ और काम शुरू करो, तो जैसे कठिनाई होती है, वैसी कठिनाई सदगुरु की है।
तुम्हारे पिता चल बसे, और करोड़ों रुपया वसीयत में छोड़ जाएं, फिर तुम दुकान शुरू करो। स्वभावतः तुम्हें सुविधा होती है। पिता की साख, दुकान का नाम, बाजार के संबंध, जाने-माने लोग, सब काम चलता हुआ--व्यवस्थित; तुम सिर्फ पिता की जगह बैठ जाते हो। धर्मगुरु वसीयत से होता है; सदगुरु अनुभव से। बुद्ध सदगुरु हैं, कृष्ण सदगुरु हैं; क्राइस्ट सदगुरु हैं, कबीर सदगुरु हैं।
तो पहला तो फर्क यह समझ लेना कि वे धर्मगुरु नहीं हैं। और मजा यह है कि धर्मगुरु के पास धर्म होता ही नहीं; सिर्फ साख होती है। सदगुरु के पास धर्म होता है--साख नहीं होती।
धर्मगुरु के पास तो व्यवस्था होती है, जमा हुआ संप्रदाय होता है, अनुयायी होते हैं। सदगुरु के पास कोई नहीं होता--सिर्फ परमात्मा होता है। बस, परमात्मा की संपत्ति से ही उसे काम शुरू करना पड़ता है। एक अनुभव की संपदा होती है। उसे खोजना पड़ता है। उसे शिष्य खोजने पड़ते हैं जो सीखने को तत्पर हों, जो पात्र हों, वे खोजने पड़ते हैं। और स्वभावतः यह आसान नहीं है शिष्यों का मिलना, क्योंकि ये शिष्य किसी न किसी संप्रदाय के हिस्से होते हैं।
अब तुम यहां मेरे पास इकट्ठे हुए हो। कोई हिंदू है, कोई यहूदी है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई बुद्ध है, कोई सिक्ख है। तुम किसी परंपरा से बंधे हो, किसी परंपरा में पैदा हुए हो। तुम्हें तुम्हारी परंपरा से निकालना अड़चन की बात है। तुम्हारा भी निकलना तुम्हें कठिनाई की बात मालूम होती है। क्योंकि हजार न्यस्त स्वार्थ हैं।
एक सज्जन ने कुछ दिन पहले आकर कहाः "संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन लड़की की मेरी शादी हो जाए! मैंने पूछा, "लड़की की शादी से संन्यास का क्या संबंध?"
उन्होंने कहा, "संबंध ऊपर से न दिखाई पड़े, भीतर से है। मैं संन्यासी हो गया, तो फिर लड़की की शादी करना मुझे मुश्किल हो जाएगा। फिर तो मेरे समाज-संप्रदाय के लोग नाराज हो जाएंगे। तो और छह महीने की बात है। किसी तरह यह विवाह निपट जाए, फिर मैं निश्चिंत हूं। फिर कोई डर नहीं।"
तो ऐसे हजार छिपे हुए डर हैः लड़के की शादी करनी है; लड़की की शादी करनी है।
घेरे के बाहर निकल आओ किसी संप्रदाय के, तो ऐसे ही माफ थोड़े ही कर देता
है संप्रदाय। कष्ट
देता है, दंड देता है। सब तरह से उलझनें खड़ी करता है। सामाजिक संबंध
से जो सुविधा मिलती थी, वह सब बंद हो जाएगी। कल तक तो अपने थे, वे पराए हो जाएंगे। और नाराज! और तुम्हें नुकसान पहुंचाएंगे। क्योंकि कोई समाज यह बरदाश्त नहीं करता है कि उसके घेरे के भीतर से कोई आदमी बाहर निकल जाए। उसकी संख्या कम कर जाता है। उसकी शक्ति कम कर जाता है। उसकी पूंजी कम हो जाती है। उसका बल कम हो जाता है।
इसलिए जिस झंडे के नीचे तुम खड़े हो, उस झंडे के नीचे से निकलना आसान नहीं है।
फिर तुम्हारे जीवन की सीमाएं हैं, अड़चनें-उलझनें हैं। नौकरी खो जाए; संबंध टूट जाऐं; अडचनें पैदा हों। घर में दुख-सुख होता हैं, तो समाज का साथ मिलता है; वह सब मिलना बंद हो जाए।
इन सारी अड़चनों के कारण आदमी सदगुरु के साथ नहीं जा पाता। उसे धर्मगुरु के साथ ही खड़ा रहना पड़ता है।

तो कबीर अपूर्व थे; लेकिन स्वभावतः तुलसीदास के साथ जितने लोग गए, उतने कबीरदास के साथ नहीं गए। तुलसीदास धर्मगुरु हैं; कबीर सदगुरु हैं दोनों अनुठे है।
जहां तक काव्य का संबंध है, साहित्य का संबंध है, तुलसीदास भी अनूठे हैं जैसे कबीरदास अनुठे हैं। मगर जहां तक अनुभव की संपदा का संबंध है, तुलसीदास परंपरागत हैं; कबीरदास क्रांतिकारी हैं। तुलसीदास लकीर के फकीर हैं; कबीरदास विद्रोही है। तुलसीदास बापदादों की वसीयत पर खड़े हैं; कबीरदास अपने पैरों को, अपने ही पैरों पर, अपनी जड़ों को फैला कर खड़े हैं।
स्वभावतः तुलसीदास को ज्यादा प्रेमी मिल जाएंगे। इसीलिए रामचरितमानस घर-घर पहुंच गई।
कबीरदास के वचन घर-घर नहीं पहुंच सके। यही है आश्चर्य कि जितनों तक पहुंच सके, इतनों तक भी पहुंच सके--यह भी कम आश्चर्य नहीं है। क्योंकि कबीरदास की बात तो बड़ी आग जैसी है।
तुलसीदास तो राख ही राख है--बुझा हुआ अंगारा है। कभी अंगारा रहा होगा, मगर तुलसीदास में अंगारा नहीं है। परंपरागत, रुढ़िवादी है, पुरातन पंथी हैं, जो शास्त्र मे लिखा है--सो ठीक। जरा भी बगावत का स्वर नहीं है। कबीरदास वेद के खिलाफ बोलते हैं; कुरान के खिलाफ बोलते हैं; हिंदू पंडित के खिलाफ बोलते हैं मुसलमान-मौलवी के खिलाफ बोलते हैं। और खिलाफत भी ऐसी वैसी नहीं, औपचारिक नहीं, शिष्टाचार पूर्ण नहीं।
कबीर की चोट बड़ी सीधी है--सिर तोड़। कबीर को झेलना आसान बात नहीं है। कुछ विरले हिम्मतवर लोग ही झेल पाएंगे। हालांकि कबीर जो बोलते हैं, वही वेद है, वही कुरान है। मगर कबीर अपने गवाह खुद हैं, वेद से गवाही नहीं लेते। वह गवाही उधार हो जाएगी, झूठी हो जाएगी।
तो दूसरी बात समझ लेंः अगर संत लीक पर चलता हो, तो उसे ज्यादा शिष्य मिल जाएंगे। अगर संत सब लीक छोड़ कर चलता हो, तो स्वभावतः कुछ विरले अभियानी ही उसके साथ हो पाएंगे। उसके साथ जाना खतरे से खाली नहीं है। उसके साथ जाना खतरनाक है।
फिर कबीरदास जैसा अक्खड़ संत हुआ ही नहीं; मनुष्य जाति के इतिहास में नहीं हुआ। दो टूक बात कह देनेवाला; मारे कि जिलाए--फिकर नहीं। सीधी चोट! टुकड़े-टुकड़े कर देने वाला। एक वोट कबीर की झेल लोगे, तो जिंदगी भर याद रखोगे; भूले नहीं भूलेगा। या तो झुक जाओगे--साथ हो लोगे। या सदा के लिए भाग खड़े होओगे और दुबारा कबीर की छाया से भी डरोगे।
सदगुरू--और क्रांतिवादी--विद्रोही! और फिर यह भी अड़चन थी----। जैसा तुम पूछते हो कि जिनका एक पांव इसलाम में और एक पांव हिंदू धर्म में था----। तो ऐसा लगता है कि दो दो धर्मों पर जिनका अड्डा था। तो दोनों धर्मों से उन्हें अनुयायी मिल जाने चाहिए थे। मिले भी; मगर बहुत थोड़े। कारण? हिंदुओं ने कहा कि यह मुसलमान है। और मुसलमानों ने कहाः यह हिंदू है, इससे सावधान! मुसलमानों ने यह तरकीब निकाल ली कि यह हिंदू है, इससे बचना! यह क्या राम-राम की बात लगा रखी है? यह तो हिंदुओं के गुणगान कर रहा है। यह तो छिपा हुआ हिंदू है। यह तो प्रच्छन्न हिंदू है। यह तो तरकीब है। हिंदुओं के षड़यंत्र की--कि मुसलमानों में घर कर जाओ और लोगों को भ्रष्ट करो। इस कबीर से सावधान रहना! यह जासूस है--हिंदुओं का। ऐसा मुसलमानों ने कहा।
और हिंदुओं ने कहा कि यह आदमी मुसलमान है; जुलाहे के घर पैदा हुआ है। इसकी बातों में मत पड़ना। इसके राम-नाम की बात में उलझ मत जाना। यह तो राम-राम ऊपर ही है; असल में भीतर रहीम छिपा है। यह केशव-केशव की बात ऊपर है; भीतर करीम छिपा है। इससे सावधान! इससे जरा बचना!
दोनों ने संदेह से देखा।
ऐसा मेरे अनुभव में खुद आया। क्योंकि मैं जैन घर में पैदा हुआ, इसलिए जैन कहता हैः सावधान! इस आदमी से इसने जैंन धर्म को धोखा दे दिया; बगावत कर दी। यह आदमी जैनों का दुश्मन है। जैनों का
दुश्मन होना ही चाहिए, नहीं तो जीसस के संबंध में बोलता? मुहम्मद के संबंध में बोलता? कृष्ण संबंध में बोलता? बुद्ध के संबंध में बोलता? ये

कबीर, दादू, नानक--इनके संबंध में बोलता? कोई जैन कभी बोला है? यह जैन तो हो नहीं सकता। यह आदमी धोखे में है। यह आदमी धोखा दे रहा है लोगों को। यह जैनियों को भ्रष्ट करने का उपाय है। तो जैन सावधान रहें।
और हिंदू स्वभावतः सावधान हैं कि यह जैन है, जरा बच कर रहना। भीतर तो जैन होगा ही, ऊपर से कुछ भी कहे! ऊपर से चाहे कबीर का नाम ले चाहे नानक का, लेकिन मतलब तो पीछे वही होगा कि एक दफे जाल में फंस जाओ, तो जैन बना ले। ऐसी ही दशा थी। दोनों ने संदेह से देखा। मेरे साथ तो उलझन और ज्यादा है, क्योंकि दो का ही मामला नहीं है। मैं यहूदी पर भी बोलता हूं और ईसाई पर भी बोलता हूं; बौद्ध पर भी बोलता हूं, तो और उलझन है।
लोग अपने अंधकार को बचाने की सब तरफ से कोशिश करते हैं--जो भी बहाना मिल जाए। इसलिए तुम पूछते ठीक हो कि कबीर का जितना प्रभाव होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। लेकिन किसका कब हुआ?
तुम सोचते होः बुद्ध का जितना प्रभाव होना चाहिए था, उतना हुआ? तुम सोचते होः महावीर का जितना प्रभाव होना चाहिए था, उतना हुआ? लाओत्सु का जितना प्रभाव होना चाहिए था, उतना हुआ? या जरथुस्त्र का? किसका हुआ? जितना प्रभाव होना चाहिए था, अगर उतना हो जाता, तो यह पृथ्वी और ही होती--स्वर्ग होती। किसी का नहीं हुआ।
बड़ी रोशनी लाते हैं ये लोग, मगर हम अंधेरे के प्रेमी! हम अपनी आंखें भींच कर खड़े हो जाते हैं। रोशनी द्वार पर आ जाती है, तो भी इनकार कर देते हैं; नकार कर देते हैं।
बड़ा अमृत लाते हैं ये लोग, लेकिन हम मृत्यु को आलिंगन किए बैठे हैं! हमने मृत्यु से विवाह रचाया है! हम मृत्यु को तलाक देने की हिम्मत नहीं जुटा पाते।
बड़ा सत्य लाते हैं ये लोग, मगर असत्य हमारा स्वार्थ है--निहित-स्वार्थ है। हम सत्य की बात ही सुन कर चौंक उठते हैं।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा हैः आदमी से उसके झूठ मत छीनो, क्योंकि आदमी बिना झूठ के नहीं जी सकता; आदमी मर जाएगा। आदमी झूठ से जीता है।
आदमी से उसके झूठ मत छीनो, क्योंकि आदमी सत्य को नहीं झेल सकता है।
सत्य कठोर है, कड़वा है; आदमी को झूठ की मिठास चाहिए। जहर सही--लेकिन मीठा हो, तो आदमी पी लेगा। अमृत सही; कड़वा हो, तो आदमी नहीं पीएगा।
फिर आदमी ने झूठ के साथ किसी तरह अपने सपनों की दुनिया बसा लिया है।
तुम्हारी सत्य की किरण आती है, उसकी सारी दुनिया डगमगाती है। ऐसा ही जैसे कि तुमने ताश के पत्तों का घर बना लिया, तो तुम हवा के झोंके से डरते हो। हवा का झोंका न आ जाए! नहीं तो कितनी मेहनत से तो बनाया भवन, अभी गिर जाएगा; क्षण में मिट्टी हो जाएगा।
ऐसे ही आदमी ने झूठ के न मालूम कितने ताश में घर बनाए हैं। झूठ की न मालूम कितनी कागजी नावें तैराई हैं। हवा का झोंका--नाव उलट जाएगी; कागज का भवन गिर जाएगा।
तुम हवा से डरने लगते हो। तुम द्वार-दरवाजे बंद कर लेते हो। तुम अपने- अपने भीतर दरवाजे बंद कर के बैठ जाते हो, चाहे कितनी ही गरमी हो और कितना ही पसीने-पसीने हो जाओ! और बाहर ताजी हवाएं प्रतीक्षा करती हों, लेकिन तुम द्वार नहीं खोलते।
ऐसी ही बात है। आदमी ने बड़े झूठ बना रखे हैं। तुम्हारी जिंदगी सिवाय झूठों के और क्या है? किसी को पत्नी मान रखा हैं। मानी बात है। कौन किसका पति है? कौन किसकी पत्नी है? किसी को बेटा मान रखा है। किसी को पिता मान रखा है। किसी को मित्र मान रखा है। किसी को शत्रु मान रखा है। किसी को अपना; किसी को पराया!
तुमने न मालूम कितने झूठ बना रखे हैं। सब झूठ है। झूठ ही झूठ है। मानी हुई बातें हैं।
मौत तुम्हारे ताश के ये सब घर गिरा जाएगी। रोज गिराती है, फिर भी तुम नहीं चौंकते। लेकिन मौत गिराती है, तो तुम कुछ कर भी नहीं सकते हो। करने को बचते भी नहीं तुम। मौत आ गई; तुम्हीं गिर जाते हो। फिर तुम्हारे ताश के पत्ते का घर गिर जाए, तुम्हें चिंता भी नहीं।

संत वही काम करता है, जो मौत करती है, तुम्हारे जिंदा रहते वही काम करता हैः तुम्हारे घरों को गिराने लगता है। कहने लगता हैः ये सब रेत के घर हैं, इन्हें गिराओं; इनमें कुछ रखा नहीं है। ये घरघूलों में भटको मत। तुम्हारा असली भवन वहां है--दूर--उस पार। तुम्हारा साम्राज्य वहां है-- आकाश में यहां नहीं। इस पृथ्वी के तुम वासी नहीं हो। यहां तुम प्रवासी हो। यहां तुम अजनबी हो। तुम्हारा घर असली यहां नहीं है; इसे सराय से ज्यादा मत समझो।
अब निश्चित ही जब कोई संत कहेगाः इस दुनिया को सराय से ज्यादा मत समझो, तो पत्नी घबड़ाएगी--कि इसको बात पति न सुन ले।
पत्नी सराय है! पत्नी समझती है कि वह घरवाली है। सराय है? वह घर है।
और पति डरता है कि कहीं पत्नी न सुन ले कि यह नाता-रिश्ता सब कल्पना का है। ये जो सात भांवर डाल ली हैं, यह सब कल्पना का जाल है, यह मन को समझाना है। यहां कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं। अकेले हम आते हैं, अकेले हम जाते हैं। कैसा अपना? कैसा पराया? न कोई साथ आया, न कोई साथ जाएगा।
कोई साथ नहीं जाने को है। विदा अकेले हो जाओगे। आए थे, तो भी अकेले थे। बीच में दो दिन का संग-साथ है। यह नदी-नाव संयोग है, इसको ज्यादा मूल्य मत देना।
जब संत ये बातें कहने लगता है, तो तुम घबड़ाते हो। तुम्हारे स्वार्थ डगमगाते हैं।
संत तुम्हें उन-उन जगह से जगाता है, जहां तुम खूब मूर्च्छित होकर सो रहे हो। कोई धन के पीछे दौड़ा जा रहा है; उससे कहो कि "तू पागल है। धन में क्या रखा है? सब ठीकरे हैं। वह नाराज होगा। वह कहेगाः मेरा सारा रस छीने लेते हो! मेरी जिंदगी में रस ही इतना हैः धन--। धन इकट्टा कर लूं। इतनी ही मेरी महत्वाकांक्षा है। तुम पानी फेरे देते हो! तुम कह क्या रहे हो? तुम मेरे सपने छीने ले रहे हो। उन्हीं सपनों के सहारे मैं जीता हूं। सपने न रहे, तो मैं जीऊंगा कैसे? सपनों के बिना जीऊंगा कैसे? तुम बंद करो अपनी बकवास। मुझे मेरी राह पर जाने दो।"
कोई आदमी पद के पीछे दौड़ रहा हैः कि प्रधान मंत्री हो जाए! और संत मिल जाए राह में, तो वह कहता है कि "तू पागल है। अरे। परमपद खोज; दिल्ली जाने से कुछ भी न होगा। इतनी शक्ति से तो परमात्मा मिल जाएगा। दिल्ली पहुंच कर भी क्या होगा? लेकिन जो दिल्ली जा रहा है, वह कहेगाः "क्षमा करें। अभी बीच में ये बाधाएं खड़ी न करें, वह सुनी-अनसुनी करेगा। वह कान बहरे कर लेगा। वह कहेगाः फिर कभी आना। अभी तो मुझे जाने दो।
तुम देखतो होः दिल्ली में जब कोई राजनेता हार जाता है, पद पर नहीं रह जाता, तो साधु-संतों के पास जाने लगता है। जब तक पद पर रहता है, तब तक नहीं जाता। पद पर रहा, तब क्या जरूरत? तब तो सपने सच मालूम हो रहे थे। तब तो सपने बड़े यथार्थ मालूम हो रहे थे। जब सपने टूट गए, समय ने तोड़ दिए, हवा का झोंका आ ही गया--बिना बुलाया, और उखाड़ गया तुम्हारी सारी जिंदगी की व्यवस्था को, तो तत्क्षण आदमी साधु-संत को खोजने लगता है। क्यों? क्योंकि अब सोचता हैः यह जिंदगी के सपने तो व्यर्थ हुए; यहां की दौड़-धूप में अब कुछ अर्थ नहीं। यह तो सब बाजार उखड़ ही गया। यह दुकान बरबाद ही हो गई। तो शायद संत ही ठीक कहते हों कि उस किनारे को खोजें। मगर यह हार में, दुख में, पराजय में! संतों की बात चोट करती है, क्योंकि संत वही कहते हैं--जैसा है। और तुम वैसा देखना नहीं चाहते।
तुम वैसा देखना चाहते हो, जैसा तुम चाहते हो कि हो। और संत वैसा कहते है, जैसा है। इन दोनों में मेल नहीं पड़ता।
इसलिए न तो बुद्ध को उतने लोगों ने समझा, जितने समझ सकते थे। पूछो मुझसे--कितने समझ सकते थे अगर सभी लोग समझने की तैयारी दिखाते, तो एक आदमी को भी रूक जाने का कोई कारण नहीं था।
सूरज निकला है। कितने लोग देख सकते हैं? इतने जितने लोग आंख खोलें। इससे कुछ ऐसा थोड़े है कि सूरज निकला है, तो
दस आदमियों ने देख लिया, तो अब ग्यारहवां कैसे देखेगा! कि बारहवां कैसे देखे! सूरज चुक गया--दस ने देख लिया!

अनंत है यह क्षमता--सूर्य के प्रकाश की। जितने लोग आंखें खोलेंगे, जितने-जितने लोग आंखें खोलेंगे, सभी देख लेंगे। ऐसा नहीं है कुछ कि हजार लोगों ने देख लिया, तो अब तुम कैसे देखोगे! हजार लोग तो देख चुके, तो चुक गया सूरज।
न सूरज चुकता है, न बुद्ध चुकते हैं, न कबीर चुकते हैं। अनंत है यह क्षमता। सत्य अनंत है। सत्य का आनंद अनंत है। सत्य का प्रकाश अनंत है। जो भी आंख खोल लेगा, देख लेगा। और तुम पर निर्भर है सब कुछ।
अगर सारे लोग आंख बंद किए पड़े रहें, तो सूरज उगा रहे, किसी को पता भी न चलेगा। ऐसा ही होता है।
तुमने अंधेरे के साथ बड़े नाते बना लिए हैं, बड़ा स्वार्थ बांध लिया है; अंधेरे के साथ सगाई कर ली है, इसलिए रोशनी की खबर जो भी लाता है, उससे तुम नाराज होते हो।
धर्मगुरु से तुम नाराज नहीं होते, क्योंकि वह तुम्हारे जैसा ही अंधा है। और तुम्हारे ही जैसा, अंधेरे में रहता है।
सदगुरु से तुम नाराज होते हो। सदगुरु तो तलवार की धार है; वह तुम्हें छार-छार कर देता है। सदगुरु तो मृत्यु है।
धर्मगुरु के कारण "गुरु" शब्द तक अपमानित हो गया है। धर्मगुरु के साथ जुड़ने के कारण "गुरु" शब्द की गुरुता चली गई है। और धीरे-धीरे गुरु जैसा महिमाशाली शब्द बड़ा विकृत हो गया।
कल मैं एक कविता पढ़ रहा था। कविता का नाम है--गुरु-पूजा।
पहले भी होती थी
आज भी होती है
गुरु-पूजा
केवल गुरु और पूजा के अर्थ बदले हैं
वह "बड़ा गुरू" है
पूजा बिना मानेगा नहीं!
"गुरु" का अर्थ करीब-करीब "गुंडा" हो गया है! कहते हैं न--बड़ा गुरू है...
वह बड़ा गुरु है! और "पूजा" अर्थात--पिटाई... ।
पहले भी होती थी
आज भी होती है
गुरु-पूजा
केवल गुरु और पूजा के अर्थ बदले हैं
वह "बड़ा गुरू" है
पूजा बिना मानेगा नहीं!
धर्मगुरु के साथ शब्द की विकृति हो गई। क्योंकि धर्मगुरु थोथा-गुरु है, झूठा गुरु है।
झूठ के साथ "गुरु" जुड़ गया, इसलिए खराब हो गया, गंदा हों गया।
कबीर सदगुरु हैं। सदगुरु का अर्थ होता हैंः जिसने जाना। न केवल जाना, बल्कि जो दूसरे को जानने में भी समर्थ है। न केवल खुद देखा, बल्कि दूसरों की आंखों में भी देखने की आकांक्षा जगा सकता है। न केवल खुद जीया, बल्कि दूसरे के ह्नदय को भी गुदगुदा सकता है--कि जो सोए पड़े है अंधकार में, उनमें से भी कुछ लोग उठ आएं और यात्रा पर निकल जाएं। कठिन होगी यात्रा, तो भी कठोर होगी यात्रा, तो भी। पहाड़ की चढ़ाई होगी, तो भी। खडग की धार होगी, तो भी।
गुरु का अर्थ हैः जो खुद परमात्मा को चखा है और दूसरों के कंठों में
भी ऐसी आतुर प्यास जगा दे कि वे भी परमात्मा को चखे बिना बैठे न रह सकें। उठना ही पड़े, चलना ही पड़े--चाहे कितनी ही लंबी हो यात्रा और कितने ही रेगिस्तानों को पार करना पड़े।
"सदगुरु" बड़ा महिमाशाली शब्द है; "धर्मगुरु" दो कौड़ी का।
और फिर दोहरा दूं कि सदगुरु के पास धर्म है। और धर्मगुरु के पास न तो धर्म है, और न गुरुता है।

धर्मगुरु तो पुरोहित है, पादरी है, मुल्ला है। धर्मगुरु तो एक व्यवसाय का हिस्सा है। धर्मगुरु तो संसार के साथ जुड़ा है, बाजार के साथ जुड़ा है।
धर्मगुरु तुम्हें बदलता नहीं, तुम्हें सांत्वना देता है। सदगुरु तुम्हें तोड़ता है, मारता है, काटता है; छैनी उठा कर तुम्हें निखारता है; छनता है। धीरे-धीरे-धीरे एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम शुद्ध होते-होते-होते शून्य हो जाते हो।
शून्य तक जो पहुंचा दे--वह सदगुरु। लेकिन शून्य पर कितने लोग जाना चाहते हैं। इसलिए बहुत ज्यादा प्रभाव नहीं होता।

तीसरा प्रश्नः दुख से मुक्ति कैसे मिले?

दुख ने तुम्हें बांधा नहीं है; दुख से तुम बंधे हो। दुख ऐसी जंजीर नहीं है, जो किसी और ने तुम्हारे हाथों में डाली हो। दुख ऐसा आभूषण है, जो तुमने खुद शौक से पहना है। यह तो पहली बात तुम ठीक से समझ लो।
अकसर हम ऐसे ही कहते हैंः दुख से छुटकारा कैसे मिले, जैसे कि दुख ने तुम्हें बांध रखा है। जैसे कि किसी और ने तुम पर
दुख लाद रखा है। नहीं, ऐसा नहीं है।
तुम दुख को पकड़े हो। तुम दुख छोड़ते नहीं। अभी देखा नहीं! पहला प्रश्न यही था कि शून्य हुआ जा रहा हूं; अब क्या करूं? घबड़ाहट...
दुख भरे रहता है मन को; ऐसा लगता है--कुछ है। पास कुछ है।
आदमी बहुत डरता है--दुख छूटने लगे तो। बहुत घबड़ाता है। घबड़ाहट इसलिए
कि दुख के कारण जीवन में कुछ व्यस्तता बनी रहती है; कुछ करता हुआ मालूम पड़ता है; कुछ होता हुआ मालूम पड़ता है।
और दुख के कारण अहंकार भी बचा रहता है। खयाल रखनाः अगर अहंकार बचाना हो, तो दुख में ही बचाया जा सकता है। दुख खाद है--अहंकार की।
सुखी आदमी का अहंकार खो जाता है। सुख हो नहीं सकता--बिना अहंकार के खोए। जब तक मैं की अकड़ है, तब तक दुख।
तुमने भी अनुभव किया होगाः कभी जब तुम प्रफुल्लित होते हो, तो अहंकार नहीं होता। जब तुम उदास होते हो, तब ज्यादा अहंकार होता है।
इसलिए तो तुम्हारे तथाकथित तपस्वी साधु-संन्यासी बड़े उदास और लंबे चेहरे बनाए रहते हैं। यह अहंकार को बचाने की तरकीब है। दुनिया को वे यह कह रहे हैं कि हम कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। तुम सब पापी, हम पुण्यात्मा! तुम सब सड़ रहे हो नरक में, और हम स्वर्ग की तरफ जा रहे हैं! हम विशिष्ट! हम पवित्र! हम श्रेष्ठ!
तुम देखते हो, तुम्हारे साधुओं के पास जाओ, तो वे तुम्हारी तरफ ऐसे देखते हैं, जैसे तुम कीड़े-मकोड़े हो! तुम्हारे प्रति कोई सम्मान नहीं है। सम्मान हो कैसे सकता है? तुम्हारा अपमान है। लेकिन ये साधु-संन्यासी अगर दुखी रहें, तो आश्चर्य नहीं है। ये दुखी होंगे ही।
आनंद जब आता है, तो तुम भूल ही जाते हो कि तुम हो। हंसी में भूल जाता है अहंकार; रोने में सघन हो जाता है। इसे जांचना, इसे पहचानना।
जब तुम हंसते हो, तब तुम नहीं होते हो, इसका निरीक्षण करना। जब हंसी सच में ही फैल जाती है प्राणपन में, तुम्हारा रोआं हंसी में भर जाता है, इस क्षण तुम नहीं होते हो; तुम हो नहीं सकते। क्योंकि होने के लिए जैसा तनाव चाहिए, वह तनाव ही नहीं है। हंसी में कहां तनाव?
इसलिए तो मैं कहता हूं कि संन्यासी हंसता हुआ होना चाहिए, नाचता हुआ होना चाहिए, प्रफुल्लित, तोही निर-अहंकारी होगा।
पूछा तुमनेः दुख से मुक्ति कैसे मिले? समझोः दुख को तुमने पकड़ा है। दुख से तुम कुछ लाभ ले रहे हो--अहंकार का लाभ ले रहे हो। दुख के कारण तुम अनुभव कर रहे होः मैं कुछ विशिष्ट हूं। देखो। कितना दुख झेल रहा हूं।
दुख तुम्हें शहीद होने का मजा दे रहा है कि तुम शहीद हो; कि सारी दुनिया का दुख-भार उठाए चल रहे हो!

पति ऐसे चलता है, जैसे पत्नी का दुख-भार ढो रहा है। बच्चों का दुख-भार
ढो रहा है। पत्नी दुख में बैठी है। क्योंकि वह देखती है कि वह पति को सम्हाल रही है, नहीं तो कभी के भ्रष्ट हो गए होते! बच्चों को सम्हाल रही है। घर को सम्हाल रही है।
मेरे बिना दुनिया अस्तव्यस्त हो जाएगी--ऐसा अहंकार तुम्हें दुखी बना रहा है।
और फिर दुख से लड़ने का भी एक मजा है। मगर लड़ने के लिए दुख होना चाहिए।
आदमी लड़ाई में बड़ा रस लेता है, क्योंकि लड़ाई में जीत की आशा है।
अगर दुख न हो, तो किससे लड़ोगे? और लड़ोगे नहीं, तो जीतोगे कैसे? और जीतोगे नहीं तो अहंकार की प्रतिष्ठा कहां होगी? यह सारी व्यवस्था समझना।
एक दुख जाता है, तुम दूसरा बना लेते हो। तुम्हारे पास हजार रुपये हैं, तुम कहते होः दस हजार हो जाएं; बस, फिर निश्चिंत हो जाऊंगा। तुम क्या कर रहे हो?
तुम्हारे पास हजार रुपये हैं, हजार रुपये का तुम सुख नहीं उठा रहे हो। तुम नौ हजार का दुख पैदा कर रहे हो। तुम कह रहे होः दस हजार हो जाएं... । तुमने नौ हजार का दुख पैदा कर लिया, क्योंकि दस हजार हो जाएं और दस हजार हैं नहीं। हैं केवल हजार, तो नौ हजार नहीं हैं मेरे पास--यह दुख तुमने पैदा कर लिया।
हजार का सुख तो नहीं उठाया, नौ हजार का दुख पैदा कर लिया। अब यह दुख कहीं भी नहीं है। सिर्फ तुम्हारी कल्पना में है, कामना में है, वासना में है। अब तुम लगे दौड़ने कि कैसे दस हजार हो जाएं! एक दिन दस हजार भी हो जाएंगे, लेकिन उस दिन तुम कहोगे अब लाख के बिना काम नहीं चलेगा। चीजों के भाव भी बढ़ गए हैं! और जिंदगी कहां से कहां चली गई!
और निश्चित ही जिस आदमी के पास हजार रुपये थे, उसकी आकांक्षाएं बहुत
से बहुत दस हजार तक दौड़ सकती थीं वह भी जानता था, इससे ज्यादा की आकांक्षा करना सीमा के बाहर जाना होगा।
गरीब की आकांक्षाएं भी गरीब होती हैंः खयाल रखना। गरीब आदमी ऐसा झाड़
के नीचे बैठा हुआ सपने नहीं देखता कि मैं सम्राट हो जाऊं। यह बात जरा इतनी फिजूल गलती है, इतनी मूढ़तापूर्ण लगती है कि यह होनेवाली नहीं है ठीकारा पास नहीं है, सम्राट होने की बात का क्या मतलब है! कुछ हल नहीं होता।
गांव का भिखारी यही सोचता है कि इस गांव में मैं सबसे धनी भिखारी कैसे
हो जाऊं--ज्यादा से ज्यादा। सौ-पचास भिखारी गांव में हैं, इन सबका मुखिया कैसे हो जाऊं? बस, इससे ज्यादा उसकी आकांक्षा नहीं होतीः सबसे बड़ा भिखारी कैसे हो जाऊं!
गरीब की आकांक्षा भी गरीब होती है। अमीर की आकांक्षा भी अमीर होती है। और यह बड़ा मजा है।
तो गरीब अगर हजार रुपये थे, दस हजार की सोचता था। जब वे दस हजार उसके पास हो गए, तो अब वह अमीर हो गया। अब वह लाख की सोचता है और नब्बे हजार का दुख पैदा कर लेता है।
इसलिए अमीर आदमी ज्यादा दुख में पड़ता चला जाता है। क्योंकि जैसे-जैसे उसकी संपदा बढ़ती है, वैसे-वैसे वासना की हिम्मत बढ़ती है। वह सोचता है कि जब दस हजार कमा लिए, तो लाख क्यों नहीं कमा सकता! बल आ गया। वह कहता हैः कुछ करके दिखा देंगे। ऐसे ही नहीं चले जाएंगे। देखो, हजार थे, दस हजार कर लिए। दसगुने कर लिए, तो दसगुना करने की मेरी हिम्मत है। अब दस हजार हैं, तो लाख हो सकते हैं! क्योंकि दसगुना मैं कर सकता हूं।
मगर यह कहां रुकेगा? जब लाख हो जाएंगे, तो यह दस लाख की सोचने लगेगा! ऐसे तुम रोज ही दुख बनाते जाओगे; रोज दुख बड़ा होता जाएगा; रोज दुख फैलता चला जाएगा। एक दिन तुम अगर पाते हो कि तुम दुख में घिरे खड़े हो, सब तरफ दुख में पड़े हो; दुख के सागर में डूबे हो, तो किसी और की जिम्मेदारी नहीं है।
तुमने अपनी ही वासनाओं की छाया की तरह, दुख पैदा कर लिया है।
दुख से मुक्त होना है, तो सीधे दुख से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है।
वासनाओं को समझो। और अब वासनाएं मत फैलाओ।

सुख का उपाय हैः जो है, उसका आनंद लो। जो नहीं है, उसकी चिंता न करो। दुख का उपाय हैः जो है, उसकी तो फिक्र ही मत लो। जो नहीं है, उसकी चिंता करो।
दुख का अर्थ हैः अभाव पर ध्यान रखो, भाव को भूलो। जो पत्नी तुम्हारे
घर में है, उसकी फिक्र न करो। उसमें क्या रखा है? तुम्हारी पत्नी! जो पड़ोसी की पत्नी है, वह सुंदर है।
अंग्रेजी में कहावत हैः दूसरे के बगीचे की घास सदा ज्यादा हरी मालूम होती है। होती भी है मालूम। जब तुम देखते हो दूर से--दूसरे का लान--खूब हरा लगता है। तुम्हारा अपना लॉन इतना हरा नहीं मालूम पड़ता।
दूसरे का मकान सुंदर मालूम होता है। दूसरे की कार सुंदर मालूम होती है। दूसरे की पत्नी सुंदर मालूम होती है। दौड़ चलती चली जाती है।
सुख का सूत्र हैः जो तुम्हारे पास है, उसके लिए परमात्मा को धन्यावाद दो। जो है--वह पर्याप्त है।
एक आदमी ने आत्महत्या करने की कोशिश की। जब वह मरने के करीब जा रहा था, चट्टान पर से कूदने नदी में, एक फकीर वहां ध्यान करता था, तो उसने रोक लिया। उस फकीर ने कहा कि "सुनो भी, मेरी भी सुनो! बात क्या है? क्यों मरे जाते हो?"
उस आदमी ने कहा, "मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं सब कोशिश कर चुका; हार चुका। परमात्मा नाराज है। कुछ बात बनती नहीं। सब बिगड़ जाता है; जो छूता हूं। सोना छूत हूं, मिट्टी हो जाती है। जिस दिशा में जाता हूं, वहीं हार लगती है! एक सीमा होती है! अब इस जिंदगी से मैं ऊब गया हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है; मैं मरना चाहता हूं।"
उस फकीर ने कहाः "मरने के पहले एक काम कर जाओ। तुम तो मर ही जाओगे, मुझे थोड़ा लाभ हो जाएगा।" उसने कहा, "क्या काम?"
उसने फकीर से कहा कि "ऐसा करो, इस गांव का जो सम्राट है, वह मेरा मित्र है; वह बड़ा झक्की किसम का आदमी है; सनकी किसम का आदमी है। अजीब चीजें इकट्ठी करने का उसको शौक है। मैं तेरी आंखें बिकवा देता हूं। लाख रुपये कम से मिल जाएंगे। फिर तू मर जाना। तू तो मर ही रहा है। और उसकी अगर मौज में आ जाए, तो वह तेरे कान भी खरीद लेगा; तेरे दांत भी खरीद लेगा वह सनकी किसम का है। वह इसी तरह के काम करता है। तू चल मेरे साथ।
अब वह आदमी कुछ कह भी न सका इस फकीर को। कहना भी क्या! वह कह चुका था कि मेरे पास कुछ भी नहीं है और मरने ही जा रहा हूं। मगर जैसे ही उसे खयाल आया कि लाख रूपया आंख का मिल सकता है, तो एकदम गरीब नहीं हूं मैं!
सम्राट के घर तक पहुंचते उसने तय कर लिया कि यह मामला ठीक नहीं हैः आंख बेचना! मरने की तो भूल गया। फकीर भीतर गया। सम्राट को राजी कर लिया। इस आदमी को बुलाया। सम्राट ने कहाः "ठीक है। आंखें निकलवा लेते है। लाख रूपया ले ले तू।"
उस आदमी ने कहा, "समझा क्या है तुमने मुझे? आंख अपनी बेचूंगा?" सम्राट
ने कहा, "दाम अगर
ज्यादा चाहिए, तो वैसी बात करो। दो लाख तो दो लाख। जितना मांग, उतने दूंगा।"
फकीर ने उसको राजी कर लिया था कि इस आदमी को, जितना मांगे, उतना देना।
"दस लाख चाहिए, दस लाख दूंगा। कान भी खरीद लेंगे। दांत भी खरीद लेंगे। तेरे हाथ भी खरीद लेंगे। पैर भी खरीद लेंगे। और तू तो मरने ही जा रहा है।" उस आदमी ने कहा, "मैं बेचना ही नहीं चाहता। कोई आदमी अपने होश में अपनी आंखे बेचेगा," उस आदमी ने कहा।
वह फकीर बोला, "लेकिन भाई, तू तो कहा रहा था--तेरे पास कुछ है ही नही।
तू मरने जा रहा था। उसमें आंख भी मरती, कान भी मरते, हाथ भी मरते, पैर भी मरते--सब मर जाता। और तू कहता थाः तेरे पास कुछ भी नहीं है। और जब दस लाख आंख के मिल रहे हैं, सिर्फ आंख के मिल रहे हैं! अभी और सामान तेरा बेच। करोड़ों दिलवा दूं।"
वह आदमी तो खड़ा हो गया। उसने कहा, तुम हत्यारे हो--तुम लोग। यह कोई बात है!

तो उस फकीर ने कहा, फिर मरने के बाबत क्या खयाल है? उसने कहा कि मैं मर नहीं सकता अब। अब मुझे पहली दफा खयाल आया कि मेरे पास आंखें हैं, जिनको मैं दस लाख में नहीं बेच सकता। लेकिन मैंने इन आंखों के लिए परमात्मा को कभी धन्यवाद नहीं दिया। मैं रोता ही रोता रहा कि मेरे पास "यह" नहीं, "यह" नहीं। मैं शिकांयतें ही करता रहा! मेरी जिंदगी शिकायतों की एक लंबी गाथा है। तुमने मुझे ठीक चेता दिया।
उस फकीर ने कहा, "इसलिए मैं तुझे यहां ले आया था। अब तेरी मरजी, जो तुझे करना हो।"
उस दिन से उस आदमी की जिंदगी बदली। शिकायत समाप्त हुई--प्रार्थना प्रारंभ हुई। उस दिन से वह मंदिर में जाकर धन्यवाद देने लगा कि "प्रभु, तेरी कितनी अनुकंपा है। तूने मुझे आंखें दी, जो मैं दस लाख में नहीं बेच सकता; दस लाख की बात क्या, करोड़ में नहीं बेच सकता! तूने मुझे इतना दिया है और मेरी कोई पात्रता भी नहीं। किस कारण दिया--यह भी मुझे पता नहीं! तूने अपने प्रेम से ही दिया होगा; आह्लाद से दिया होगा; अपने अतिरेक से दिया होगा। तेरे पास बहुत है, इसलिए दिया होगा। धन्यवाद! तेरा बहुत धन्यवाद! मुझे कुछ और नहीं चाहिए। जो दिया है, यही क्या कम है!"
और उस दिन से उस आदमी की जिंदगी बदल गई। उस दिन से वह दुखी आदमी, सुखी
हो गया।
तुम, जो है--उसे देखना शुरू करो। तुम्हारे पास बहुत है। कभी सोचना बैठ करः कितने में आंख बेचोगे?
यह जिंदगी बहुमूल्य है। इसे तुम किसी मूल्य पर बेचने को राजी नहीं हो सकते। यद्यपि तुमने इस जिंदगी के लिए कभी धन्यवाद भी नहीं दिया है।
यह जो पक्षियों का गीत सुन रहे हो, अगर तुम्हारे पास कान न होते, तो तुम पक्षियों का गीत सुनने के लिए कितने रुपये देने को राजी हो सकते थे? यह वृक्षों की हरियाली... ! काश! तुम्हारे पास अगर आंखें न होती; तो तुम ये हरियाली को देखने को कितना रुपया देने को राजी नहीं हो सकते थे!
मगर क्या तुमने कभी हरियाली देखी--आंख है तो? तुमने कभी फूल खिलते देखे? तुमने पक्षियों के गीत में कुछ रस लिया? तुमने चांद-तारों पर नजर दौड़ाई? तुमने यह अखंड विस्तार जो परमात्मा का है, जो अनंत लीला चल रही है, इसका आह्लाद कभी अनुभव किया है?
अंधे होते तो रोते--कि हे प्रभु, तूने रोशनी क्यों नहीं दी? मेरा क्या पाप है? तूने मुझे रंग क्यों न
देखने दिए? मैं तेरे इंद्र-धनुषों को देखने को तरसता हूं; कि मुझे तेरे सूरज का दर्शन करना है! तूने मुझे क्यों यह कष्ट दिया! यह तुम कहते-- जरूर।
अंधे से पूछे तो यह कहते हैं। बहरों से पूछो, तो रोते हैं कि हमने ध्वनि नहीं जानी; हमने संगीत नहीं जाना। हम सुनते हैं कि संगीत बड़ी अपूर्व बात है! लेकिन हमने नहीं जाना। हमें पता भी नहीं कि संगीत क्या होता है। गूंगे से पूछो बोल नहीं सकता। कितना रोता है, कितना तड़पता है भीतर--कि काश, मैं भी बोल सकता! मुझे भी कुछ कहना है। मुझे भी कोई गीत गुनगुनाना है। मुझे भी कोई सुवास प्रकट करनी है। मुझे भी कुछ रचना है। मुझे भी कुछ कहना है। मैं इतना भी नहीं कह सकता किसी से कि मुझे तुमसे प्रेम है! हे प्रभु, तूने इतना दीन क्यों बनाया? यद्यपि तुमने अपनी वाणी के लिए कभी धन्यवाद नहीं दिया है।
तुम जरा सोचना शुरू करोः कितना तुम्हारे पास है! और तुम चकित हो जाओगे। इतना है कि तुम कितना ही धन्यवाद दो, धन्यवाद थोड़ा पड़ेगा।
और अकारण मिला है सब। तुमने इसे अर्जित नहीं किया है। यह उपहार है। यह परमात्मा की भेंट है। और इस भेंट के लिए तुमने कभी धन्यवाद भी नहीं दिया है।
अब तुम पूछते हो कि दुख से मुक्ति कैसे मिले? तुम निर्मित कर रहे हो दुख। अभाव को हटाओ, भाव को देखो। जो है, उसे
देखो। जो नहीं है, उसकी क्या चिंता लेनी। जो नहीं है, नहीं है।
फूल हो जो शूल से शृंगार करता हूं

जिंदगी के साथ मैं खिलवार करता हूं। क्योंकि है यह जिंदगी रंगीन छाया-धूप भोर का उजियार है जन का सुनहरी रूप स्वप्न-बन तन हैं जिसमें प्राण का पंछी श्वास-तिनकों से रहा बुन मृत्यु-नीड़ अनूप इसलिए हंस मृत्यु भी स्वीकार करता हूं और विष को भी अमृत को धार करता हूं। जानता हूं राह पर दो दिन रहेंगे फूल
आज ही तक सिर्फ है यह वायु भी अनुकूल
रात भर के लिए है आंख में सपना
आंजनी कल ही पड़ेगी लोचनों में धूल इसलिए हर फूल को गलहार करता हूं
धूल का भी इसलिए सत्कार करता हूं।
ऐसी भावदशा चाहिए।
फूल हो जो शूल से शृंगार करता हूं
जिंदगी के साथ मैं खिलवार करता हूं
धूल का भी इसलिए सत्कार करता हूं
धूल भी अपूर्व है, क्योंकि धूल से हम बने हैं और कल धूल में ही खो जाएंगे। धूल हमारी जन्मदात्री है, तो फिर धूल का भी स्वागत-सत्कार... । मृत्यु के कारण ही जीवन है। मृत्यु न हो, तो जीवन न हो सकेगा। इसलिए फिर मृत्यु का भी धन्यवा... ।
जरा सोचो तो, कि तुम एक बार जन्म गए और फिर सदा ही बने रहो, और कभी मर न सको। कभी सोचा; इस पर विचार किया?
अगर तुम्हें सदा रहना पड़े, अनंत काल तक रहना पड़े, तुम कुछ भी करो और मर
न सको, तो तुम घबड़ा न जाओगे? ऊब न जाओगे? परेशान न हो जाओगे? थक न जाओगे? और आत्महत्या का भी कोई उपाय न हो। जहर पियो--और मरो न। पहाड़ से गिरो और मरो न। गोली चलाओ और गोली चल जाए और तुम मरो न। कठिन हो जाएगा। बहुत कठिन हो जाएगा।
मृत्यु विश्राम देती है। सत्तर-अस्सी साल के जीवन के बाद थक चुके। देखा जीवन, पहचाना जीवन, जीए जीवन, फिर विश्राम चाहिए। जैसे दिन भर के बाद रात नींद चाहिए, ऐसे जीवन के भर बाद मृत्यु चाहिए।
नींद छोटी सी मौत है और मृत्यु बड़ी नींद है। जैसे सुबह तुम उठ आते हो-- रात सो जाने के बाद--ताजे और नये, फिर जीवन के लिए तत्पर--ऐसे ही मृत्यु के बाद भी तुम उठोगे। फिर ताजे, फिर नये, फिर नया गर्भ, फिर नया जीवन, फिर नया चक्र।
अगर जीवन को ठीक से देखोगे, तो मृत्यु तक स्वीकार हो जाए।
यहां निश्चित ही फूल हैं और शूल भी हैं। मगर निर्भर इस बात पर करती है सारी बात, कि तुम शूल ही शूल देखते हो कि फूल ही फूल देखते हो। यहां दोनों हैं।
कुछ लोग शूलों की ही गिनती करते रहते हैं! उनको अगर तुम गुलाब की झाड़ी
के पास ले जाओ, तो वे गिनती कर लेंगे--सब कांटो की--कि कितने कांटे हैं! हजारों कांटे हैं! कांटे गिनते-गिनते छिद भी जाएंगे, लहू-लुहान भी हो जाएंगे, नाराज भी हो जाएंगे। और कांटों के प्रति इतना क्रोध आएगा, इतनी दुश्मनी हो जाएगी, कि आंखें इतनी अंधी हो जाएगी क्रोध से--कि फूल अगर एकाध खिला भी होगा, तो दिखाई न पड़ेगा।
रामदास के जीवन में कथा है कि रामदास रामायण लिखते हैं। रामायण की खबर पहुंचनी शुरू हो जाती है लोगों तक। हनुमान को खबर लगती है कि रामदास रामायण लिख रहे हैं। हनुमान जिज्ञासावश चले आते हैं कि देखें, यह आदमी हजारों साल पहले कहानी हुई थी। अब लिखने बैठा है। सच लिखता है कि झूठ! हनुमान भी बहुत हैरान होते हैं क्योंकि वे बातें बड़ी सच कह रहे हैं।
वे ऐसे कह रहे हैं, जैसे आंख से देखी कह रहे हों! लेकिन एक जगह बात उलझ जाती है।

एक जगह रामदास कहते हैं कि हनुमान लंका गए, अशोक-वाटिका में गए और वहां उन्होंने देखा कि सब तरफ सफेद-सफेद फूल खिले हैं।
हनुमान खड़े हो गए; भूल ही गए! हनुमान ही हैं एक तो! वैसे तो छिपे बैठे थे, कंबल वगैरह ओढ़ कर बैठे थे कि किसी को पता न चले; कोई पकड़ न ले कि हनुमानजी हैं।
भूल ही गए। कंबल फेंक कर खड़े हो गए। कहा कि "यह बात गलत है और तो सब ठीक है। मैं रहा हनुमान। सुधार लो। संशोधन करो। फूल सफेद नहीं थे। फूल सुर्ख थे, लाल थे।"
रामदास ने कहा, "बकवास बंद करो। ओढ़ो अपना कंबल और बैठ जाओ शांति से। यह तुम्हारा काम नहीं निर्णय करना कि फूल सफेद थे कि लाल थे! रामदास ने लिख दिया, सो लिख दिया। रामदास सुधार नहीं करता।"
यह तो बात जरा जिद्द की हो गई। हनुमान ने कहा, "यह तो हद्द हो गई। मैं गवाह! मैं खुद हनुमान! मैं वहां गया था। तुम कभी गए नहीं। तुमने अशोकवाटिका कभी देखी नहीं। तुम मुझे झुठलाते हो! और अपनी बात... ? कहते होः तरमीन नहीं कर सकता!"
रामदास ने कहा, "तुम शांत बैठो। सुनने आए हो--सुनो; नहीं सुनना हो रास्ता पकड़ो।"
बात जब बहुत बढ़ गई तो हनुमान भी गुस्से में आ गए। हनुमान ने कहा कि "फिर राम के पास चलना पड़ेगा। तुम चलो।"
बिठा कर कंधे पर राम के पास ले गए; कहा कि "राम ही निर्णय कर दें। यह तो जरा... ! भला, अच्छा, आदमी है रामदास", हनुमान ने कहा, और सब ठीक कहता है, बाकी सब ठीक ही लिखा है; और मुझे भी रस आता है उसकी रामायण सुनने में। फिर से याद हरी हो जाती है। फिर से सब ताजा हो जाता है। फिर स्मृतियां दौड़ने लगती है। फिर वह लोक आंख के सामने खुल जाता है। बड़ी जीवंत है उसकी कथा। मगर यह जिद्दी है। मैं कहता हूं कि फूल लाल थे।"
राम ने कहा, "हनुमान तुम इन बातों मे मत उलझो। रामदास ठीक ही कहता हैः फूल सफेद ही थे। तुम इस झंझट में पड़ो ही मत। यह तुम्हारा काम नहीं।"
तब तो हनुमान ने कहा, "यह तो ज्यादती हो गई! यह आदमी भी कहता है कि यह तुम्हारा काम नहीं है। आप भी कहते हैं कि यह तुम्हारा काम नहीं है। यह काम किसका है? मैं वहां था। न तुम गए, न यह आदमी गया"। सीता से पूछ लो। वह मौजूद थी वहां। वही एक मात्र गवाह है।"
सीता को पूछा गया। सीता ने कहा, "हनुमान, तुम इस झंझट में न पड़ो। फूल सफेद ही थे। लेकिन तुम इतने क्रोध में थे, तुम्हारी आंखें खून से भरी थीं-- कि तुम्हें लाल दिखाई पड़े थे। फूल सफेद ही थे। मगर तुम पागल हो रहे थे। तुम्हारे राम की सीता छिन गई थी। तुम दीवाने हो रहे थे। तुम होश में नही थे। तुम्हारा सिर एकदम विक्षुब्ध था और आंखें खून से भरी थीं। तुम प्रतिशोध को तत्पर थे। तुम विध्वंस को तत्पर थे। तुम बदला लेना चाहते थे। उस प्रतिशोध से भरी आंखों में फूल सफेद नहीं दिखाई पड़े थे। अन्यथा फूल सफेद ही थे। रामदास ठीक कहते हैं। राम भी ठीक कहते हैं। मैं गवाह; मैं वहां थी। और तुम थोड़ी देर के लिए आए थे; मैं वहां महीनों थी। फूल सफेद ही थे।" आंख पर निर्भर है। अगर तुम कांटे गिनो, कांटों से आंखें सुर्ख हो जाएंगी, लाल हो जाएंगी, लहू-लुहान हो जाएंगी, फिर फूल दिखाई नहीं पड़ेंगे। अगर तुम फूल गिनोगे, तो धीरे-धीरे तुम पाओगेः कांटे भी फूल के दुश्मन नहीं है; रक्षक है। फूलों को प्रेम करते-करते तुम पाओगेः कांटों से भी प्रेम उमग आया।
रात को भी प्रेम करने लगोगे तुम--अगर दिन को प्रेम किया। और अंधेरे को
भी प्रेम करने लगोगे तुम--अगर रोशनी को प्रेम किया। मृत्यु भी मित्र मालूम पड़ेगी--अगर जीवन को मित्रता की तरह देखा। सब तुम पर निर्भर है।
दुख से छुटकारे के लिए कुछ करना नहीं है। सिर्फ देखना है। सम्यक दृष्टि।
यहां सब है। यहां विपरीत का मिलन हो रहा है। यहां दुख भी है, सुख भी है।
तीन स्थितियां हो सकती हैं आदमी की। दुख की स्थिति, और दोनों के अतीत।

पहली स्थिति को हम नरक कहते हैं। दूसरी स्थिति को स्वर्ग कहते हैं।
तीसरी स्थिति को मोक्ष कहते हैं।
अधिक लोग नरक में जीते हैं। ऐसा मत सोचना की नरक कहीं पाताल में है।
नरक तुम्हारे भीतर है; तुम्हारे जीने के ढंग का नाम है। तुम्हारे गलत जीने का ढंग--नरक। कांटों को चुनने की आदत--नरक। दुख को पकड़ने की आदत--नरक जो नहीं है, उसको
देखना, और जो है, उसको नहीं देखना, इस तरह की विकृत मनोदशा का नाम--नरक।
जो है, उसे देखना; जो नहीं है, उसकी जरा चिंता न करना। जो है, उसके लिए धन्यवाद--अनुग्रह का भाव। जो नहीं है, उसकी कोई शिकायत नहीं, कोई मांग नहीं।
फूल को गिनना; कांटों की गिनती न करना।
स्वर्ग--और स्वर्ग के बाद ही संभव हो पाता है, एक दिन यह देखना, कि नरक
और स्वर्ग तो दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ दुख लिखा है, एक सुखलिखा है। क्योकि एक ही झाड़ी में क ांटे हैं, उसी में फूल हैं। यद्यपि यह सच है कि कांटों ही कांटों को देखने वाला आदमी गलत है। लेकिन किसी और ऊंचाई से यह भी सच है कि सुख ही सुख देखने वाला आदमी भी गलत है, क्योंकि दोनों की दृष्टियां अधूरी हैं। इसे समझना।
अगर तुम नरक में हो, तो मैं कहता हूंः तुम्हारी दृष्टि गलत है। सम्यक दृष्टि तुम्हें सुख में ले आएगी। जब तुम सुख में आ जाआगे, तो सम्यक दृष्टि और ऊपर ले जाएगी। वह कहेगीः सुख ही सुख देखना भी गलत है। क्योंकि यहां दुख भी है, सुख भी है।
दोनों में से किसी को भी चुनना गलत है।
अचुनाव--चुनना ही नहीं; निर्विकल्प हो जाना।
सुख भी बाहर है, दुख भी बाहर है। दुख भी आता है, सुख भी आता है। दोनों आते-जाते है। मैं दोनों से पृथक अलग, भिन्न साक्षी मात्र। वह दशा परम आनंद की।
आओ, अपने संबंधों पर पुनर्विचार करें
थोड़ी सी कलह
थोड़ा प्यार करें।
किसी को क्या पता हम बुरे हैं
कि भले औरों की तरह हम भी
विषम परिस्थितियों में पले
आओ, मन पर लगे नियंत्रण हटाएं थोड़ी चुप्पी साधें
थोड़े शब्दों के वार करें!
हरदम अच्छा-अच्छा ही क्यों चाहें? फूलों वाली ही क्यों
क्यों न हो कांटोंवाली राहें?
आओ, सपनों से आंखमिचौनी रचाएं
थोड़ी इच्छाएं पतझर
थोड़ी बहार करें।
एक दसरे के बारे में ही क्यों सोचे हरपल मन के भीतर भी तो है
थोड़ी हलचल
आओ, आसक्ति से विरक्ति में उतराएं
थोड़े क्षण उदास
थोड़े त्यौहार करें।
आओ, अपने संबंधों पर पुनर्विचार करें।
एक तो दुख को पकडने की वृत्ति; दूसरी सुख को पकड़ने की वृत्ति। मगर पकड़ने की वृत्ति भी गलत है। पहले से दूसरी बेहतर। लेकिन पकड़ने की वृत्ति भी गलत है। फिर तीसरी--न पकड़ने की क्षमता। कुछ भी न पकड़े। कांटे हैं, तो कांटें। फूल हैं, तो फूल।
थोड़ी इच्छाएं पतझर

थोड़ी बहार करें
थोड़े क्षण उदास
थोड़े त्यौहार करें।
दोनों ठीक। रात भी ठीक, दिन भी ठीक। उदासी आए, उदासी भी ठीक। खुशी आए, खुशी भी ठीक।
धीरे-धीरे दोनों ठीक--दोनों ठीक--इस भावदशा में बैठते-बैठते अचानक तुम पाओगे कि तुम दोनों के बाहर सरक गए। जैसे सांप अपनी पुरानी कैं चुली से सरक जाता है। द्वंद्व के बाहर सरक गए। निर्द्वन्द्व हो गए। निरंजन हो गए। वह दशा साक्षी की, वही
दशा अवधूत की। दो नहीं रहे--अब तम्हारे जीवन में; एक का जन्म हुआ। अद्वैत का जन्म हुआ।
मगर यात्रा ऐसी है कि पहले दुख छोड़ो, सुख में आओ। नरक छोड़ो स्वर्ग में आओ। फिर स्वर्ग भी छोड़ो।
पहले बीमारी छोड़ो, स्वस्थ बनो। फिर स्वास्थ्य भी छोड़ो। क्योंकि स्वास्थ्य भी बीमारी के साथ ही जुड़ा है। फिर स्वास्थ्य की भी फिक्र न लो।
बीमारी ही गई, तो अब स्वास्थ्य की क्या फिकर लेनी? अब इसे भी जाने दो। अब तुम दोनों के पार हो जाओ।
पहले पाप छोड़ो, पुण्य पकड़ो। फिर पुण्य भी छोड़ो। फिर पाप-पुण्य के पार
हो जाओ। पहले राग छोड़ो, विराग पकड़ो। फिर विराग भी छोड़ दो, वीतराग हो जाओ। वह तीसरी दशा लक्ष्य है। और वहीं शांति है--और परम आंनद है।

चौथा प्रश्नः प्यारे भगवान,
निकलेगा रथ कि स रोज पार कर मुझको
ले जाओगे कब ज्योति बार कर मुझको
किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे
खिंचते हृदय पर रेख निकल जाओगे
किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा
बाणों के आगे प्राण खोल धर दूंगा?

पूछा है आनंद मैत्रेय ने।
यही सभी संन्यासियों की आकांक्षा है। यह प्रश्न सभी का प्रश्न है।
जो सभी मुझसे किसी गहरे नाते में जुड़ें हैं, उन सभी की उसी क्षण के लिए प्रतीक्षा है। वह क्षण अभी भी आ सकता है--आज भी--इसी क्षण भी।
मैं तो तैयार हूं, तुम्हीं झेलने को तैयार नहीं होते। तुम्हारी ही तैयारी धीरे-धीरे हो जाए, इसकी चेष्टा कर रहा हूं।
तुम अपने कारागृह से बाहर आ जाओ; या--कम से कम द्वार-दरवाजे खोलो कि मैं तुम्हारे कारागृह मे भीतर आ सकूं।
कारागृह मे तुम हो--द्वार दरवाजे बंद किए हैं; और मजा ऐसा है कि कोई और पहरा भी नहीं दे रहा है। तुम ही द्वार-दरवाजे बंद किए, ताले लगाए भीतर बैठे हो--घबड़ाए, डरे, अस्तित्व से डरे; सुरक्षा मालूम होती है भीतर। बाहर असुरक्षा है।
सच है यह बातः बाहर असुरक्षा है। लेकिन असुरक्षा मे जीवन है। असुरक्षा के भाव को समग्र रूपेण स्वीकार कर लेना की संन्यास है--कि अब हम सुरक्षा करके न जीएंगे। अब परमात्मा जैसा रखेगा, वैसा जाएंगे। अब जैसी उसकी मरजी।
"जिही विधि रखे राम, तिही विधि रहिए।" अब जो करवाएगा--करेंगे; नहीं क रवाएगा--नहीं करेगे। अपने पर भरोसा छूटे, तो यह घटना आज ही हो सकती है। "निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझको?" रथ तो द्वार पर खड़ा है। रथ तो अभी निकलने को तैयार है।
"ले जाओगे कब ज्योति बार कर मुझको?" मैं तैयार हूं। रोज-रोज तुम्हें पुकार भी रहा हूं--किसुनो। वैसे ही बहुत देर हो गई है। अब चेतो।
"किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे?" आ ही गया हूं। द्वार पर दस्तक दे रहा हूं। तुम सुनते नहीं। तुम भीतर "अपना" शोरगुल मचा रहे हो। तुमने इतने

बाजे बजा रखे हैं भीतर कि द्वार पर पड़ी हल्की सी थाप तुम्हें सुनाई भी पड़े तो कैसे।
तुमने भीतर इतना बाजार बना रखा है, इतनी भीड़-भीड़ है भीतर तुम्हारे... । तुम अकेले नहीं हो। तुमने बड़ी दुनिया भीतर बना रखी है। वहां बड़ी कलह है, बड़ा धुआं है, बड़ा संघर्ष, बड़ा युद्ध है। वहां प्रतिपल कलह ही चल रही है। उस कलह के कारण द्वार पर पड़ती थपकी तुम सुन नहीं पाते।
किस रोज लिए प्रज्वलित बाण तुम आओगे?
खिंचते हृदय पर रेख निकल जाओगे।
मगर हृदय को तुम खोलते ही कहां हो! तुमने उसे तो न मालूम कितनी परतों में बंद कर रखा है! ओैर परतें तुम्हारी जबरदस्ती भी तोड़ी जा सकती हैं, लेकिन वह बलात्कार होगा। ओैर जबरदस्ती अगर तुम्हें स्वतंत्रता भी मिल जाए, तो गुलामी का ही दूसरा नाम होगा।
जबरदस्ती स्वतंत्रता मिल ही नहीं सकती। क्योंकि वह तो विरोधाभास है। स्वतंत्रता तो चुननी पड़ती है, वरण करनी होती है।
फ्रांस में क्रांति हुई, तो क्रांतिकारियों ने वहां की जेल को तोड़ दिया। बड़ी जेल थी; उसमे बड़े पुराने दिनों से फ्रांस के सबसे ज्यादा जघन्य अपराधी बंद थे--आजीवन जिनको सजाएं मिली थीं।
उस कारागृह में--बेस्तिले उस कारागृह का नाम था--जो जंजीरें पहनाई जाती थीं; वे सदा के लिए पहनाई जाती थीं। क्योंकि उसमें सिर्फ आजन्म-- जिनको मरने तक वहीं रहना है--उन्हीं को भेजा जाता था।
तो जो जंजीरें ड़ाल दी गई थीं, वे ड़ाल दी गई थीं। किसी की जंजीरें कभी काटी नहीं जाती थीं। वह तो मर जाता, तब कटती थी। जिंदा-जिंदा नहीं कटती थीं।
क्रांतिकारियों ने जाकर बेस्तिले का दरवाजा तोड़ दिया। लोगों की जंजीरें तोड़ दी। हजारें कैदी थे। ओैर उनको कहा कि तुम मुक्त हो। लेकिन वे कैदी राजी नही थे। जाने को राजी नहीं थे बाहर। वे तो बड़े चौंक गए। उनको तो भरोसा ही न आया। क्योंकि एक जिंदगी का ढांचा उन्होंने स्वीकार क र लिया था।
कोई तीस साल से बंद था, कोई चालीस साल से बंद था। कोई तो ऐसा कैदी था,
जो पचास साल से वहां था। पचास साल जिसके हाथ में लोहे की जंजीरें और पैर में बेड़ियां रही हों, और पचास साल तक जिसने अपने कारागृह की काल-कोठरी को न छोड़ा हो; पचास साल तक जिसे रोज समय पर भोजन मिल गया हो; पचास साल से जिसने सिर्फ एक ही तरह का जीवन जाना हो, उसकी तुम एकदम जंजीरें तोड़ दो, और कि कहो, तुम मुक्त हो। वह जाए, तो कहां जाए?
अब तो उसे याद भी नहीं पड़ता--उन लोगों के नाम भी उसे याद नहीं आते-- जिनको वह बाहर छोड़ आया था। वे जिन्दा भी होंगे, इसका भी पक्का नहीं! वे पहचानेंगे उसको, इसका भी पक्का नहीं। पचास साल पहले वह जो काम करता था, आज तो कर सकेगा, इसका उपाय भी नहीं। अस्सी साल का बूढ़ा आदमी! अब कौन उसे रोटी देगा? कौन उसे रोजी देगा? कहां जाए? किस दिशा में जाए? किसको तलाशे? कौन उसे अंगीकार करेगा?
"नहीं।" उन्होंने कहा, "क्षमा कर दें। हम बाहर नहीं जाना चाहते। और हमारी जंजीरें मत तोड़ें।"
मगर क्रांतिकारी तो जिद्दी। उन्होंने तो जबरदस्ती धक्के मार कर, कोड़े मार कर बाहर निकाल दिया। कोड़े मार कर ही वे भीतर लाए गए थे। कोड़े मार कर ही वे बाहर निकाले गए। इससे स्वतंत्रता हो सकती है?
सांझ होते-होते आधे आदमी वापस आ गए। और उन्होंने कहा, "हम जाएं तो जाएं कहां? हमें कम से कम रात हमारी कोठरी में तो सो जाने दो!"
आधी रात होते-होते और लोग भी वापस आ गए और उन्होंने कहा, "हमें नींद नहीं आती और कहीं! बाहर बड़ा शोरगुल है। और एक बूढ़े ने कहा कि "बिना जंजीरों के हाथ में, मैं सो नहीं सकता। पचास साल जंजीरें हाथ में हैं, पैर में बेड़ियां; वे ही मेरी संगी-साथी हैं। मैं नंगा-नंगा मालूम पड़ता हूं। सोने की कोशिश की तो नींद नहीं आती! मुझे मेरी जंजीरें वापस लौटा दो!"

जबरदस्ती किसी को स्वतंत्र करने का कोई उपाय नहीं। और यह तो बाहर की स्वतंत्रता है। भीतर की स्वतंत्रता तो और कठिन बात है।
तो मैं द्वार पर खड़ा हूं कि तुम्हारे हृदय को चीर कर निक ल जाऊं। मगर जबरदस्ती नहीं की जा सकती। बलात्कार नहीं हो सकता। तुम्हें ही धीरे-धीरे अपने अवगुंठन, अपने आवरण त्यागने पड़ेंगे। तुम्हें धीरे-धीरे अपना हृदय मेरे सामने खोलना पड़ेगा।
खिंचते हृदय पर रेख निकल जाओगे।
किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा?
अब तक "आग" मालूम होती रहेगी, तब तक कैसे लोगे? आग कोई कैसे सीस पर लेगा? जब ये आग के अंगारे तुम्हें खिले हुए गुलाब के फूल मालूम होने लगेंगे, तब... ।
बाणों के आगे प्राण खोल धर दूंगा। "बाण" समझोगे, तो नहीं रख पाओगे।
जिस दिन यह बाण न होगा, औषधि होगी... ।
वही जहर है, वही औषधि। जब तुम डरते हो, तो जहर मालूम होता है। जब तुम स्वीकार कर लेते हो, तो औषधि हो जाती है। उसी दिन यह घटना घट जाएगी।
लेकिन अड़चन कहां से आती है? अड़चन आती हैः तुम्हारी अस्मिता के भाव से। मैं तूफानों में चलने का आदी हूं
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो!
हैं फूल रोकते, कांटे मुझे चलाते
मरुथल पहाड़ चढ़ने की चाह बढ़ाते
सच कहता हूं मुश्किलें न जब होती हैं
मेरे पग तब चलने में भी शरमाते हैं मेरे संग चलने लगे हवाएं जिससे
तुम पथ के कण-कण को तूफान करो
मैं तूफानों में चलने का आदी हूं तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
अंगार अधर पर धर मैं मुस्काया हूं मैं मरघट से जिंदगी बुला लाया हूं हूं आंख-मिचौनी खेल चुका किस्मत से सौ बार मृत्यु के गाल चूम आया हूं है नहीं मुझे स्वीकार दया, अपना भी तुम मत मुझ पर कोई अहसान करो
में तूफानों में चलने का आदी हूं तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
श्रम के जल से ही राह सदा सिंचती है गति की मशाल आंधी में ही हंसती है शूलों से ही शृंगार पथिक का होता
मंजिल की मांग लहू से ही सजती है
पद में गति आती है छाले छिलने से
तुम पग-पग जलती चट्टान धरो
मैं तूफानों में चलने का आदी हूं
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
मैं तो तुम्हारी मंजिल आसान कर दूं, मगर तुम उसके लिए राजी नहीं। तुम्हारी अस्मिता कहती हैः
मैं तूफानों में चलने का आदी हूं
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
है नहीं मुझे स्वीकार दया, अपना भी
तुम मत मुझ पर कोई अहसान करो
मैं तूफानों में चलने का आदी हूं।
तुम दुख में चले हो; लड़ते रहे हो, लड़ना तुम्हारी प्रकृति हो गई है। और यहां समर्पण चाहिए, और लड़ना तुम्हारी प्रकृति हो गई है। संकल्प से ही तुमने संसार फैलाया; यहां समर्पण चाहिए। तुम जीतने की आकांक्षा से भरे रहे हो--सदा-सदा; प्रत्येक भरा रहा है। और यहां पराजय होने की, पराजय को

स्वीकार कर लेने की, अहोभाव से, क्षमता चाहिए। तो आज घटना घट जाए; अभी घटना घट जाए।
और यह घटना जब भी घटेगी, तब अनायास घटेगी। इसकी कोई घोषणा नहीं हो सकती, कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती--कब? अभी हो सकती है और जन्मों-जन्मों न हो।
कभी भी हो सकती है, क्योंकि प्रत्येक पल होने के लिए संभावना है। जब
भी मेल पूरा बैठ जाएगा; जब भी तुम राजी हो जाओगे; जरा भी ना-नुच, जरा भी "नहीं" का भाव भीतर न रह जाएगा, उसी क्षण हो जाएगी।
यूं अचानक मुलाकात तुझसे हुई
जैसे राहगीर को
बे-तलब
बे-दुआ
राह में एक अनमोल मोती मिले।
ऐसा ही मिलना होता है--प्रेम का भी। ऐसा ही मिलना होता है--प्रार्थना
का भी। प्रिय का भी--और परमप्रिय का भी।
यूं अचानक मुलाकात तुझसे हुई
जैसे राहगीर को
बे-तलब
बे-दुआ
राह में एक अनमोल मोती मिले।
ऐसा ही मिलना होता है--प्रेम का भी। ऐसा ही मिलना होता है--प्रार्थना
का भी। प्रिय का भी--और परमप्रिय का भी।
यूं अचानक मुलाकात तुझसे हुई
जैसे राहगीर को
बे-तलब
बे-दुआ
राह में एक अनमोल मोती मिले।
और हंगामे-रुख्सत ये एहसास है
जैसे मर्देजफा कश का अन्दोखत
हासिले-मेहनते-जिंदगी
राहजन छीन लें
जैसे जाहिद को पीरी में एकसास हो
उम्रभर की रयाजत अकारत गई।
और मिल कर भी बहुत बार बिछुड़ना होगा। पहले-पहल तो हवा के झोंके की तरह मिलना आता है; चला जाता है। एक रोशनी की किरण आती है और चली जाती है। सुगंध तैरती-सी आती है, लरसती-सी आती है हवा में। तुम पकड़ भी नहीं पाते--आई-आई--और गई।
बहुत बार आएगी रोशनी और जाएगी रोशनी। धीरे-धीरे तुम उसका सूत्र पकड़ पाओगे। धीरे-धीरे तुम उसे अपनी शाश्वत संपदा बना पाओगे।
यूं अचानक मुलाकात तुझसे हुई
जैसे राहगीर को
बे-तलब
बे-दुआ
राह में एक अनमोल मोती मिले।
न तो मांगा था, न प्रार्थना थी, न किसी का आशीर्वाद था। अचानक--ऐसा ही होता है--अनायास।
क्यों ऐसा होता है? क्योंकि जब तक तुम प्रयास करते रहते हो, तब तक तो तुम्हारा अहंकार बना रहता है।
"मैं" कोशिश करता है पाने की कुछ, तो मैं बना रहता है।
जब तुम थक जाते हो कोशिश कर-कर के और एक दिन तुम नहीं होते; किसी सौभाग्य के क्षण में न कोशिश होती है, न तुम होते हो, खाली सब होता है, सब सन्नाटा होता है--उसी क्षणः
यूं अचानक मुलाकात तुझसे हुई

जैसे राहगीर को
बे-तलब
बे-दुआ
राह में एक अनमोल मोती मिले।
और हंगामे-रुख्सत ये एहसास है
और विदा के क्षण में ऐसा प्रतीत होता हैः
और हंगामे-रुख्सत ये एहसास है
जैसे मर्देजफा कश का अन्दोखत।
जैसे किसी कंजूस की जीवन भर की कमाई "हासिले-मेहनते-जिंदगी"; जिंदगी
भर इकठ्ठा किया था कंजूस ने कृपण ने। "राहजन छीन लें"--लुटेरे छीन लें। जैसे जाहिद को पीरी में एहसास हो
उम्र भर की रियाजत अकारत गई।
और जैसे किसी तथाकथित तपस्वी को, जिसने जिंदगी भर तपश्चर्या की हो, बुढ़ापे में यह समझ आएः
जैसे जाहिद को पीरी में एहसास हो
उम्र भर की रियाजत अकारत गई।
जिंदगी भर की तपश्चर्या व्यर्थ हो गई। जिसने जिंदगी भर उपवास किए हों, प्रार्थनाएं की हों, पूजाएं की हों, उसको जैसे लगे कि सारी
जिंदगी की मेहनत दो कौड़ी में गई। या जैसे किसी कंजूस ने जिंदगी भर श्रम करके पैसा इकठ्ठा किया हो और राह में लुटेरे लूट लें।
प्रभु आता है, तो ऐसा लगता हैः बिना मांगे आ गया। और जाता है, तो ऐसा लगता है--सब लुट गया--सब लुट गया। तुम पहले से भी ज्यादा दरिद्र हो जाओगे। क्योंकि पहले तो कुछ अनुभव न था, तो पता भी न था, तुलना भी नहीं कर सकते थे कि संपदा क्या है।
जब एक बार रोशनी आंख में उतर आएगी और फिर अंधेरा घना हो जाएगा, तो पहले
से भी ज्यादा अंधेरा मालूम होगा। तुम बहुत रोओगे, बहुत तड़फोगे। सब लुट गया। लुटेरों ने लूट लिया।
तो एक तो विरह है, जो परमात्मा को जानने के पहले आदमी में होता है। वह बहुत गहरा नही होता। हो भी नहीं सकता बहुत गहरा। उस प्यारे को देखा ही नहीं, उसके सौंदर्य को जाना ही नहीं, उसकी झलक भी नहीं मिली कभी, तो हम रो सकते हैं, मगर रोने में कितनी गहराई होगी?
अनुभव ही नहीं, तो रोएं क्या? किसके लिए रो रहे हो? पक्का भी नहीं कि
वह है भी कहीं! था भी कभी? कि सिर्फ कपोल-कल्पना है!
फिर अनुभव होता है। और अनुभव, खयाल रखना--अचानक--अनायास।
मगर इसका यह मतलब नहीं कि तुम कुछ प्रयास न करो। तुम प्रयास न करोगे,
तो अनायास भी न होगा। प्रयास करते-करते, थकते-थकते एक दिन तुम पाओगेः प्रयास से तो नहीं होता। तुम सब कर चुके, जो करना था। कर-कर के तुमने आखिरी सीमा पहुंचा दी। उसी आखिरी सीमा पर विश्राम आ जाता है। और अब और तो करने को कुछ बचा नहीं। तुम शिथिल होकर बैठ जाते हो। विश्राम आ जाता है। उसी विश्राम में अनायासः
जैसे राहगीर को
बे-तलब
बे-दुआ
राह में एक अनमोल मोती मिले।
मगर यह मोती मिलेगा और खोएगा। इसके पहले कि पूरा-पूरा मिल जाए बहुत बार हाथ में आएगा और छूटछूट जाएगा।
लेकिन तैयारी तो तुम्हें करनी होगी; द्वार तो तुम्हें खुला रखना होगा। भय तो तुम्हें छोड़ना होगा।
सदगुरु के पास शिष्य को भय छोड़ना चाहिए। भय ही रुकावट है। संकोच छोड़ना चाहिए। शक-संदेह, जो बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होते हैं, उनको भी छोड़ना चाहिए। आस्था जन्माना चाहिए। श्रद्धा के उमगाना चाहिए।

यह घटना घटने वाली है। निश्चित घटेगी। घटने के रास्ते पर है। मगर कब घटेगी, कहना मुश्किल है! जब तुम घटने दोगे, तभी घटेगी। तुम्हारे बिना राजी हुए नहीं घटेगी।
किसी को भी जबरदस्ती मुक्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि जबरदस्ती और मुक्ति विरोधाभास है। मोक्ष तो तुम्हारे अनंत स्वीकार से उत्पन्न होता है। तुम स्वतंत्र होओगे--अपनी सहजता में--खींच कर नहीं।
खींची-तानी स्वतंत्रता वैसी ही होगी, जैसे कोई फूल की कली को जबरदस्ती खोल दे। पखुड़ियों पहले से ही मुर्दा हो जाएंगी। एक है फूल का अपने आप खिलना।
तो तुम मुझे सूरज रहने दो। मैं अपने हाथ तुम्हारी कली को नहीं छुआऊंगा। मुझे तुम दूर, रोशनी की तरह, तुम्हारे ऊपर पड़ने
दो। तुम मुझ पर निर्भर होने की चिंता भी मत करो--कि मुझे पर तुम्हें निर्भर होना है।
और तुम मेरे हाथों की प्रतीक्षा भी मत करो कि वह आकर तुम्हारी कली को खोल दे। वह दुश्मनी होगी। वह तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।
सूरज को रोशनी की तरह रहने दो। तुम्हारी कली खुलेगी। यह आकांक्षा इसलिए उठी है कि कली खुलना चाहती है। इसीलिए पूछा है।
"निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझ को।" भनक रथ की पड़ने लगी इसीलिए। दूर सुनाई पड़ती है आवाज, जैसे कहीं आकाश में मेघ गड़गड़ाते हें--बहुत दूर--ऐसा रथ कहीं आ रहा है, यह सुनाई पड़ने लगा है। "निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझ को।" इसलिए पूछा है।
"ले जाओगे कब ज्योति बार कर मुझको।" ज्योति का आभास कहीं-कहीं होने लगा है। बहुत धीमा है। शायद प्रतिफलन जैसा है। आकाश का तारा नहीं दिखाई पड़ा है, लेकिन झील में पड़ती तारे की छबि दिखाई पड़ी है।
"किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे?" और मैं चुभने भी लगा हूं कहीं बाण
की तरह, इसीलिए याद आ रही है। कहीं पीड़ा भी उठनी शुरू हुई है। चुभन पैदा हुई है।
"खींचते हृदय पर रेख निकल जाओगे।" आकांक्षा जगी है, तो बीज बो दिया गया; वृक्ष भी होगा; फल भी लगेंगे; फूल भी खिलेंगे।
"किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा?" आज आग जैसी लगती है; लेकिन लेने
का मन हो रहा है। इससे तुम्हें भी समझ में आने लगा है कि आग दिखती ही है, आग नहीं है। फूलों की सुर्खी है।
देखा कभी-कभी जंगल में, ग्रीष्म के दिनों में, जब पलाश के जंगल में फूल खिलते हैं, तो ऐसा लगता हैः सारे जंगल में आग लग गई! अंग्रेजी में तो पलाश के फूलों को आग के फूल ही कहते हैं; दूर से तो ऐसा ही लगता है कि जंगल जल उठा। पास जैसे-जैसे आओगे, वैसे-वैसे लगेगाः फूल है--आग नहीं।
किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा?
बाणों के आगे प्राण खोल कर दूंगा।
मन में आकांक्षा तो जग रही है, अभीप्सा तो जग रही है कि खोल कर रख दूं। शायद कुछ रोकता है--कोई भय, कोई पुरानी आदत, कोई संस्कार। मगर कितनी देर रोक सकेगा? क्योंकि आकांक्षा भविष्य की है और संस्कार अतीत का है।
संस्कार मुर्दा है; आकांक्षा जीवन्त है। आकांक्षा में आत्मा है, संस्कार तो केवल राह पर पड़ी लकीर है, जिस पर तुम गुजर चुके। इसलिए जब भी आकांक्षा में और अतीत में संघर्ष होगा, अतीत हारता है, आकांक्षा नहीं हारती। आकांक्षा के साथ भविष्य है।
तो तुम्हारे भीतर आकांक्षा तो उठी है। शुभ आकांक्षा उठी है। इसको सींचो। इसको सम्हालो। यह अभी छोटा कोमल पौधा है इसको सहारा दो--कि यह बड़ा होता जाए। यह बढ़ेगा।
मेरा पूरा साथ तुम्हें है। लेकिन मैं आकर जबरदस्ती तुम्हारी पखुड़ियों को नहीं खोलूंगा। नहीं खोल सकता हूं।
नहीं खोल सकता हूं, क्योंकि तुम से मुझे प्रेम है अन्यथा खुद की खुलने
की क्षमता सदा के लिए नष्ट हो जाएगी।

माली किसी फूल को खोलता नहीं। पानी देता है; खाद देता है; लेकिन किसी फूल को पकड़ कर खोलता नहीं। मौका देता है--पौधे को ही--कि जब समय पक जाएगा, जब वसंत आएगा, जब फूल के भीतर ही क्षमता आ जाएगी खुलने की, तो फूल अपने से खुलेगा।
अपने से खुल जाना ही सहज-योग है। कबीर के सारे वचन उसी सहज-योग की दिशा में इशारे हैं। सहज को समझा, तो कबीर को समझा।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
तीसरा प्रवचन

साधो, शब्द साधना कीजै

सूत्र

साधो, सब्द साधना कीजै।
जेही सब्द ते प्रकट भए सब, सोइ सब्द गहि लीजै।।
सब्द गुरु सब्द सुन सिख भए, सब्द सो बिरला बूझै।
सोई सिष्य सोई गुरु महातम, जेही अन्तर गति सूझै।।
सब्दै वेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै।
सब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै।।
सब्दै सुन सुन भेष धरत हैं, सब्दै कहै अनुरागी।
खट-दरसन सब सब्द कहत हैं, सब्द कहै वैरागी।।
सब्दै काया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा।
कहै कबीर जहं सब्द होत हैं, भवन भेद है न्यारा।।
कबीर सबद सरीर में, बिन गुण बाजै तंत।
बाहर भीतर भरि रह्या, ताथै छूटि भंरति।।
सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहब मिलै, सोई सब्द गहि लेय।।
सब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जानै बोल
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल।।
सीतल सब्द उचारिए। अहम आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झमें, सत्रु भी तुझ माहिं।।

"साधो सब्द साधना कीजै।"
सब से पहले "साधु" शब्द को समझें। कबीर के सारे वचन संबोधित हैं; लिखे नहीं गए हैं, बोले गए हैं; किसी से कहे गए हैं; किसी के संदर्भ में हैं।
अंधेरे में किसी भी दिशा में तीर नहीं चला दिया है। कोई सामने है, इसको ध्यान में रख कर ही कहे गए हैं।
कबीर के वचनों में संवाद है। कबीर के वचनों में संदर्भ है।
तो कोई वचन शुरू होता है "साधु" से। कोई वचन शुरू होता है "संत" से; कोई वचन शुरू होता है--पंडित-पांडे से; कोई वचन शुरू होता है--मुल्ला-काजी से।
कोई वचन शुरू होता है--अवधू-अवधूत से। और कोई वचन शुरू होता है--कबीरा से; कबीर स्वयं का संबोधित करते हैं--कबीरा।
ये सारे संबोधन समझने जैसे हैं।
पंडित-पांडे के तो कबीर मूल विरोधी हैं। इसलिए जहां उन्होंने पंडित-पांडे का संबोधन किया है, वहां वे खंडन को तत्पर हैं। वहां वे तलवार लेकर खड़े हैं। वहां उनके वचनों में अंगार है, क्रांति है, विध्वंस है। क्योंकि कबीर कहते हैंः शास्त्र को जानने से सत्य नहीं जाना जाता। हां, कोई सत्य को जान ले, तो शास्त्र जरूर जान लिया जाता है।
कितना ही पढ़ो, कितना ही लिखो, कुछ भी हाथ न आएगा। स्याही से कितने ही हाथ काले करो, कहीं पहुंचोगे नहीं। खोपड़ी भर जाएगी। शब्दों ही शब्दों से खोपड़ी भर जाएगी। और उन्हीं शब्दों की भीड़ के कारण, जो मूल शब्द है, वह सुनाई न पड़ेगा। इस विरोधाभास को ख्याल में लेना।
मूल शब्द तभी सुनाई पड़ता है, जब तुम्हारे शब्द खो जाते हैं। जब तुम निःशब्द हो जाते हो, तब सुनाई पड़ता है। यह विरोधाभासी लगेगा। निःशब्द में शब्द सुनाई पड़ता है।
शब्द से अर्थः परमात्मा का स्वर, अस्तित्व का स्वर--यह जो समग्र के प्राण का आंदोलन है--यह। लेकिन अगर हम अपने ही शब्दों से भरे हैं और बड़ी भीड़ मची है वहां, और बड़ी कीचड़ मची है वहां--शब्द और सिद्धांतों की, तो कौन सुनेगा? कैसे सुनेगा? उस शोरगुल में परमात्मा की धीमी-सी वाणी खो जाती है।

वह जो धीमा-सा वीणा का स्वर भीतर बज रहा है, वह सुनाई पड़े, तो कैसे सुनाई पड़े? यह जो नकारखाना है, जिसमें हमने जमाने भर के उपद्रव इकट्ठे कर रखे हैं, यह जो हमारा मन है, इसमें शास्त्र हैं, सिद्धान्त हैं, वाद-विवाद है, राजनीति है, धर्म है, और न मालूम क्या-क्या है! यह जो कूड़ा-कर्कट हमने इकट्ठा किया है, इसी कूड़े-कर्कट में हीरा दब गया है।
तो जब भी कबीर पंडित को संबोधन करते हैं, तब समझ लेना कि वे तत्पर हैं मिटाने को।
मिटाना जरूरी है--बनाने के लिए। विध्वंस जरूरी है--निर्माण के लिए।
पुराने मकान गिराना पड़ता है, तो नया बनाया जा सकता है। पुरानी देह जल जाती है, तो नया जन्म मिलता है।
तो जैसे ही पंडित-पांडे का संबोधन आए, समझ जाना कि कबीर खड़ग लेकर खड़े हैं।
और इसी तरह मुल्ला और काजी।
जहां कबीर "अवधू" या "अवधूत" को संबोधित करते हैं, वहां सम्मान से करते हैं। यद्यपि कबीर स्वयं अवधूतों से राजी नहीं हैं। लेकिन अवधूतों के प्रति उनका सम्मान है।
अवधूत का अर्थ होता हैः जिसने सब छोड़ा; जो त्यागी हो गया--परमहंस--घर-द्वार छोड़ा घर-द्वार ही छोड़ा--ऐसा ही नहीं, वर्ण-व्यवस्था छोड़ी, समाज छोड़ा, सभ्यता छोड़ी--ऐसा ही नहींः संन्यास भी छोड़ा। अवधूत परमदशा है।
गृहस्थ से आदमी संन्यस्त बनता है, फिर संन्यस्त के भी पार हो जाता है।
तो अवधूत।
अवधू शब्द भी अच्छा है। इसका अर्थ हैः "वधू जाके न होई, सो अवधू कहावे।" जिसको दूसरे की जरूरत न रही; वधू यानी दूसरा। किसी को पत्नी की जरूरत है; किसी को मकान की जरूरत है; किसी को दूकान की जरूरत है; किसी को मित्र की जरूरत है; किसी को बेटे की, बेटी की; कोई न कोई जरूरत है। किसी को धन की, किसी को पद की।
जब तक दूसरे की जरूरत है, तब तक तुम अवधू नहीं। जो "पर" से मुक्त हो गया, जिसको दूसरे की जरूरत न रही; जो अकेला काफी है; जो अपने में पूरा है; ऐसा सब छोड़ कर जो चला गया; संसार से बिल्कुल विरक्त हो गया--परिपूर्ण--पीठ मोड़ ली, वह हैः अवधू--अवधूत।
कबीर के मन में अवधूत का सम्मान है। लेकिन वे उनकी जीवन व्यवस्था से राजी नहीं हैं। क्योंकि कबीर कहते हैंः कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं; यहीं हो सकता है। जो दौड़-दौड़ कर, भाग-भाग कर, जंगल-पहाड़ में करते हो, वह तो बाजार में हो सकता है। इतने दूर जाने की जरूरत क्या? परमात्मा दूर नहीं--पास है। परमात्मा तुम्हारे हृदय में विराजमान है।
कबीर कहते हैंः संसार छोड़ना, संसार में रहने से बड़ी बात है। लेकिन संसार में रहना और संसार को छोड़कर रहना, संसार छोड़ने से भी बड़ी बात है।
तो कबीर कहते हैंः अवधूत से भी ऊपर एक दशा है; और वह दशा है--जल में कमलवत, संसार में होकर भी संसार को अपने में न होने देना। कबीर उसके पक्षपाती है।
लेकिन अवधूत के प्रति उनका सम्मान है। वे कहते हैंः कुछ तो किया; कुछ
तो अपने को बदला; "पर" से मुक्त हुआ। संसार से मुक्त हुआ। लेकिन कबीर कहते हैं कि संसार से मुक्त होने से भी बड़ी बात हैः संसार में मुक्त होना। वह कबीर की संसार और परमात्मा के बीच संधि है; संसार और परमात्मा के बीच समन्वय है।
तो संसारी से बेहतर है त्यागी। लेकिन त्यागी से भी बेहतर है वह, जो संसार में है और संन्यस्त है।
यही मेरे संन्यास की धारणा भी है। तुम जहां हो, वहीं; जैसे हो वैसे ही; ठीक उसी दशा में तुम्हारे भीतर रूपांतरण हो जाए। क्योंकि रूपांतरण मनःस्थिति का है--परिस्थिति का नहीं।
अवधू का अर्थ हैः परिस्थिति छोड़ कर चला गया। सम्मान तो है, लेकिन कबीर
की अपनी धारणा नहीं है वह।

इसलिए जहां वे अवधूत का उपयोग करें, वहां जानना कि बड़े सम्मान से बोल रहे हैं। खंडन नहीं करेंगे; स्वीकार है उन्हें अवधूत की दशा, लेकिन अपने शिष्यों को वे अवधूत होने के लिए नहीं कहते। वे और भी ऊपर ले जाते हैं।
और जहां कबीर कहें "भाई" वहां समझना--वे साधारण जन को संबोधित कर रहे हैं। वह संबोधन भी प्यारा है। जब भी कबीर बोलते हैंः भाई, तब वे साधारण जन को संबोधित कर रहे हैं। लेकिन साधारण जन को वे "भाई" संबोधित करते हैं। जो परमदशा को प्राप्त हो गए हैं; वे जानते हैं कि तुम भी परमदशा को प्राप्त हो सकते हो। अगर नहींं प्राप्त हो रहे हो, तो तुमने ही बाधाएं बिठा रखी हैं।
जो परमदशा को प्राप्त होता है, वह यह भी देख लेता है कि यह तुम्हारी भी संभावना है। तुम बीज की तरह पड़े हो--यह बात दूसरी अन्यथा तुम में भी वसंत आ सकता है, बहार आ सकती है, फूल खिल सकते हैं।
तो कबीर जब सामान्य व्यक्ति को संबोधित करते हैं, तो बड़े प्रेम से कहते हैं--भाई।
सामान्य व्यक्ति के प्रति उनका बड़ा सद्भाव, बड़ा प्रेम, बड़ी करुणा है।
तो जो वचन "भाई" से शुरू हो, समझ लेना कि वह साधारण जन के लिए कहा गया है। साधारण सीधे लोग; न तो पंडित हैं, न पुरोहित हैं, न काजी हैं, न मुल्ला हैं; सीधे-सादे लोग; जीवन जैसा है, वैसा जीए जा रहे हैं। लेकिन अपनी संपदा से अपरिचित; उनको कहते हैं "भाई"। उनको कहते हैं कि जो मुझे मिला है, वह तुझे मिल सकता है। मुझ में और तुझ में भेद नहीं है। हम एक ही परमात्मा की संतान हैं; इसलिए भाई। और हम एक ही संपत्ति के मालिक हैं--इसलिए भाई।
और कभी-कभी कबीर संबोधन करते हैंः जोगिया, जोगिड़ा, योगी, तो वे बड़े तिरस्कार से करते हैं। "जोगिया" का अर्थ होता है, जो क्रियाकांड में उलझ गया; जो मूल तो चूक गया और असार को पकड़ लिया। कोई शीर्षासन लगाए खड़ा है; कोई कांटों पर लेटा है; कोई शरीर की कसरते कर रहा है; इसको वे कहते हैं--योगिया, जोगिया।
असली योग तो भूल ही गया। असली योग तो अंतर्यात्रा है। और यह शरीर में
ही उलझ गया! तो दिखाई तो पड़ता हैः अध्यात्मवादी। लेकिन है पूरा शरीरवादी। इसकी सारी जीवन प्रक्रिया शरीर में उलझी है। नौली धौती कर रहा है; प्रक्षालन कर रहा है शरीर का। उपवास कर रहा है। ऐसा भोजन, वैसा भोजन। इस तरह बैठता, उस तरह खड़ा होता। चौबीस घंटे उलझा है। लगता है ऊपर से कि बड़ी आत्मा की खोज में लगा है, लेकिन सारी खोज ऐसी लगती है--शरीर से बंधी।
कल एक मित्र ने प्रश्न पूछा था। प्रश्न था कि क्या रुग्ण व्यक्ति के जीवन में भी समाधि फलित हो सकती है? क्या बुद्ध पुरुष को कैन्सर भी हो सकता है; क्षय रोग हो सकता है? पूछने वाले ने यह भी साथ में लिखा है कि जैन धर्म के मानने वाले कहते हैं कि देखो हमारे महावीर! कैसी सुंदर देह है! कैसी स्वस्थ देह है! कभी रोग न जाना। क्योंकि जब ज्ञान फलित होता है, तो देह भी रूपांतरित हो जाती है।
जैन तो कहते हैं कि महावीर मल-मूत्र विसर्जन नहीं करते! क्योंकि मल-मूत्र विसर्जन तो साधारण लोग करते हैं। देह रूपांतरित हो गई है!
जैन तो कहते हैंः महावीर को पसीना नहीं आता। पसीना तो साधारण जनों को आता है। जैन तो कहते हैं कि महावीर के शरीर से बड़ी सुगंध आती है; पसीने की तो बात ही दूर, दुर्गंध की तो बात ही दूर।
जैन तो यहां तक कहते हैं कि महावीर के शरीर में अब खून भी नहीं बहता; दूध बहता है।
तो जिसने प्रश्न पूछा है, उसने पूछा है कि क्या यह बात सच है कि क्या आत्मा के अवतरण पर देह भी सर्वांगरूपेण बदल जाती है?
नही; यह बात सच नहीं है।
रामकृष्ण को कैन्सर हुआ। महर्षि रमण को कैन्सर हुआ। और किसने तुमसे कहा कि महावीर को बीमारियां नहीं हुईं! महावीर मरने के पहले छह महीने बुरी तरह बीमार रहे। पेचिश की बीमारी से परेशान रहे। लेकिन जैनशास्त्र उसके लिए भी कोशिश करते हैं--छिपाने की। वे यह कहते हैं कि महावीर की बीमारी नहीं थी। यह तो महावीर का एक दुश्मन था--गौसालक--उसने महावीर पर क्रोध से

भरकर तेजोलेश्या फेंकी; जादू किया। उसने जो क्रोध से भरी हुई अग्नि महावीर पर फेंकी थी--तेजोलेश्या की--उसको महावीर पचा गए। वे तो सभी पचा जाते है। उसको भी पचा गए। वही अग्नि उनके पेट को रुग्ण कर गई और उनको दस्त लगे, पेचिश की बीमारी रही। शरीर में उनके बीमारी नहीं थी।
ये तो व्याख्याएं हैं। सो तो फिर कोई रामकृष्ण का भक्त कहता है कि किसी को कैन्सर था, परमहंस ने वह ले लिया। किसी भक्त का कैन्सर अपने ऊपर ले लिया। सो रमण का भक्त भी कह सकता है कि सारी दुनिया की तकलीफ उन्होंने ले ली। जैसे शिव ने जहर पी लिया और नीलकंठ हो गए, ऐसे रमण महर्षि के कंठ में कैन्सर हो गया, क्योंकि सारे जगत की पीड़ा उन्होंने अपने ऊपर ले ली।
यह सब बकवास है। इसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन एक बात इसमें साफ है
कि तथाकथित अध्यात्मवादी बड़े देहवादी, बड़े भूतवादी, बड़े पदार्थवादी हैं। सच तो यह है कि देह तो रोग का घर है। देह यानी रोग। देह स्वस्थ रहती है,
यह चमत्कार है। देह रुग्ण रहती है, यह स्वाभाविक है।
लेकिन हमारी पकड़ देहवादी की है। तो महावीर को अगर आत्मा का ज्ञान हुआ है, तो हम तत्क्षण देह में उनके लक्षण मांगना चाहते हैं--कि देह में लक्षण होने चाहिए। और फिर मूढ़तापूर्ण बातें भी हम कहते हैं कि खून दूध बन गया। अगर शरीर में दूध बहने लगे, तो आदमी सड़ जाएगा। क्योंकि दूध कभी भी दही बन जाएगा। दूध से आदमी जी नहीं सकता; खून अनिवार्य है।
और देह, तो जिन्होंने बुद्धत्व को पा लिया है उनकी, साधारण लोगों से ज्यादा जीर्ण-जर्जर हो जाती है। चूंकि उनका सारा लगाव छूट गया; देह मे हैं--और नहीं हैं। देह से सारे संबंध छूट गए। देह से सब सेतु टूट गए। देह से बंधन क्या रहा? अब देह में प्राण अपने डालते ही नहीं। तो देह तो ऐसे घिसटने लगी--बोझरूप। अब तो पुराने कर्मों का संस्कार है, तब तक देह चलेगी और गिर जाएगी।
इसीलिए तो सद्गुरु या संबुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति फिर दुबारा जन्म नहीं लेता है, क्योंकि उसके देह को पैदा करने की क्षमता ही शांत हो गई। देह से लगाव गया, तो देह को जन्माने की क्षमता भी समाप्त हो जाती है। तो परमज्ञान की अवस्था के बाद तो तुम घर में नहीं रहते, खंडहर में रहते हो। और चूंकि मालिक बिल्कुल उदास हो गया, तटस्थ हो गया, कूटस्थ हो गया, अब घर की कौन फिक्र करता है! और घर तो आज नहीं कल गिरना है। घर गिरना शुरू हो जाता है।
लेकिन हमारी पकड़ बड़ी शारीरिक है। तो हम तो महावीर को ऐसा चित्रित करेंगे कि जैसे महावीर कोई गामा हों, कि दारासिंग हों। कुछ होश की बातें करो!
अगर यह सच है कि महावीर की देह परमज्ञान के कारण सर्वांगीण स्वस्थ हो
गई, तो फिर जो लोग सर्वांगीण स्वस्थ हैं, उनको परमज्ञान हो जाएगा? फिर तो जंगल के पशु आसानी से बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएंगे।
योगियों में भी यह धारा रही कि किसी तरह देह को स्वस्थ करो, लम्बाओ, उम्र बड़ी करो। अगर तुम्हें कोई योगी मिल जाए और दिखता हो कि है चालीस-पैंतालीस साल का और कहे कि डेढ़ सौ साल मेरी उम्र है, तब तुम चमत्कृत होते हो। तब तुम मान लेते कि हां, है कोई महान योगी।
तुम्हारी पकड़ शरीर को तौलती है। तुम्हारे सोचने का ढंग भौतिकवादी है। उसको कहते हैं कबीर--जोगिया; जो बातें तो अध्यात्म की करता है, लेकिन जिसकी पकड़ शरीर पर है। बातें तो बहुत ऊंचाई की करता है, लेकिन रहता बहुत नीचे तल पर है। शरीर में ही उलझा रहता है।
जैन मुनि करीब-करीब सब जोगिया हो गए हैं। शरीर की ही फिक्र में उलझे रहते हैं! ऐसा खाना, ऐसा पीना; ऐसा नहीं खाना, ऐसा नहीं पीना। आज उपवास। यह, वह--यही चलता रहता है। कुछ और करने को जैसे है नहीं। ध्यान लगाने
की तो फुरसत भी नहीं बचती। इस सब गोरख-धंधे से बचें, तो ध्यान लगे।
जानते हो "गोरखधंधा" गोरखनाथ से आया है--शब्द गोरखधंधा। क्योंकि गोरखनाथ के शिष्यों ने बड़ा गोरखधंधा शुरू कर दिया था! बस उनका काम ही यह था--यह खाओ, यह पीओ; इस तरह आसन लगाओ; इस तरह कान छेदो। इस तरह सिर के बल खड़े

हो जाओ। इतनी प्रक्रियाएं... ! सब शरीर केंद्रित। उसको गोरखधंधा कहा जाने लगा।
जब कोई आदमी फिजूल की आपाधापी में पड़ा होता है, तो हम कहते हैंः क्या गोरखधंधे में पड़े हो? हमें याद भी नहीं कि गोरखनाथ जुड़े हैं उस गोरखधंधे में।
जोगिया का अर्थ होता हैः चले तो थे आत्मा खोजने, उलझ गए शरीर में। चले
तो थे यात्रा को, नक्शे में ही उलझ गए! नक्शे में ही बैठ रहे! सोचा था-- परलोक जाएंगे, और इसी लोक की शुद्धि करने में लग गए और यहीं समाप्त हो गए। तो जब कबीर "जोगिया" कहें, तो समझ लेना कि वे मखौल उड़ा रहे हैं, वे मजाक उड़ा रहे हैं।
फिर कभी-कभी कबीर "साधु" कहते--और कभी-कभी--संत। जब कबीर साधु कहते हैं
या संत, तो अपने शिष्यों को संबोधन करते हैं।
साधु का अर्थ हैः जो चल पड़ा संत होने की ओर। और संत का अर्थ हैः जो पहुंच गया। तो जब अपने किसी पहुंचे हुए शिष्य को उदबोधन करते हैं, तो संत कहते हैं। और जब अपने नये-नये शिष्यों को, जो प्रशिक्षित हो रहे हैं, जिन्होंने यात्रा की अभी पहल शुरू की, प्रस्थान किया है, उनको "साधु" कहते हैं।
और कभी-कभी ऐसी भी बात कबीर कहते हैं, जब वे अपने को ही संबोधन करते हैं। जब कबीर अपने को संबोधन करते हैं, तब वे बड़ी अपूर्व बात कहते हैं। तब वे यह कहते हैं कि यह बात कुछ ऐसी है कि एक बुद्ध दूसरे बुद्ध से कहे। यह बात किसी और से नहीं कही जा सकती। अब कोई दूसरा बुद्ध मौजूद नहीं, इसलिए कबीर कबीर से ही कह लेते हैं।
ध्यान रखना कबीर क्या संबोधन करते हैं, उस पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। "साधो, सब्द साधना कीजै।"
साधुओं को संबोधन कर रहे हैं।
तीन शब्द--साधक, साधु, संत।
साधक का अर्थ हैः जिसने अभी-अभी चलना शुरू किया; जो अभी बाराखड़ी सीख रहा है; अभी तुतलाता है; गिर-गिर जाता है; भटक-भटक जाता है। दो कदम ठीक चलता है, तो एक कदम गलत पड़ जाता है। जिससे अभी बड़ी भूल-चूक होती है। जो अभी लौट-लौट संसार में उतर जाता है।
पुकार तो आ गई है परमात्मा की, लेकिन अभी साहस नहीं जुटा पाता। एक दिन प्रार्थना करता है, एक दिन भूल जाता है। दो दिन सद्गुरु के सत्संग में बैठता है तीसरे दिन झपकी खाने लगता है। दो-चार दिन बड़ी उमंग से चलता है, फिर थक जाता है। और कहता हैः क्या धरा है! और फिर अपनी पुरानी आदतों में उलझ जाता है।
साधकः कुछ-कुछ किरण उतरनी शुरू हुई है। लेकिन अभी किरण इतनी सघन नहीं
कि जीवन को पूरा बदल दे। हां, बदलाहट के छीटे आने लगे हैं; बूंदाबांदी होने लगी।
साधु का अर्थ हैः थिर हो गया; अब भटकता नहीं; अब भूल-चूक नहीं होती। अब साधना अविच्छिन्न हो गई; अखंड हो गई। अब बूंदाबांदी ही नहीं है, मेघमल्हार कर रहे हैं। और खूब वर्षा हो रही है। झड़ी लगी है; भींग रहा है। आनंदमगन हो रहा है।
लेकिन अभी भी यात्रा के मध्य में है। वहां नहीं पहुंच गया है, जहां पहुंच कर फिर और कहीं पहुंचने को नहीं बचता। अभी चल रहा है। अभी खोज जारी है। खोज व्यवस्थित हो गई है। साधक जैसी नहीं रही। तारतम्य बैठ गया। अनुशासन आ गया। दिशा मिल गई। राह साफ हो गई। कहां जाना है, कैसे जाना है--सब स्पष्ट हो गया। और दूर दिखाई पड़ता हुआ मंजिल का चमकता तारा भी साफ है। अब भटकने का कोई उपाय नहीं। लेकिन अभी पहुंचना है। वह जो गौरी-शंकर का हिमाच्छादित शिखर सुबह के सूरज में सोने जैसा चमकता दिखाई पड़ रहा है, यद्यपि पास मालूम होता है, पर दूर है; अभी यात्रा करनी है--साधु। और जो गौरीशंकर पर विराजमान हो गया, वह संत या सिद्ध। ये तीन शब्द। साधु मध्य में है। साधक--साधु--संत।

ये वचन साधु के लिए उच्चारित हैं। तो साधु का अर्थ ठीक-ठीक ख्याल में
ले लें।
साधु का शाब्दिक अर्थ होता हैः सरल, सीधा, सादगीपूर्ण, विनम्र, विनीत, निष्कपट, श्रद्धापूरित; श्रद्धा से भरा हुआ अर्थात साधु। बुद्धि के जाल, तर्क के फैलाव, कपट और चालबाजियां, कूटनीति और राजनीतियां--सब छोड़ दी। बच्चे की भांति जो हो रहा। गुरु का हाथ ऐसे पकड़ ले, जैसे छोटा बच्चा अपने पिता का हाथ पकड़ लेता है, तब साधु।
साधक को समझाना पड़ता हैः भूल मत करो। साधक को समझाना पड़ता है बार-बार--
कि भूल से बचो। साधु को समझाना पड़ता है कि ठीक कैसे करो। साधक को बताना पड़ता हैः गलत से कैसे बचो; और साधु को बताना पड़ता हैः ठीक कैसे करो।
साधक को लाना पड़ता है बार-बार... । क्योंकि वह भटक-भटक जाता है। और साधु को... । कहीं भटकता नहीं है, लेकिन ठीक मार्ग पर--और कैसे गति बढ़े, जिस दिशा में चल पड़ा है, उस दिशा में और कैसे त्वरा आए, तीव्रता आए; धीमाधीमापन न रहे, कुनकुनापन न रहे, सौ डिग्री पर पानी उबले, ताकि एक दिन संतत्व की घटना घटे--सिद्धावस्था घटे।
"साधो, सब्द साधना कीजै।"
साधक से तो कहना होता हैः सत्संग करो। साधु से कहना होता हैः अपने भीतर जाओ। सत्संग अब पर्याप्त नहीं है। सत्संग ने काम कर दिया; तुम रम गए। तुम्हें राम में प्यार जग गया, प्रीति लग गई; अब अपने भीतर जाओ; अंतर्यात्रा पर लगो।
"साधो, सब्द साधना कीजै।" "शब्द" का अर्थ होता है... वही जो बाइबिल में है। बाइबिल कहती हैः सब से पहले शब्द था--इन द बिगनिंग वाज वर्ड--फिर उसी शब्द से सब निर्मित हुआ। उसी शब्द का सब निर्माण है।
"शब्द" से यहां अर्थ होता हैः तुम्हारे उच्चारित शब्द नहीं; मनुष्य उच्चारित शब्द नहीं, होंठों से जो शब्द बनते हैं, वे नहीं। लेकिन तुम जहां शांत होते हो और तब जो अनाहत सुना जाता है।
जब तुम बिल्कुल शांत हो जाओगे, तुम अपने भीतर एक संगीत सुनोगे, जिसके तुम जन्मदाता नहीं हो; जिसको तुम बजा नहीं रहे हो। इसलिए अनाहत कहते हैं उसे।
आहत का अर्थ होता हैः बजाया हुआ। तुमने वीणा के तार छेड़े, तो आहत नाद पैदा होता है। तुम्हारे दो ओंठ आपस में लडखड़ाए, तो आहत नाद पैदा होता है। तुम्हारे कंठ में खलबली मची, कंठ के यंत्र ने कुछ उच्चार किया, तो आहत नाद पैदा होता है।
जैसे हम दो हाथों को टकरा दें, तो ताली बजती है। एक हाथ से ताली तो नहीं बजती, दो हाथ से ताली बजती है। यह आहत नाद।
इसलिए झेन फकीर कहते हैंः खोजो उस स्थान को जहां एक हाथ की ताली बजती है। जब उसको खोज लोगे, तो तुमने जाना कि शब्द क्या है। एक हाथ की ताली अनाहत--इसी अनाहत नाद को शब्द कहते हैं। यह तुम्हारे किए नहीं होता। तुम जब होते ही नहीं, तब होता है। तुम जब बिल्कुल शांत हो जाते हो, तब अचानक तुम्हारी चेतना में एक नाद उठता है। तुम सिर्फ साक्षी होते हो; तुम उसके कर्ता नहीं होते।
तो एक तो शब्द है, जो मनुष्य बोलता है--मनुष्य उच्चारित शब्द। और एक शब्द है--जिससे मनुष्य उच्चारित होता है, जिसमें से मनुष्य आता है; उस मूल शब्द को हम कहें--मूल ध्वनि--ओरिजिनल साउन्ड।
भौतिकी, फिजिक्स भी इस बात पर थोड़ी दूर तक राजी है। अगर तुम भौतिक-शास्त्र पढ़ो, तो भौतिकी को जानने वाले कहते हैंः सारा जगत विद्युत से बना है। और सारे संतों ने सदा से कहा है कि सारा जगत ध्वनि से बना है।
ऊपर से ये दोनों बातें विपरीत दिखाई पड़ती हैं, लेकिन थोड़ा और गहरे जाओगे, तो विपरीतता कम हो जाएगी और समन्वय साफ होगा।
फिर पूछो भौतिकशास्त्री सेः ध्वनि कैसे बनी? तो वह कहता हैः ध्वनि भी विद्युत का एक रूपांतरण है। ध्वनि भी विद्युत ऊर्जा की एक तरंग है।
और सारे संतों ने कहा हैः जगत ध्वनि से बना है। उनसे अगर पूछो कि विद्युत क्या है, तो वे कहते हैं कि ध्वनि का ही तीव्र आघात है।

तुमने यह कहानी सुनी होगी कि तानसेन जैसे संगीतज्ञ दीपक राग गा सकते हैं, तो बुझा हुआ दीया जल जाता है। यह इसी तरफ संकेत है। यह संकेत इस बात पर है कि अगर ध्वनि का संघात तीव्रता से किया जाए, तो अग्नि पैदा हो जाती है, विद्युत पैदा हो जाती है।
तब तुम्हें बात समझ में आ जाएगी कि भौतिकशास्त्री उसी बात को अपने ढंग से कह रहा है, जिस बात को संतों ने और किसी ढंग से कहा था।
संत कहते थेः ध्वनि सारी चीजों का मूल है। और भौतिकशास्त्र कहता हैः विद्युत सारी चीजों का मूल है। लेकिन दोनों इस बात पर राजी हैं कि विद्युत और ध्वनि एक दूसरे की तरंगें हैं। यह सिर्फ देखने की बात है। कोई गिलास को आधा भरा देखे; कोई गिलास को आधा खाली देखे। मगर यह एक ही गिलास है। आधा खाली कहो, तो वही है। आधा भरा कहो, तो वही है।
ध्वनि और विद्युत एक ही घटना के दो नाम हैं। मगर ये दोनों ने अलग-अलग शब्द क्यों कहे? क्योंकि दोनों की खोज की
दिशा अलग-अलग है।
वैज्ञानिकों ने खोजा है--आंख के माध्यम से; और संतों ने जाना है--कान
के माध्यम से। क्योंकि आंख तो बाहर जाती है सिर्फ। आंख भीतर नहीं जाती। कान की बड़ी खूबी है। कान बाहर भी जाता है और भीतर भी जाता है।
आंख तो बाहर देखती है। आंख बंद कर लो, तो भी बाहर देखती है। चित्र दिखाई पड़ते हैं; सपने दिखाई पड़ते हैं--तरंगें----। लेकिन वे सब बाहर की ही छायाएं हैं। जब कुछ दिखाई पड़ने को न रह जाए, तो आंख का काम बंद हो जाता है; आंख शांत हो जाती है।
रात तुम जब सोते हो... । किसी को कभी सोते हुए देखना, तो तुम बड़े चकित होओगे कि नींद में उस आदमी की आंखों में बड़े फर्क होते रहते हैं। कभी-कभी आंख बड़ी तेज, पलक के भीतर ही चलने लगती है। तुम बाहर से भी देख सकते हो कि आंख भीतर से बड़ी गति से चल रही है। और कभी-कभी आंख ठहर जाती है; गति बंद हो जाती है।
वैज्ञानिकों ने खोज की तो पाया कि जब आदमी की सोए में आंख चलती मालूम पड़ती हो, तो वह सपने देखता है। तो आंख वैसे ही चलने लगती है, जैसे वास्तविक चीजों को देखते वक्त चलती है। क्योंकि देखना शुरू हो गया, आंख गतिमान हो जाती है। आदमी सपना देख रहा है या सोया हुआ है या नहीं--अब तुम बाहर से बैठकर कह सकते हो। सिर्फ बाहर से देख सकते होः उसकी आंख, पलकों के भीतर पुतली चल रही है? सरक रही है, हिल रही है, इधर-उधर जा रही है, तो वह सपना देख रहा है। जब पुतली ठहर गई; जरा भी नहीं हिलती, तो सपना समाप्त हो गया। आंख का काम बंद हो गया।
कान लेकिन अद्भुत है। बाहर की सब ध्वनियां बंद हो जाएं, तुम बाहर से कान को बिल्कुल बंद कर लो, तो भी तुम पाओगे कि भीतर नई ध्वनियों का आविर्भाव हो रहा है, जो तुमने कभी सुनी न थी। थी तो सदा, लेकिन तुम बाहर बहुत उलझे थे।
संतों ने सत्य को जाना है--कान के माध्यम से। वैज्ञानिकों ने सत्य को जाना है--आंख के माध्यम से। इसमें यह भी खयाल में रख लेना; लाओत्सु को मानने वाले फकीरों का चीन में कहना है कि आंख है पुरूष की प्रतीक और कान है स्त्री का प्रतीक। कान ग्राहक; आंख आक्रमक है। इसलिए तो हमारे पास इस तरह के शब्द हैं, जैसेः लुच्चा। लुच्चा का मतलब होता है--किसी पर आंख से हमला। लुच्चा शब्द आता है--लोचन से। लोचन याने आंख। लुच्चा हम उस आदमी को कहते हैं, जो किसी को घूर घूरकर देखे। जो किसी पर आंख से हमला करे, उसको लुच्चा कहते हैं। और लुच्चा का ही एक रूप आलोचक भी है। आलोचक का मतलब भी वही होता है--जो घूर घूरकर देखे, आलोचना करे। वह भी लोचन से ही आता है-- आलोचक।
आंख पुरुषवाची है, आक्रमक है, हिंसात्मक है। इसलिए तुमने देखा; बहुत
से राजनीतिज्ञ काला चश्मा आंख पर लगाए रखते हैं। वह छिपाने की सब से बड़ी तरकीब है। राजगोपालाचारी या इस तरह के लोग। अगर तुम्हारी आंख दूसरे को दिखाई न पड़े, तो तुम्हारी मनसा क्या है, इसका पता नहीं चलता। तुम्हारे इरादे क्या हैं--पता नहीं चलता।

कूटनीतिज्ञ अपनी आंख को छिपा लेते हैं, क्योंकि आंख से सब बातें जाहिर हो जाती हैं। कहते कुछ हो, और आंख कुछ और कहती है! बोलते कुछ हो; कहते होः आपको देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। लेकिन अगर आंख में गौर करो तो पता चलता है कि जरा प्रसन्नता नहीं हुई। आंख में लहर ही नहीं प्रसन्नता की। तो कहीं आंख से बात पकड़ में न आ जाए; आंख को ढांके रखते हैं।
आंख आक्रमक है और खबर देती है। कान से कोई खबर नहीं मिलती। तुम कान के पास जाकर कितना ही देखो, कुछ खबर नहीं पा सकते। इसलिए कान को कोई राजनीतिज्ञ ढांकता नहीं। ढांकने की कोई जरूरत नहीं। उससे कुछ पढ़ा ही नहीं जा सकता। कान ग्राहक है; वह लेता है।
कान स्त्री जैसा है। आंख पुरुष जैसी है। कान ने कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया। और कान ने कभी किसी को चोट नहीं पहुंचाई। तुमने कभी सुना कि कान ने किसी पर हमला किया हो! आंख रोज-रोज करती है।
आंख के संबंध में नियम है कि किसी व्यक्ति को एक सीमा से बाहर मत देखना। रास्ते पर तुम जा रहे हो, तो एक सेकंड, दो सेकंड के लिए तुम किसी को भी देखो, कोई अड़चन नहीं है।
वैज्ञानिक कहते हैं--तीन सेकंड आखिरी सीमा है। तीन सेकंड से ज्यादा देखा कि तुम दूसरे व्यक्ति के जीवन में हस्तक्षेप कर रहे हो। उतने दूर तक सभ्यता है इसलिए स्त्रियों ने आंख झुकाने की कला सीख ली थी। वह लज्जा का लक्षण हो गया था। आंख में आक्रमण हो सकता है, इसलिए स्त्रियां आंख झुकाने लगी थीं। न होगी आंख उठी, न किसी पर आक्रमण होगा। इसलिए तुम जब अपराध से भरे होते हो, तो आंख झुका लेते हो। वह तुम्हारी दीनता की खबर देती है। अकड़ा हुआ आदमी आंख नहीं झुकाता; अकड़ कर देखता है; घूर कर देखता है। वह उसके अहंकार की, दर्प की घोषणा है।
विज्ञान की सारी खोज आंख के माध्यम से हुई, इसलिए विज्ञान आक्रमक है
और हिंसक है। इसलिए विज्ञान का अंतिम परिणाम युद्ध है।
धर्म की सारी खोज कान से हुई--अनाहत नाद को सुनना... । "साधो, सब्द साधना कीजै।"
परमात्मा को देखना कम है, परमात्मा को सुनना ज्यादा है। परमात्मा को पाने का ढंग वही होगा, जो संगीत को गुनने का होता है; जो संगीत में डूबने का होता है।
मेरे पास आकर बहुत लोग कहते हैं कि "आपके आश्रम में बहुत संगीत, नृत्य... । लेकिन ऐसा हम किसी और आश्रम में नहीं
देखते!" उनको "शब्द" का कुछ पता नहीं, जो ऐसा पूछते हैं।
तो जिन आश्रमों में संगीत नहीं है, नृत्य नहीं है, उन आश्रमों में शब्द की साधना नहीं हो रही। उन आश्रमों में लोग उदास बैठे हैं, उत्सव नहीं हो रहा।
परमात्मा से बहुत दूर है आंख। कान बहुत करीब है।
शब्द की साधना का अर्थ होता हैः तुम निशब्द हो जाओ। तुम्हारे चित्त
की तरंगें शून्य हो जाएं। एक ऐसी घड़ी आ जाए, जहां तुम तो हो, लेकिन एक भी शब्द भीतर नहीं।
और हम है कि कूड़ा-कचरा भरते रहते हैं। अखबार ही पढ़ते रहते हैं लोग! सुबह से शाम तक अखबार पढ़ते रहते हैं!
जाओ-जाओ, मुझे नींद आई है, सोने दो मुझे
दिन गुजरता जाता है लफ्जों का तआकुब करते
और जब रात को थक हारके गिर पड़ता हूं
तुम चले आते हो अखबार लिए
तुम को अब याद नहीं।
कल के अखबार में भी थीं यही सारी खबरें
बल्कि परसों से यही खबरें धड़ाधड़
हर इक अखबार में छपती हैं पढ़ी जाती हैं
कल की खबरें भी लगे हाथ सुना डालो अभी!
फिर कहीं जाके मरो तुम भी, मुझे सोने दो
सुबह को फिर मुझे लफ्जों के तआकुब में निकलना होगा।

सुबह से शाम तक आदमी शब्दों के पीछे ही भागता है। कोई सम्मान के पीछे भाग रहा है। क्या मिलेगा? कुछ शब्द मिलेंगे। और क्या मिलेगा? प्रशस्तियां मिलेंगी।
कोई आदमी गाली से उद्विग्न हो गया है; मरने-मारने को उतारू है! क्या हुआ है? कुछ शब्द खटक गए हैं। तुम्हारी जिंदगी गाली और प्रशंसा के बीच ही तो डोलती है। तुम्हारे जीवन का पेंडुलम गाली और प्रसंशा के बीच ही डोलता है। गाली न मिले और प्रसंशा मिले; प्रसंशा जो मिल गई है, वह जमी रहे, उखड़ न जाए। गाली जो मिल गई, वह उखाड़ी जाए, फेंकी जाए, खंडित की जाए।
जाओ-जाओ, मुझे नींद आई है, सोने दो मुझे
दिन गुजरता जाता है लफ्जों का तआकुब करते
शब्दों का पीछा करते करते ही तो दिन बीत जाता है! अब रात भी आ गई।
और जब रात को थक हारके गिर पड़ता हूं
तुम चले आते हो अखबार लिए
तुम को अब याद नहीं
कल के अखबार में भी थीं यही सारी खबरें
और तुम रोज-रोज अखबार में पढ़ते क्या हो? वही-वही--वही है। सोया आदमी नया काम कुछ करता ही नहीं। वही लड़ाई, वही झगड़ा, वही राजनीति, वही उठा-पटक, वही एक दूसरे के प्रति हिंसा, प्रतिहिंसा प्रतिशोध।
आदमी कुछ और करता ही नहीं। नई खबर तुमने कभी पढ़ी? अखबार में कभी कुछ मौलिक मिला? कभी तुमने सोचा कि अगर अखबार न पढ़ते, तो कुछ चूक जाता?
भले और बेहतर थे लोग, जो सुबह उठ कर कुरान पढ़ते थे, गीता पढ़ते थे, बाइबिल पढ़ते थे। कुछ नया था, कुछ मौलिक था। अब तो हालत यह है कि जो आदमी अखबार पढ़ता है, वह गीता पढ़ने वाले से कहता है कि क्या वही गीता रोज पढ़े जाते हो? अब बात उलटी है। अखबार आदमी जो पढ़ रहा है, वह रोज वही का वही है। गीता रोज वही की वही नहीं है। क्योंकि गीता में इतने अर्थ--अर्थों पर अर्थ, गहराइयों पर गहराइयां हैं, ऊंचाइयों पर ऊंचाइयां है। तुम जैसे-जैसे बदलते जाओगे वैसे-वैसे गीता में नये अर्थ प्रकट होते चले जाएंगे।
गीता अखबार नहीं है। गीता खबर नहीं है--बाहर के संसार की। गीता तो अनंत की तरफ इशारा है। तुम्हारी जैसे-जैसे आंखें उठती जाएंगी, वैसे-वैसे तुम पाओगेः और प्रकट होने लगा; और प्रकट होने लगा।
भले थे वे लोग, जो गीता, कुरान या बाइबिल पढ़ लेते थे। या धम्मपद पढ़ते थे, या लाओत्सु की किताब पढ़ते थे। क्योंकि वहां एक-एक शब्द में बड़ी गहराइंया थी। जितनी डुबकी तुम मारते, जितनी हिम्मत करते, उतने मोती ले आते। तुम पर निर्भर था। और ऐसा कुछ नहीं था कि शब्द चूकता था। कल भी पढ़ते, परसों भी पढ़ते, इसलिए पाठ का जन्म हुआ था।
पाठ का मतलब यह नहीं होता कि वही-वही किताब रोज पढ़ रहे हैं। वही किताब है, लेकिन नई चेतना से पढ़ रहे हैं, तो नये अर्थ दे जाती है। लेकिन अखबार तुम किसी भी चेतना से पढ़ो--नया अर्थ नहीं हो सकता। अखबार में अर्थ ही नहीं है। अखबार व्यर्थता है--अनर्थ है।
कल के अखबार में भी थीं यही सारी खबरें
बल्कि परसों से यही खबरें धड़ाधड़
हर इक अखबार में छपती हैं पढ़ी जाती हैं
कल की खबरें भी लगे हाथ सुना डालो अभी।
अगर तुम थोड़ी समझ का उपयोग करो, तो तुम कल का अखबार आज तैयार कर सकते हो। मोरारजीभाई देसाई कल क्या कहेंगे, तुम आज नही बता सकते! चरणसिंग कल क्या करेंगे, तुम आज नहीं बता सकते?
मोरारजीभाई देसाई कुछ नया तो करने वाले नहीं। चरणसिंग से कुछ नया तो होने वाला नहीं। जो होता रहा, वही होगा। जो कल कहा था, वही फिर कल कहा जाएगा। फिर-फिर कहा जाएगा।
लोग अंधे हैं, लोग बुद्धिहीन हैं; रोज अखबार पढ़े जाते हैं! और रोज सुबह
से प्रतीक्षा करते हैं कि अखबार अभी आया या नहीं? जैसे कि कुछ नया आने को है!

इन शब्दों की भीड़-भाड़ में तुम्हारा जो भीतर का शब्द है, वह खो गया है।
ये शब्द जाएं, तो शब्द की साधना हो।
अगर शब्द ही पढ़ने हों, तो कुछ ऐसे पढ़ना, जो निशब्द से आए हों।
राजधानियों से उठते हुए शब्द मत पढ़ना। क्योंकि राजधानियां पागल हैं।
और राजधानियों में पागल बसे हैं। अगर पढ़ना ही हो, तो ऐसे शब्द पढ़ना जो उनके हृदय से उठे हों, जहां सारे शब्द खो गए थे। तो उन शब्दों से तुम्हें कुछ छाया मिलेगी, राहत मिलेगी, दिशा मिलेगी।
जिनको दिशा मिल गई है, उनके थोड़े-थोड़े शब्द भी बड़े काम के हैं। हालांकि वे भी बाधा बन सकते हैं। इसलिए पंडित मत हो जाना; साधु ही रहना। इसलिए ज्ञानी मत बन जाना; सरल चित्त बालक ही रहना। पढ़ लेना शास्त्रों को; आनंद ले लेना। उनमें बड़ा मधुर रस है। लेकिन वहीं अटक मत जाना। क्योंकि आखिर वे भी शब्द हैं। सत्य तक जाना है। और सत्य तुम्हारे भीतर पड़ा है, और कबीर कहते हैंः ध्वनि की तरह पड़ा है, संगीत की तरह पड़ा है।
साधो सब्द साधना कीजै।
जेही सब्द ते प्रकट भए सब, सोइ सब्द गहि लीजै।
जिस मूल ध्वनि से हम सब आए हैं, उसी मूल ध्वनि में उतर जाओ। उसी में सीढ़ियां लगाओ।
जेही सब्द से प्रकट भए सब, सोइ सब्द गहि लीजै।
सब्द गुरु सब्द सुन सिख भए, सब्द सो विरला बूझै।
शब्द ही गुरु है। वह जो तुम्हारे भीतर पड़ी है शांत ध्वनि, मौन प्रतीक्षा करती, वही गुरु है। वही सद्गुरु है। बाहर का गुरु तो उसी की याद दिलाता है। बाहर का गुरु तो तुम्हें वहीं-वहीं फेंकता है वापस, तुम्हारे ही भीतर फेंकता है। जो गुरु तुम्हें बाहर अटका ले, वह गुरु नहीं--दुश्मन है। जो गुरु तुम्हीं में फेंक दे, वही सच्चा गुरु है। जो कहेः मुझे छोड़ो और अपने भीतर जाओ। मुझे मत पकड़ो। मुझे पकड़ कर रुक मत जाना। क्योंकि मैं भी बाहर हूं। मुझसे तो इतना सीख लो कि कैसे भीतर जाया जाता है, फिर अपने भीतर चले जाओ। फिर बिसारो सब। गुरु भी सम्मिलित है उस बिसारने में। संसार भी भूल जाए, गुरु भी भूल जाए; धर्म भी भूल जाए--सब भूल जाए; विस्मृति पूरी हो जाए। जब बाहर की विस्मृति पूरी हो जाती है, तो स्मरण आता है भीतर का।
ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती। तुम्हारी ऊर्जा बाहर उलझी है, तो भीतर की कैसे स्मृति आए! बाहर से जब सारी ऊर्जा मुक्त हो जाती है, तो फिर क्या याद करोगे? कुछ याद करने को बचता नहीं, तो स्वयं को याद करोगे। जब कुछ और नहीं रह जाता खोजने को, तो आदमी स्वयं को खोजता है। जब और कहीं खोदने को कोई जगह नहीं बचती, तब आदमी स्वयं के खजाने को खोदता है।
"सब्द गुरु सब्द सुन सिख भए... ।" शब्द ही गुरु है। और जिसने शब्द को सुन लिया, वही शिष्य, वही सिक्ख।
नानक के शिष्यों का नाम सिक्ख पड़ गया, क्योंकि पंजाबी में शिष्य का रूप हो जाता है सिक्ख। लेकिन सिक्ख का अर्थ होता है--शिष्य--जो उसके पास बैठने को राजी है, जिसने भीतर का मूल स्वर सुन लिया।
"सब्द सो विरला बूझै।" और कोई विरला ही कभी इस शब्द को बूझ पाता है। लेकिन वही बूझ सकता है। जो इस भीतर की यात्रा पर चलता ही रहे।
मैंने सुना है उन दिनों आगरा के कवि नजीर अकबरावादी गरीबी के गाल में समाए जाते थे। यह बात नवाब हैदराबाद को मालूम हुई, तो उन्होंने तुरंत ही अपना आदमी उन्हें हैदराबाद ले आने के लिए भेजा। वह आदमी जब आगरा पहुंचा और नजीर से मिला, तो नजीर बोले, "मियां, हैदराबाद से क्या हमें ताजमहल दीखेगा?" यह भी कोई बात हुई! कहां हैदराबाद? कहां आगरा?
और नजीर बोले कि "चल तो सकता हूं, मगर ताजमहल दीखेगा वहां से कि नहीं दीखेगा?" वह आदमी बोला, "हां-हां क्यों नहीं दीखेगा? आप चलिए तो।"
वह तो उन्हें हर सूरत में साथ ले आने के लिए आया था और जब आने लगा था,
तो नवाब हैदराबाद ने कहा था कि "मैंने सुना है, नजीर पागल है ताजमहल के पीछे। वह जरूर कहेगा। ताजमहल की ही बात अड़चन उठाएगा; और कुछ नहीं है उसके पास वहां। भूखा मर रहा है। उसे ले आना जरूरी है--बचाने के लिए। लेकिन वह

ताजमहल की बात उठाएगा तो तू फिक्र मत करना। कहना कि ठीक है। सब हो जाएगा।
वह कुछ भी कहे, हां भर देना। किसी तरह उसे ले आना।
उन दिनों रेलों मोटरों का तो जमाना था नहीं। हाथी पर बैठा कर नजीर को यात्रा शुरू कराई गई। चलने का दिन आया, तो नजीर हाथी पर उलटे मुंह बैठ गए।
आदमी जरा हैरान हुआ कि सुना तो था कि कवि झक्की और सनकी होते हैं। बाकी यह क्या मामला है! पर वह चुप रहा; किसी हाल चले-चलें। बस, ठीक है। उलटे बैठे हैं; चलो, उलटे सही।
हाथी चला। नजीर टक-टकी बांधे ताज को देखे जा रहे थे। हाथी जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, ताज उनकी नजरों में धुंधला और धुंधला गया। जब ताज दीखना बिल्कुल बंद हो गया, तो नजीर उचक कर महावत से बोले, "मियां, रोक लो यहीं अपना हाथी। जब इतने पास से हमें ताजमहल नहीं दीख रहा है तो भला हैदराबाद से क्या दीखेगा?"
नवाब के आदमी ने उन्हें बहुत समझाया, मगर ताज से प्यार करने वाले खूब-सूरती पसंद नजीर कहां मानने वाले थे! वे तो हाथी से उतर पड़े और पैदल ही आगरा लौट गए।
गुलशन-परस्त हूं, गुल ही नहीं अजीज।
कांटों से भी निबाह किए जा रहा हूं मैं।।
जिसको बगीचे से प्रेम होता है, फूलों से प्रेम होता है--"गुलशन-परस्त हूं, गुल ही नहीं अजीज।" उसे फूल ही प्यारे नहीं होते, वह कांटों से भी निबाह कर लेता है।
गुलशन-परस्त हूं, गुल ही नहीं अजीज।
कांटों से भी निबाह किए जा रहा हूं मैं।।
लौट आए। भूखे रहे। गरीब रहे। बिना छप्पर के रहे। मगर वे ताजमहल छोड़ कर
न गए।
ऐसी ही अंतर्यात्रा है। तुम जैसे-जैसे बाहर का शोरगुल छोड़कर भीतर जाने लगोगे, वैसे-वैसे भीतर का ताजमहल दिखाई पड़ना शुरू होगा। जैसे-जैसे तुम बाहर की तरफ जाओगे, भीतर का ताजमहल दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा।
भीतर अपूर्व सौंदर्य है, लेकिन तुम बहुत दूर पड़ गए हो। तुम अपने ही हाथ बड़े दूर चले गए हो। और जिसने एक बार भीतर का संगीत सुन लिया, फिर उसे कोई लाख कहे, वह गरीब रह लेगा, वह भूखा रह लेगा, वह प्यासा रह लेगा, वह फकीर बन जाएगा, मगर उस भीतर के ताजमहल को छोड़कर न जाएगा, क्योंकि वही परम संपदा है।
सब्द गुरु सब्द सुन सिख भए, सब्द सो बिरला बूझै।
सोई सिष्य सोई गुरु महातम, जेही अंतर-गति सूझै।
यह अंतर में जाने की जो बात है, जिसे सूझ जाए--वही शिष्य है। और वही एक दिन गुरु बन जाता है। और शिष्य और गुरु के बीच जो अपूर्व घटना घटती है, वह और कुछ नहीं है--अंतर-गति है।
... जेही अंतरगति सूझै
"सब्दै वेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै।"
और सब कुरानों ने, पुरानों ने, वेदों ने, उपनिषदों ने--शब्द की ही बात
की है। शब्द की--जो निःशब्द में सुना जाता है। पूर्ण की बात की है। पूर्ण-- जो शून्य में उतरता है। परमात्मा की बात की है। लेकिन परमात्मा--जो तुम्हारे मिट जाने पर आता है; तुम्हारी राख में जो फूल खिलता है।
"सब्दै वेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै।" और जो शब्द में ठहर गया, उसका सब ठहरा जाता है। उसको ही कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा है। उसको ही कहा हैः पहुंच गया--निस्तब्ध, निस्तंरग; ज्योति जब जलती है, कोई हवा का झोंका ज्योति को हिला भी नहीं पाता।
... सब्दै सब ठहरावै।
सब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै।।
सारे संत उसी का गीत गा रहे हैं--उसी शून्य का, उसी निःशब्द का, उसी निःशब्द में सुने गए संगीत का, सारे सुर मुनि उसी के गीत गा रहे हैं।

"सब्द भेद नहिं पावै।" फिर भी कितना ही कहो, उसका भेद खुलता नहीं। कितना ही समझाओ, वह अनुभव से ही समझ में आता है; समझाने से समझ में नहीं आता।
तुम जानोगे तो ही जानोगे--मेरे कहने से नहीं। मेरे कहने से इतना ही हो सकता है कि तुम उत्सुक हो जाओ। खोज में लग जाओ। जिज्ञासा उठे। जिज्ञासा मुमुक्षा बने।
साधक बनो। साधक बनते-बनते साधु बन जाओ। इतना हो सकता है। लेकिन उस शब्द का क्या स्वरूप है? उसका निर्वचन नहीं हो सकता। उसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती, कोई परिभाषा नहीं हो सकती।
"सब्द भेद नहीं पावै।" उसके भेद को कभी कभी किसी ने नहीं पाया। उसका रहस्य आत्यंतिक है। उसमें लोग उतर गए हैं! उसको चख लिया है। उसको पी लिया है। पर फिर गूंगे का गुड़ को गया। फिर लौटकर भी आ गए हैं। और तुम उनसे पूछो, तो उनकी जबान बंद है!
सभी बुद्ध पुरूष चुप हैं। ऐसा नहीं कि नहीं बोलते हैं। बोलते हैं, लेकिन उस शब्द के बाबत कुछ भी नहीं बोलते; उस शब्द तक कैसे पहुंचोगे--इस बाबत बोलते हैं। विधि बताते हैं। मार्ग बताते हैं। लेकिन जाओगे तो ही जानोगे। उधार जानना नहीं हो सकता है, निज ही जानना होगा।
"सब्दै सुन सुन भेष धरत हैं... ।" उसी शब्द को सुनने के कारण दुनिया में संन्यस्त होते हैं लोग। जिनको जरा सी भनक पड़ जाती है, वे अपना वेश बदल लेते हैं। संसारी का वेश छोड़ कर संन्यासी हो जाते हैं।
"सब्दै सुन सुन भेष धरत हैं, सब्दै कहै अनुरागी।" उसी शब्द को सुन कर कोई भक्त हो जाता है; अनुरागी हो जाता है प्रभु का।
"खट-दरसन सब सब्द कहत हैं... ।" और सारे दर्शन उसी शब्द की तरफ इशारा करते हैं।
"सब्द क है बैरागी।" अनुरागी भी वही कहते हैं, भक्त भी वही कहते हैं, त्यागी भी वही क हते हैं। वैरागी भी वही कहते हैं। अनुरागी भी वही क हते हैं। अलग-अलग दिशाओं से लोग आते हैं, लेकिन वह सागर एक है--जिस पर पहुंचते हैं। वह स्त्रोत एक है।
"सब्दै काया जग उतपानी, सब्दै के रि पसारा।" शब्द से ही सारा जगत उत्पन्न हुआ है। सारी अभिव्यक्ति शब्द की है। यह पक्षियों में गूंजता स्वर, यह वृक्षों में चलती हुई हवाओं की सरसर, यह झरनों की कलकल--यह सब--यह आाकाश, यह पृथ्वी, ये तारे, यह सूरज, ये मनुष्य, यह तुम--यह सब उसी एक की अभिव्यक्ति है, उस एक स्त्रोत में ही ये सारी तरंगें उठी हैं।
सब्दै काया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा।
कहै कबीर जहं सब्द होत हैं, भवन भेद है न्यारा।।
कहते हैं उतर जाओ उस भवन में, जहां शब्द हो रहा है। वहीं है मंदिर! आदमी के बनाए मंदिरों से मुक्त हो जाओ। प्रभु के बनाए मंदिर में चलो। "कहै कबीर जहं शब्द होत हैं, भवन भेद है न्यारा।" वह बड़ी अनूठी अनुभूति है--अद्वितीय अतुलनीय, न्यारी। इस जगत का कोई अनुभव ऐसा नहीं है, जिससे उसकी तुलना की जा सके। न तो किसी स्वाद में वैसा स्वाद है; न किसी भोग में वैसा भोग है; न किसी सौंदर्य में वैसी झलक है। न किसी संगीत में वैसी शांति है। इस जगत में कुछ भी नहीं है, जिससे उसकी तुलना की जा सके। वह अतुलनीय है, न्यारा है। जाओ--और जानो।
"कबीर सद सरीर में, बिन गुण वाजै तंत।" और वह शब्द तुम में छिपा है। कहीं और जाना नहीं है। न काशी, न काबा--कहीं जाना नहीं है।
"कबीर सबद शरीर में... ।" वह तुम्हारे भीतर बसा है। वह तुम्हारे रोएं- रोएं में पड़ा है। वह तुम्हारे हृदय की धडकन-धड़क न में है। उसी की तो धडकन हो रही है। उसी का तो रोमांच है।
"कबीर सबद सरीर में, बिन गुण बाजै तंत।" जैसे देखा न, वीणा में सोया होता है संगीत। मत छेड़ो, तो सोया रहता है। छेड़ दो तो उठ जाता है। मगर यह वीणा भीतर की और भी अद्भुत है--"बिन गुण बाजै तंत।" वहां कोई वीणा नहीं है; कोई तार भी नहीं है। सिर्फ संगीत है। अनाहत नाद है।

भीतर जाओगे, तो वीणा नहीं पाओगे और न पाओगे--किसी वीणाकार को। न तो पाओगे किसी बजाने वाले को; और न पाओगे कोई वाद्य। मगर अपूर्व संगीत है वहां। शाश्वत संगीत है वहां। न जिसका कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है। उस संगीत को जिसने सुन लिया, परमात्मा को सुन लिया।
उस संगीत को ही सुना था मोहम्मद ने एक दिन, जब कुरान उन पर उतरी। घबड़ा
गए थे। डर गए थे। उसी संगीत को सुना था वेद के ऋषियों ने। इसलिए वेद को हम अपौरुषेय कहते हैं। अपौरुषेय का अर्थ हैः मनुष्यों ने नहीं रचे वेद; उस अपूर्व संगीत में उतरे हैं। मनुष्यों का कृत्य उन पर नहीं है। मनुष्यों का हस्ताक्षर उन पर नहीं है।
और अगर ठीक से समझो, तो जब भी इस जगत में कोई महत्वपूर्ण बात कही जाती है, तो वहीं से आती है। बाकी सब क चरा है। बाकी सब कूड़ा-कर्कट है।
जब भी सत्य कहीं भी सुनाई पड़े या सौंदर्य कहीं भी दिखाई पड़े, तो जान लेना, वहीं से आता है। जब तुम एक सुंदर स्त्री को राह से गुजरते देखते हो, तो वह सौंदर्य वहीं से आ रहा है। जब तुम एक बच्चे को मुसकराते देखते हो, तो वह मुसक राहट वहीं से आ रही है। सब वहीं से आ रहा है। और जितना गहरा होता है, उतनी गहराई से आ रहा है।
तो वेद हों, कि कुरान; कि बाइबिल हो, कि गीता--सब वहीं से आते हैं। और तुम्हारे भीतर वह पड़ा है, इसलिए गीता में क्या खोज रहे हो? जहां से गीता आती है, वहीं से क्यों नहीं चलते? जिस चैतन्य से कृष्ण बोलते हैं, तुम उस चैतन्य में क्यों नहीं उतरते? और जिस चैतन्य से क्राइस्ट बोलते हैं, तुम उस चैतन्य में क्यों नहीं उतरते?
"कबीर सबद सरीर में, बिन गुण बाजै तंत।" न तो कोई वीणा है, न कोई बजाने वाला है। न बीन है, न बीनकार है। मगर स्वर अनूठा उठ रहा है। "अनहद बाजत बांसुरी"--वह बांसुरी बज रही है। बजाने वाला भी नहीं है और बांसुरी भी नहीं है।
"बाहर भीतर भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति।" और तुम्हारी भ्रांति तभी छूटेगी, जब तुम बाहर-भीतर गूंजते हुए संगीत में ड़ूब जाओगे, एक रस हो जाओगे। नहीं तो तुम्हारी भ्रांति टूटने वाली नहीं है। उस संगीत की चोट ही तुम्हें जगाएगी। उसी संगीत की चोट में तुम्हारा भ्रम, तुम्हारा अंधकार, तुम्हारा अंधापन, तुम्हारा अज्ञान टूटेगा।
बाहर भीतर भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति।।
सब्द सब्द बहु अंतरा, सार सब्द चित देय।
और शब्दों शब्दों में बड़ा भेद है। अखबार में भी शब्द हैं, और कुरान में भी शब्द हैं, मगर शब्द शब्द में बड़ा भेद है।
"सब्द सब्द बहु अंतरा, सार शब्द चित देय।" क्या भेद है? जो उस भीतर के शून्य से उठे, उनमें कुछ-कुछ शून्य की सुवास है। जो ऊपर ही ऊपर तुमने व्यवस्थित कर लिए हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है।
अंग्रजी का महाकवि हुआ--कूलरिज। मर जाने पर उसके घर में हजारों अधूरी कवितांए मिली, जो उसने कभी पूरी नहीं की। उसके मित्रों को सदा से पता था। वे उनसे अक्सर कहते थे कि तुम ढेर लगाते जाते हो। इनको पूरा क्यों नहीं करते? और कूलरिज कहताः "मैं पुरा करने वाला कौन? जितनी उतरती है, उतनी लिख देता हूं। उससे आगे नहीं उतरती, तो नहीं उतरती। जब उतरेगी तो पूरी कर दूंगा। नहीं उतरेगी, तो अधूरी रहेगी। मैं कौन?" समझना।
कूलरिज यह कह रहा है कि जब आती है मेरे भीतर, मेरे बिना कुछ किए, तो मैं
तो सिर्फ लिख देता हूं। मैं सिर्फ लिखने वाला हूं--रचयिता नहीं, स्त्रष्टा नहीं। प्रभु गाता है; कभी दो ही पंक्तियां उतरती हैं, दो ही लिख देता हूं। कुछ कविताएं तो ऐसी हैं कि जिन में दो ही पंक्तियां कम हैं। कूलरिज ने कहा है कि कभी-कभी मैंने भी सोचा था, ये हजारों कविताएं इकट्ठी होती जा रही हैं, इनको पूरा कर दूं। कभी-कभी मैंने पूरा करने की कोशिश भी की थी। और दो पंक्तियां मैंने अपनी तरफ से जोड़ दीं। मगर तब मैंने पाया कि वह मेरी दो पंक्तियां बिल्कुल ही असंगत हैं। वे जो आई हैं पंक्तियां, उनका स्वाद अलग है। जो मैंने जोड़ दी हैं, वे मुरदा हैं।

वह ऐसे समझो कि जैसे एक आदमी का पैर कट जाता है और उसने लकड़ी का पैर लगा दिया। और लकड़ी का पैर किसी को धोखा दे दे। शायद रात में, अंधेरे में चलते वक्त किसी को समझ में भी न आए। और शायद कभी किसी उपद्रव के क्षण में काम भी आ जाए।
मैंने सुना हैः एक पादरी अफ्रीका गया--मनुष्य-भक्षी लोगों के कबीले में ईसा का संदेह पहुंचाने। उसको पकड़ लिया गया। भट्टी सुलगा दी गई। कढ़ाए चढ़ा दिए गए। उसको भूंज कर खाने की तैयारी होने लगी। बैंड़-बाजे बजने लगे। जब सब तैयारी पूरी हो गई उसे ले चले भट्टी की तरफ, तो उसने कबीले के प्रधान से कहा कि "तुम जरा मेरा पहले स्वाद तो ले लो।" उसने क हा. "मतलब?" तो उसने जल्दी से चाकू अपने खीसे से निक लकर पैर का एक टुकड़ा काटा और उसको दिया।
उस कबीले के प्रधान ने मुहं में रखा; चखा और थूका एकदम और लोगों से कहा
कि "बंद करो। यह आदमी खाने योग्य नहीं है।" उसका पैर तो कॉर्क का बना था। पैर कट गया था और कार्क का पैर लगा हुआ था। कार्क काटकर दे दिया था उसने।
वह बच गया।
तो कभी काम भी पड़ सकता है--लकड़ी का पैर भी काम पड़ सकता है। मगर तुम तो जानते ही रहोगे भीतर कि लकड़ी का पैर, लकड़ी का पैर है। दूसरे को शायद धोखा भी दे जाए, तुम्हें तो धोखा नहीं देगा।
कूलरिज ने कहा कि मैंने अपनी पंक्तियां जोड़ कर दूसरों को सुनाई भी, तो उन्हें धोखा भी हो गया। लेकिन मैं कैसे धोखा खाऊं! मुझे तो साफ दिखाई पड़ता है--अलग--कहां वह स्वच्छ धारा जो आई थी, और कहां मेरा गंदा नाला--जो मैंने मिला दिया! कहां तो वे अपूर्व जीवंत शब्द, और कहां मेरे मुरदा शब्द! कहां तो झरना था और मैंने ये चट्टानें रख दीं? इससे सौंदर्य कम को गया--बढ़ा नहीं। उसने कहा, "फिर मैंने कोशिश नहीं की।"
ऐसी घटना रवींद्रनाथ के जीवन में घटी। उन्होंने गीतांजलि लिखी और फिर गीतांजलि का अंग्रजी में अनुवाद किया। अंग्रेजी पराई भाषा, तो उन्होंने सोचाः किसी से पूछ लें।
तो सी. एफ. एंड्रूज से उन्होंने कहा कि आप जरा इसको देख लें। मेरा अनुवाद ठीक है या नहीं।
सी. एफ. एंड्रूज भाषा के ज्ञानी थे। उन्होंने दो-चार जगह शब्द बदले। उन्होंने कहा कि ये शब्द व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं हैं, चार जगह उन्होंने शब्द बदल दिए और कहा, अब सब ठीक है।
फिर रवीन्द्रनाथ गए और लंदन में उन्होंने कवियों के एक समारोह में गीतांजलि का पाठ किया। वे बड़े हैरान हुए। अंग्रजी का एक महाकवि यीट्स खड़ा हो गया। और उसने कहा, "और सब तो ठीक है, तीन-चार जगह ऐसा लगता है, किसी और ने शब्द रखे हैं। और सब जगह तो धारा बहती चली जाती है, मगर तीन-चार जगह ऐसा लगता हैः सब छिन्नभिन्न हो गया।"
रवींद्रनाथ चौंके। तीन-चार जगह! उन्होंने कहाः कौन से? उसने दो-तीन उदाहारण बताए। वह वे ही शब्द थे, जो सी. एफ. एंड्रूज ने लगवा दिए थे। रवींद्रनाथ ने कहा, "मुझे क्षमा क रें। भूल मेरी है। और सी.एफ. एंड्रूज ने गलत नहीं किया।"
यीट्स ने भी कहा कि "तुम्हारे क्या शब्द थे, जो तुमने पहले रखे थे?" रवीन्द्रनाथ ने कहा... उसने कहा कि वह भाषा की दृष्टि से गलत, लेकिन काव्य की दृष्टि से सही। व्याकरण ठीक नहीं है उनका, लेकिन उनमें लय है, तारतम्य है; आगे पीछे के शब्द में संगीत छिन्न-भिन्न नहीं होता। तुम पुराने ही शब्द रखो। भाषा को जाने दो भाड़ में, काव्य को बचाओ।"
और रवींद्रनाथ ने अपने पुराने ही शब्द रखे। भाषा की भूल रही, लेकिन काव्य की भूल बच गई।
तो एक तो ऐसा शब्द है, जो तुम्हारे भीतर से आता है। और एक ऐसा शब्द है,
जो तुम बाहर-बाहर से इंतजाम कर लेते हो। बाहर-बाहर से जो इंतजाम किया, उससे सावधान रहना। वह असार है। जो भीतर से आए, वह बड़ा मूल्यवान है।
जो प्रेम की घड़ी में उठता है, वह बड़ा मूल्यवान है। जो शांत-शून्य में उठता है, वह बड़ा मूल्यवान है। प्रेम में उठे शब्द को सम्हालना। शून्य में

उठे शब्द को सम्हालना। करुणा में उठे शब्द को सम्हालना। क्रोध में उठे शब्द को फेंक देना; उसे सम्हालना मत; वह जहर है।
गुफ्तगू बंद न हो
बात से बात चले
सुबह तक सामे-मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले
हों, जो अल्फाज के हाथों में हैं, संगे-दुश्नाम तन्ज छलकाए तो छलका करे जहर के जाम
तीखी नजरें हों, तुर्श अबरुए-खमदार रहे
बन पड़े जैसे भी दिल सीनों में बेदार रहे बेबसी हर्फ की जंजीर-ब-पा कर न सके
कोई कातिल हो मगर कत्ले-नवा कर न सके
सुबह तक ढल के कोई हर्फे-वफा आएगा
इश्क आएगा बसद, लग्जिशे-पा आएगा
नजरें झुक जाएंगी, दिल धड़केंगे, लब कांपेंगे खामुशी बोसा-ए-लब बन के महक जाएगी
सिर्फ गुंचों के चटखने की सदा आएगी
और फिर हर्फ-ओ-नव की जरूरत न होगी चश्म-ओ-आबरू के इशारो में मुहब्बत होगी नफरत उठ जाएगी, मेहमान मुरव्वत होगी
हाथ में हाथ लिए, सारा जहां साथ लिए -ए-दर्द लिए, प्यार की सौगात लिए रेगजारों से अदावत के गुजर जाएंगे
खून के दरियाओं से हम पार उतर जाएंगे
गुफ्तगू बंद न हो
बात से बात चले
सुबह तक सामे-मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले।
जहां प्रेम के शब्द उठते हों, जहां हृदय के शब्द उठते हों, जहां अंतर्तम बोलता हो, उसे तो बोलने देना। "गुफ्तगू बंद न हो।" प्रेम में चलती हुई बात बंद न हो।
गुफ्तगू बंद न हो बात से बात चले
सुबह तक सामे-मुलाकात चले
और जो साम को शुरू हुई थी मुलाकात, वह अगर रातभर भी चले, तो हर्ज नहीं। सुबह तक सामे-मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले
सत्संग हो--तो शब्द सार्थक हैं। प्रेम हो--तो शब्द सार्थक हैं। संगीत
को लाते हों भीतर के, तो शब्द सार्थक हैं। भीतर की थोड़ी सी धुन भी आ जाती हो बसी-बसी, तो शब्द सार्थक हैं।
"हों, जो अल्फाज के हाथों में हैं संगे-दुश्नाम।" माना कि शब्द के हाथों में गालियों के पत्थर भी हैं।
हों जो अल्फाज के हाथों में हैं संगे-दुश्नाम।
तन्ज छलकाए तो छलका करे जहर के जाम।।
और यह भी हमें पता है कि शब्दों में बड़ा जहर भी हो सकता है।
"तीखी नजरें हों, तुर्श अबरुए-खमदार रहे।" और यह भी हम जानते हैं कि शब्द बड़े नाराज हो सकते हैं।
और शब्दों में बड़ी तीखी नजरें हो सकती हैं। शब्दों में बड़ी चोट हो सकती है। यह सब हमें मालूम है।
"बने पड़े जैसे भी दिल सीनों में बेदार रहे।" लेकिन कुछ भी हो, दिल को जगाए रखना है। दिल को जाग्रत रखना है। शब्दों का उपयोग करना है।
शब्दों में खतरे हैं, खाइयां हैं, खड्डे हैं, लेकिन उन्हीं खाइयों खड्डों से जाती हुई पतली सी राह भी है, बाट भी है।

"बेबसी हर्फ की जंजीर-ब-पा कर न सके।" ध्यान रखना शब्दों की जंजीर पैरों को बांध न सके--यह ख्याल रहे।
बेबसी हर्फ की जंजीर-ब-पा कर न सके।
कोई कातिल हो मगर कल्ले नवा कर न सके।।
इतना ख्याल रखनाः भीतर की आवाज शब्दों की जंजीरों में दब न जाए। भीतर
की आवाज शब्दों की फांसी से मर न जाए।
"बेबसी हर्फ की जंजीर-ब-पा कर न सके।" बस, इतना ही खयाल रहे कि शब्द जंजीरें न बनें। हिंदू, मुसलमान, ईसाई न बना दें शब्द। शब्द से मुक्ति रहे।
"कोई कातिल हो मगर कल्ले-नवा कर न सके।" और भीतर की आवाज की शब्द हत्या
न कर दें।
"सुबह तक ढलके कोई हफें-वफा आएगा।" प्रतीक्षा करो; सुबह आते-आते कोई प्रेम का शब्द आएगा।
गुफ्तगू बंद न हो
बात से बात चले
सुबह तक सामे-मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई तारों भरी रात चले
सुबह तक ढलके कोई हर्फे-वफा आएगा।
अगर यह प्रेम की गुफ्तगू, यह प्रेम की बात, यह सत्संग चलता रहे, तो आज नहीं कल... सांझ नहीं तो सुबह तक... जवानी में नहीं तो पीरी में, बुढ़ापे में कभी न कभी अगर यह चलती रही बात, तो वह शब्द भी आएगा, जो प्रेम से आता है। वह शब्द भी आएगा जो अंतरतम से आता है।
"इश्क आएगा बसद लग्जिशे-पा आएगा।" प्रेम आएगा--कंपते हुए पावों से-- हालांकि, क्योंकि हम प्रेम के आदी नहीं। "इश्क आएगा बसद लग्जिशे-पा आएगा।" और एक बार नहीं सौ बार आएगा।
गुफ्तगू बंद न हो
सुबह तक शामे-मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले
नजरें झुक जाएंगी, दिल धड़केंगे, लब कांपेंगे
खामुशी बोसा-ए-लब बन के महक जाएगी।
और जब उठेगा शब्द, तो होंठों पर चुंबन बन कर बिखर जाएगा।
"सिर्फ गुंचों के चटखने की सदा आएगी।" इस घड़ी में सिर्फ फूलों के खिलने की आवाज भर सुनाई पड़ेगी।
अगर तुम अपने भीतर जाओगे, तो तुम अपने गुंचे के फूटने की सदा सुनोगे।
तुम अपनी ही कली के खुलने की आवाज सुनोगे।
तुमने कमल को खुलते देखा? तुमने कमल को खुलते सुना! सुनना भी चाहो तो नहीं सुन सकते। आवाज बड़ी धीमी है। लेकिन जब भीतर का कमल खुलता है, तो तुम सुन सकोगे। और कोई सुन सके या न सुन सके, तुम निश्चित सुन सकोगे।
सिर्फ गुंचों के चटखने की सदा आएगी
और फिर हर्फ-ओ-नवा की जरूरत न होगी।
और फिर शब्दों के अक्षरों की जरूरत न रह जाएगी। एक बार भीतर के कमल के खिलने की आवाज सुनाई पड़ जाए।
और फिर हर्फ-ओ-नवा की जरूरत न होगी।
चश्म-ओ-आबरू के इशारों में मुहब्बत होगी।।
फिर तो आंखों और भंवों के इशारों में प्रेम हो जाता है।
"नफरत उठा जाएगी, मेहमान मुरव्वत होगी।" फिर अपने आप एक शील पैदा होता है। "मेहमान मुरव्वत होगी।" फिर अपने आप एक शील पैदा होता है। मेहमान मुरव्वत होगी। फिर एक शील आता है; एक शिष्टाचार आता है; प्रसाद आता है, जो अपने आप आता है। तुम्हारे लाने से नहीं, तुम्हारी चेष्टा से नहीं।
हाथ में हाथ लिए सारा जहां साथ लिए।
तोहफा-ए-दर्द लिए प्यार की सौगात लिए।।
वह प्रभु प्रेम की पीड़ा या प्रेम की पीड़ा... और प्यार की, प्रेम की पीड़ा
का उपहार हाथ में लिए--"रेगजारों से अदावत के गुजर जाएंगे।" दुश्मनी, घृणा,

वैमनस्य के मरुस्थल जो हमें घेरे हैं, ... "रेगजारों से अदावत के गुजर जाएंगे।" इन मरुस्थलों से हम गुजर जाएंगे।
"खून के दरियाओं से हम पार उतर जाएंगे।" शत्रुताओं के, युद्धों के, अशांतियों के... ।
गुफ्तगू बंद न हो
बात से बात चले
सुबह तक सामे-मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले।
शब्द और शब्द में भेद है। "सब्द सब्द बहु अंतरा।"
सारा को पकड़ना, असार को छोड़ देना। और तुम्हारी हालत उलटी हैः असार को पकड़ लेते हो और सार को छोड़ देते हो! अगर कहीं कोई किसी की निंदा कर रहा हो, तो तुम ऐसी तल्लीनता से सुनते हो, तुम्हें जम्हाई नहीं आती!
तुमने कभी किसी की निंदा सुनते वक्त देखा कि जम्हाई आई हो? आती ही नहीं। लेकिन अगर कहीं सत्संग चलता हो, तो जम्हाई आने लगती है। कहीं गाली- गलौच चलती हो, तो तुम बड़े चौकन्ने हो जाते हो; तुम्हारी रूह जग जाती है; तुम्हारी आत्मा बड़ी जाग्रत हो जाती है।
दो आदमी रास्ते पर लड़ रहे हों और छुरे निकल आएं हों, तो तुम हजार काम छोड़ कर वहीं खड़े हो जाते हो-- साइकिल टिका कर--कि अब देख ही लें। तुम्हारी जिंदगी में बड़ा रस आ जाता है।
तुम व्यर्थ को बड़े ध्यानपूर्वक देखते हो। और व्यर्थ को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते हो।
तुमने देखा नः लोग अपने-अपने ट्रांजिस्टर रेडिओ लिए कान से लगाए बैठे रहते हैं! सत्संग चल रहा है! कहीं कचरा छिटक के गिर न जाए, तो कान से ही लगाए बैठे हैं--कि बिल्कुल कान में ही पड़ता जाए। फिर अगर तुम जिंदगी के अंत में कूड़ा-कबाड़ के एक ढेर हो जाते हो, तो कुछ आश्चर्य तो नहीं। और कोई म्युनिसिपल का ठेला भी नहीं आता कि रोज तुम्हारा कचरा निकाल कर ले जाए। वह बढ़ता ही जाता है, बढ़ता ही जाता है।
"सब्द सब्द बहु अंतरा, सार सब्द चित देय।" वही सार है, जो तुम्हें स्वयं से मिला दे। ऐसे शब्दों को चित्त देना; बाकी शब्दों को त्याग कर देना। कोई निंदा करे, तो कहनाः क्षमा करो; क्यों व्यर्थ तुम अपना मुंह खराब करते; मेरे कान खराब करते!
कोई प्रभु का भजन गाता हो, सुन लेना--हृदयपूर्वक सुन लेना। कोई उकसाता हो, भड़काता हो, जलाता हो, कोई राजनेता आकर उकसाता हो, उससे क्षमा मांग लेना--कि, "भैय्या, रास्ता पकड़ो। कहीं और जाओ। मुझे बख्सो। हम वैसे ही भड़के बैठे हैं; अब और न भड़काओ। ऐसे ही क्रोध जल रहा है और न जलवाओ। तुम अपनी ये आग कहीं और ले जाओ।" लेकिन तुम बड़ी उत्सुकता से सुनते हो।
जब राजनेता गांव में आता है, देखते हैं, लोग कैसे भागे चले जाते हैं! बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। कचरा है वहां, लेकिन भीड़ वहां पहुंच जाती है। तुम बड़ी उत्सुकता से पहुंचते हो, जैसे कुछ बहुमूल्य ले आओगे। हद्द पागलपन है, मगर है। और सजग होकर तुम्हें ध्यान देना पड़ेगा अन्यथा तुम भी उसी रौ में बहते चले जाओगे।
सब्द सब्द बहु अंतरा, सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहब मिलै, सोई सब्द गहि लेय।।
जिससे परमात्मा मिलता हो, ऐसे शब्द को गह लेना; बाकी सब छोड़ देना। यह रहे कसौटी।
"सब्द बराबर धन नही, जो कोई जानै बोल।" शब्द में बड़ा धन है, लेकिन "जो कोई जानै बोल। हीरा तो दामों मिलै, सब्द ही मोल न तोल।"
अगर कोई सद्गुरु मिल जाए, सद्-वचन मिल जाएं; कोई वचन--जो तुम्हारे प्राणों के घाव भर जाएं; कोई वचन, जो तुम्हारे प्राणों को निद्रा से मुक्त कर जाएं; कोई वचन जो तुम्हारे सपने और भ्रम छीन लें और तुम्हें सत्य दे जायें।
हीरा ता दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल।।
सीतल सब्द उचारिए, अहम आनिए नाहिं।

सुनना भी ऐसे शब्द, जो शांति और शीतलता से आते हों। क्रोध, वैमनस्य, हिंसा, और घृणा के शब्द नहीं। युद्ध और जहर से भरे हुए शब्द नहीं।
सुनना शब्द जो शीतल से आते हों। और बोलना भी शब्द ऐसे, जो शीतल हों। जब क्रोध मन में भरे, चुप रह जाना। अभी तुम जो भी बोलोगे, वह घातक होगा।
जब घृणा मन में उमगे, तब एकांत मे बैठ जाना। प्रभु को स्मरण करना। अभी किसी से कुछ भी मत कहना। जब हृदय प्रफुल्लित हो, आंनद से नाचता हो, उत्सव मनाता हो, धन्यवाद देने का भाव उठता हो, अहोभाव भरा हो, तब कुछ बोलना, तो तुम्हारे बोलने में संगीत होगा; तुम्हारे बोलने में सार होगा।
"तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रु भी तुझ माहिं।" ये शब्द जो हैं, अगर सार-सार पकड़ो, तो मित्र बन जाता है; तुम्हारा प्रीतम से मिलाने वाला द्वार बन जाएगा। और ये शब्द, अगर असार पकड़ने लगे, तो यही तुम्हारी फांसी हो जाएगी; यही तुम्हारी शत्रुता; यही तुम्हारा शत्रु हो जाएगा।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रु भी तुझ माहिं।
सीतल सब्द उचारिए, अहम आनिए नाहिं।।
अहंकार छोड़ो, क्योंकि अहंकार ही गर्मी है।
मैंने सुना हैः एक सूफी संत हुए--सूफी संत खैराबादी; वे अपने गुजारे
के लिए सब्जी बेचा करते थे। भोले आदमी थे, सो बहुत लोग उन्हें खोटा सिक्का दे जाते थे। यहीं तक नहीं, कुछ चालाक आदमी तो यह खोटा सिक्का तुम्हारी दुकान से ही हमारे पास आया है, कह कर, उनसे बदलवा भी ले जाते थे। लेकिन खैराबादी उसे चुपचाप स्वीकार कर लेते। और जब भी कोई खोटा सिक्का उनको दे जाता, तो लोग हमेशा देखते कि--जब भी कोई खोटा सिक्का देता, तो वे आकाश की तरफ देखते और हाथ जोड़ते।
यह जिंदगी भर की उनकी आदत थी। फिर उनका अंत समय आया, तब उन्होंने प्रार्थना की, "हे परवर दिगार, सारी जिंदगी मैं खोटे सिक्के स्वीकार करता रहा। किसी का भी खोटा सिक्का लेने से मैंने इनकार नहीं किया। मैं भी एक खोटा सिक्का हूं और अब तुम्हारे पास आ रहा हूं, मुझे वापस न लौटा देना!" तब लोगों ने समझा कि वे जिंदगीभर क्यों आकाश की तरफ आंख उठा लेते थे--
जब कोई खोटा सिक्का उनको दे जाता था। तब यही प्रार्थना वे जीवन भर करते रहे "हे परवरदिगार, सारी जिंदगी मैंने खोटे सिक्के स्वीकार किए हैं। किसी का भी खोटा सिक्का लेने से मैंने इनकार नहीं किया। अब मैं भी एक खोटा सिक्का हूं; अब तेरे द्वार आ रहा हूं। मुझे इनकार मत कर देना!
यह है निर-अहंकार भाव--मैं भी एक खोटा सिक्का हूं।
परमात्मा के सामने तुम अहंकार लेकर जाओगे, तो जाओगे ही कैसे? अहंकार
तो पत्थर की दीवाल की तरह तुम्हारे सामने खड़ा होगा। तुम परमात्मा को पा न सकोगे। तुम तो वहां मिट कर जाओगे, तो ही मिलन है।
और अभी से मिटाना शुरू करो। गर्मी से तुम्हारा अहंकार बढ़ता है। क्रोध से, घृणा-वैमनस्य से तुम्हारे अहंकार को भोजन मिलता है।
"सीतल सब्द उचारिए।" शीतल हो रहो। और शीतल शब्द बोलो। शांति को अपने जीवन की व्यवस्था बना लो। वही तुम्हारी शैली हो।
शांत होते-होते, साधक होते-होते एक दिन साधु हो जाओगे। साधु होते-होते
एक दिन सिद्ध भी हो जाओगे।
"साधो, सब्द साधना कीजै।"
यह है शब्द की साधना।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
चौथा प्रवचन

आनंद पर आस्था

पहला प्रश्नः मुझ पर आनंद की वर्षा हो रही है, उसके लिए आपको धन्यवाद देने की इच्छा होती है। लेकिन पता नहीं है कि सच में आनंद बरसता है या मैं कल्पना कर रहा हूं या अतिशयोक्ति कर रहा हूं!

मनुष्य का मन बड़ा उपद्रवी है। दुख हो तो भरोसा करता है और आनंद हो तो संदेह करता है। दुख पर कभी संदेह नहीं आता कि कहीं यह कल्पना तो नहीं है! दुख को तो तुम एकदम मान लेते हो--बड़ी निष्ठा, बड़ी श्रद्धा से। मैंने आदमी ही नहीं देखा, जो दुख पर संदेह करता आता हो कि मैं बहुत दुखी हूं, मुझे संदेह होता है कि सच में मैं दुखी हूं कि मैं कल्पना कर रहा हूं! कोई ऐसा कहता नहीं कि कहीं मैं दुख के संबंध में अतिशयोक्ति तो नहीं कर रहा!
दुख को हम मान लेते हैं। दुख में हमारी बड़ी आस्था है। लेकिन जब आनंद
की लहर आती है तो संदेह उठने शुरू होते हैं कि कहीं कल्पना न हो, कि कहीं सपना न हो, कि कहीं आत्मसम्मोहन न कर लिया हो। किसी भ्रांति में तो नहीं पड़ गया हूं! अतिशयोक्ति तो नहीं हो रही! पागल तो नही हो गया हूं! ऐसे हजार प्रश्न खड़े हो जाते हैं। इसमें झांकने की जरूरत है।
दुख को तुम मान लेते हो, क्योंकि दुख मन का स्वभाव है। आनंद को तो तुम नहीं मान पाते, क्योंकि आनंद मन का स्वभाव नहीं है। आनंद मन के पार है। दुख मन के भीतर है। दुख मन है। और आनंद अ-मन की दशा है। मन कैसे माने!
अंधेरा अंधेरे को मान लेता है, लेकिन रोशनी को कैसे माने! रोशनी बहुत बेबूझ है; किसी अज्ञात से आती है--कहां से आती है, पता नहीं। इतना तो तय है कि अंधेरे के भीतर से नहीं आती।
जो तुम्हारे मन में से पैदा होता है, जो पत्ते तुम्हारे मन में लगते हैं, वे तो स्वाभाविक मालूम होते हैं; क्योंकि मन से तुम्हारा तादात्म्य है और आत्मा से तुम्हारा तादात्म्य नहीं।
आनंद है आत्मा का स्वभाव। दुख है मन का स्वभाव।
तुम मन में रहने के आदी हो। आत्मा से तुम्हारी पहचान ही छूट गई! तो जब कभी अज्ञात से... । अज्ञात कहता हूं इसलिए, क्योंकि तुम्हें आत्मा का कोई बोध नहीं; जब किसी इस अनजान रास्ते से कोई किरण उतरती है--नाचती, घूंघर बजाती--मन चौंक कर कहता है कि यह कल्पना होनी चाहिए। क्योंकि मन ने जब भी सुख पाया है, तो सिर्फ कल्पना में ही पाया है। वस्तुतः तो कभी पाया नहीं। यह बड़ा मकान दिखाई पड़ता है, यह मुझे मिल जाए तो बड़ा सुख होगा--ऐसी कल्पना में मन ने सुख पाया है। यह सुंदर स्त्री मुझे मिल जाए, यह सुंदर पुरुष मुझे मिल जाए, यह सुंदर बेटा मेरा हो, ये फूल मेरे बगीचे में खिलें, ऐसी मेरी प्रतिष्ठा हो, ऐसा मेरा नाम हो, यह पद मुझे मिले--ऐसी कल्पना में मन ने खूब सुख पाया--बस कल्पना में; आशा में; वासना में। जब वह मकान तुम्हें मिल जाएगा, तब मन को कोई सुख नहीं मिलता। जब उस स्त्री को तुम पा लोगे, तो मन को कोई सुख नहीं मिलता। मन सुख लेना जानता ही नहीं। मन सुख की भाषा से अपरिचित है।
तो मन ने केवल कल्पना में सुख पाया है; वस्तुतः यथार्थ में दुख पाया है।
इसलिए जब तुम्हारे जीवन में पहली आत्मा की किरण उतरेगी--नाचती, गुनगुनाती, आह्लाद से भरती, सुगंध को जगाती, हजार फूलों को खिलाती--जब तुम पर वसंत आएगा आनंद का, तो मन कहेगाः फिर कोई कल्पना हो रही है। जन्मों- जन्मों का यही अनुभव है मन का। मन कहेगाः मैं अतिशयोक्ति करे ले रहा हूं। मन कहेगाः यह हो नहीं सकता। ऐसा कभी हुआ है? यह कैसे हो सकता है?
दुख होता है, हुआ है; अनुभूत है, जाना-माना है, इतिहास है हमारा। और यह
जो आनंद आ रहा है, इसे उस इतिहास का कोई संबंध नहीं जुड़ता। यह तुम्हारी आत्मकथा के बाहर से आ रही है बात। तुम्हारी आत्मकथा तो दुख और पीड़ा की है, संताप की है। तुम्हारी आत्मकथा तो नरक की है। और यह स्वर्ग उतरने लगा!

जरूर तुम किसी सपने में खो गए हो, किसी नशे में पड़ गए हो, किसी दीवानेपन में उलझ गए हो।
मन की इस स्थिति को समझना।
और अगर तुमने मन की बात मान ली, तो जो आनंद उतर रहा है, वह सपना हो जाएगा, क्योंकि तुम उसे स्वीकार न करोगे। द्वार आए मेहमान को वापस लौटा दोगे। जो आंनद उतर रहा था, वास्तविक था, वास्तविक हो सकता था--तुम्हारे जीवन की संपदा बन जाता। लेकिन तुम्हारा मन कहता हैः "कल्पना है; मैं नहीं मान सकता। ऐसा, और मुझे हो! नहीं-नहीं! असंभाव्य है। ऐसा अगर तुमने कहा और अगर तुमने इसमें ही अपने पैर रोके रखे, तो तुम द्वार न खोलोगे। अतिथि द्वार आया, लौट जाएगा। और फिर निश्चित ही सपना हो जाएगा। तब मन कहेगाः देखो, मैंने पहले ही कहा था! इसलिए मैं कहता हूं कि मन का बड़ा उपद्रव है। मन कहैगाः देखो, मैंने पहले ही कहा था सपना है; अब देखो? सपना हो गया।
मन ने कह कर ही सपना करवा दिया।
मन को तो सुख के साथ जीना आता नहीं। मन की मौज तो दुख है।
यह वक्तव्य विरोधाभासी लगे तो लगे, लेकिन ऐसा है कि मन सुखी होता है,
जब दुखी होता है। और मन दुखी हो जाता है, जब सुख होता है।
मुझे अब जिंदगी बेकार-सी मालूम होती
कयामत हो गया है नशा-ए-गम का उतर जाना।
और जब दुख का नशा उतर जाता है तो मन मरने लगता है। "मुझे अब जिंदगी बेकार-सी मालूम होती!" फिर जिंदगी में कुछ काम नहीं मालूम होता, अर्थ नहीं मालूम होता।
इसलिए तुम यह जान कर चकित होओगे कि जिनके पास जीवन में कुछ भी नहीं है,
वे लोग धर्म की तरफ उत्सुक नहीं होते; क्योंकि अभी उनके मन को फैलने के काफी उपाय हैं। मकान नहीं है, मकान की कल्पना कर सकते हैं। पत्नी नहीं है, पत्नी की कल्पना कर सकते हैं। बच्चे नहीं, बच्चे की कल्पना कर सकते हैं। जितना नहीं है, उतनी कल्पना को सुविधा है। मन आशाएं बनाए रख सकता है। लेकिन अगर यह सब तुम्हें मिल जाए जो तुम्हारा मन मांगता है, तब क्या करोगे? तब तो और आशा को जगह न रही, स्थान न रहा फैलने को। सब आशाएं पूरी हो गई, फिर क्या करोगे? सब दुख कट गए, फिर क्या करोगे?
मुझे अब जिंदगी बेकार-सी मालूम होती है।
कयामत हो गया है नशा-ए-गम का उतर जाना।
दुख का भी एक नशा है। जब वह उतर जाता है, तो एकदम ऐसा लगेगाः अब जीने में क्या सार? इसलिए लोग दुख को पकड़ते हैं। इधर कहे भी चले जाते हैं कि दुख से मुक्त होना है, उधर दुख को छोड़ते भी नहीं। इधर कहे चले जाते हैः कैसे दुख से छूटूं, और उधर नीचे जड़ें दुख में फैलाए चले जाते है। कहते हैंः क्रोध बुरा है, लेकिन छोड़ते नहीं। कहते हैंः मोह बुरा है, लेकिन छोड़ते नहीं। कहते हैंः ईर्ष्या जलाती है आग की तरह--और क्या लपटें होंगी नरक की!--लेकिन छोड़ते नहीं। ये सब कहने की बातें हैं। तुम्हारे कहने पर कोई भरोसा कर ले, तो बड़ी मुश्किल मे पड़ जाएगा; क्यांकि तुम जो कहते हो, उससे उलटा करते हो।
सुख के सूत्र बहुत सीधे-साफ हैं। लेकिन अड़चन यहां है कि दुख को पकड़ कर तुम रखना चाहते हो। यह भी एक काम है तुम्हारे मन के लिए कि दुख है, दुख से छुटकारा पाना है। तुम डरते हो कि कहीं छुटकारा हो ही न जाए, अन्यथा फिर क्या करूंगा! ऐसी तुम्हारी दशा है अभी।
पूछते होः "आनंद की वर्षा हो रही है। उसके लिए आपको धन्यवाद देने की इच्छा होती है।"
उसमें भी कंजूसी! इच्छा होती है; अभी दिया नहीं है धन्यवाद। सोच रहे हो! इच्छा होती है, दबा रहे होओगे। धन्यवाद देने में भी इतनी कृपणता!
मन धन्यवाद देना भी नहीं जानता। वह भी उसकी भाषा नहीं है। मन शिकायत करना जानता है। मन शिकायती है। क्योंकि शिकायत से भी दुख होता है। शिकायत से भी पीड़ा होती है। शिकायत से भी कांटा चुभता है। और जितनी तुम शिकायत करते हो, उतना दुख बढ़ता जाता है। जितना तुम धन्यवाद दोगे, उतना सुख बढ़ता जाएगा।

धन्यवाद का अर्थ हैः तुमने सुख को अंगीकार किया। तभी तो धन्यवाद दोगे
न! अभी तो तुमने स्वीकार ही नहीं किया, धन्यवाद किस बात का! अभी तो तुम्हें शक ही है कि यह जो हो रहा है, सच भी है? अगर कल्पना ही है, तो फिर धन्यवाद क्या देना! अभी तो तय करना है कि सच है, तो फिर सोचेंगे।
सच भी हो, तब भी लोग धन्यवाद देने में बड़ी कृपणता करते हैं।
मैंने सुना है, अमरीका में एक बड़ी जौहरी की दुकान, सबसे बड़ी दुकान; उस दुकान के सौ वर्ष पूरे हो गए। तो उस दुकान के मालिकों ने तय किया था कि जो व्यक्ति भी कल सुबह पहला ग्राहक दुकान में प्रवेश करेगा, उसको लाख रुपये का हार भेंट करोंगे। सौ वर्ष दुकान के पूरे हो गए हैं; यह उन्होंने सौ वर्ष की पूर्ति पर समारोह मनाने का आयोजन किया, इससे समारोह शुरू होगा। जो भी पहला ग्राहक प्रविष्ट होगा----।
और दुकान के दरवाजे खुले और एक स्त्री बड़ी तेजी से भीतर प्रविष्ट हुई। उन्होंने बैंड-बाजे बजाए, सबने उसे घेर लिया-दुकान के सभी कार्यकर्ताओं ने। मालिक आया; उसके गले में लाख रुपये का हार पहनाया। मगर वह स्त्री वैसे ही खड़ी रही। समझाया उसे कि हमने यह तय किया था कि एक लाख रुपये का हार भेंट करेंगे, जो भी पहला ग्राहक आएगा; तुम धन्यभागी हो।
तब उन्होंने पूछा कि किसलिए आई हो? तो उसने कहा, "शिकायत दर्ज करने।" अमरीका की बड़ी दुकानों पर शिकायत का रजिस्टर रखा रहता है। "शिकायत दर्ज करने"! और वह स्त्री लाख रुपये का हार पा कर भी शिकायत दर्ज करना न भूली। वह लाख रुपये का हार कुछ भी नहीं है!
जैसे ही वह उत्सव-समारोह पूरा हुआ, वह भागी और गई दफ्तर के अंदर और शिकायत के रजिस्टर में, उसे जो शिकायत लिखनी थी, वह लिखी। यह लाख रुपये की भेट भी उसे प्रसन्न न कर सकी! यह लाख रूपये की भेंट भी उसे धन्यवाद देने के लिए तैयार न कर सकी। शिकायत तो करनी ही है। शिकायत होगी कोई छोटी-मोटी। कभी कुछ गहना खरीदा होगा यां कुछ होगा, कुछ शिकायत की बात होगी।
मन शिकायत में पटु है। मन बड़ा वाचाल है शिकायत में।
जब तुम शिकायतें करने लगते हो, तब तुमने देखा कि तुम कितनी कुशलता से बोलते हो! लोगों के दुख सुनो। दुख की बात करते वक्त हर व्यक्ति वक्ता होता है; बड़ी कुशलता से बोलता है। दुख की चर्चा करते वक्त हर व्यक्ति कवि हो जाता है। बड़ी ठीक-ठीक उपमाएं खोजता है।
तुम लोगों का जरा दुख सुनो। घंटों लगा देते हैं! सुनाए ही चले जाते हैं; अंत नहीं आता। सुख में जबान एकदम लड़खड़ा जाती है।
अब तुम पूछते हो कि "धन्यवाद देने की इच्छा होती है!"... दबा रहे हो उसको क्या? धन्यवाद देने में इतनी कृपणता क्यों? धन्यवाद तुम्हारा क्या ले जाएगा? धन्यवाद में खोता क्या है? खोता कुछ भी नहीं, मिलता बहुत है। और शिकायत में खोता बहुत है, मिलता कुछ भी नहीं।
मगर तुम अपने दुश्मन हो। तुम काम ही ऐसा करते हो, जो अपने ही साथ घात है--आत्मघात है। इसमें पूछना क्या है? धन्यवाद दे दो! और चौंक कर तुम पाओगे कि जैसे ही धन्यवाद दिया, और आनंद उतरा। क्योंकि धन्यवाद देने का मतलब ही यह होता है कि तुमने, आनंद जो उतरा था, उसे स्वीकार किया--उसके सत्य को स्वीकार किया, उसकी प्रामाणिकता को अंगीकार किया। तभी तो धन्यवाद दे सके। "इच्छा होती है कि धन्यवाद दूं, लोकिन पता नहीं कि सच में आनंद बरसता
है या कि कल्पना है या कि अतिशयोक्ति!"
अब इसका कैसे पता करोगे? आनंद बरस रहा है।
यह हवाई जहाज गुजर रहा है, यह आवाज सुनाई पड़ रही है (प्रवचन में इसी क्षण ऊपर से हवाई जहाज गुजरा) अब कैसे और पता करोगे कि यह कल्पना तो नहीं है? ये सूरज की किरणें वृक्षों को पार करके तुम तक आ रही हैं, अब कैसे और पता करोगे कि यह कल्पना तो नहीं है? ये पक्षियों के गीत तुम्हें सुनाई पड़ रहे हैं, अब और कैसे पता करोगे कि यह कल्पना तो नहीं है? और क्या उपाय है? सिर में दर्द होता है, तो तुम जानते हो कि सिर में दर्द है। नासापुटों में फूलों की गंध भर जाती है, तो तुम जानते हो कि सुगंध ने तुम्हे घेरा है। देखते हो, आंख चांद-तारों से भर जाती है, तो जानते हो कि चांद-तारे हैं! और क्या उपाय है?

आनंद के साथ तुम और अतिरिक्त शर्तें क्यों बांधना चाहते हो? इतना काफी नहीं है कि आनंद बरस रहा है, ऐसा तुम्हें अनुभव हो रहा है? इस बरसते आनंद में डूबो। इस बरसते आनंद में पिघलो; खो जाओ। उठने दो अहोभाव को। नहीं तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि पहुंचते-पहुंचते आदमी चूक जाता है; करीब आते- आते रुक जाता है। कभी-कभी मंजिल पर एक कदम और, और मंजिल मिल जाती--और आदमी लौट पड़ता है।
मुखालिफ वक्त हो तो बन-बन बिगड़ता है।
सफीना जा पड़ा मझधार में टकरा के साहिल से।
कभी-कभी ऐसा हो जाता है, नाव किनारे से टकरा कर दूर निकल जाती है किनारे से और मझधार में जा कर डूब जाती है। किनारे से टकरा कर मझधार में पहुंच जाती है।
"सफीना जा पड़ा मझधार में टकरा के साहिल से।"
किनारे पर हो, हिम्मत करो! मैं कहता हूंः हिम्मत करो आनंद को स्वीकार
कर लेने की! बड़ी हिम्मत की जरूरत है, तो ही स्वीकार कर सकोगे।
दुख को तो कोई भी स्वीकार कर लेता है। दुख को स्वीकार करने में किसी हिम्मत की कोई जरूरत नहीं। आनंद को स्वीकार करना बड़ी हिम्मत की बात है, बड़े साहस की। क्योंकि आनंद तुम्हारे अहंकार को मिटा देगा। क्योंकि आनंद तुम्हारी अब तक की चली आई पुरानी धारा को तोड़ देगा। क्योंकि आनंद तुम्हारे अतीत को पोंछ देगा और एक नये जन्म और एक नये भविष्य की शुरुआत होगी। क्योंकि आनंद में मृत्यु है और पुनर्जन्म है।
हिम्मत करो। स्वीकार करो। आनंद ही बरस रहा है। और तुम धन्यभागी हो कि तुम पर प्रभु का प्रसाद हुआ है। अब इसे इन बातों में मत खो देना। नहीं तो पीछे पछताओगे।
मुखालिफ वक्त हो तो काम बन-बन कर बिगड़ता है
सफीना जा पड़ा मझधार में टकरा के साहिल से।
फिर बहुत पछताओगे, क्योंकि यह किनारा दुबारा मिले, न मिले! तुम कितने दूर निकल जाओ किनारे से, कौन जाने! आज तुम यहां मेरे साथ हो, आज तुम इस हवा में हो, आज ये चारों तरफ नाचते हुए प्रसन्न लोगों का समूह तुम्हें मिला है--फिर दुबारा मिले, न मिले! आज ध्यान का सरगम तुम्हारे भीतर बैठने लगा है; कौन जाने, कल भी ऐसा सौभाग्य हो, न हो! कल की प्रतीक्षा न करो; आज जो हो रहा है, इसे हृदय में भर लो। आलिंगन कर लो! मस्त हो उठो।
खोएगा क्या! समझ लो यही कि कल्पना थी।
कभी-कभी मैं हैरान होता हूं कि अगर यही बात मान ली जाए कि कल्पना है,
तो भी कल्पना में सुखी होना ज्यादा बेहतर है, बजाय यथार्थ में दुखी होने के। हालांकि यह कल्पना नहीं है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि चलो यही मान लो कि कल्पना है, तो हर्ज क्या? थोड़ी देर को सुखी अगर कल्पना में भी हो लिए... इतना-सा विश्राम भी नहीं देना चाहते अपने को! दुखी होने की ऐसी जिद कर रखी है!
चलो, कल्पना ही सही, तो थोड़ी देर कल्पना में ही रस ले लो। आज जो कल्पना में है, शायद कल यथार्थ बन जाए। यद्यपि
दोहरा दूं कि कल्पना नहीं है। और तुम से यह भी कह दूं कि तुम्हारे सब दुख कल्पना हैं; और आनंद कल्पना नहीं है।
इसीलिए ज्ञानियों ने आनंद को स्वभाव कहा है। स्वभाव का मतलब होता हैः
जो तुम्हारे भीतर पड़ा ही है। और दुख पर-भाव है। है नहीं तुम्हारे भीतर, माना हुआ है; तुम्हारी मान्यता है। किसी आदमी ने कुछ कहा, तुमने समझा कि अपमान हो गया और तुम
दुखी हो गए। कोई रास्ते पर खड़ा हंस रहा था और हो सकता है किसी और बात
पर हंसता हो, तुम समझे कि तुम पर हंस रहा है और तुम दुखी हो गए।
दुख बाहर से आता है। आनंद भीतर से आता है। दुख दूसरों की तरफ से आता है। दुख संसार से आता है और आंनद स्वयं से। दुख कल्पना है, क्योंकि जो भी तुम बाहर से ले लेते हो, वह वस्तुतः तुम्हारा नहीं है। ये बाहर की दी गई गालियां भी पड़ी रह जाएगी, सम्मान भी पड़े रह जाएंगे। बाहर का कोई बहुत मूल्य नहीं है। बाहर--ज्यादा से ज्यादा तुम्हारी सतह को छूता है।

जैसे सागर पर लहरें उठती हैं, हवा के उत्तुंग वेग आते हैं और सागर में लहरें फैल जाती हैं--लेकिन सतह पर ही फैलती हैं लहरें। सागर गहराई में तो शून्य है, मौन है; वहां कोई तरंग नहीं है; वहां कोई हालचल नहीं है; वहां कोई परिवर्तन नहीं है। वहां शाश्वत का वास है। वहां समाधि की दशा है।
ऐस ही तुम्हारी हालत है। तुम्हारी आत्यंतिक गहराई में सब शांत है, सब मौन है, सब आनंद से भरा है। सिर्फ तुम्हारी सतह पर... । उस सतह का नाम ही मन है। वहीं बाहर के झंझावात आ जाते हैं, आंधियां आ जाती हैं और तुम्हें आंदोलित कर जाता है।
दुख उधार है। आनंद स्वयं का है।
आनंदित अगर कोई होना चाहे, तो अकेले में भी हो सकता है; दुखी होना चाहे, तो दूसरे की जरूरत है। इस बात को तुमने कभी खोजा कि दूसरे के बिना आदमी दुखी नहीं हो सकता। दूसरा चाहिए ही दुख के लिए।
तुम अपने दुखों की तलाश करना। तुम पाओगेः सब दुख दूसरे से जुड़े हैं। ऐसा कोई दुख नहीं है, जो दूसरे से न जुड़ा हो। कोई धोखा दे गया; किसी ने गाली दे दी; कोई तुम्हारे मन के अनुकूल न पड़ा; किसी ने ऐसा व्यवहार किया, जैसी अपेक्षा न थी--सब दुख दूसरे से जुड़े हैं। और आनंद का दूसरे से कोई संबंध नहीं है। आनंद स्व-स्फूर्त है। इसलिए हिमालय की गुफा में बैठा हुआ आदमी भी आनंदित हो सकता है। दुखी होना हो, तो बाजार में आना जरूरी है। वहां बैठे- बैठे दुखी नहीं हो सकता।
इसलिए लोग अगर जंगल में भागने लगे, तो अकारण नहीं। वह इसीलिए कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी; दूसरे को छोड़ कर भाग जाओ। दूसरा बचेगा ही नहीं, तो फिर कैसा दुख!
लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि दूसरे को छोड़ कर तुम भाग गए तो शायद दुखी तो तुम न होओ, यह तो हो सकता है; लेकिन आनंदित भी तुम न हो पाओगे। क्योंकि दूसरे को छोड़ कर भागे हो, तो दूसरे का डर तो बना ही हुआ है। और जिसको छोड़ कर भागे हो, उसकी तंरगें मन में घूमती रहेंगी। जिसको छोड़ कर आ गए हो, वह मन में खड़ा रहेगा।
तो अक्सर ऐसा हो जाएगा, जंगल में भाग गए आदमी को...
आज न कोई दूर न कोई पास है
फिर भी जाने क्यों मन आज उदास है?
आज न सूनापन भी मुझसे बोलता
पात न पीपल पर भी कोई डोलता
ठिठकी-सी है वायु, थका-सा नीर है
सहमी-सहमी रात, चांद गंभीर है गुप-चुप धरती, गुम-सुम सब आकाश है फिर भी जाने क्यों मन आज उदास है? आज शाम को झरी नहीं कोई कली
आज अंधेरी नहीं रही कोई गली
आज न कोई पंथी भटका राह में
जला पपीहा आज न प्रिय की चाह में आज नहीं पतझार, नहीं मधुमास है। फिर भी जाने क्यों मन आज उदास है? आज अधूरा गीत न कोई रह गया
चुभने वाली बात न कोई कह गया
मिल कर कोई मीत आज छूटा नहीं
जुड़ कर कोई स्वप्न आज टूटा नहीं
आज न कोई दर्द न कोई प्यास है
फिर भी जाने क्यों मन आज उदास है?
तो दुखी तो न रह जाओगे, अगर संसार से भाग गए--उदासी हो जाओगे।
संसार छोड़ कर भागने का प्रश्न नहीं है। वह तो नकारात्मक बात हुई। विधायक बात है--परमात्मा को अपने में निमंत्रित कर लेना। इसकी बजाय कि तुम हिमालय की गुफा में जाओ, हिमालय की गुफाओं को अपने हृदय में बसाओ। इसकी बजाय कि तुम हिमालय की शांति और शीतलता खोजो, हिमालय की शांति और शीतलता

को अपने भीतर आमंत्रित करो, बुलाओ। वह तुम्हारे भीतर बसे। हिमालय तुम्हारे भीतर बस जाए; फिर तुम बाजार में रहो, व्यवसाय में रहो, भीड़-भाड़ में रहो--कोई अंतर न पड़ेगा।
आनंद निश्चित बरस रहा है, लेकिन इतना नया है कि तुम जो भी जानते हो, उससे उसका कोई तालमेल नहीं बैठता। तो चलो यही मान लो कि अभी कल्पना है। कल्पना भी मानो, मगर स्वीकार करो। कल्पना भी क्या बुरी! आनंद की कल्पना है। शायद यही आनंद की पदचाप हो, जो अभी पदचाप की तरह दूर सुनाई पड़ती है, वह धीरे-धीरे पास आती जाएगी। जो अभी स्वप्न है, कल सत्य हो सकता है। मगर सत्य करने के मार्ग पर पहली जरूरत है कि उसे तुम स्वीकार करो, अंगीकार करो। तो ही तुम्हारे भीतर बीजारोपण होगा। तो ही तुम बदलोगे।
लेकिन हमारी पुरानी समझ हमें गलत व्याख्याओं में ले जाती।
मैंने सुना है प्रेमिका बार-बार मुल्ला नसरुद्दीन से कह रही थीः "तुम डैडी से कहना कि तुम मुझसे विवाह करोगे।" पर मुल्ला था कि चुप। ऐसा चुप कि जैसे न सुन सकता है, या कि बोल नहीं सकता, गूंगा है; बहरा है कि गूंगा है।
अंत में प्रेमिका ने झल्ला कर कहाः "कहो न, डैडी से कहोगे, बेवफूक!" इस पर मुल्ला खूब खुश हो गया और खुश होकर बोलाः "कहूंगा, जरूर कहूंगा!" "क्या कहोगे?"--प्रेमिका उल्लासित हो कर बोली।
"बेवफूक"--मुल्ला ने कहा। अपनी व्याख्या है। अपने चुनाव हैं।
आनंद बरस रहा है, उसे तो तुम नहीं स्वीकार कर रहे; तुम एक नयी चिंता पैदा कर रहे हो कि कहीं यह कल्पना तो नहीं है! तुम संदेह उठा रहे हो। संदेह के धुंए में खो जाएगा। संदेह का बादल जोर से घिर गया, तो यह रोशनी की किरण फिर दिखाई न पड़ेगी। सूरज ढंक जाता है बादलों में, तो यह तो चांद अभी बहुत छोटा-सा है, तुम्हारे भीतर जो उगा है आनंद का; संदेह के बादलों में छिप जाएगा। भरोसा करो।
और हर्ज क्या है? खो क्या जाएगा? आनंद पर भरोसा करने में खो क्या सकते हो? हर्ज क्या हो सकता है? दुख पर भरोसा मत करो। दुख पर भरोसा करने में सदा कुछ खोता है।
लेकिन दुख पर भरोसा करने को तुम सदा तैयार हो और आनंद पर भरोसा करने
को कभी तैयार नहीं।
इधर यह बात रोज घटती है। यह प्रश्न तुम्हारा ही नहीं है, अनेकों का है। कोई न कोई रोज आ कर कहता है कि बड़ी शांति मिल रही है; मगर शक होता है कि यह सच है! कोई कभी आ कर कहता हैः बड़ी मस्ती छा रही है; मगर शक होता है कि कहीं मैं अपने को भुलावा तो नहीं दे रहा!
तुमने इतने भुलावे दिए हैं अब तक कि तुम्हें लगता है कि तुम शायद यह भुलावा भी अपने को दे लोगे। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि कोई आज तक अपने को आनंद का भुलावा नहीं दे सका। यह असंभव है।
आनंद का भुलावा हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो भुलावा देने वाला मन है, उसमें आनंद होता ही नहीं। भुलावा देने वाला मन केवल नये-नये दुख खोजता है। भुलावा दुखों को खोजने की व्यवस्था है।
इसलिए डरो मत। भयभीत न होओ। पुराने मन को बीच में न आने दो। नया अतिथि आया है, उसे अंगीकार करो। उसे भीतर ले जाओ। उसे हृदय के सिंहासन पर विराजमान करो।

दूसरा प्रश्न भी पहले से थोड़ा जुड़ा है, इसलिए साथ-साथ ले लें। पूछा हैः मैं अत्यंत उदास क्यों हूं, यद्यपि उदासी का कोई भी कारण नहीं है?"

शायद इसीलिए।
उदासी का कारण भी हो तो आदमी को समझ में आता है कि चलो कारण तो है; कम
से कम कारण तो है, इसलिए उदास हूं। बहाना तो है। कोई पागल तो न कह सकेगा। बता सकता हूं कि पत्नी मर गई, कि बेटा जेल चला गया, कि दुकान डूब गई, दिवाला निकल गया।
तो उदासी में तर्क है। तर्क है तो तुम सुरक्षित हो। तुम यह कह सकते हो
कि उदास होना बिल्कुल स्वाभाविक है। कर भी क्या सकता हूं? तुम्हारी पत्नी

मरती, तो तुम भी उदास होते। और तुम्हारी दुकान का दिवाला निकलता, तो तुम भी रोते। तो कोई मैं ही रो रहा हूं, ऐसा नहीं है।
तो तुम्हारे आंसुओं के लिए तुम तर्क दे सकते हो। सबसे बड़ी उदासी तो तब होती है, जब उदास होने का कोई कारण भी नहीं होता। तब बड़ी बेबूझ बात हो जाती है। तब तुम कह भी नहीं सकते कि क्यों उदास हूं। अपनी उदासी की रक्षा भी नहीं कर सकते। अपनी उदासी के लिए तर्क भी नहीं जुटा सकते। तब तुम बिल्कुल असहाय हो जाते हो। ऐसा भी होता है।
ऐसे होने के पीछे कई कारण हैं। एकः तो हो सकता है कारण आज ना हो, लेकिन जिंदगी भर तुम उदास ही उदास रहे, तो
उदास होना तुम्हारी आदत हो गई। ऐसा बहुत बार हो जाता है कि क्रोधी आदमी को क्रोध की आदत हो जाती। फिर क्रोध का कारण न हो, तो भी उसको तो क्रोध करना ही है। वह तो बिना क्रोध किए नहीं रह सकता। वह तो कोई न कोई उपाय खोजेगा।
तुम सब ऐसे आदमियों को जानते हो, जो क्रोध के लिए उपाय खोजते रहते हैं। क्रोध भीतर है। अकारण करेंगे, तो पागल समझे जाएंगे। कोई कारण खोज लेना होता है। कोई भी कारण! तुम भी पीछे लौट कर सोचते हो, तो पाते होः कारण पर्याप्त नहीं था--इतने क्रोध के लिए पर्याप्त नहीं था। कारण में और क्रोध में कोई अनुपात नहीं था। तुम भी पीछे पछताते हो कि बात बड़ी छोटी थी!
मेरे पास आ जाता है कभी कोई व्यक्ति और कहता है, "बड़ा क्रोध हो गया। पत्नी की पिटाई कर दी; कि अपने बच्चे को पीट दिया। हालांकि इतनो क्रोध करने का कोई कारण न था।"
कारण पूछता हूं, तो कहता हैः "कारण न पूछिए। कहता है, कारण तो क्षुद्र था। ऐसा ही था, बेकार था; उसका कोई मतलब भी न था। बात-बात में से बात निकल गई।"
आदत... अगर तुम रोज-रोज क्रोध करते रहे हो, तो तुम्हें आज भी क्रोध की तलाश करनी पड़ेगी। क्रोध की भी तलफ लगती है। जैसे कोई सिगरेट पीता है, हुक्का पीता है, चुरूट पीता है, शराब पीता है--उसकी तलफ लगती है। एक घड़ी आ जाती है, जब उसे पीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। हालांकि बात बिल्कुल फिजूल हैः धूएं को भीतर ले जाता है, बाहर ले जाता है; किसी मतलब की नहीं है। लेकिन आदत हो गई है, छूटती नहीं।
ऐसे ही क्रोध की आदत हो जाती है। ऐसे ही उदास होने की आदत हो जाती है। थिर हो जाता है एक भाव। स्थायी भाव बन जाता है।
कभी-कभी उदास हो जाने को क्षमा किया जा सकता है। जिंदगी में हजार अड़चने हैं। आदमी कमजोर है। आदमी की सीमाएं हैं। समझ में आती है बातः कभी उदासी भी आ जाती है। कोई मर गया, तो उदास न होओगे तो क्या करोगे? जिस पर बड़ा भरोसा था, वह धोखा दे गया--उदासी स्वाभाविक है। जिसके साथ सोचा था कि जिंदगी भर साथ-साथ रह लेंगे, वह अचानक बीच में विदा हो गया--उदासी स्वाभाविक है। क्षमा की जा सकती है।
क्षणभुंगर भाव क्षमा किए जा सकते हैं। लेकिन धीरे-धीरे होता यह है कि
जो क्षणभंगुर भाव है, वे स्थायी-भाव बन जाते हैं। आदमी उदास ही रहने लगता है। उदासी उसको स्वाभाविक हो जाती। उसको हंसते देखना बहुत कठिन है। वह हसंता भी है, तो उसकी हंसी में भी उदासी ही झरती है।
ऐसा ही कुछ हुआ होगा। तुम्हें उदासी का कारण दिखाई नहीं पड़ता--इसका एक
ही अर्थ हो सकता है कि जितने तुम अतीत के दिनों में उदास रहे हो, वे सब उदासियां इक्ट्ठी होती गई हैं। आज उनका ढेर लग गया है। उस ढेर का कोई भी कारण नहीं दिखाई पड़ता। एक-एक बूंद इकट्ठा करते-करते गागर भर गई है। तुमने तो एक-एक बूंद भरी थी, इसलिए गागर कैसे भर गई? गागर के भरे होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन कारण तो रहा होगा, क्योंकि इस जगत में अकारण कुछ भी नहीं--चाहे प्रत्यक्ष न हो।
ये दिल अब खराब है
ऐसा खराब कि बर्गे-मुर्सरत तो क्या इसमें खारे-अलम तक नहीं है
न जश्न-ए-बहारां,
न मातम खिजां का

ये दिल अब खराब है लेकिन हमेशा खराब नहीं था
खिले थे यहां फूल भी आरजू के
चुभे थे यहां खार भी जुस्तजू के
ये दिल अब खराब है लेकिन सदा बेनियाजे-बहारो-खिजां तो नहीं था
मैं वो आशिके-रंगो-बू हूं कि जिसने
लहू अपना सर्फे-बहारां किया था।
"ये दिल अब खराब है!" अब यह दिल बड़ा खराब हो गया, खंडहर हो गया, उदास हो गया, मरघट हो गया। ऐसा खराब कि बर्गे-मुर्सरत तो क्या, खुशी का पत्ता तो क्या, इसमें खारे-अलम तक नहीं है, दुख का कांटा भी नहीं है--ऐसा खाली हो गया।
दुख भी हो, तो आदमी इतना उदास नहीं होता। कम से कम कुछ तो रहता है करने
को; व्यस्त रहने को कुछ तो रहता है हाथ में; उलझन तो रहती है, उपाय तो रहता है--उलझे रहो कहीं, अपने को भुलाए रहो। कभी ऐसी घड़ी आ जाती है कि उदास होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। सुखी होने की कोई नजर मिलती नहीं मालूम होती। सुख का कोई द्वार नहीं खुलता। दुख का कोई कारण नहीं दिखता। आदमी बिल्कुल बीच में लटक कर रह जाता है--घर का, न घाट का।
न जश्न-ए-बहारां... अब न तो वसंत का कोई उत्सव है; न मातम खिजां का... और
न पतझड़ का रोना है। "ये दिल अब खराब है, लेकिन हमेशा खराब नहीं था। खिले थे यहां फूल भी आरजू के!" कभी यहां वासनाओं के, इच्छाओं के, कामनाओं के फूल भी खिले थे। "चुभे थे यहां खार भी जुस्तजू के"... और जीवन के कांटे भी चुभे थे। "यह दिल खराब है, लेकिन सदा बेनियाजे-बहारों-खिजां तो नहीं था।" आज ऐसा है, लेकिन सदा ऐसा नहीं था। "मैं वो आशिको-रंगो-बू हूं कि जिसने लहू अपना सर्फे-बहारां किया था।" और मैं वह प्रेमी हूं, जिसने कभी वसंत पर अपने खून को न्योछावर किया था।
अतीत में झांकना होगा। तुम आज उदास हो, तो अतीत में देखना होगा। तुम्हारा अतीत उदासी को सघन करता गया है। बूंद-बूंद गागर ही नहीं भरती, सागर भी भर जाता है। तुम्हारा अतीत तुम्हारी रात को अंधेरा करता चला गया है। सब तारे छुप गए। आज अचानक कारण नहीं दिखाई पड़ता है, लेकिन कारण पीछे होंगे। तुम्हारी असफल वासनाएं, तुम्हारे वसंतों का पतझारों में बदल जाना, तुम्हारे प्रेम का घृणा में बदल जाना, मित्रों का शत्रु हो जाना--तुम्हारी आशाओं पर सब पानी फिर गया है।
लेकिन यह तुम्हारा ही नहीं है; जिसने पूछा है, उसका ही नहीं है यह मामला--सभी का यही है। एक न एक दिन सभी को ऐसी उदासी आती है। सिकंदरों को भी आती है। जो सब पा लेते हैं, उनको भी आती है। जो हारते हैं, उनको भी आती है। जो जीतते हैं, उनको भी आती है। क्योंकि जीतने पर पता चलता है कि जीतने में कुछ सार नहीं था। व्यर्थ ही मेहनत की। व्यर्थ दौड़े-धूपे। व्यर्थ आपा-धापी की। सब पा कर भी पता चलता है कि कुछ हाथ न लगा, हाथ खाली हैं! हाथ ही खाली नहीं हैं, हृदय भी खाली है। सारा जीवन ऐसे ही मरुस्थल में खो गया। तब एक उदासी घेरती है।
वैसी ही उदासी ने तुम्हें घेरा है। इस उदासी में एक तो तुम्हारा अतीत है। एक कारण खोजना जरूरी नहीं है। तुम्हारा सारा अतीत का इकट्ठा संस्कार उदास तुम्हें कर गया है।
और दूसरी बात, इस उदासी में अभी भी कहीं छिपी हुई भविष्य की आशा है। नहीं तो उदासी टूट जाए। यह तुम्हें समझना थोड़ा कठिन होगा। जब किसी आदमी को तुम निराश देखो, तो यह मत समझना कि उसने आशा छोड़ दी है।
निराश होने का मतलब ही यही होता है कि आशा अभी भी कायम है। हालांकि जिंदगी ने आशा के सब उपाय तोड़ दिए हैं; लेकिन आशा अभी भी कहीं कायम है; नहीं तो बिना आशा के निराश भी कैसे होओगे। जितनी बड़ी आशा होगी, उतनी बड़ी निराशा होती है--उसी अनुपात होती है। अगर किसी आदमी की सारी आशाएं ही छूट गईं, तो फिर निराशा भी नहीं हो सकती; फिर निराशा क्या!
उसी व्यक्ति को हम संन्यस्त कहते हैं, जिसने आशा करना ही छोड़ दिया। और आशा करना छोड़ा, तो आशा की जो छाया है--निराशा--वह भी विदा हो जाती है।

साधारण तर्क तो कहता है कि जब आशा टूटेगी, तो आदमी निराश हो जाएगा। लेकिन वह सच नहीं है। जीवन का अनुभव कुछ और कहता है। अगर आशा सच में ही टूट जाए, आशा का कोई एक धागा भी शेष न रह जाए--अखंड, अविच्छिन्न--तो तुम पाओगे निराशा भी उसी के साथ चली गई।
तुम कहते होः "मन उदास है, कारण दिखाई नहीं पड़ता"। तो तुम्हारे मन में अभी भी सुख को पाने की आशा है; अभी भी तुम इस संसार में कुछ बना लेना चाहते हो, कर लेना चाहते हो। हालांकि जिंदगी कहती हैः हो न पाएगा। तुम कर चुके बहुत बार। जो भी घर तुमने बनाए, गिर गए। जो भी मनसूबे तुमने बांधे, असफल हुए। जो भी नाव तुमने चलाई, वह तुमने डूबते देखी।
तुम्हारे जीवन भर का, अतीत भर का अनुभव कहता हैः कुछ हो नहीं सकता। लेकिन तुम्हारे हृदय में छिपी हुई वासना का बीज कहता हैः "कौन जाने इस बार करो, और हो जाए! निन्यानबे दफा हार गए हो, लेकिन सौवीं बार आदमी जीत जा सकता है।"
कहीं अभी भी वासना कुलबुला रही है। बहुत गहरे में दबी होगी, क्योंकि अतीत के अनुभव का ढेर लग गया। है उदासी का। लेकिन उस उदासी की राख में कहीं अभी भी वासना का अंगारा है।
रात आई है तो दिलेजार ने सोचा अक्सर
कौन आंखों में सिमट आएगा आंसू बन कर
किसकी जुल्फों के दरीचे से किरन फूटेगी
कब ये जंजीरे-गरां टूटेगी
जाने कब तक इस शबे-तन्हाई से जां छूटेगी।
आज की रात भी शायद न मुझे नींद आए
किसकी आहट है कि बढ़ने लगी दिल की धड़कन कौन हमदर्द है कि तन्हाई के वीराने में
कौन महबूब है इस शब के सियह-खाने में
किसका पैकर है तसव्वुर के सनम-खाने में
जाने जां तुम हो कि अहसास का बहलावा है
नर्म झोंका है कि आहट है कि खामोशी है
हां, वही हसरत-ओ-मायूसी है।
"रात आई है तो दिलेजार ने सोचा अक्सर"... रात आती है, तो रोता हुआ दिल सोचने लगता; हारा हुआ दिल फिर भरोसे जगाने लगता; थका-मांदा दिल फिर सपने देखने लगता। सोचता हैः कल सुबह होगी; कल फिर यात्रा पर निकलेंगे।
रोज सांझ, दिन भर की हार के बाद, तुम फिर अपने को जुड़ाने लगते हो, फिर इकट्ठा करने लगते हो। दिन तोड़ जाता है, रात तुम फिर अपने को जोड़ लेते हो। सुबह तुम उठ कर फिर चले बाजार।
रात आई है तो दिलेजार ने सोचा अक्सर
कौन आंखों मे सिमट आएगा आंसू बन कर
किसकी जुल्फों के दरीचे से किरन फूटेगी
और अगर दिन में नहीं मिल सका प्रेमी, नहीं मिल सकी प्रेयसी, नहीं मिल सका जो चाहा था--तो
आदमी सोचता हैः सपने में मिलन हो जाएगा।
कोई आखों में सिमट आएगा आंसू बन कर
किसकी जुलफों के दरीए से किरन फूटेगी
कब ये जंजीरे-गरां टूटेगी
जाने कब इस शबे-तन्हाई से जां छूटेगी
कब ये जंजीरे-गरां टूटेगी
जाने कब इस शबे-तन्हाई से जा छूटेगी
सोचने लगता है, हर हारा-थका आदमीः यह बोझिल जंजीर कब टूटेगी दुख की! और
यह एकाकी रात कब तक एकाकी रहेगी! कब प्यारा मिलेगा! कब प्रिय से मिलन होगा? और फिर जब तुम इस तरह की कामनाओं से भरते हो, तो मन में सपने उठने शुरू
हो जाते है।
"आज की रात भी शायद न मुझे नींद आए
किसकी आहट है कि बढ़ने लगी दिल की धड़कन!"

किसी की आहट नहीं है। कोई न आया है, न कोई आएगा। कोई कभी आता नहीं। तुम अकेले हो। तुम्हारा अकेलापन आत्यंतिक है। दूसरे की तलाश व्यर्थ है।
दूसरा न मिलता है, न मिल सकता है।
कुछ भी जो पाया जा सकता है, वह तुम्हारे भीतर है। तुम अपने को ही पा लो,
तो सब पा लिया।
"किसकी आहट है कि बढ़ने लगी दिल की धड़कन!" किसी की आहट से दिल की धड़कन नहीं बढ़ती है। दिल की धड़कन बढ़ती है, तो तुम आहट को सोचने लगते हो कि कोई आता होगा। कोई मिलने की उम्मीद बनती है।
कौन हमदर्द है कि तन्हाई के वीराने में
कौन महबूब है इस शब के सियह-खाने में!
--कौन प्यारा चला आ रहा है इस अंधेरी रात में! अंधेरा ही अंधेरा है, कोई प्यारा नहीं है।
लेकिन कभी-कभी जब तुम प्रतीक्षा में रत होते हो, तो राहगीर के पैरों
की आवाज भी तुम्हें लगती हैः शायद प्यारा आ गया! हवा का झोंका द्वार को हिला जाता है, तुम सोचते होः शायद किसी ने थपकी दी, किसी ने द्वार खटखटाया! सूखे पत्ते रास्ते पर उड़ते है हवा में और खड़खड़ की आवाज होती है, तुम चौंक कर बैठ जाते हो कि शायद प्रेमी आ गया।
इंतजार, वासना से भरा इंतजार, उम्मीदों से भरा इंतजार--बड़ी कल्पनाएं, बड़ी कामनाएं करने लगता है।
कौन महबूब है इस शब के सियह-खाने में
किसका पैकर है तसव्वुर के सनम-खाने में
"जाने जां, (हे प्रेयसी!) तुम हो कि अहसास का बहलावा है?" तुम हो कि यह
भी मन को बहलाने का एक ढंग है?
"नर्म झोंका है, कि आहट है, कि खामोशी है?" यह क्या है? हवा का झोंका है? तेरे पैरों की आवाज है? यह तेरे आने की आहट है कि या सिर्फ रात का सन्नाटा है, रात की खामोशी है?
"हां, वही हसरत-ओ-मायूसी है।" फिर वही आशा है मन में और फिर वही उदासी है। वही हसरत और मायूसी है।
आशा और निराशा साथ चलते हैं--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; एक ही पक्षी
के दो पंख। एक पंख गिर जाए, तो दूसरा भी व्यर्थ हो जाता है।
तुम उदास हो, तो निश्चित ही तुम्हारे भीतर कहीं अभी आशा का अंगारा दबा पड़ा है। अभी तुम सोचते होः इस जिंदगी से कुछ मिल सकता, अनुभव कहता हैः नहीं मिल सकता, लेकिन अनुभव पर अभिलाषा की जीत होती चली जाती है।
अतीत उदास बना रहा है और भविष्य में अभी भी सोचते होः शायद... शायद ऐसा
हो जाए! असंभव भी तो होता है! चमत्कार भी तो घटते हैं।
इस आशा को जाने दो।
इस संसार में कोई चमत्कार नहीं होता। इस संसार में कभी कोई विजय नहीं मिलती। हार यहां भाग्य है। पराजय यहां नियति है। हारते हैं, वे हारते ही है; जीतते हैं, वे भी हारते हैं। असफल तो असफल होते ही हैं; सफल भी असफल होते हैं। इस संसार में हम जो भी करें, वह पानी पर किए गए हस्ताक्षरों से ज्यादा नहीं हैं; बन भी नहीं पाते और मिट जाते हैं।
आशा को पूरा विदा कर दो। और तुम अचानक पाओगेः उस विदाई में उदासी भी गई, निराशा भी गई। और तुम पाओगेः एक शांति उतरने लगी; कोलाहल मिटने लगा; दूसरे की इच्छा न रही। उसी में तुम अंतर्यात्रा शुरू करते हो। अपने भीतर आना हो, तो बाहर से सब आशा-निराशा छूट जानी चाहिए; नहीं तो आंखें भीतर कैसे मुड़ें? कान भीतर कैसे सुनें!
जब तक तुम्हारा मन कहता है, "बाहर चलो, कहीं चलो; शायद यहां नहीं मिला राज्य, वहां मिल जाए; शायद यहां सुख नहीं मिला तो वहां मिल जाए"--तब तक तुम भटकते ही रहोगे।
संसार का इतना ही अर्थ हैः बाहर की भटकन। और ध्यान का इतना ही अर्थ हैः बाहर की भटकन गई, तुम अपने भीतर आ गए; अपने घर में विराजे, विश्राम किया। उस विश्राम में ही तुम पाओगे आनंद।

तीसरा प्रश्नः कई बार सोचती हूं कि आपसे कुछ पूछूं, आपसे कुछ कहूं। सवाल उठते भी हैं, प्रश्न बनते भी हैं; लेकिन फिर सोचती हूंः "यह पूंछू कि वह पूछूं? आज पूछूं कि कल पूछूं? आंखों-आंखों से कुछ पूछूं कि कोरा कागज ही भेजूं?" फिर बात टल जाती है। घड़ी निकल जाती है। और मन की जिज्ञासा मौन प्रतीक्षा में बदल जाती है। अचानक आपके किसी प्रवचन में, किसी मीठी कथा के कथन में, कोई भूला प्रश्न याद आ जाता है, जो उत्तर बन कर मुस्कुराता है।

पहली बातः पूछो या न पूछो, उत्तर दिए जा रहे हैं। उत्तर मैं दे ही रहा हूं। अगर तुमने धैर्य रखा और न पूछा, तो भी उत्तर मिल जाएगा। अधैर्य किया, पूछा, तो भी उत्तर मिल जाएगा।
और मजे की बात यह है कि जब तुम प्रश्न पूछते हो तो जो उत्तर मैं देता हूं, उससे दूसरों को तो शायद उत्तर मिल जाए, तुम्हें शायद ही मिले। क्योंकि पूछने वाले का मन बड़ा तनाव से भरा होता है कि "मेरे प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा है।" वही अड़चन हो जाती है? वह डरा रहता है, घबड़ाया रहता है--मैं क्या कहूंगा? मैं चोट करूंगा? हिलाऊंगा, डुलाऊंगा, जगाऊंगा?--क्या करूंगा? फूल की तरह मेरा उत्तर आएगा कि पत्थर की तरह मेरा उत्तर आएगा?
जो पूछता है, वह बेचैन हो जाता है। वह तनाव से भर जाता है। "उसका" उत्तर दिया जा रहा है! और अक्सर वह चूक जाता है। दूसरे शांति से सुन लेते हैं। उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। प्रश्न तो उनका भी यही है। आदमियों के प्रश्नों में भेद क्या है! वही तो समस्याएं हैं। वही प्रश्न हैं। आदमी- आदमी में कहां बड़े फर्क हैं? अगर फर्क भी होते हैं, तो बहुत अनुपात के होते हैं। किसी को क्रोध ज्यादा है, किसी को काम ज्यादा है; किसी को लोभ ज्यादा है; किसी को मोह ज्यादा है। बस, अनुपात के भेद होते हैं। मात्रा के भेद होते हैं। मूलतः तो प्रश्न वही के वही हैं, क्योंकि आदमी एक जैसे हैं। अज्ञान एक जैसा है। अंधेरा एक जैसा है। भटकन एक जैसी है।
और उत्तर भी कहां अलग-अलग हो सकते हैं! उत्तर भी एक ही है। प्रश्न तो बहुत होंगे; उत्तर एक ही है। सारे उत्तरों में एक ही आकांक्षा है कि तुम भीतर लौट जाओ; अपने भीतर आ जाओ। अपने को देख लो। अपने को पहचान लो।
यह "सुषमा" ने पूछाः "कई बार सोचती हूं आपसे कुछ पूछूं, आपसे कुछ कहूं। सवाल उठते भी, प्रश्न बनते भी; फिर सोचती हूंः यह पूछूं, वह पूछूं? आज पूछूं, कल पूछूं? आंखों-आंखों से पूछूं कि कोरा कागज ही भेजूं?"
इसी में समय निकल जाता होगा। कोई चिंता न करो। उत्तर तो आ ही जाएगा। तुमने नहीं पूछा, तो भी आ जाएगा। मैं उत्तर दे ही रहा हूं। कोई और पूछ लेगा। किसी बहाने उत्तर आ जाएगा।
लेकिन यह भी समझना जरूरी है कि मन की यह दशा कि इतना भी तय न कर पाए कि पूछूं कि न पूछूं--शुभ नहीं है। पूछना--तो पूछना। नहीं पूछना--तो नहीं पूछना। लेकिन मन की यह डांवाडोल स्थिति को सहारा नहीं देना चाहिए। मन हर चीज में डांवाडोल होता है; छोटी-छोटी चीज में डांवाडोल होता है।
अब क्या हर्जा है पूछ लिया तो? इसमें इतना सोचना क्या है? इतना समय सोचने में खराब क्यों करना? मन की एक गलत आदत को इस तरह साथ मिलता है, सहयोग मिलता है। फिर मन धीरे-धीरे सोचने में असमर्थ ही हो जाता है। हर बात में विकल्प खड़े हो जाते हैं; ऐसा करूं, ऐसा करूं!
अब यह "सुषमा" ने पूछा है; उसको विकल्प खड़ा हो जाता होगाः "आज यह साड़ी पहननी, कि यह साड़ी पहननी! आज यह खाना बनाना, कि यह खाना बनाना! ऐसे छोटे- छोटे विकल्प खड़े हो जाते हैं। और उन छोटे-छोटे विकल्पों में बहुत समय जाया होता है।
जिंदगी को सरल करो। और सरल करना हो, तो मन के विकल्पों को बहुत सहारा
मत दो। और धीरे-धीरे मन के विकल्प गिरते चले जाएं, तो निर्विकल्प की दशा करीब आएगी। ये सब विकल्प हैंः ऐसा करूं, वैसा करूं! जो लगे करने जैसा, कर लेना। फिर उस पर और ज्यादा ऊहापोह मत करना।
फिर यह तो प्रश्न की ही बात है। कुछ हर्ज हुआ नहीं जा रहा है पूछा तो, नहीं पूछा तो, कुछ खोया नहीं जा रहा है। पूछना हो, पूछ लेना; नहीं पूछना हो,

नहीं पूछ लेना। लेकिन यह डांवाडोल होते मन को सहारा मत देना। नहीं तो यह मन की जड़ आदत हो जाएगी।
लोग मेरे पास आ जाते हैं, वे कहते हैंः "संन्यास लें कि ना लें? "मैं उनसे कहता हूंः अगर मैं तुमसे कहूं--कुछ भी कहूं--तो तुम्हारा मन सोचेगाः "इनकी मानें कि न मानें?" यही तो मन है--यह जो विकल्प खड़ा कर रहा है। यह फिर भी विकल्प खड़ा कर देगाः "आज लें, कल लें?"
आज जो भाव उठा हो, उसमें गुजरो, उसमें जाओ।
एक ही सूत्र मैं देना चाहता हूं--वह यह हैः अगर किसी को हानि न होती हो,
तो उसे कर ही लो। उसमें क्या विचार करना है? शुभ करना हो, ता तत्क्षण कर लो। अशुभ करना हो, तो कल पर टालो। पाप को कल पर टालो, पुण्य आज कर लो। लेकिन आदमी खूब उलटी खोपड़ी है। पाप करना हो, तो अभी कर लेता है! पुण्य करना हो तो कल; सोचता हैः कल कर लेंगे, परसों कर लेंगे। कोई तुम्हें गाली देता है, तो तुम यह नहीं सोचते कि इसको गाली का उत्तर दें कि न दें; कि आज दें कि कल दें। तुम तत्क्षण दे देते हो। तुम एक क्षण नहीं चूकते।
गलत को करने में हम बड़ी तत्परता दिखलाते हैं। दुनिया में निन्यानबे प्रतिशत गलत समाप्त हो जाए, अगर हम जरा-सा भी रुक जाएं।
डेल कारनेगी ने अपना एक संस्मरण लिखा है कि उसे एक पत्र मिला। डेल कारनेगी ने लिंकन के ऊपर एक व्याख्यान दिया था रेडियो पर और उसमें कुछ तारीख की भूल हो गई। तो लिंकन की भक्त किसी महिला ने उसे पत्र लिखा, खूब गालियां दीं--कि "तुम्हें जब तारीखों तक का पता नहीं है, तो तुमने यह जुर्रत कैसे की कि तुम रेडिओ पर व्याख्यान करने जाओ? पहले अपनी तारीखें ठीक करो। यह तो छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं। इतना भी तुम्हें पता नहीं है! तुम इसके लिए क्षमा मांगो--सामूहिक। यह लिंकन का अपमान है।"
ऐसा उसने कुछ-कुछ लिखा होगा। डेल कारनेगी भी गुस्से में आ गया पत्र को
पढ़ कर। खून खौल गया। उसने भी उत्तर लिखा--उतना ही जहरीला। लेकिन रात हो गई थी। और उस वक्त तो नौकर भी जा चुका था, तो उसने सोचाः सुबह डाल देंगे। चिट्ठी रख कर टेबल पर, सो गया। गाली-गालौज जितनी देनी थी, वे उसने भी दे डाली। निश्चिंत, हलका मन हो कर सो गया। सुबह उठा, लिफाफे में बंद करते वक्त उसने फिर पत्र को पढ़ा। लगाः यह जरा ज्यादती है। बात तो स्त्री की ठीक ही है कि मुझसे भूल तो हुई है। बजाय क्षमा मांगने के मैं और उलटा नाराज हो रहा हूं!
पत्र उसने सरका कर रख दिया, दूसरा पत्र लिखा। दूसरा पत्र लिखते वक्त उसे खयाल आया कि अगर मैंने रात ही यह पत्र पोस्ट करवा दिया होता, अगर नौकर न गया होता, तो... ? सुबह में इतना फर्क हो गया। उसने दोनों पत्र देखेः वह जमीन-आसमान का भेद है! तो उसने सोचाः यह दूसरा पत्र भी अभी नहीं डालूंगा। जल्दी तो कुछ है नहीं, सांझ को फिर एक दफा देखूंगा।
सांझ को देखा, तो तीसरा पत्र लिखा। अब तो बहुत फर्क हो गया। फिर तो उसे लगा कि अभी जल्दी क्या है; वह स्त्री कोई पागल नहीं हुई जा रही है मेरे पत्र के लिए! सात दिन रुका। रोज सुबह पढ़ता-बदलता; रोज शाम पढ़ता-बदलता। सातवें दिन जब वह निश्चिंत हो गया कि अब कुछ बदलने को नहीं बचा, लेकिन पत्र का पूरा रूप बदल गया। कहां वह घृणा और जहर से भरा पत्र था; कहां यह मैत्री और प्रेम से भरा पत्र हो गया।
इस पत्र में उसने लिखा था कि मैं अनुगृहीत हूं। और कभी अगर इस गांव आओ, मेरे गांव आओ, तो मेरे घर ठहरना। मिल कर मुझे खुशी होगी। मेरे ज्ञान में वर्धन होगा। लिंकन के संबंध में मैं ज्यादा नहीं जानता; और जानना चाहता हूं। और क्षमा मांगता हूं, जो भूल हो गई।
छह महिने बाद वह स्त्री उसके गांव आई। इस बीच पत्र-व्यवहार होता रहा। उसके घर ठहरी। और तुम हैरान होओगे कि हालत क्या हुई! वह उसकी पत्नी हो गई! ऐसे ही वह प्रेम में पड़ा। वह पहला पत्र... तो सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती थीं दो आदमियों के बीच की।
जब बुरा करना हो, तो थोड़ा ठहराना। कल कर लेना, परसों कर लेना। जल्दी क्या है!

गुरजिएफ का दादा मरा, तो उसने कहा गुरजिएफ से--वह छोटा ही था, नौ साल का था--कि तुझसे मेरी एक ही प्रार्थना और एक ही मेरी आज्ञा है; यही मेरी वसीयत है; मेरे पास देने को कुछ भी नहीं; लेकिन मेरे पिता जब मरे थे, मुझे दे गए थे, और उसने मुझे जीवन में बड़े सुख दिए और बड़े आनंद मैंने जीवन में पाए। तू भी याद रखना। तू अभी छोटा है, खूब याद कर ले, ताकि भूल न जाए।
तो गुरजिएफ ने याद कर लिया। दादा इतना ही कह गया था कि अगर कभी क्रोध
आए तो जिस पर क्रोध आ जाए, उससे इतना कहना की मैं चौबीस घंटे बाद आ कर जबाब दूंगा। फिर चौबीस घंटे विचार कर लेना, फिर जबाब दे देना--जैसा भी देना हो। गुरजिएफ ने लिखा है कि इस एक बात ने मेरी जिंदगी में क्रांति ला दी। क्योंकि चौबीस घंटे बाद जवाब देने जैसा ही न लगा। या तो ऐसा लगा कि उस आदमी ने ठीक ही कहा, तो मैं जा कर क्षमा मांग आया; या ऐसा लगा कि उस आदमी ने बिल्कुल झूठ कहा है, तो झूठ के खिलाफ जबाब देने की जरूरत भी क्या है! चौबीस घंटे में वह जरूरत नहीं है।
शुभ करना हो, तो तत्क्षण कर लेना। ऐसा कुछ करना हो जिससे किसी की कोई हानि नहीं हो रही, तो एक क्षण भी सोचने की कोई जरूरत नहीं है।
अब तुम्हें प्रश्न पूछना हो, तो पूछ ही लेना। किसी की कोई हानि नहीं होगी; किसी को लाभ ही हो सकता है। तुम्हारे प्रश्न से शायद किसी को उत्तर मिल जाए। जब किसी दूसरे के प्रश्नों के उत्तर से तुम्हें उत्तर मिलता है, तो तुम्हारे प्रश्न के उत्तर से भी किसी को उत्तर मिल सकता है। कंजूसी क्या? पूछ ही लेना।
"यह पूछूं कि वह पूछूं? आज पूछूं कि कल पूछूं?"
कोई रुकावट तो है नहीं। यह भी पूछो, वह भी पूछो। और आज भी पूछो और कल भी पूछो। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि आज पूछ लिया, तो फिर कल नहीं पूछ सकते; यह पूछ लिया, तो वह नहीं पूछ सकते! पूछने की तुम्हें जैसी सुविधा है, दुनिया में शायद किसी को हो। तुम्हारे सारे प्रश्नों का स्वागत है। तुम्हें कुछ पूछना हो, तो पूछो। तुम्हें कुछ कहना हो, तो कहो।
मेरे तुम्हारे बीच संवाद चल रहा है। यह कोई विवाद नहीं है। इसलिए चिंता ही नहीं है।
तुम पूछते हो--जिज्ञासा से, मुमुक्षा से। जब भी मैं देखता हूं कि किसी
ने विवाद की दृष्टि से पूछा है, उसका मैं उत्तर ही नहीं
देता हूं, क्योंकि विवादियों में मेरा कोई रस नहीं है।
जब मैं देखता हूंः किसी ने ज्ञान के कारण पूछा है, कि उसको ज्यादा ज्ञान सिर पर चढ़ा है--किसी ने जब इस तरह पूछा कि उसका प्रश्न "ज्ञान" से आ रहा है, तो मैं उत्तर नहीं देता। उसके पास तो ज्ञान है ही, उसे उत्तर की और क्या जरूरत है? उसके पास उत्तर खुद ही है।
जब कोई इस तरह पूछता है कि उसे मालूम ही है, तब मैं उत्तर नहीं देता। लेकिन जब भी कोई इस तरह पूछता है कि उसे मालूम नहीं है, जानने की आतुरता है, प्यास है--तो फिर प्रश्न कैसा भी हो, मैं जरूर उत्तर देता हूं। आज उत्तर न दूं तो कल दूंगा; कल न दूं, तो परसों दूंगा। क्योंकि मैं प्रतीक्षा करता हूं--ठीक क्षण की। जब भी ठीक क्षण आ जाएगा, तुम्हारा प्रश्न उत्तर पाएगा। पूछ लो, फिर मुझ पे छोड़ दो, फिर जल्दी भी मत करना। कुछ लोग पूछ लेते हैं, फिर वे दूसरे दिन से ही राह देखने लगते हैं। फिर उनको कुछ और सुनाई नहीं पड़ता। उनको अपने प्रश्न की फिक्र लगी रहती है--कि हमारे प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं दिया!
एक संन्यासिनी है--मुक्ता। नैरोबी से आई है। काफी पूछती है। और उसको मैं उत्तर देता नहीं। तो अब तो वह लिखलिख कर पत्र भेजने लगी है कि आप सबके उत्तर देते हैं, मेरे उत्तर क्यों नहीं देते? "मेरे" प्रश्न का क्या? धैर्य रखो। या तो समय अनुकूल न होगा, या तुम्हारी पात्रता न होगी; या तुमने जो पूछा है, उसका उत्तर पाने की अभी तुम्हें जरूरत न होगी; जब जरूरत होगी, तब मिल जाएगा।
"आंखों-आंखों से कुछ पूछूं कि कोरा कागज ही भेजूं?" कुछ भी तो करो। आंखों-आंखों से पूछना है, तो आंखों-आंखों से पूछो। कोरा कागज भेजना है, तो

कोरा कागज भेजो। कुछ तो करो। ऐसे बैठे ही बैठे सोच-विचार में ही मत पड़े रहो। कुछ लोग होते हैं, ऐसे ही सोच-विचार में जीवन गंवा देते हैं।
मैंने सुना हैः एक गणितज्ञ को दूसरे महायुद्ध में युद्ध पर जाना पड़ा। सभी लोग सेना में भरती किए जा रहे थे, उसे भी जाना पड़ा। वह बड़ा विचारक था, दार्शनिक था। जो जनरल उसकी कवायद देखने गया, वह हैरान हुआ। जो कैप्टन उसे कवायद करवाता था, वह भी परेशान था, क्योंकि कहा जाए "लैफ्ट टर्न", बाएं घूम--वह खड़ा ही रहे। सारी दुनिया बाएं घूम जाए, सारी रेजीमेंट बाएं घूम गई, वह वहीं खड़े हैं! उसका कैप्टन पूछे, "आप क्यों खड़े है?" वह कहेः "मैं सोच रहा हूं कि बाएं घूमूं कि नहीं?" या घूमने से फायदा क्या? या फिर अभी थोड़ी देर में दाएं घूमना पड़ेगा, तो ये लोग घूम कर फिर दाएं आ जाएंगे; मैं वहीं खड़ा रहूं; इसमें हर्जा भी क्या है?"
कैप्टन बहुत परेशान हुआ। लेकिन वह प्रसिद्ध दार्शनिक था और गणितज्ञ था। एकदम उसको ऐसा कहा भी नहीं जा सकता था। उसका नाम था; ख्यातिलब्ध आदमी था। उसने जनरल को कहा कि आप कर देख लें, अब मैं क्या करूं इस आदमी के साथ! यह तो कोई छोटी आज्ञा भी मानने को राजी नहीं है! यह कहता है कि सोचता हूं, संगत होगी तो मानूंगा। और फिर मैं देखता हूं कि तुम थोड़ी
देर में बाएं घूम कह देते हो, तो फायदा ही क्या है? हम अपनी ही जगह खड़े रहे; लोग फिर अपने वापस उसी जगह आ गए। तो यह बाएं-दाएं घूमने में कुछ सार भी नहीं है।" इस आदमी की वजह से दूसरे लोग भी कम सुनते हैं मेरी। वे कहते हैं, उससे कहिए! और यह आदमी प्रतिष्ठित है; मैं इसका अपमान भी नहीं करना चाहता। जनरल ने देखा। उसने कहा कि इसको ऐसा करो कि मैस में भेज दो। चौके में काम करे कुछ; यह काम का नहीं है मिलिटरी में। क्योंकि यह दाएं-बाएं नहीं घूमता। कल इससे कहें, बंदूक चलाओ; यह कहे, "क्यों चलाएं? इसने हमारा क्या बिगाड़ा है? इस आदमी को हम क्यों मारें? इसकी पत्नी होगी, बच्चे होंगे। यह हम नहीं करने वाले।" यह जब दाऐं-बाएं घूमने में झंझट है इसको, तो और तो आगे जाएगा कहां!
इसीलिए तो मिलिट्री में दायें-बाएं घुमाते हैं। वह परीक्षा है और प्रशिक्षण है--जड़ बनाने का। तुम्हारा सोच-विचार खत्म हो जाए। बाएं घूम, दाएं घूम--घूमाते-घूमाते-घूमाते एक दिन कहा कि बंदूक चलाओ, तो तब तक आदमी खुद ही हो जाता है--मरने-मारने को तैयार। इतना दाएं-बायां घुमाते हैं कि उस आदमी की खोपड़ी में एकदम आग जलने लगती है। वह कहता है कि "ठीक, अब कुछ भी कर दो। एक मौका मिला है, अब चूको मत।" और धीरे-धीरे उसकी बुध्दि और संवेदना क्षीण हो जाती है। फिर वह गोली चला देता है, बम गिरा देता है।
जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम गिराया, उससे जब दूसरे दिन सुबह पूछा, तो उसने कहाः "मैं रात निश्चिंतता से सोया, क्योंकि मैंने आज्ञा का पालन किया।" एक लाख आदमी मर गए और यह आदमी रात निश्चिंतता से सोया। इसकी बुद्धि बिल्कुल क्षीण हो गई। इसने एक भी बार रात यह नहीं सोचा कि एक लाख आदमी! मेरे बम गिराने से राख हो गए!
अपार पीड़ा झेली उन्होंने। नरक भी फीका है उस पीड़ा के सामने। छोटे बच्चे थे, निरीह बच्चे थे। गर्भ में थे बच्चे, वे भी जल कर राख हो गए! स्त्रियां थी, जिन्होंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। नागरिक थे। क्योंकि हिरोशिमा कोई मिलिटरी कैंप नहीं था--आम आदमियों की बस्ती थी। लेकिन इस आदमी को निश्चिंतता रहीं; रात आराम से सोया; काम पूरा कर आया! जो आज्ञा मिली थी, पूरी कर दी।
इस आदमी के साथ जो दूसरा आदमी बैठा था, जिसका जुम्मा था कि वह बताएगा,
कब गिराया जाए, जो सिग्नल देगा बम गिराने का--वह आदमी नहीं सो सका रात भर। रात भर क्या, वह तीन महीने तक नहीं सो सका। वे जो लपटें उसने देखी थी, वह जो चीख-पुकार सुनी थी!--उसने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। उसके मन में यह घाव इतना गहरा लगा और उसे पता नहीं था कि यह जो आज्ञा दे रहा है, यह एटम बम गिरेगा। इसका उसे कुछ पता नहीं था कि यह जो आज्ञा दे रहा है, यह एटम बम गिरेगा। इसका उसे कुछ पता नहीं था। वह तो हमेशा ही साथ होता था, बम गिराने के लिए आज्ञा देता था। जैसे साधारण बम थे, उसने सोचा यह भी साधारण बम है।

उसे कुछ पता ही नहीं था। उसे तो सिर्फ सिग्नल देना था कि यह ठीक जगह आ गई, अब बम गिरा दो।
बम में क्या है--साधारण बम है कि एटम बम है--इसे कुछ पता नहीं था। यह तो दूसरे दिन से उसे पता चला कि जो भयानक कांड़ हो गया है, उसमें मेरा भी हाथ है। वह बड़ा उद्विग्न हो गया। उसने नौकरी से इस्तीफा दे दिया और अमरीका में प्रचार करने लगा जा-जा कर, गांव-गांव--अणुबम के विरोध में--अणु-बम पर पांबदी लगनी चाहिए। और उसकी बात का बल था, क्योंकि उस आदमी ने हिरोशिमा अपनी आंख से देखा था। नीचे उठती लपटें और चीख-पुकार और वह नरक! वह तांड़व नृत्य मृत्यु का! उसकी बात में बल था। सरकार थोड़ी भयभीत हुई। उसकी बात लोग सुनते थे, गौर से सुनते थे। सरकार ने एक आयोग नियुक्त किया बीस मनोवैज्ञानिकों का। और उन मनोवैज्ञानिकों के आयोग ने उस आदमी को पागल करार देकर पागलखानें में रख दिया।
अब यह बड़ी अजीब बात हुई! पहला आदमी पागल, मालूम होता है, जिसने एक लाख लोग मार ड़ाले और रात, कहता है, मैं निश्चिंत से सोया, क्योंकि आज्ञा पूरी कर दी। यह दूसरा आदमी पागल नहीं है, मगर सरकार इसको पागल घोषित करवाती है। इस दुनिया में अगर तुम्हारे पास हृदय है, तो तुम पागल समझे जाओगे। अगर तुम्हारे पास संवेदनशीलता है, तो तुम पागल समझे जाओगे। यह दुनिया बड़ी अजीब है। यहां पागल राजनेता बने बैठे हैं! यहां पागलों के गिरोह राजधानियों में अड़ड़ा जमाए बैठे हैं!
तो वह दार्शनिक आदमी था। "बाएं घूम, दाएं घूम"--सुनता नहीं था। कहताः सोचूंगा, विचारूंगा, फिर करूंगा। बिना सोचे-विचारे तो कोई कृत्य कैसे किया जाए!
उसे भेज दिया गया किचन में। जनरल उसके पीछे आया और उसने कहा, तुम एक छोटा सा काम करो। ये देखते हो मटर के
दाने; बड़े-बड़े एक तरफ कर दो छोटे-छोटे एक तरफ कर दो। दो ढेरी लगा दो।
दो घंटे बाद लौट कर आया देखा कि वह आदमी वहीं बैठा है--सिर पर हाथ लगाए। मटर के दाने वैसे ही एक ढेरी में पड़े हैं। जनरल ने पूछाः "अब यह क्या कर रहे हो? अभी तक कुछ शुरू नहीं किया! काम बहुत कठिन है?"
उसने कहाः "बहुत कठिन है। क्योंकि कुछ बड़े हैं, कुछ छोटे हैं, कुछ मझोल हैं। और मझोल को कहां करना। इस तरफ--कि उस तरफ?"
ऐसे ही "सुषमा" का प्रश्न हैः "आंखों-आंखों से पूछूं कि कोरा कागज भेजूं? यह पूछूं कि वह पूछूं? आज पूछूं कि कल पूछूं?
अगर किसी का अहित न होता हो, तो देर की कोई भी जरूरत नहीं है। और किसी
का अहित होता हो, तो जितनी देर कर सको, उतनी जरूरत है। अगर बम गिराना हो, तो खूब सोचना कि गिराऊं कि न गिराऊं। मटर के दाने ही अगर करने हैं अलग, क्या फर्क पड़ता है कि एकाध मझोल इस तरफ चला गया कि उस तरफ चला गया!
निर्दोष कुछ कृत्य हो, तो देर की जरूरत नहीं है। निर्दोष कृत्य में चिंतन को लाने से देर होगी। दोषी कृत्य में चिंतन को ले आओ। दोष को करने पहले खूब सोचो; और तुम दोष से मुक्त हो जाओगे, क्योंकि कभी न कर पाओगे। और अगर तुमने पुण्य को करने के लिए बहुत सोचा-विचारा, तो तुम पुण्य से छूट जाओगे, तुम पुण्य कभी न कर पाओगे।
शबनमी पलकें उठा लूं या झुका लूं
रश्मियों में चांद की किसका निमंत्रण मिल रहा है
है जो दूर हो कर भी किसी क ो छल रहा है
अनमिले वरदान की कुछ चाह ऐसी आ गई है
प्यार से तुमको बुला लूं या सजा लूं
शबनमी पलकें उठा लूं या झुका लूं!
कल्पनाओं में पलें अरमान मन को छटपटाते
चीर नभ का तम, सजीले मेघ रह-रह मुस्कराते याद धुंधली पड़ गई है, आज फिर भी कसमसाती दीप आशा का बुझा लूं या जला लूं
शबनमी पलकें उठा लूं झुका लूं!
जानती मैं भी नहीं, पर चाहती तुमको बताना

भोर की पलकें उनींदी देखती सपना सुहाना
मांग में सिंदूर भर उषा चली रवि को रिझाने
स्वप्न की हर बात कह दूं या छिपा लूं
शबनमी पलकें उठा लूं या झुका लूं!
नहीं, इसी सोच-विचार में "सुषमा" उलझी खड़ी मत रहो। समय के ये क्षण बहुमूल्य हैं, जो तुमने मेरे पास बिताए। इनको व्यर्थ के विकल्पों में नष्ट मत करो। मेरे साथ निर्विकल्प हो कर रहो।
और निर्विकल्प होने का एक ही उपाय हैः शुभ हो--करने में देरी मत करना।
मन की यह डांवाड़ोलपन स्थिति को समाप्त करना है। और जिस दिन मन का डांवाड़ोलपन समाप्त हो जाता है, उसी दिन मन भी समाप्त हो जाता है। क्योंकि मन यानी डांवाड़ोलपन।
तुमने देखा, सागर में लहरें उठ रही हैं! बवंड़र है, तूफान है। फिर लहरें
खो गई, शांत हो गई। फिर तुमसे कोई पूछे कि अब तूफान कहां है, तो क्या कहोगे? क्या तुम ऐसा कहोगे कि तूफान अब शांत हो गया है? यह बात ठीक नहीं होगी। तूफान अब नहीं ही है; शांत क्या हो गया है? तब था, अब नहीं है।
ऐसा ही मन हैः डांवाड़ोलपन, तरंगे, यह-वह, विकल्प, हजार-हजार विकल्प, हजार-हजार रास्ते! और आदमी ठिठका खड़ा है; कंप रहा हैः यह करूं, वह करूं! ऐसा ही मन है। जिस दिन तुम पाओगेः यह करने का डांवाड़ोलपन समाप्त हो गया उसी दिन मन भी समाप्त हो गया। फिर सागर है--तरंग रहित।
ऐसा समझोः मन तुम्हारी डांवाड़ोलपन दशा का नाम है; और आत्मा तुम्हारी शांत दशा का नाम है। तुम वही हो। जब डांवाड़ोल हो जाते हो, तो मन बन जाते हो। जब डांवाड़ोलपन चला जाता है, तो आत्मा बन जाते हो।
आत्मा और मन एक ही ऊर्जा की दो दशाए हैं।
लेकिन प्रश्न प्यारा है। चलो, इतना तो पूछा! यह भी पहली बार ही पूछा है। इस बार तो हिम्मत की। कुछ खास इसमें पूछा नहीं है, लेकिन पूछा तो! यह प्रश्न लिख कर तो भेजा!
प्रश्न प्रेमपूर्ण है।
अक्सर ऐसा होता है कि जिनकी बुद्धि बहुत-बहुत विचारो से भरी है, उन्हें प्रश्न पूछना आसान होता है। लेकिन जब प्रश्न हृदय से उठते हैं, तो वे कठिन होते हैं। पहले तो वे बनते ही नहीं, ठीक-ठीक शब्दों में अंटते नहीं। शायद इसीलिए सुषमा सोचती होगीः आंख ही आंख से पूछूं, कि कोरा कागज भेज दूं? क्योंकि हृदय के प्रश्न भाषा में आते नहीं। प्रेम भाषा में नहीं आता। आता है, तो ऐसा लगता है--बहुत अधुरा आया। अंग-भंग हो जाता है। खंडित हो जाता है। किसी तरह भाषा में समा भी दो, तो ऐसा लगता हैः जो समाने चले थे, वह तो नहीं समाया; यह कुछ और हो गया। रूप बदल जाता है।
ऐसे ही जैसे तुम, अभी सूरज की रोशनी बरसती है, पक्षियों के गीत हैं, हवाओं में गंध है--इस सबको एक पेटी में बंद कर लो और घर ले जाओ और घर जा कर पेटी खोलो, वहां कुछ भी नहीं मिलेगाः न सूरज की किरणें, न पक्षियों के गीत, न हवा की सुवास; कुछ भी नहीं--खाली पेटी! हालांकि तुमने जब पेटी बंद की थी, तो सूरज की किरणें पड़ रही थी पेटी पर; हवा की गंध उड़ रही थी; पक्षियों के गीत हवा में थे; सब था; लेकिन जब पेटी बंद करके ले गए, तो पेटी में कुछ भी न आया।
शब्द ऐसे ही हैं; उनमें प्रेम नहीं बंध पाता। प्रेम बड़ा सूक्ष्म; शब्द बड़े स्थूल।
इसलिए भक्त रोता है; कह नहीं पाता। आंसू से कहता है। इसलिए भक्त नाचता है; कह नहीं पाता। नृत्य से कहता है। इसलिए भक्त बोलता नहीं; मौन हो जाता है। मौन से कहता है।
जो प्रेमी की पीड़ा है, वही भक्त की पीड़ा है--हजार गुनी हो कर।
तुम को बांध चुकी हूं मन में
संध्या की बेला यह सूनी
आकुलता बढ़ जाती दूनी
रवि भी बंधा हुआ है देखो
अपनी किरणों के बंधन में

तुम को बांध चुकी हूं मन में। बैठ नीड़ में चोंच मिला कर
अपने उर में स्वर्ग बसा कर पक्षी कहतेः जान गए हम
सुख से रहना इस जीवन में
तुमको बांध चुकी हूं मन में।
बांध तुम्हें क्या, मुक्त बनी मैं
पीड़ाओं की बनी धनी मैं
समझोगे तब, खो जाऊंगी
जब मैं अपने सुनेपन में
तुमको बांध चुकी हूं मन में!
प्रेम बांधता है--मनुष्य को मनुष्य से; सीमा से। तब भी भाषा असमर्थ हो जाती है--उस मिलन को भी प्रगट करने में असमर्थ हो जाती है। लेकिन जब कोई परमात्मा के प्रेम में पड़ता है, तब तो सीमा का असीम से मिलन होता है; सान्त का अनन्त से मिलन होता है। तब तो बात और मुश्किल हो जाती है।
तो कुछ हर्ज नहीं है, अगर कभी कोरा कागज भी भेज दो। मैं समझूंगा; मैं
पढ़ लूंगा। और कुछ हर्ज नहीं है, अगर कभी आंखों-आंखों से कह दो। कुछ हर्ज नहीं है--कभी रो कर, कभी नाच कर, कभी गुनगुना कर कह दो। कुछ हर्ज नहीं है-- कभी चुप रह कर कहो। मगर कहो। डांवाडोल मत होते रहो। निर्णायक बनो। निर्णय लेते-लेते, थिर होते-होते, मन एक दिन विसर्जित हो जाता है।

अखिरी प्रश्नः आपकी बातें सुनता हूं, तो प्रभु-खोज के विचार उठते हैं। लेकिन समझ नहीं पड़ता कि कहां से शुरू करूं!

कहीं से भी शुरू करो--शुरू करो। परमात्मा सब तरफ है। जहां से भी शुरू करोगे, उसी में शुरू होगा। कहां से शुरू करूं--इस प्रश्न में मत उलझो। क्योंकि परमात्मा तो एक तरह का वर्तुल है। इसलिए तो दुनिया में इतने धर्म हैं, क्योंकि इतनी शुरुआतें हो सकती हैं। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। दुनिया में तीन हजार भी धर्म हो सकते हैं, तीन लाख भी हो सकते हैं, तीन करोड़ भी हो सकते हैं। दुनिया में असल में उतने ही धर्म हो सकते हैं, जितने लोग हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की शुरुआत दूसरे से थोड़ी भिन्न होगी। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति दुसरे से थोड़ा भिन्न है।
कहीं से भी शुरू करो। इस प्रश्न को बहुत मूल्य मत दो। मूल्य दो शुरू करने को। शुरू करो। और ध्यान रखो कि जब भी कोई शुरू करता है, तो भूल-चूक होती है! कहां से शुरू करूं--यह बहुत गणित का सवाल है। इसमें भय यही है कि कहीं गलत शुरुआत न हो जाए; कि कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए! कहां से शुरू करूं!
अगर बच्चा चलने के पहले यही पूछे कि कहां से शुरू करूं, कैसे शुरू करूं, कहीं गिर न जाऊं, घुटने में चोट न आ जाए, तो फिर बच्चा कभी चल नहीं पाएगा। उसे तो शुरू करना पड़ता है। सब खतरे मोल ले लेने पड़ते हैं। सब भय के बावजूद शुरू करना पड़ता है। एक दिन बच्चा उठ कर जब खड़ा होता है पहले दिन, तो असंभव लगता है कि चल पाएगा। अभी तक घसिटता रहा था, आज अचानक खड़ा हो गया। मां कितनी खुश हो जाती है, जब बच्चा खड़ा होता है! हालांकि खतरे का दिन आया। अब गिरेगा। अब घुटने तोड़ेगा। अब लहू-लुहान होगा। सीढ़ियों से गिरेगा। अब खतरे की शुरुआत होती है। जब तक घसिटता था, खतरा कम था, सुरक्षा थी। मगर सुरक्षा में ही कब तक कैद रहोगे!
बच्चे को चलना पड़ेगा। खतरा मोल लेना पड़ेगा; अन्यथा लंगड़ा ही रह जाएगा। और कई बार गिरेगा... ।
जब बच्चा पहली दफा बोलना शुरू करता है, तो तुतलाता ही है; कोई एकदम से सारी भाषा का मालिक तो नहीं हो जाएगा! कौन कब हुआ है! तुतलाएगा। भूले होंगी। कुछ का कुछ कहेगा; कुछ कहना चाहेगा, कुछ निकल जाएगा। लेकिन बच्चे हिम्मत करते हैं--तुतलाने की। इसलिए एक दिन बोल पाते हैं। तुतलाने की हिम्मत करते हैं, इसलिए एक दिन कालिदास और शेक्सपीयर भी पैदा हो पाते हैं।

तुतलाने की कोशिश करते हैं, इसलिए एक दिन बुद्ध और क्राइस्ट भी पैदा हो पाते हैं।
तो तुम जब शुरू करोगे, तो यह तुतलाने जैसा होगा। इसमें तुम पूर्णता की अपेक्षा मत करना। यह तो अभी घसिटते थे, अब उठ कर खड़े हुए--खतरनाक है। भूल-चूक होने ही वाली है। भूल-चूक होगी ही। जो भूल-चूक से बचना चाहेगा, वह कभी चल न सकेगा, बोल न सकेगा। वह जी ही न सकेगा।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि भूल-चूक से बचने वाले लोग वंचित ही रह जाते हैं--जीवन की संपदा से। दुनिया में एक ही भूल-चूक हैंः और वह भूल-चूक है, भूल-चूक से बचने कि अतिशय चेष्टा।
तुम पूछते होः "आपकी बाते सुनता हूं, तो प्रभु-खोज के विचार उठते हैं। लेकिन समझ नहीं पड़ता कि कहां से शुरू करूं।"
कहीं से भी शुरू करो। मस्जिद से शुरू करो, मंदिर से शुरू करो, गुरुद्वारे से शुरू करो, मूर्ति से शरू करो। कुरान-गीता, वेद-पुरान, कहीं से शुरू करो। नदी-पहाड़ पत्थर, किसी की पूजा से शुरू करो। मगर शुरू करो। अगर तुम मेरी सलाह मानना चाहते हो तो मैं कहूंगाः प्रकृति से शुरू करो। क्योंकि प्रकृति में ही परमात्मा छिपा है। वृक्षों-फूलों को देखो; चांद-तारों को देखो; नदी-सागरों को देखो। परमात्मा इन सब में छिपा है। यहीं तलाशो।
तो पहला परमात्मा का कदम प्रकृति से उठाओ। प्रकृति में दिख जाए, तो फिर सब जगह दिखाई पड़ने लगेगा।
अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि टेनीसन ने कहा है... एक फूल को देखा खिला हुआ
और एक आश्चर्यजनक स्थिति में देखा खिला हुआ। एक पत्थरों की दीवाल में, जरा सी पत्थरों के बीच में संध थी, उसमें से फूल निकल आया था। चौंक कर खड़े हो गए टेनीसन और उन्होंने अपनी डायरी में लिखाः अगर मैं इस एक फूल को समझ लूं पूरा-पूरा, तो मुझे सारा अस्तित्व समझ में आ जाएगा। और परमात्मा की सारी लीला भी। एक फूल में सब छिपा है। एक फूल में!
सरेशाम फिर बाग में आ गया हूं
इसी मखजने-रंगो-बू की लगन में
की जिसने कभी रूह को ताजगी, कैफो-मस्ती की दौलत अता की
फजां को दिलोवेजी-ए-जाविदा दी
निगाहों को हुस्ने-तलब के नये जाविए
दिल को तहजीबे-जजबात दे कर
रिवायत से प्यार करना सिखाया
यहां कासनी ऊदे-ऊदे, गुलाबी, शहाबी
सभी फूल हैं
सब्जाजारों में जाएं तो बेले की खुशबू फरावां-फरावां
कहीं मोतिए और चमेली की महकार राहत-बदामां
गुलाबों के तख्तों में हर दीदा-ओ-दील की तसकीं का सामा यहां ढाक है
जिसके फूलों से मुगलों ने अपनी तस्वीर के रंग उभारे उसी ढाक के रंग की दिलकशी से
"बसावन" ने, "दसवंत" ने मुगल-ए-आजम के दरबार में दाद पाई यहा एक बूढ़ा शजर भी है
जो जीस्त के खारजारों से तंग आ के गौतम बना
ज्ञान में महब है
सुबक गाम वादे-मुअत्तर के झोंकों से फरहां व शादां हुजूमे गुलो-रंग पर तब्सिरे कर रहे हैं
सरेशाम फिर बाग में आ गया हूं
--शाम से ही, संध्या से ही बगीचे में आ गया हूं। इसी मखजने-रंगो-बूकीलगन में
--यह रंग और सुंगध का खजाना मुझे खींच लाया है।
कि जिसने कभी रूह को ताजगी

कैफो-मस्ती की दौलत अता की
क्योंकि इसी से कभी-कभी जीवन में मस्ती आई; और इसी से कभी-कभी आनंद का स्वाद मिला; और इसी से कभी-कभी आत्मा की झलक मिली।
कि जिसने कभी रूह को ताजगी
कैफो-मस्ती की दौलत अता की
इसलिए तो कभी सागर को देखते-देखते ध्यान की झलक आ जाती है। कभी हिमालय
पर शांत हरियाली को देखते-देखते तुम्हारे भीतर कुछ हरा हो जाता है। कभी गुलाब की पंखुड़ियों को खुलते देखते-देखते तुम्हारे भीतर कुछ खुल जाता है। हम इस प्रकृति के हिस्से हैं। हम भी एक पौधे हैं। हमारी भी यहां जड़ें हैं। यह जमीन जितनी वृक्षों की है, उतनी हमारी है। ये वृक्ष जैसे जमीन से पैदा हुए, हम भी पैदा हुए हैं। सागर में जो जल लहरें ले रहा है, वही जल हमारे भीतर भी लहरें ले रहा है। वृक्षों में जो हरियाली है, वही हमारा जीवन भी है।
कि जिसने कभी रूह को ताजगी
कैफो-मस्ती की दौलत अता की
फजां को दिलावेजी-ए-जाविदां दी
और इस सौंदर्य को देखते हो--इसने प्रकृति को कैसे अमरता दी है। वृक्ष आते हैं, चले जाते हैं--हरियाली बनी रहती है; हरियाली अमर है। फूल आते हैं, चले जाते हैं--फुलवारी बनी रहती है; फुलवारी अमर है। आज एक पौधा है। कल दूसरा होगा, परसों तीसरा होगा--लेकिन तीनों किसी एक ही जीवन के अंग हैं। एक ही सिलसिला है। एक ही सातत्य है।
फजां को दिलावेजी-ए-जाविदां दी
निगाहों को हुस्ने-तलब के नये जाविए
और जिसने प्रकृति को देखा, उसी को देखने के नये कोण, नई दृष्टियां, नये दर्शन उपलब्ध होते हैं। "निगाहो को हुस्ने-तलब के नये जाविए।" उसी को सौंदर्य को परखने की नई आंख मिलती है, नई कसौटियां मिलती हैं।
"दिल को तहजीबे-जजबात दे कर।"... और उसी प्रकृति के माध्यम से भावना को सभ्यता मिलती है। जो लोग प्रकृति से अपरिचित हैं, उनकी भावना असभ्य होती है। जिसने कभी फूल खिलते नहीं देखा, वह आदमी अभी पूरा आदमी नहीं। और जिसने कभी पक्षियों के गीत शांति से बैठ कर नहीं सुने, और जो आदमियों की आवाज ही सुनता रहा है, वह आदमी नहीं। और जिसने कभी रात के चांद-तारों से गुफ्तगु न की, वह आदमी आदमी नहीं; वह आदमी बहुत अधूरा है।
लंदन में कुछ वर्षों पहले एक गणना की गई--लंदन के बच्चों की। उनसे प्रश्न पूछे गए। जब मैंने गणना देखी, तो मेरा हृदय आंसुओं से भर आया। लंदन के दस लाख बच्चों ने यह कहा है कि उन्होंने गाय नहीं देखी, खेत नहीं देखे। सीमेंट से पटी सड़कें जिंदगी की खबर नहीं देती, मौत की खबर देती हैं। सीमेंट के खड़े हुए आकाश छूते मकान, जहां से वृक्ष विदा हो गए हैं, वहां से परमात्मा भी विदा हो गया है।
मशीनें और आदमी की बनाई हुई चीजें कैसे तुम्हें परमात्मा की खबर दें! आदमी की बनाई चीजें आदमी को खबर देती हैं। कारें हैं, ट्रेने हैं, हवाई जहाज हैं, बड़े कल-कारखाने हैं, धुआं फेंकती हुई उनकी बड़ी चिमनियां हैं, बड़े ऊंचे मकान हैं, चौड़े सपाट सीमेंट के रास्ते हैं--इसमें तुम परमात्मा को कहां खोजोगे! इससे तुम्हें अगर परमात्मा के संबंध मे शक होने लगे, तो आश्चर्य क्या!
परमात्मा को खोजना हो, तो वहां खोजो, जहां चीजें बढ़ती हैं। बड़े से बड़ा मकान भी अपने-आप नहीं बढ़ता। उसमें जीवन नहीं है। और लंबे से लंबा रास्ता भी अपने-आप नहीं बढ़ता। उसमें जीवन नहीं है। एक बीज में ज्यादा छिपा है; जितना लंदन में, न्यूयार्क या बंबई में छिपा है, उससे ज्यादा एक छोटे से बीज में छिपा है, क्योंकि बीज बढ़ता है। बीज में जीवन छिपा है और जीवन में परमात्मा छिपा है।
"दिल को तहजीबे जजबात दे कर।"... और जिस आदमी ने आदमी की बनाई चीजें देखीं, वह आदमी कठोर हो जाएगा। जिसने परमात्मा की कोमल बनाई चीजें देखीं, वह आदमी भावनाओं की दृष्टि से सभ्य हो जाएगा।

दिल का तहजीबे-जजबात दे कर
रिवायत से प्यार करना सिखाया
और जिसने प्रकृति को देखा, वही शाश्वतता को प्रेम कर पाएगा, क्योंकि
वह देखेगाः यहां शाश्वत है। गुलाबों के फूल बहुत हुए और गए, लेकिन गुलाब का फूल बना है। कुछ फर्क नहीं पड़ता--एक फूल जाता है, दूसरा उसकी जगह भर देता है। परमात्मा का सृजन अनंत है।
यहां कासनी ऊदे-ऊदे गुलाबी, शहाबी
सभी फूल हैं!
और इस प्रकृति को तुम देखोगे, तो तुम्हें समझ में आएगाः यहां कितने- कितने ढंग के फूल हैं! कितने रंग, कितने ढंग! कितने अद्वितीय! कहां गुलाब, कहां गेंदा, कहां कमल, कहां चंपा, कहां चमेली! सब कितने अलग! और सब में एक का ही वास है। और सब में एक की ही है सुवास है।
ऐसे ही लोग भी अलग-अलग हैं! ऐसे ही लोग भी भिन्न-भिन्न हैं। उनकी प्रार्थनाएं भी भिन्न-भिन्न होंगी। उनकी भावनाएं भी भिन्न-भिन्न होंगी। प्रकृति को देखोगे, तो तुम्हें भिन्नता में एकता दिखाई पड़ेगी। और जिसको भिन्नता में एकता दिखाई पड़ गई, उसको मनुष्य का अन्तस्तल दिखाई पड़ गया।
यहां कासनी ऊदे-ऊदे, गुलाबी, शहाबी
सभी फूल हैं!
सब्जाजारों जाएं तो बेले की खुशबू
और अगर जरा भीतर घुसें तो बेले की मोहक, बेले की खुशबू! फरावां- फरावां... जैसे-जैसे पास जाओ वैसे-वैसे बढ़ती जाती है। फरावां-फरावां! "कहीं मोतिए, कहीं चमेली की महकार राहत-बदामां"...
कहीं मोतिए, कहीं चमेली की महकार, आनंददायी महकार!
"गुलाबों के तख्तों में हर दीदा-ओ-दिल की तस्कीं का सामां"...
और हर फूल में, अगर तुम्हारे पास देखने की आंख हो, तो तुम्हारे दुखों
को छीन लेने की सामर्थ्य है; तुम्हारी बेचैनी को छीन लेने की सामर्थ्य है। "गुलाबों के तख्तों में हर दीदा-ओ-दिल की तस्कीं का सामां"...
--नजर और दिल को संतुष्ट कर दे, ऐसा रहस्य, ऐसा जादू चारों तरफ छाया हुआ है। यहां ढाक है।
जिसके फूलों से मुगलों ने अपनी तस्वीर के रंग उभारे।
--वहां ढाक नाम का वृक्ष है, जिसके रंग मुगल चित्रकला में दिखाई पड़ेंगे।
उसी ढाक के रंग की दिलकशी से
"बसावन" ने, "दसवंत" ने मुगले-ए-आजम के दरबार में दाद पाई।
ये दो चित्रकार थे अकबर के जमाने में--बसावन और दसवंत। उन्होंने ढाक
के रंगों से ही चित्र रंगे हैं और बड़ी दाद पाई, बड़ी इज्जत पाई।
यहां एक बूढ़ा शजर भी है।
--यहां एक बूढ़ा वृक्ष भी है।
यहां एक बूढ़ा शजर भी है।
जो जीस्त के खारजारों से तंग आ के गौतम बना
--जो जिंदगी के दुखों, पीड़ाओं, कष्टों, जो जिंदगी के कांटों से बहुत परेशान हो कर गौतम बन गया है।
यहां एक बूढ़ा शजर भी है।
जो जीस्त के खारजारों से तंग आ के गौतम बना
ज्ञान में महब है।
जो अपने ध्यान में बैठा है। जो शांत हो गया है। जिसने बाहर से आंख बंद
कर ली है। जो अपने भीतर डूब गया है।
यहां एक बूढ़ा शजर भी है।
जो जीस्त के खारजारों से तंग आ के गौतम बना
ज्ञान में महब है।
सुबह गान वादे-मुअत्तर के झोंकों से फरहां व शादां
हुजूमे गुलो-रंग पर तब्सिरे कर रहे हैं।

--और मंद गति से सुगंधित हवा आ रही है, प्रसन्न हवा आ रही है। और हवा फूलों के रंगों पर विचार-विमर्श कर रही है। हर फूल के पास थोड़ी देर ठहरती है, देखती है, रस लेती है; आगे बढ़ जाती है, सोचती है।
प्रकृति के पास जाओ।
तुम पूछते होः कहां से शुरू करें?
मैं कहता हूंः प्रकृति से शुरू करो। प्रकृति में डुबने लगो। एक घंटा
तो कम से कम खोज ही लो, जो आदमियों से दूर, एक दूसरी भाषा में, एक दूसरे जगत में तुम्हें ले जाए।
आदमी जरूरत से ज्यादा आदमी से भर गया है। उससे छुटकारा चाहिए। थोड़ा दरवाजा खोलो। और प्रकृति श्रेष्ठतम है, जहां से राह बन सकती है। और जब प्रकृति को देखने की तुममें सामर्थ्य आ जाएगी, तो तुम अचानक पाओगेः परमात्मा दूर नहीं, यहीं छिपा है। यह सारा राग-रंग उसी का है। इस सबके पीछे उसी का हाथ है और इस सबके पीछे उसी के प्राण की धड़कन है। उसी का हृदय धड़क रहा है।
आदमी में ही रहे, आदमी में ही उलझे रहे, तो चूकते चले जाओगे। आदमी को भूलो--बिसारो।
मैं तुमसे यह नहीं कहता हूं कि तुम सदा के लिए जंगल भाग जाओ। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता हूं कि तुम सदा के लिए वृक्षों और पौधों के हो जाओ। वह भी गलती होगी। क्योंकि ऐसे तो जिस दिन तुम्हें समझ आएगी, तुम पाओगेः आदमी भी उसी की अभिव्यक्ति है। उसकी सबसे बड़ी अभिव्यक्ति आदमी है। फूलों में कुछ भी नहीं फूला है--आदमी में चैतन्य फूला है।
मगर शुरुआत करो--अ ब स से। आदमी को शायद तुम अभी समझ भी न पाओ। शुरुआत करो--तुतलाने से। फिर आदमी नाम के महाकाव्य को भी समझ पाओगे।
जिस दिन फूल में तुम्हें परमात्मा की छवि दिख जाएगी, उस दिन क्या तुम्हें लोगों की आंखों में परमात्मा नहीं दिखाई पड़ेगा? कौन फूल लोगों की आंखों से मुकाबला कर सकता है? जिस दिन तुम्हें फूलों में परमात्मा दिखाई पड़ेगा उस दिन मुस्कुराहट में किसी के ओठों पर तुम्हें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ेगा? कौन फूल आदमी की मुस्कुराहट का मुकाबला कर सकता है? हां, फूल चटखते हैं और उनकी आवाजें होती हैं; लेकिन जब कोई आदमी हंसता है और जब फुलझड़ी झरती है हंसी की, तो कौन फुल उसका मुकाबला कर सकता है!
माना कि वृक्ष हरे हैं, और माना कि वृक्ष बड़े शांत हैं; मगर कौन आदमी
की मस्ती और आदमी के जीवन और आदमी की उमंग और आदमी के उत्साह का मुकाबला कर सकता है!
यह सच है कि कभी तुम्हें बूढ़ा वृक्ष मिल जाए, जो अपने भीतर शांत बैठा है, मौन बैठा है, ध्यान में डूबा है। लेकिन गौतम बुद्ध का मुकाबला तो कोई भी वृक्ष न कर पाएगा--वह वृक्ष भी नहीं, जिसके नीचे बैठ कर गौतम बुद्ध बने। मनुष्य की चेतना तो आत्यंतिक, आखिरी फूल है--जगत का, अस्तित्व का। इसलिए मैं यह नहीं कहता कि आदमी से सदा के लिए भाग जाओ। मैं यह कहता हूंः आदमी को जानना हो तो थोड़ी देर के लिए आदमी से मुक्त हो जाओः थोड़ी दूरी बनाओ; थोड़े वृक्षों से दोस्ती करो; पशु-पौधों-पक्षियों से दोस्ती करो। और तब तुम एक दिन जब आदमी पर लौट कर आओगे; और ये पक्षियों, पौधों, वृक्षों से जो तुम पाठ ले कर आओगे और तुम्हारा हृदय, तुम्हारी भावनाएं सभ्य हो गई होंगी; तुम किसी काव्य से, अभिनव काव्य से भरे जब आदमी को फिर से देखोगे, तब तुम पहचानोगे कि आदमी परमात्मा की प्रतिलिपि है।
प्रकृति से शुरू करो।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
पांचवां प्रवचन

क्या मेरा क्या तेरा

सूत्र

रे यामै क्या मेरा क्या तेरा।
लाज न मरहिं कहत घर मेरा।।
चारि पहर निसि भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा।
जैसे बनिए हाट पसारा, सब जग कासो सिरजनहारा।।
ये ले जारे वे ले गाड़े, इन दुखिइनि दोऊ घर छाड़े।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह विनसि रहेगा सोई।।

मन तू पार उतर कहं जैहौं।
आगे पंथी पंथ न कोई, कूच-मुकाम न पैहों।।
नहिं तहं नीर नाव नहिं खेवट, ना गुन खैंचनहारा।
धरती-गगन-कल्प कछु नाहीं, ना कुछ वार न पारा।।
नहिं तन नहिं मन, नहीं अपनपौं, सुन्न में सुद्ध न पैहौ।
बलीवान होय पैठो घट में, वाहीं ठौंरें होइहौ।।
बार हि बार विचार देख मन, अन्त कहूं मत जैहो।
कहै कबीर सब छाड़ि कल्पना, ज्यों के त्यों ठहरैहौ।।

ज्युं मन मेरा तुज्झ सौं, यों जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ।।
कबीर जाको खोजते, पायो सोई ठौर।
सोई फिरि कै तूं भया, जाको कहता और।।
मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारे और।
लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर।।

दोस्तो! तुम इसे महसूस करो या न करो रोशनी जहर की लपटों में सिमट आई है चुपके ही चुपके पिए जाती है शबनम का लहू आओ वो देखो सबे-माह का कातिल सूरज अपनी किरणों का कमन्द फैंक रहा है हर सू कौन है कौन नहीं जद में ये सोचा न करो
ख्वाब की लहर सिमट आई है आंसू बन कर
हासिले-शब है यही, इसको बचा कर रख लो
अपनी गुम-गश्ता सहर की ये मता-ए-आखिर
हो सके तो इसे दामन में छुपाकर रख लो
हसरते दीदा-ए-नमनाक को रुसवा न करो।
आदमी की जिंदगी का हासिल क्या है? अंतिम पूंजी क्या है?
"ख्वाब की लहर सिमट आई है आंसू बन कर
हासिले-सब है यही, इसको बचा कर रख लो
इस जिंदगी की पूरी अंधेरी रात का एक ही परिणाम है--दुख। बस एक ही संपत्ति है--आंसू! यहां कुछ आदमी पाता नहीं, कुछ गंवाता जरूर है। हम जितने खाली हाथ आते हैं संसार में, उससे कहीं ज्यादा खाली हाथ जाते हैं। हम कुछ गंवा कर जाते हैं। आते तो खाली हैं ही, लेकिन कम से कम मुट्ठी बंद होती है। बच्चा पैदा होता है, तो मुट्ठी बंद होती है। हालांकि खाली--पर कम से कम बंद होती है। और जब जाता है, तब भी खाली होती है। लेकिन तब खुली होती है। सब लुट गया।
जिंदगी लूटती है--देती कुछ भी नहीं। और जिंदगी लूट लेती है इस तरकीब
से कि पता भी नहीं चलता। और तुम तो इसी खयाल में रहते हो कि कमा रहे हो; तुम तो इसी भ्रम में रहते हो कि कमा लिया है। और कमाए जा रहे हो। यह अपना हो

गया; वह अपना हो गया; इतनी जमीन इतनी जायदाद, इतना नाम, इतनी प्रतिष्ठा! इसी कमाने के धोखे में तुम सब गंवा देते हो।
धनी से ज्यादा गरीब आदमी खोजना कठिन है। और जो बड़े पदों पर बैठे हैं, उनसे ज्यादा रिक्त आत्माएं खोजनी कठिन हैं। भिखमंगे हैं; भ्रांति भर है कि भिखमंगे नहीं हैं। सौभाग्यशाली है वह, जिसे यह समझ में आ जाए कि जिंदगी लूटती है; जिंदगी लुटेरा है।
दोस्तो! तुम इसे महसूस करो या न करो
रोशनी जहर की लपटों में सिमट आई है।
जिस दिन से तुम पैदा हुए हो, उस दिन से मरने के सिवाय कुछ और तुमने किया नहीं है। उस दिन से मर रहे हो। जहर करीब आती जा रही हैः मौत करीब आती जा रही है। और जिसको तुम रोशनी कहते हो, वह सदा जहर में घिरी हुई है। जिसको तुम जिंदगी कहतो हो, वह चारों तरफ मौत से लिपटी हुई है। मौत का कफन तुम्हें लपेटे हुए है। एक दिन बीतता है, एक दिन और मर गए। जिंदगी और कम हुई; तुम और अशक्त हुए। ऐसे बूंद-बूंद करके यह गागर चुक जाएगी।
और मजा यह है कि तुम इसी खयाल में हो कि तुम गागर भर रहे हो। तुम इसी खयाल में हो कि गागर भर रही रोज। थोड़ी दूर और है सपना; और पूरा होने के करीब है। जरा और मेहनत--और तुम पहुंच जाओगे मंजिल पर।
दोस्तो! तुम इसे महसूस करो या न करो
रोशनी जहर की लपटों में सिमट आई है।
चुपके ही चुपके जाती है शबनम का लहू
तुम्हारा खून मौत पिए जा रही है। ऐसा नहीं है कि सत्तर साल बाद एक दिन अचानक मौत आ जाती है। मौत प्रतिपल आ रही है; तुम रोज ही मर रहे हो। सत्तर साल में मौत का काम पूरा होता है; मौत सत्तर साल के बाद अचानक नहीं आती। धीरे-धीरे आती है, आहिस्ता-आहिस्ता आती है। तुम्हें पता भी नहीं चलता और आती चली जाती है। पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती, इतने चुपचाप आती है। फुसफुसाहट भी नहीं होती; शोरगुल भी नहीं होता; द्वार-दरवाजे पर दस्तक भी नहीं होती।
चुपके ही चुपके पिए है शबनम का लहू
आओ वो देखो शबे-माह का कातिल सूरज
अपनी किरणों का कमन्द फैंक रहा है सर सू
हर तरफ जाल है! "कौन है कौन नहीं जद में ये सोचा न करो"--इस विचार में
पत पड़ा करो कि कौन आज मर गया, कौन कल मर गया; कौन आज फंस गया जाल में, कौन कल फंस गया--यह मत सोचा करो। "कौन है कौन नहीं जद में ये सोचा न करो।"
जब भी कोई मरता है। तब याद किया करो कि तुम मर गए; जिंदगी और कम हो गई।
जब भी कोई मरता है, तुम्हीं मरते हो। हर मौत तुम्हारी मौत की खबर है। "दोस्तो! तुम इसे महसूस करो या न करो।" यह तुम्हारी मरजी। महसूस कर लो,
तो जीवन में धर्म की शुरुआत होती है। महसूस न करो, तो जिंदगी व्यर्थ की बातों में उलझे-उलझे ही समाप्त हो जाती है। आखिर में पाओगे--आंसुओं के अतिरिक्त हाथों में कुछ भी नहीं है। जिंदगी भर दौड़े और आंसुओं के अतिरिक्त और कोई सम्पदा नहीं है।
ख्वाब की लहर सिमट आई है आंसू बन कर
हासिले-शब है यही... ।"
जिंदगी की पूरी रात का यही हासिल है। "हासिले-शब है यही, इसको बचा कर
रख लो।"
"अपनी गुमगश्ता सहर की ये मता-ए-आखिर।"... वह जो जिंदगी की सुबह खो गई,
वह जो जिंदगी का सारा का सारा समय, अवसर खो गया... । "अपनी गुमगश्ता सहर की ये मता-ए-आखिर"--उसी खोई हुई सुबह की बस यह आखिरी पूंजी है--यह आंसू।
मरते वक्त आदमी की आंख से जो आंसू गिर जाते हैं दो, यह जिंदगी का हासिल है। जो इसे देख लेता है, समय रहते जाग जाता है। मौत के पहले जाग जाओ, तो ही जिंदा थे। मौत के पहले न जागे, तो नाममात्र की जिंदगी थी--ऐसे तुम मुर्दा थे।

श्वास चलने का नाम जिंदगी नहीं है। और न हृदय के धड़कने का नाम जिंदगी है। जिंदगी जागरण है, क्योंकि जागरण में ही बुद्धत्व की संपदा है। बुद्ध हुए बिना चले गए, तो सब गंवा कर चले गए।
बुद्ध होकर जाओ। कस्त करो, कसम खाओ कि बुद्ध होकर जाएंगे, जाग कर जाएंगे। ऐसे सोए-सोए जीए और सोए-सोए मर न जाएंगे। एक दीया जलाएंगे रोशनी का भीतर। प्राणों की आहुति देंगे। प्राणों को जलाएंगे, मगर रोशनी करेंगे। और एक बार भीतर रोशनी हो जाए, तो फिर रोशनी कभी बुझती नहीं। फिर कोई अंधड़-तुफान उसे छीन नहीं सकता। उसको ही ज्ञानियों ने संपत्ति कहा है, जो छीनी न जा सके। जो छिन जाए, उसे सम्पत्ति नासमझ कहते हैं।
समझदार उसे सम्पत्ति कहते हैं, जो तुम्हारा स्वभाव है। तुम्हारे पास ऐसा कुछ है, जो तुमसे न छीना जा सके। सोचना; खोजना; विचार करना। तुम्हारे पास कुछ है, जो तुमसे छीना न जा सके?
तुम्हारा धन छीना जा सकता है। तुम्हारा पद छीना जा सकता है। तुम्हारी पत्नी छीनी जा सकती है। तुम्हारा पति छीना जा सकता है। कोई न भी छीनेगा, तो मौत छीन लेगी। तुम्हारी देह भी छिन जाएगी, और तुम्हारा मन भी छिन जाएगा। तुम्हारे पास कुछ है जो लूटा न जा सके, जिसे लूटने का उपाय ही न हो। महावीर के पास उस समय का सम्राट प्रसेनजित गया, और उसने महावीर से कहा
कि "आपकी बातें सुनीं और मुझे साफ
दिखाई पड़ने लगा कि मैं बिल्कुल दरिद्र हूं। सब है मेरे पास और कुछ भी नहीं मेरे पास! तुमने मुझे चौंका दिया, तुमने मेरी नींद तोड़ दी। मैं एक ख्वाब देखता था, एक सपना देखता था--सम्राट होने का। मगर मेरे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन तुमने मुझे पीड़ा से भी भर
दिया है। बड़ा संताप मेरे हृदय में पैदा हो गया है। मैं निर्धन हूं। तुम जिस धन की बात कर रहे हो, वह मैं कहां पाऊं? कैसे पाऊं?
महावीर ने कहा, "मैं तो ध्यान को ही धन कहता हूं। कोई और धन नहीं है। कहीं और पाने जाना नहीं है।" लेकिन प्रसेनजित तो प्रसेनजित! जिंदगी में बाहर ही बाहर दौड़ की थी; बड़ी यात्राएं की थीः बड़ा राज्य बनाया था; दूर दूर तक जीता था, पताका पहराई थी। उसने कहा, "तुम फिकर न करो, कोई भी हो, कैसा भी धन हो, तुम मुझे बता दो कहां है, मैं जीत लाऊंगा।"
महावीर हंसे। उन्होंने कहा, "यह जीतने की बात नहीं है। और यह बाहर नहीं है। फौज-फांटा काम नहीं पड़ेगा।" प्रसेनजित ने कहा, "आप इसकी फिकर ही न करें। दुनिया में मैंने ऐसी कोई चीज नहीं देखी, जिसको मैंने चाहा हो और न पा लिया हो। मैं सब तरह की कीमत चुकाने को तैयार हूं। जो भी मूल्य हो, दे दूंगा। सारा राज्य भी देना पड़े, तो दे दूंगा, मगर ध्यान लेकर रहूंगा।" महावीर ने कहा, "कुछ भी देने से ध्यान नहीं मिलता। यह लेने-देने की बात
ही नहीं है।" लेकिन उसकी कुछ समझ में न आए। उसने सब चीजें खरीदी थीं दुनिया में; सब तरह की जीत की थी। सोचता था--ध्यान भी जीत लेंगे, ध्यान भी खरीद लेंगे। और ऐसा प्रसेनजित ही सोचता हो, ऐसा नहीं है; तुम भी इसी तरह सोचते हो। सभी इसी तरह सोचते हैं।
उसको महावीर की बात समझ न पड़ी, तो महावीर ने कहा, "ऐसा करो, तुम्हारे गांव में ही एक गरीब आदमी है, उसको ध्यान मिल गया है। वह मेरा शिष्य है; गरीब है; उसके पास कुछ नहीं है। तुम उससे खरीद लो। वह शायद बेचने को रजी हो जाए!" यह महावीर ने मजाक किया।
प्रसेनजित अपना रथ लेकर उस गरीब के दरवाजे पर रुका। गरीब उसके चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, "आपके आने की जरूरत क्या थी? आप मुझे बुला भेजते? आज्ञा दे देते!" प्रसेनजित ने कहा, "आना पड़ा। मैं ध्यान लेने आया हूं। महावीर ने कहाः तुझे ध्यान मिल गया है। तू धन्यभागी है। ध्यान मुझे दे दे और धन तुझे जितना चाहिए, वह तू ले ले।"
वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा, "मालूम होता है, महावीर ने मजाक की है। मैं अपने प्राण दे सकता हूं, लेकिन ध्यान कैसे दे सकता हूं? और ऐसा नहीं है कि मैं देना नहीं चाहता। मगर ध्यान दिया ही नहीं जा सकता। ध्यान तो आंतरिक सम्पदा है; आविष्कार करना होता है। बाहर जाने से नहीं मिलता; भीतर जाने से मिलता है। ध्यान तो प्रत्येक लेकर ही पैदा हुआ है।"

दो धन हैं इस दुनिया में; एक धन है--ध्यान, जिसे तुम लेकर पैदा हुए हो,
जो तुम्हारी गुदड़ी में ही छिपा है; जो हीरा तुम्हारे भीतर ही पड़ा है। और एक है--धन, उसके बहुत रूप हैं। उसे तुम लेकर पैदा नहीं हुए हो। जिसे तुम लेकर पैदा नहीं हुए हो, उसको तुम जिंदगी भर दौड़ते हो--पाने को, और मौत उसे छीन लेगी। क्योंकि जिसे तुम जिंदगी के साथ नहीं लाए, उसे तुम मौत के पार न ले जा सकोगे। जिसे तुम जन्म के पहले से ही लाए हो, वही तुम मौत के पार भी ले जा सकोगे।
इसलिए झेन फकीर अपने शिष्यों को कहते हैंः आंख बंद करो, और उस जगह पहुंचो जहां तुम जन्म के पहले थे। अगर तुमने वह जगह अपने भीतर पा ली, तो फिर तुमसे कुछ छीना न जा सकेगा।
मौत वही छीन सकती है, जो जन्म ने दिया। उसके पार जो है, वह मौत के बाहर है। और जो मौत के बाहर
मौत वही छीन सकती है, जो जन्म ने दिया। उसके पार जो है, वह मौत के बाहर है। और जो मौत के बाहर है, वही अमृत है। और जो मौत के बाहर है, वही परमात्मा है!
एक धन है, जो बाहर खोजने से मिलता है। एक तो बड़ी मुश्किल से मिलता है; खोजे-खोजे मिलता है; हजार खोजने निकलते हैं, तो नौ सौ निन्यानबे को नहीं मिलता; एकाध को मिलता है। और बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि जिनको नहीं मिलता, उनको तो नहीं मिलता। जिनको मिलता है, उनसे भी मौत वापस ले लेती है। जो इसके प्रति जाग जाए, समझ जाए, यह होश जिसे आ जाए--उसके जीवन में एक क्रांति पैदा होती है। उसके जीवन में एक नई यात्रा शुरू होती है। उस नई यात्रा का नाम ही धर्म है। उसी को हम खोजते भटकते फिर रहे हैं।
है नसीमे-सुबह आवारा उसी के नाम पर
बू-ए-गुल ठहरी हुई है जिस कली के नाम पर
कुछ न निकला दिल में दागे-हसरते-दिल के सिवा
हाय क्या-क्या तोहमते थीं आदमी के नाम पर
फिर रहा हूं कू-ब-कूं जंजीरे-रुसवाई लिए
है तमाशा सा तमाशा जिंदगी के नाम पर
अब ये आलम है कि हर पत्थर से टकराता हूं सर मार डाला एक बुत ने बंदगी के नाम पर
कुछ इलाज उनका भी सोचा तुमने ऐ चारागरों
वो जो दिल तोड़े गए हैं दिलबरी के नाम पर
कोई पूछे मेरे गमख्वारों से तुमने क्या किया खैर उसने दुश्मनी की दोसती के नाम पर
कोई पाबंदी से हंसने पर न रोना जुर्म है
इतनी आजादी तो है दीवानगी के नाम पर
आप ही के नाम से पाई है दिल ने जिंदगी
खत्म होगा अब ये किस्सा आप ही के नाम पर
कारवाने-सुबह यारों कौन सी मंजिल में है
मैं भटकता फिर रहा हूं रौशनी के नाम पर।
हम टटोल रहे हैं... । "कारवाने-सुबह यारों कौन सी मंजिल में है।" कहां मिलेगी रोशनी? कहां मिलेगा वह प्रभात का कारवां? कहां होंगे दर्शन सूरज के? कहां मिलेगा ऐसा आलोक जो हमें रूपांतरित कर जाएगा? जो हमें ऐसा जीवन दे जाऐगा जिस का कोई अन्त नहीं? जो हमें समय के बाहर ले जाएगा? जो हमें जन्म-मृत्यु की उधेड़-बुन से बचा लेगा?
"कारवाने-सुबह यारों कौन सी मंजिल में है। कहां है वह ठिकाना, वह मंजिल कहां है? "मैं भटकता फिर रहा हूं रौशनी के नाम पर"। हम अंधे हैं और अंधेरे में हैं।
यह असली जन्म नहीं है, जो तुम्हारा मां के गर्भ से हुआ है। एक गर्भ से निकले हो, एक अंधेरे से निकले हो और दूसरे अंधेरे में गिर गए हो। यह तो खाई से बचे, तो कुंए में गिर गए!
मां के पेट में बच्चा गहरे अंधेरे में जीता है। न कुछ सूझता, न कुछ दिखाई पड़ता। फिर पैदा होता है। दिखाई भी पड़ने लगता है, सूझने भी लगता है,

लेकिन बाहर। भीतर अब भी अंधेरा रहता है। भीतर घना अंधेरा रहता है। एक तारा भी नहीं टिमटिमाता। एक मद्धिम सी रोशनी भी नहीं जलती।
यह जन्म कोई असली जन्म नहीं है। इसलिए इस देश में हमने असली जन्म को कहा है--दूसरा जन्म।
जैसे मां के पेट से बाहर निकल कर रोशनी हो गई, ऐसे ही बाहर से निकल कर भीतर चले जाओ--दूसरा जन्म हो जाए--तो भीतर भी रोशनी हो जाए।
यह दूसरा जन्म ही जिसको मिल जाए, उसको हमने ब्राह्मण कहा है। इसलिए ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। द्विज का अर्थ हैः
दुबारा जन्म। एक जन्म तो मां से मिल गया और एक जन्म स्वयं को दिया।
इसलिए सदगुरु को हम मां और पिता से भी ज्यादा आदर देते हैं। कहतें हैंः मां और पिता का ऋण तो चुकाया जा सकता है। लेकिन सदगुरु का ऋण नहीं चुकाया जा सकता। क्योंकि मां और पिता ने तो जन्म दिया, बाहर आंखे खोली।
सदगुरु एक और जन्म देता है; भीतर आंखे खुल जाती हैं। और भीतर सब है।
रोशनियों की रोशनी, सूरजों का सूरज--भीतर सब है।
कबीर के ये पद समझना; बड़े बहुमूल्य हैं।
"रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा"--कबीर कहते हैंः इस संसार में मेरा क्या है, तेरा क्या हैं! हम व्यर्थ की आपाधापी में, व्यर्थ के संघर्ष में पड़े हैं।
लोग लड़ रहे हैंः यह मेरा, वह तेरा! सीमाएं खींच रहे हैं। परिभाषाएं बना रहे हैं। अदालतें चला रहे हैं। युद्ध कर रहे हैं। व्यक्ति लड़ते हैं। समूह लड़ते हैं। राष्ट्र लड़ते हैं। और सारी लड़ाई इस बात की है कि क्या मेरा! "मेरा" ज्यादा हो जाए; "तेरा" कम हो जाए--यह हमारे जीवन की कथा है। और यहां कुछ मेरा नहीं और कुछ तेरा नहीं। न हम कुछ लेकर आए हैं, न कोई और कुछ लेकर आया है। खाली हाथ आए और खाली हाथ जाएंगे।
रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा?
लाज न मरहि कहत घर मेरा।।
कबीर कहते हैंः तुझे शरम भी नहीं आती है! यहां सब परमात्मा का है।
इसमें मेरा-तेरा करने मे तुझे शर्म नहीं आती? तुझे संकोच भी नही होता? रात भर किसी के घर में मेहमान हो गए, तो सुबह उठ कर घोषणा करने लगते हैं कि यह घर मेरा! रात भर किसी घर में मेहमान हो गए, धन्यवाद दो और विदा हो जाओ।
"रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा?" थोड़ी देर के लिए हम यहां अतिथि हैं। मगर हम बड़े झगड़े खड़े कर देते हैं। हमारी जिंदगी झगड़ों में बीत जाती है। थोड़ी देर को हम यहां है, बसेरा है थोड़ी देर का, फिर विदा हो जाएंगे। कब विदा हो जाएंगे, यह भी पक्का नहीं है। सुबह भी होंगी कि नहीं! आधी रात भी विदा हो सकते हैं। अभी हम बैठे हैं और क्षणभर बाद न हों। जहां क्षण भर का भरोसा नहीं है, वहां हम कितने जोर से लड़े जाते हैं! कैसा संघर्ष किए जाते हैं! खून बहाते हैं। मरने-मारने को तत्पर होते हैं। कबीर कहते हैंः तुम्हे लाज भी नहीं आती? थोड़ा संकोच तो करो?" लाज न मरहिं कहत घर मेरा।"
यहां मेरा कुछ भी नहीं है। जिस दिन यह बात दिखाई पड़ जाती है कि यहां मेरा कुछ भी नहीं हैं--उस दिन एक बड़ी अपूर्व घटना घटती है। जैसे ही मेरा कुछ भी नहीं है--यह दिखाई पड़ जाता है, वैसे ही "मैं" का भाव मर जाता है। लोग पूछते हैं मुझसेः अहंकार कैसे छूटे? अहंकार छूट नहीं सकता, जब तक "मेरा" न छूट जाए। क्योंकि "मेरा" ही "मैं" को जन्म देता है। इसलिए तो जितना तुम्हारे पास "मेरा" कहने को बढ़ता जाता है, उतना मैं बड़ा होता जाता है।
एक छोटा सा मकान है, तो तुम्हारा "मैं" भी छोटा सा होता है। फिर तुमने
एक महल बना लिया, तो तुम्हारा "मैं" भी बड़ा हो गया। तुम्हारे पास एक छोटी सी कार है, तो तुम्हारा "मैं" भी छोटा है। फिर एक बड़ी कार ले आए, तो "मैं" बड़ा हो गया। तुम्हारे पास छोटी सी तिजोड़ी थी; बड़ी हो गई, तो "मैं" बड़ा हो गया। तुम दस पच्चीस आदमियों पर मालकियत करते थे, फिर प्रधानमंत्री हो गए और करोड़ों लोगों की मालकियत करने लगे, तो उतना "मैं" बड़ा हो गया।
"मैं" तुम्हारा बढ़ता जाता है "मेरे" के फैलाव से। जिसके पास "मेरा" कहने को कुछ भी नहीं है, उसके पास "मैं" कैसे हो सकता है? इसलिए गरीब की

असली पीड़ा गरीबी नहीं है। गरीब की असली पीड़ा है कि वह अपने "मैं" की घोषणा नहीं कर पाता।
पदहीन की असली पीड़ा पदहीनता नहीं है। पदहीन की असली पीड़ा यह है कि दूसरे उसको रौंदते चले जा रहे हैं। वह प्रतिरोध भी नहीं कर सकता। वह जोर से आवाज भी नहीं उठा सकता। जिसके पास मेरा कहने को कुछ नहीं है, वह किसी से यह नहीं कह सकताः जानते हो मैं कौन हूं? यह कहने का उपाय नहीं है। पहले मेरा होना चाहिए।
मेरे के साम्राज्य के भीतर ही मैं खड़ा होता है। ऐसा समझो कि मैं को मेरे से सहारा मिलता है। चारों तरफ से सहारा मिल जाता है, तो मैं खड़ा हो जाता है। इतना धन, इतना पद, इतनी प्रतिष्ठा, इतना पुण्य इतने व्रत-उपवास, इतना त्याग--कुछ भी जो गणना में आ सके, और जिस पर तुम अपने मेरे की छाप लगा सको कि मेरा, तो मैं बड़ा हो जाता है। अहंकार का भोजन है--मेरा।
कबीर कहते हैंः "रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा"। अगर यह समझ में आ जाए
कि यहां मेरा कुछ भी नहीं है, तो मैं गिर जाएगा। निर-अहंकार भाव अपने से पैदा हो जाएगा।
लोग उलटा काम करते हैं। मेरे को तो गिराते नहीं, निर-निहंकार भाव को साधने की कोशिश करते हैं। विनम्र बनने की कोशिश करते हैं। सिर झुका कर चलते हैं। पैर छुते हैं, कहते हैंः हम तो आपके पैर की धूल। लेकिन उनकी आंख में देखो। उनकी विनम्रता भी उनके अहंकार का आभूषण बन जाती है।
विनम्र आदमी भी बड़ा अहंकार से भरा होता है कि मुझसे ज्यादा विनम्र और कोई भी नहीं है। सिर उठा कर चलता है।
जब कोई तुमसे कहे कि मैं आपके पैरों कि धूल, तो भूल कर यह मत कहना कि आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं; ऐसा तो मैं भी मानता था। तो वह नाराज हो जाएगा; तो शायद गरदन पर चढ़ बैठेगा। वह यह नहीं कह रहा है कि पैरों की धूल है। वह यह कह रहा है कि तुम स्वीकार करो कि मैं कितना विनम्र! मेरी विनम्रता कितनी बड़ी! उसकी बात मान मत लेना। यह मत कह देना कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप; बिल्कुल सच कह रहे हैं। यही तो हम भी मानते हैं; सभी यही मानते हैं कि आप बिल्कुल पैरों की धूल! वह आदमी कभी क्षमा नहीं करेगा। उसने यह कहा भी नहीं था कि मैं पैरों की धूल हूं। वह तो केवल शिष्टाचार था। वह तो अपने अहंकार को प्रकट करने का एक उपाय था। और बड़ा चालबाजी का उपाय खोजा था उसने। उसने बड़ा सूक्ष्म उपाय खोजा था कि मैं ना-कुछ हूं। लेकीन ना-कुछ हूं--इसकी घोषणा वह करता रहेगा।
विनम्र होने की चेष्टा मत करना अन्यथा अहंकार विनम्रता में छिप जाएगा। अहंकार को गिराने का एक ही उपाय है, कि जान लेनाः यहां न मेरा है कुछ, न तेरा है।
लेकिन लोग यह भी करते हैं--कि कहते हैः जब यहां मेरा-तेरा कुछ भी नहीं,
तो घर छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, दुकान छोड़ दिया, संन्यासी हो गए। सब त्याग कर जंगल चले गए। मगर तब उनको दूसरे तरह का मेरा पकड़ लेता है। वे कहते हैंः मैं लाखों रुपये छोड़ आया। त्याग पर "मेरा" भाव बैठ जाता है!
मेरे एक परिचित हैं। कई वर्षों पहले उन्होंने घर छोड़ दिया था। मगर वे अभी भी कहते नहीं थकते... । जब भी बात करते हैं, तो उसको ले आतें हैं बीच-बीच में--कि मैने लाखों रुपये पर लात मार दी।
मैंने उनसे पूछा कि "यह लात मारे भी तीस साल हो गए, मगर यह लात अभी तक लगी नहीं! तुम इसे याद क्यों करते हो? इसे बार-बार क्यों कहते हो? इसका हिसाब-किताब क्यों रखा है? लाखों पर लात मार दी; बात खतम हो गई। कोई बड़ा काम तो किया नहीं!"
नहीं, लेकिन उन्होंने बड़ा काम किया है। उन लाखों के कारण जितने नहीं अकड़ कर चलते थे, उतने अकड़ कर अब चल रहे हैं, क्योंकि लाखों पर लात मार दी है! लाखों तो बहुतों के पास है, लेकिन लाखों पर लात मारनेवाले बहुत कम हैं। इससे अहंकार और मजबूत हुआ।
और मैने उनसे कहा, "जहां तक मुझे पता है, लाख इत्यादि थे भी नहीं। क्योंकि मैने इस पर बड़ी तुम्हारी शोधबीन की है, तो मुझे पता चला कि कोई तीन सौ साठ रुपये--पोस्ट आफिस में जमा थे!"

पहले वे सैकड़ों कहते थे; फिर हिम्मत बढ़ गई, तो हजारों कहने लगे। फिर हिम्मत बढ़ गई, तो लाखों कहने लगे। अब तीस साल पुरानी बात हो गई, अब किसी को मतलब भी नहीं। और त्यागियों के सम्बन्ध में शोध-बीन कौन करे!
धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ती चली गई, वे लाखों कहने लगे। मैंने कहाः "तुम जल्दी ही मरने के पहले करोड़ों कहने लगोगे!"
यह अहंकार बड़ा हो रहा है। त्याग से भी अहंकार निर्मित हो जाता है। तो खयाल रखनाः अगर धन तुम्हारा नहीं है, तो छोड़ने की बात ही कहां उठती है। जो तुम्हारा था ही नहीं, उसे छोड़ोगे कैसे? छोड़ने में भी मेरा है--यह भाव बना है। छोड़ने का मतलब ही यह है। तुम कहते होः "मैंने छोड़ दिया।" जो तुम्हारा नहीं था, उसको छोड़ते हो? क्या तुम ऐसा कहते हो कि मैंने सूरज का त्याग कर दिया? कि मैने आज आकाश को मुक्ति दे दी! कि अब चांद-तारों को मैं बंधन में नहीं रखता! तो किसी से तुम कहोगे, तो वह समझेगा कि तुम पागल हो गए हो! चांद-तारे तुम्हारे बंधन में कब थे? आकाश को तुमने मुक्ति दे दी? तो तुम क्या कह रहे हो! सूरज को तुमने स्वतंत्रता दे दी! तुम्हारा दिमाग ठीक है? वे तो मुक्त थे ही!
जब तुम कहते होः मैंने छोड़ दिया धन, तो तुम इसी बात की घोषणा कर रहे हो, फिर परोक्ष, कि धन मेरा था, मैंने छोड़ दिया। जो मेरा नहीं था, उसे छोड़ोगे कैसे?
असली ज्ञान वस्तु का त्याग नहीं है। असली ज्ञान ममत्व से जाग जाना है। बस।
मेरा यहां कुछ है ही नहीं; त्यागी बनूं कैसे? जो है, उसका है। जो है-- अस्तित्व का है। मेरा यहां कुछ भी नहीं है।
सुबह तुम जब धर्मशाला से उठ कर अपनी यात्रा पर निकलते हो, तो तुम यह नहीं कहते कि मैंने धर्मशाला का त्याग कर दिया। तुम त्यागी नहीं बनते। लेकिन जब तुम अपना घर छोड़ कर जंगल चले जाते हो, तुम कहते होः मैंने त्याग कर दिया! जब तुम कहते होः मैंने अपनी पत्नी छोड़ दी... ।
एक जैन मुनि थे--गणेशवर्णी। जैनों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी जीवन-कथा मैं पढ़ता था, तो एक बड़े अनुठे प्रसंग पर आया। जीवन-कथा तो भक्तों ने लिखी है, तो भाव से लिखी है। और जो उल्लेख किया है, वह भी इसी खयाल से किया है कि लोग प्रभावित होंगे।
गणेशवर्णी हिंदू थे जन्म से, फिर धर्म रूपांतरित किया और जैन हो गए। इसलिए जैनों में उनकी प्रतिष्ठा खूब थी। हिंदुओं में अनादर था, जैनों में प्रतिष्ठा थी।
जब कोई हिंदू मुसलमान हो जाता है, तो मुसलमानों में आदर होता है, हिंदुओं में अनादर हो जाता है। कोई मुसलमान अगर हिंदू हो जाए, तो हिंदू बड़ा शोरगुल मचा कर स्वागत करते हैं। क्योंकि उससे सिद्ध होता है--हमारा धर्म ठीक; दूसरे का गलत। नहीं तो यह आदमी छोड़ कर क्यों आता? इसलिए तो एक धर्म से दूसरे धर्म में लोगों को खींचने की इतनी कोशिश चलती है। गणेशवर्णी की बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई पच्चीस साल बाद घर छोड़ने के, उनके पत्नी की मृत्यु हुई, तब वे काशी में थे। पत्र पहुंचा--कि पत्नी की मृत्यु हो गई, तो पत्र पढ़ कर जो उनके पास लोग बैठे थे, उन्होंने उनसे कहाः "चलो झंझट मिटी।" तो जिसने उनकी आत्मकथा में यह उल्लेख किया है, कि गणेशवर्णी ने कहा कि चलो झंझट मिटी... । कैसे त्यागी थे! कैसे महात्यागी? पत्नी मर गई, आंसू न गिरा! ऐसी मोह से मुक्ति। उलटे यह कहा कि चलो झंझट मिटी!
जिस आदमी ने वह किताब लिखी है, वह मेरे पास किताब भेंट करने आए थे। मैंने उनसे कहा कि रुको, मुझे थोड़ी बात करनी है। पच्चीस साल पहले जिस पत्नी को छोड़ कर चले गए थे, उसकी झंझट बाकी थी? जरूर मन में कहीं चल रही होगी। जब छोड़ ही चुके थे पत्नी को, पचीस साल हो गए, तो झंझट बाकी रही थी और इससे कुछ त्याग पता नहीं चलता, केवल हिंसात्मक मन का पता चलता है। मन में कहीं कुछ लगा था; कुछ सिलसिला जारी रहा होगा--मोह का, माया का, वासना का, या डर रहा होगा कि कहीं पत्नी आ न जाए। पत्नी से भय रहा होगा। भय रहा होगा कि कहीं मैं फिर उसमें उत्सुक न हो जाऊं? कहीं मेरा मन डांवाडोल न हो जाए?

पत्नी कहां दूर; गरीब; चक्की पीस-पीस कर किसी तरह अपना भोजन जुटाती रही। उसकी झंझट थी!
"झंझट बताती है कि मन में कुछ रोग जारी रहा, जहर जारी रहा। और पत्नी के मरने पर यह कहना कि झंझट मिटी, यह भी बताता है कि कहीं न कहीं मन में यह खयाल रहा होगा कि मर जाए--तो अच्छा। कहीं न कहीं हिंसा की भावना मन में रही होगी।
पति अक्सर सोचते हैं कि मर जाए यह स्त्री तो अच्छा; झंझट मिटे। पत्नियां भी कभी-कभी सोच लेती हैं, इतना ज्यादा नहीं, लेकिन कभी-कभी सोच लेती हैं कि खतम हो यह आदमी तो झंझट मिटे। और तो कोई उपाय नहीं दिखता। मौत आ जाए तो झंझट सुलझ जाए। अपने को झंझट भी न करनी पड़े और मामला खतम हो जाए! मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी, तो उसका ताबूत निकाला गया। जब ताबूत निकाल रहे थे, तो आंगन में एक नीम का झाड़ था, उससे ताबूत टकरा गया। संयोग की बात--ताबूत क्या टकराया, पत्नी ढक्कन खोल कर बैठ गई! मरी नहीं थी। शायद जल्दी... ! मुल्ला ने जरा जल्दी कर दी। पत्नियां मर जाएं, तो लोग जल्दी करते हैं, कि अब कहीं खतरा और कुछ न हो जाए; विदा करो! शायद अभी श्वास अटकी थी। मरी नहीं थी; शायद बेहोश ही थी। धक्का नीम के झाड़ से लग गया, तो जग गई। फिर तीन साल और जिंदा रही। फिर तीन साल बाद मरी। और जब ताबूत निकाला जाने लगा, तो मुल्ला ने कहा, "भाइयो, जरा सम्हाल कर; फिर नीम से मत टकरा देना। जो एक दफा भूल हो गई--हो गई!"
गणेशवर्णी का यह कहना कि झंझट मिटी, कहीं मन में हिंसा के भाव की खबर देता है! मन के किसी कोने में यह भाव रहा होगा कि यह मर जाए। मर जाती, तो अच्छा था। पहले तो यह सोचना कि हम त्याग कर आ गए पत्नी को--नासमझी है। पत्नी तुम्हारी है? यहां क्या मेरा, क्या तेरा?
"लाज न मरहिं कहत घर मेरा।" कबीर बड़ी ठीक बात कहते हैं कि तुझे लाज भी नहीं आती? तुझे संकोच भी नहीं लगता? यहां घड़ी भर को मेहमान है और घर मेरा कहने लगा?
सम्यक ज्ञानी, ठीक-ठीक समझने वाला व्यक्ति न तो कुछ छोड़ता है, न कुछ पकड़ता है। सिर्फ इतना जानता हैः यहां न कुछ पकड़ने को है, यहां न कुछ छोड़ने को है। सम्यक ज्ञानी जल में कमलवत रहता है।
जो है--है। छोड़ना-पकड़ना कहां है! छोड़ना-पकड़ना दोनों ही भ्रांतियां हैं। इसीलिए दुनिया में दो तरह के भ्रांत हैं। एक--जिसको तुम संसारी कहते हो। उसको भ्रांति है कि मैं पकड लूंगा, कि पकड़े हुए हूं; कि और पकड लूंगा; कि मेरी मुट्ठी बड़ी होती जा रही है। और ज्यादा मेरी मुट्ठी में संसार समाया जा रहा है।
दूसरी भ्रांति है त्यागी की; वह कहता हैः मैंने छोड़ दिया। ये दोनों भ्रांतियां है। फिर मैं किसको संन्यास कहता हूं? इन दोनों भ्रांतियों से जागने को संन्यास कहता हूं।
संन्यास का अर्थ केवल इतना हैः सम्यक बोध। इस बात की समझ कि यहां कुछ मेरा नहीं, तेरा नहीं, तो पकडूं कैसे? छोडूं कैसे? जो है--है। इससे गुजर जाना है। इससे बिना लिप्त हुए और बिना अलिप्त होने की चेष्टा किए गुजर जाना है।
अलिप्त होने की चेष्टा में तो समाहित हो गई बात कि तुम लिप्त हो चुके हो। इस द्वंद्व से जो बच जाए--त्याग और भोग के--वह संन्यस्त। इन दो में से कोई भी उसे न पकड़े, वही संन्यस्त है।
रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा।
लाज न मरहिं कहत घर मेरा।।
बस, अब गुजरेंगे राहे जिंदगी से बेनिया जाना,
अगर तेरे करम पर मुनस्सिर है जिंदगी अपनी।
यह होगा समझदार का वक्तव्य।
"बस अब गुजरेंगे राहे जिंदगी से बेनिया जाना।"
अब जिंदगी से अजनबी होकर गुजरेंगे; अपरिचित होकर गुजरेंगे। बस, अब गुजरेंगे राहे जिंदगी से बेनिया जाना
अगर तेरे करम पर मुनस्सिर है जिंदगी अपनी

अगर तेरे ही ऊपर सब कुछ निर्भर है, तो हम चिंता क्यों लें--पकड़ने और छोड़ने की? परमात्मा का सब खेल है, तो जैसा खिलाए--खेल लेंगे।
नाटक है यह पृथ्वी; बड़ा नाटक का मंच है। जो कहेगा, वही कर देंगे। राम बनाएगा, तो राम बन जाएंगे; रावण बनाएगा, तो रावण बन जाएंगे। भला-बुरा जो करवाएगा, कर लेंगे।
"अगर तेरे करम पर मुनस्सिर है जिंदगी अपनी।" अगर तेरे ही ऊपर सब निर्भर है, तो हम बीच में क्यों दखलंदाजी दें। हम क्यों आग्रह करें कि ऐसा होना चाहिए। ऐसा होगा, तो मैं सुखी होऊंगा ऐसा न होगा, तो मैं दुखी हो जाऊंगा। हम ऐसी अपेक्षाएं क्यों करें? हम चुपचाप इस खेल को देखते हुए गुजर जाएं; साक्षी की तरह गुजर जाएंः अजनबी की तरह गुजर जाएं। "बस अब गुजरेंगे राहे
जिंदगी से बेनिया जाना।"
अब नहीं यहां घर बनाएंगे और न ही घर को छोड़ने का भ्रम बनाएंगे। मूल को
ही काट देंगे।
भोगी पत्तों में उलझा होता है, त्यागी भी पत्तों में उलझा होता है। भोगी पत्तों पर पानी सींचता है कि और बड़े हो जाएंगे। और त्यागी पत्तों को काटता फिरता है कि पत्ते कहीं बढ़ न जाएं। मगर जड़ की किसी को भी खबर नहीं है। ज्ञानी जड़ को काट देता है। जड़ कहां है? मेरे-तेरे भाव में जड़ है।
मालकियत में जड़ है।
"चारि पहर निसि भोरा" यह चार ही पहर की रात है, फिर सुबह हो जानेवाली है। यह थोड़ी देर की रात है यह संसार, फिर सुबह हो जाएगी और यात्री चल पड़ेंगे।
यह बड़ा प्यारा शब्द है। मृत्यु को कबीर कह रहे हैं--सुबह, और जिंदगी को
कह रहे हैं--रात।
"चार पहर निसि भोरा"... । यह जिंदगी तो रात है; गुजार देनी है। इस जिंदगी की रात में, नींद में जो सपने चल रहे हैं, वे देख लेने हैं। ठीक है।
साक्षी बने देखते रहो।
तुम जो जिंदगी को साक्षी बन कर कैसे दोखोगे? तुम सपने तक को साक्षी बनकर नहीं देख पाते। सपने तक में लीन हो जाते हो! सपने तक में ऐसा मान लेते हो कि यही हो रहा है; यह सच है।
एक सम्राट का बेटा मर रहा था। एक ही बेटा। बुढ़ापे का एकमात्र सहारा; वही मालिक सारी सम्पदा का। बड़ा बेचैन था। इलाज हो नहीं पा रहा था चिकित्सक थक गए थे। कोई संभावना बचने की न थी। आखिरी रात करीब आ गई। चिकित्सकों ने कहाः सुबह हो जाए तो गनीमत। रात ही समाप्त हो जाने की संभावना है। तो सम्राट रात भर जाग कर बैठा रहा अपने बेटे के पास।
कोई चार बजे के करीब झपकी लग गई। सुबह की ठंडी हवा; रात भर का थका- मांदा, झपकी लग गई। झपकी लगी, तो एक सपना देखा। सपने में देखा कि बड़ा विशाल महल है। यह जो महल जाग कर देखा था, यह कुछ भी नहीं। सोने का बना महल है। हीरे-जवाहरात जड़े है महल की सीढ़ियों पर। और उसके बारह बेटे हैं; उनकी बड़ी सुंदर काया है। बड़े स्वस्थ, बड़े बुद्धिमान, बड़े अनुठे। ऐसे सुंदर और ऐसे प्यारे, ऐसे बुद्धिमान युवक न तो कभी देखें, न सुने गए। शायद यह सपना उसी स्थिति के कारण पैदा हुआ।
एक ही बेटा, मर रहा है। एक था, वह भी जा रहा है। यह सारा मकान, ये सारे महल, यह राज्य पड़ा रह जाएगा। जिंदगी भर सम्राट ने मेहनत करके बनया; खुद तो जाएगा ही अब, लेकिन कम से कम यही राहत रहती है कि बेटा भोगेगा, वह भी जा रहा है। लुट जाएगा यह सब। जिंदगी भर की मेहनत अजनबियों के हाथ पड़ जाएगी, परायों के हाथ पड़ जाएगी। जिनसे छीन-छीन कर ली थी, उन्हीं के पास लौट जाएगी। यह सब महल खंडहर हो जाएगा। यही कामना, यही वासना--यह मन में जाल रहा होगा, इसी से सपना पैदा हुआ।
तृप्ति के लिए सपना पैदा होता है। जो जिंदगी में तृप्त नहीं होता, उसे
हम सपने में पूरा करते हैं। दिन में उपवास कर लिया, रात तुम भोजन करोगे सपने में। दिन में एक सुंदर स्त्री राह से चलती देखी, आंख बचा कर निकल गए; डरे, घबड़ाए--कि कहीं यह सुंदर स्त्री खींच ही न ले, आकर्षित ही न कर ले! कोई

उपद्रव न खड़ा हो जाए! तुम चरित्रवान आदमी, घर-द्वार वाले; बाल-बच्चे, प्रतिष्ठा। आंख बचा कर निकल गए। लेकिन ऐसे निकलने से क्या होगा! रात सपने में वह स्त्री आ जाएगी। वह रात और सुंदर होकर आ जाएगी। वह तुम्हारे सपने को चारों तरफ से घेर लेगी।
जो तुम दिन में अतृप्त छोड़ देते हो या दबा लेते हो, वही रात उभर आता है। तो सपना तो... । सपना बड़ा दिलफेंक होता है, कंजूस नहीं होता सपना। एक लड़का क्या देना; बारह दे दिए सपने में। सपने ही की बात है, तो लेना-देना क्या है? जब मकान ही देना है, तो क्या छोटा-सा साधारण मकान दे दिया! सोने का दे दिया।
हीरे-जवाहरात जड़े हैं सीढ़ीयों पर। बड़ा साम्राज्य है। दूर-दूर तक सारी पृथ्वी... । चक्रवर्ती सम्राट है। बड़ा खुश है राजा। जितना दुखी था, उतना ही खुश हो गया। यह सपना है, यह भूल गया, लगा कि यही सच है।
हंसना मत, ऐसे ही रोज तुम भी सपने में भूल जाते हो। सम्राट तो तुम्हारा प्रतीक है।
और तभी बाहर का बेटा मर गया। जब वह भीतर के बेटों के साथ मजा कर रहा था, प्रसन्न हो रहा था, बाहर का बेटा मर गया। पत्नी दहाड़ मार कर चिल्लाई। उसकी आवाज से सम्राट की नींद खुली। नींद खुलते ही सोने का महल गायब, बारह लड़के गायब, सारा राज्य गायब! सम्राट एक क्षण को ठगा रहा गया।
ऐसा कभी-कभी तुम्हें भी होता है, कि कोई जल्दी जगा दे, जबरदस्ती जगा दे, झकझोर कर जगा दे आधी रात में, तो एक क्षण को तुम्हें समझ में नहीं आता कि क्या सच और क्या झूठ! एक क्षण को पक्का नहीं होता कि तुम कहां हो, कौन हो; क्योंकि अभी-अभी कुछ और थे, और एकदम से कुछ और हो गए! थोड़ा समय चाहिए। सपने से जागरण में आने में, जागरण से सपने में जाने में थोड़ी सीढ़ियां पार करनी होती हैं।
पत्नी ने दहाड़ मार कर चिल्ला दिया, तो सम्राट की अचानक टूट गई नींद। चौंक कर कुछ समझ में नहीं आया। सामने लड़का मरा पड़ा है--यह भी खयाल और अभी- अभी जो बारह लड़के थे, उनका भी खयाल; दोनों के बीच में खड़ा हो गया। रोया नहीं। हंसने लगा उलटा।
पत्नी तो समझी कि पागल हो गया। उसे डर था यही कि इतना प्यार है इसका बेटे से और बेटा मर रहा है।
जब सम्राट खिलखिलाकर हंसा, तो पत्नी समझी कि पागल हो गया है। उसने कहा
कि "मुझे डर था, वही हो गया। आप पागल तो नहीं हो गए हैं? बेटा मर गया--आप हंस रहे हैं?" उसने कहा कि "मैं इसलिए हंस रहा हूं कि किसके लिए रोऊं?--उन बारह के लिए रोऊं जो अभी-अभी थे और बड़े सच थे? या इस एक के लिए रोऊं, जो अभी-अभी था और बड़ा सच था, और नहीं है? दोनों ही सपने टूट गए हैं। किसके लिए रोऊं? उन महलों के लिए, जो सोने के थे!"
पत्नी ने कहा कहां की बातें कर रहे हो? कहां के सोने के महल? कहां के बारह बेटे?" सम्राट ने तब अपना सपना कहा--कि "इस सपने में मैं खोया था; बड़ा मस्त था। ऐसे ही यह भी एक सपना है। इस बेटे को मैं बिल्कुल भूल गया था, जब भीतर के सपने में था। अब भीतर के बेटों को बिल्कुल भूल गया हूं, जब यह बाहर मेरे बेटे को देख रहा हूं!"
तुम बार-बार रोज जागने से सोने में जाते हो, लेकिन सोने में रोज-रोज सपना देखते हो, सुबह जागकर पाते होः झूठा था। लेकिन रात जब फिर दुबारा सोओगे, फिर सच हो जाता है। आदमी की भ्रांति कितनी गहन है!
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि तुम संसार में तब तक न जाग सकोगे,
जब तक सपने में न जाग जाओ। उसने बड़े अदभुत अनूठे मार्ग खोजे थे--सपने में जगाने के। मैं तुमसे भी कहना चाहूंगा। वे मार्ग सच हैं और बड़े काम के हैं। अगर तुम सपने में जागना सीख जाओ, तो तुम एक दिन अचानक पाओगे कि जागना
भी एक बड़ा सपना है और कुछ भी नहीं। जब तक सपने में तादात्म्य नहीं टूटता, तब तक इस बड़े सपने में तो कैसे टूटेगा? बहुत मुश्किल है। इसलिए हिंदू इसको माया कहते हैं--इस बड़े सपने को माया कहते हैं।
माया यानी सपना। दिखाई पड़ता है--है नहीं। जैसा दिखाई पड़ता है, कम से कम वैसा तो नहीं है। और जैसा है, वैसा तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता सिर्फ बुद्ध-

95

पुरुषों को दिखाई पड़ता है। तुम्हें तो जो दिखाई पड़ता है, वह तुम्हारी वासनाओं के परदों में से झिल कर झिन आते हैं, छन-छन कर आती हैं। तुम्हारी कामना, इच्छाएं--उन्हीं का रूप तुम्हें दिखाई पड़ता है।
यह संसार तुम्हारे लिए तो एक परदा है, जिस पर तुम अपने सपने दौड़ाते हो। चलचित्र की तरह सपने दौड़ते रहते है। जिस दिन तुम्हारे भीतर चलचित्र की तरह सपने नहीं उठते, परदा खाली रह जाता; उस खाली परदे का नाम ब्रह्मभाव है। तब वृक्ष में वृक्ष नहीं दिखाई पड़ता; स्त्री में स्त्री नहीं दिखाई पड़ती; पत्थर में पत्थर नहीं दिखाई पड़ता। पत्थर में, स्त्री में, वृक्ष में सभी में परमात्मा दिखाई पड़ता है। तब खो गई तस्वीरें; कोरा परदा रह गया। उस कोरे परदे का नाम ब्रह्म है।
लेकिन अभी तो कैसे जागोगे? यह सपना तो बड़ा मजबूत है। रात जो सपना देखते हो, झीना, बहुत कमजोर--उसमें भी नहीं जाग पाते।
गुरजिएफ कहता थाः पहले रात के सपने में जागना शुरू करो। रोज रात सोते वक्त स्मरण रख कर सोओ कि जब सपना आएगा, तो मुझे याद रहेगी कि यह सपना है। एक दो दिन में याद नहीं रहेगी; कम से कम तीन से छह महीने लग जाएंगे। सतत अगर रोज रात सोते वक्त, एक ही खयाल रख कर सोए--कि जब सपना मुझे आए, तो मुझे याद रहे कि मैं द्रष्टा हूं, यह सपना है। किसी दिन यह घटना घटती है। तीन से छह महीने के बीच अगर सतत प्रयास किया, अगर रोज यही सोच-सोचकर सोए, कि सपने को देख लूंगा, और पहचान लूंगा कि सपना है। सपने में पहचान लूंगा, कि सपना है... ।
जाग कर तो सभी पहचानते हैं; सुबह उठ कर तो सभी पहचान लेते हैं। फिर कुछ मजा नहीं है। यह तो बड़ी साधारण सी बात है। जब सपना चल रहा होगा रात, तभी बीच में अपने को झटका देकर याद कर लूंगा कि यह सपना है। जिस दिन यह घटना घटती है, उस दिन तुम चकित हो जाओगेः एक क्रांति हो गई।
घटती है यह घटना। रोज-रोज स्मरण करके सोने से यह स्मरण धीरे-धीरे तुम्हारी नींद में प्रविष्ट हो जाता है। जब तुम नींद में गिरने के करीब हो, सोचते रहो, स्मरण करते रहो। राम-राम जपने से यह ज्यादा बेहतर है। माला फेरने से यह ज्यादा बेहतर है। क्योंकि माला फेरने से क्या होगा? राम-राम जपने से क्या होगा? तोते की तरह जप लोगे। माला फेरने से क्या होने का है? माला फेरने से कुछ ज्ञान उत्पन्न नहीं होनेवाला है।
लेकिन अगर यह स्मरण करते सोए कि जो भी मुझे रात दिखाई पड़ेगा, वह मैं पहचान लूंगा कि सपना है, मैं साक्षी बन जाऊंगा। इसी भाव में रगे-पगे, नींद में डूब गए, तो तुम सुबह एक दिन पाओगे कि और ढंग से उठे, जैसे तुम कभी न उठे थे। एक रात तुम पाओगे कि सपना था और तुम्हें दिखाई पड़ गया कि सपना है। और तब बड़ी मजेदार घटना घटती है।
दिखाई पड़ने से सपना खो जाता है। जैसे ही दिखाई पड़ा कि सपना है, जैसे ही पहचाना कि सपना है, कि सपना खो जाता है।
जब तुम साक्षी की तरह देखते हो--सपना नहीं होता है। या सपना हो सकता है
या साक्षी हो सकता है दोनों साथ-साथ नहीं होते। दोनों साथ-साथ हो ही नहीं सकते। इसलिए साक्षीभाव की दशा में जो दिखाई पड़े, वही सत्य है। क्योंकि साक्षी और सपना कभ साथ-साथ नहीं होते हैं। जब तक साक्षीभाव पैदा नहीं हुआ, तब तक तुम जो भी देख रहे हो, वह सब सपना है, उसमें कुछ भी सत्य नहीं है। सत्य होने की कसौटी साक्षीभाव है।
इस साक्षीभाव की तरफ जाना हो, तो एक-एक कदम उठाना पड़ता है। कबीर कहते हैः
रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा।
लाज न मरहिं कहत घर मेरा।।
यह मेरे-तेरे का सपना छोड़ो।
"चारि पहर निसि भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा।" रात पक्षी आ जाते हैं, सांझ होते-होते, वृक्षों पर बैठ जाते हैं, सो जाते हैं; सुबह उड़ जाते हैं।
"जैसे तरवर पंखि बसेरा।"... ठीक वैसी ही बात है। इस पृथ्वी पर हमने रात
भर के लिए बसेरा कर लिया है; सुबह फिर पता नहीं किस ग्रह-नक्षत्र पर उड़ जाएंगे।

तुम्हें पता है, वैज्ञानिक कहते हैंः कम से कम पचास हजार पृथ्वियों
पर जीवन है। यह अकेली पृथ्वी नहीं है, जहां जीवन है। कम से कम पचास हजार पृथ्वियां हैं... । यह कम से कम बात है; ज्यादा से ज्यादा का हिसाब अभी लगाया नहीं गया है। इतनी तो होनी ही चाहिए--गणित के हिसाब से। मगर बड़ी दूर हैं।
पचास हजार पृथ्वियां हैं, उन सब पर जीवन है। इस पृथ्वी पर हम रात भर के लिए बसे हैं। रात सत्तर साल की हो--इससे क्या फर्क पड़ता है; कि सात घन्टे की हो--इससे क्या फर्क पड़ता है। और जीवन की अनंत यात्रा में सत्तर साल भी सात पल से ज्यादा नहीं हैं।
"चारि पहर निसि भोरा... ।" सुबह जल्दी आ जाएगी। सुबह यानी मौत। मौत कबीर सुबह कह रहे हैं। क्योंकि मौत में जाग कर पता चलेगा कि वह जो देख रहे थे, सब सपना था।
चार पहर निसि भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा।
जैसे बनिए हाट पसारा, सब जग कासो सिरजनहारा।।
यह परमात्मा ने सारा जगत ऐसे फैलाया है, जैसे बनिया जाता है मेले में
और दुकान फैला देता। फिर सांझ हो गई, दुकान बांध लेता सब और चल पड़ता है वापस। ऐसे परमात्मा रोज यह पसारा करता है, रोज समेट लेता है। यह परमात्मा का विस्तार है। यह उसका खेल है--लिला। इसमें मेरा-तेरा मत करो। लेकिन हो जाता है; मेरे-तेरे की भूल हो जाती है।
मैंने सुना हैः एक गांव में रामलीला हो रही थी। उसमें जो स्त्री सीता बनी थी--सच में ही--रावण जो बना था वह, उसके प्रेम में पड़ गया। सच में ही। अब बड़ी झंझट खड़ी हो गई, क्योंकि लिला मुश्किल में पड़ गई।
जब सीता का स्वंयवर रचा गया, तो रावण भी गया है, राम भी गए हैं, और सारे राजा-महाराजा गए हैं। वे सब बैठे हैं।
नाटक को चलाने के लिए यह जरूरी है कि रावण लंका की तरफ भागे। तो खबर आती है लंका से, दूत आते हैं भागे हुए--कि रावण, तेरी लंका में आग लग गई। और रावण लंका चला जाता है। इसी बीच राम धनुषबाण तोड़ देते हैं।
मगर यह रावण जो था, असली प्रेम में पड़ गया था। उसने कहा, "लगी रहने दो आग; आज तो सीता को वर के ही जाऊंगा।" अब बड़ी घबड़ाहट फैल गई! जनता जो देखने आई थी, वह भी कुछ समझी नहीं कि अब मामला क्या है! ऐसा तो कभी हुआ नहीं!
नाटक का जो मैनेजर था, वह छाती पीटने लगा कि बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। और
वह
दमदार आदमी तो था ही, तभी तो रावण बनाया था उसको। वह रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी को ऐसे हिला कर फेंक देता! असली में ही फेंक देता वह। रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी तो छोकरे थेः और रावण तो गांव का पहलवान था। वह तो जितने राजा-महाराजा आए थे, सभी इकट्ठे भी जूझते, तो उससे जीत नहीं सकते थे।
जनकजी भी घबड़ाए। बैठे थे सिंहासन पर, उनका सिंहासन कंप गया--कि मारे गए! अब यह होगा क्या? यह कथा कैसे चलेगी! फिर-फिर राजदूत भिजवाया कि लंका में आग लगी है। उसने कहा, "कह दिया एक दफे कि लगी रहने दे।" और न केवल इतना, वह उठा और उसने उठकर धनुषबाण तोड़ दिया। धनुषबाण भी क्या--रामलिला का धनुषबाण था! ऐसे ही बांस का बना था। उसने तोड़-ताड़ कर ऐसा फेंक दिया। उसने कहा, "कहां है सीता?--निकाल! वह तो सीता का हाथ पकड़कर ले जाने ही लगा। यह तो लीला ही खतम कर दी इसने!
तो जनक बुढ़ा आदमी था। कई दिन से जिंदगी भर उसने जनक का पार्ट किया था, उसे कुछ सूझ आई। उसने जल्दी से चिल्ला कर कहा, अपने नौकरों को, कि "तुमसे कुछ भूल हो गई मालूम होती है। यह मेरे बच्चों के खेलने का धनुषबाण ले आए! शंकरजी का धनुष लाओ!"
परदा गिराकर किसी तरह धक्कामुक्की करके रावण को बाहर किया; दूसरे रावण को लाए, तब लीला आगे चली।
इस जगत में तुम अगर धर्म के रहस्य को समझना चाहो, तो "लीला" शब्द को समझ लेना। यह जगत एक खेल है--इससे ज्यादा नहीं। इसमें गंभीर होने की जरूरत

नहीं है। यहां न कुछ मेरा है, न कुछ तेरा है। न कुछ हार है, न कुछ जीत है। न कुछ सफलता, न कुछ असफलता। सब मन की ही धारणाएं हैं।
चारि पहर निसि भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा।
जैसे बनिए हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा।।
ये ले जारे, वे ले गाड़े, इन दुखिइनि दोऊ घर छाड़े।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम बिनसि रहेगा सोई।।
यह अपनी पत्नी लोई को संबोधित करके कहे गऐ वचन हैं। पत्नियों का बहुत लगाव होता है--मेरे-तेरे में--इसलिए। पुरुषों से ज्यादा होता है। पत्नियों का बड़ा ममत्व होता है--मेरे-तेरे में। पत्नियों को बड़ी इर्ष्या होती है-- मेरे-तेरे की। इस फर्क को थोड़ा समझना।
पुरुषों को रस होता है "मैं" में, और पत्नियों को रस होता है, स्त्रियों को रस होता है--मेरे में। पुरुष को अकड़ होती है--"मैं" की। स्त्री को अकड़ होती है--मेरे की। तो स्त्री जब किसी से प्रेम करती है, तो पहले देख लेती है कि क्या है इसके पास, कितना है इसके पास।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे से कह रहा था कि "तू जिस लड़की के साथ घूम-फिर रहा है, वह इस गांव की सब से बदशकल लड़की है। उससे तू बच। कोई और नहीं तुझे मिलता?" उसके बेटे ने हा, "पिताजी, अपने पास जो सड़ियल फोर्ड गाड़ी है-- उन्नीस सौ तीस की, उसको देखते हुए इस लड़की के सिवाय और कोई लड़की मुझसे राजी हो भी नहीं सकती।"
स्त्रियां देखती हैंः क्या तुम्हारे पास है। बैंक-बैलेंस कितना है? प्रतिष्ठा कितनी है; धन-दौलत कितनी है!
स्त्री का रस "मेरे" में है। पुरुष का रस "मैं" में है। पुरुष देखता हैः स्त्री कितनी सुंदर है। साथ लेकर घूमूंगा, तो सारे लोगों की ईर्ष्या को जगा पाऊंगा कि नहीं? लोग देखेंगे, तो जल-भुन कर रह जाएंगे कि नहीं? कहेंगे कि हां, कोई स्त्री है तो इसके पास है!
लोग अपनी स्त्रियों को ऐसे ही लेकर तमाशा बनाए रखते है। पुरुष चाहे कुछ भी न पहने... । आमतौर से नहीं पहनता। न हीरे की अंगूठी, न कुछ हार, न कुछ लेकिन अपनी स्त्री को सजाए रहता है। वही स्त्री को दिखाता फिरता है--कि देखो, मेरी स्त्री के पास कितना है! उसकी स्त्री के पास है, उससे उसके मैं को रस है। मैंने दिया है! मैं का मजा है।
स्त्री को मैं का उतना रस नहीं है, जितना मेरे का रस है। कितनी साड़ियां उसके पास हैं; कितने गहने उसके पास हैं--वही उका हिसाब-किताब है। स्त्री-पुरुष के मन में इतना फर्क है। हालांकि दोनों एक ही सिक्के के
दो पहलू हैं। मेरे से मैं बनता है; मैं से मेरा बनता है। लेकिन यह वचन कबीर ने अपनी पत्नी को संबोधित कर के कहे हैं, यह बात प्रासंगिक रूप से याद रखनी जरूरी है।
"कहत कबीर सुनो रे लोई... ।" लोई उनकी पत्नी का नाम था--"हम तुम विनसि रहेगा सोई।" जब हम और तुम दोनों विनष्ट हो जाएंगे, तब जो शेष रह जाएगा--वही है; वही सत्य है। जहां मैं और तू विदा हो जाते हैं, तब जो शेष रह जाता है, वही सत्य है--"हम तुम विनसि रहेगा सोई।"
मौत आएगी, मुझे भी डुबा देगी, तुझे भी डुबा देगी। फिर हम में जो अनडूबा
रह जाएगा... । सब छीन लेगी, फिर भी हम में कुछ शेष रह जाएगा; हम में कुछ अविनाशी तत्व है, हममें कुछ अनंत तत्व है, वही रह जाएगा; बाकी सब तो चला जाएगा!
कोई सूरज की किरण हममें है, वह बचेगी, बाकी सब तो गिर जाएगा। फिर बाकी गिर जाने का तुम क्या करते हो--कुछ फर्क नहीं पड़ता।
"ये ले जारे, वे ले गाड़े।" हिंदू ले जाकर जला देते हैं, मुसलमान गड़ा देते हैं। बाकी सब फर्क फिजूल हैं। चाहे गड़ाओ, चाहे जलाओ--क्या फर्क पड़ता है! क्योंकि जो था असली, वह गया। अब तो लाश पड़ी रह गई; मिट्टी पड़ी रह गई। "ये ले जारे,--वे ले गाड़े" फिर फिजूल की झंझटें मचा रहे हो। कोई जला देता है, कोई गड़ा
देता है--क्या फर्क पड़ता है?

"इन दुखिइनि दोऊ घर छाड़े।" लेकिन जो मर गया है, वह भी घर छोड़कर उड़ गया।
जो गाड़ रहे हैं, जला रहे हैं, वे भी आज नहीं कल घर छोड़ कर उड़ जाएंगे। यह घर, घर नहीं है।
"जैसे तरवर पंखि बसेरा, चारि पहर निसि भोरा।" यह केवल थोड़ी देर के लिए
हम रुक गए हैं--विश्राम के लिए। थक गए हैं और रुक गए हैं। यह पड़ाव हैं-- मंजिल नहीं।
इन में खिजां का रंग भी शामिल जरूर है
गहरी नजर से नक्शो निगारे बहार देख
सारे संतों ने यही कहा है। अगर तुम बाहर को भी बहुत गौर से देखो, गहरी नजर से, तो उसमें पतझड़ को छिपा हुआ पाओगे।
इनमें खिजां का रंग भी शामिल जरूर है
गहरी नजर से नक्शो निगार बहार देख
अगर तुम जीवन को गहरी नजर से देखोगे, तो उसमें तुम मौत को छिपा हुआ पाओगे। अगर सुख को तुम गहरी नजर से
देखोगे, तो दुख उसके पीछे छाया की तरह आता हुआ दिखाई पड़ जाएगा। अगर सफलता को गौर से देखोगे, तो तुम पाओगे; उसका ही दूसरा पहलू असफलता है। यश के पीछे अपयश लगा है। नाम के पीछे बदनामी लगी है। इस जगत में सभी चीजें द्बंद्ब से भरी हैं।
तो बहार में उलझ मत जाना, गौर से देखना; बहार के पीछे पतझड़ आती ही है। आ
ही रही है; आ ही गई है। बहार उसी का रास्ता साफ कर रही है फिर यहां क्या मेरा और क्या तेरा?
सौंदर्य दो क्षण का है; जीवन दो क्षण का है। यह चहल-पहल दो क्षण की है! फिर सब सन्नाटा हो जाता है। यह जो दो क्षण का जगत है, यह जो पानी का बुलबुला जगत है, इसमें बहुत रस न लगाओ। इस बुलबुले से अपने को बांधो मत, अन्यथा टूटेगा तो पीड़ा होगी। इसलिए ज्ञानी शांति से मर पाता है।
अज्ञानी तो शांति से जी भी नहीं पाता; मरने की तो बात ही दूर। ज्ञानी शांति से मर पाता है, क्योंकि उसने जीवन में ही मृत्यु को छिपे देख लिया था। और जिसने जीवन और मृत्यु दोनों को देख लिया--वह दोनों के पार हो गया, वह साक्षी बन गया। वही बचता है। "हम तुम विनसि रहेगा सोई।"
"मन तू पार उतर कहं जैहौं।" और मन दौड़ाए रखता है। मन कहता हैः चलो यहां, चलो वहां। इसे पा लो, उसे पा लो। मन कितनी-कितनी उत्तेजनाएं देता है! मन उत्तेजनाओं को जन्माए चला जाता है। एक वासना पूरी नहीं हो पाती कि दस उठा देता है। तुम्हें
दौड़ाए ही रखता है। कभी ऐसा क्षण नहीं आने देता कि तुम थोड़ी देर विश्राम कर लो--कि थोड़ी देर आरम से बैठ जाओ। मन कहता है। अभी कहां विश्राम का क्षण। अभी तो इतना पाने को पड़ा है। थोड़ा और दौड़ लोः
"मन तू पार उतर कहं जैहौं।" कबीर कहते हैः मन तू जाना कहां चाहता है?
और जाएगा भी कहां?
फिर बड़े मजे की बात मन के संबंध में यह कि इस संसार में तो मन दौड़ता ही है, फिर एक
दिन संसार से थक जाता है, तो परमात्मा में दौड़ने लगता है। लेकिन दौड़ जारी रहती है!
कुछ लोग धन कमा रहे हैं, जब ऊब जाते हैं... । ऊब ही जाएंगे। अगर जरा भी बुद्धि होगी, तो ऊब जाएंगे। सिर्फ बुद्ध ही
जिंदगी भर धन कमाते रह सकते हैं। जिसमें थोड़ी भी समझ है, वह एक न एक दिन देख लेगाः इन चांदी के ठीकरों में क्या है! अब तो चांदी के भी नहीं हैं! इन ठीकरों में क्या है?
लेकिन तब मन नई दौड़े शुरू कर देता है। मन कहता हैः ठीक है, इन में नहीं है; कोई बात नहीं। पुण्य के सिक्के कमाओ। अभी दुकान बनाई, अब धर्मशाला बनाओ। अभी दुकान बनाई, अब मंदिर बना दो। अब पुण्य के ठीकरे कमाओ। अब परमात्मा की उस दुनिया में जाना है, वहां की तैयारी करो। स्वर्ग मे अच्छी जगह मिले, परमात्मा के ठीक मकान की बगल में स्थान मिले, अब कुछ उसका इंतजाम कर लो। यहां का तो देख लिया; व्यर्थ है; अब वहां की सम्हालो।

तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तुम्हें यही समझाते हैं--कि यहां कुछ नहीं रखा है। अब वहां की सम्हालो। जैसे वहां रखा है!
कबीर कहते हैंः न यहां रखा है, न वहां रखा है। यह तो दौड़ने के ही ढंग हैं। न यहां मिला, न वहां मिलेगा। यह तो मन की वासना की तरकीबें हैं। वह नई वासना उठा देता है। पुरानी थक गई, वह कहता हैः कोई हर्जा नहीं, यह नई लो। वह नये संस्करण निकाल देता है वासना के।
"मन तू पार उतर कहं जैहौं... ।" कबीर कहते हैं; न तो यहां, न वहां। तू जाएगा कहां मन? पार उतर कर कहां जाना चाहता है? यह दौड़-धाप किसलिए है? "आगे पंथी पंथ न कोई... ।" न तो कोई पंथी है, न कोई पंथ है। "कूच-मुकाम न पैहो।" न तो कोई यात्रा का प्रारंभ है, और न तो कोई यात्रा अंत है। दौड़ते रहो--दौड़ते रहो--दौड़ते रहो।
"नहिं तहं नीर नाव नहिं खेवट... ।" न तो वहां कोई जल है, न कोई नांव है, न कोई खेवट है।
"ना गुन खैंचनहारा।" और न नाव में रस्सी बांध कर कोई खींचने वाला है।
"धरनी-गगन-कल्प कछु नाहीं... ।" न तो वहां धरती है, न आकाश है, न समय है।
वहां न काल है, न क्षेत्र है।
"धरनी-गगन-कल्प कछु नाहीं, ना कछु वार न पारा।" और न कोई आरपार है इस अस्तित्व का। तू जाएगा कहां? तू जाना कहां चाहता है? दूसरा किनारा है ही नहीं। क्योंकि इस जगत की कोई सीमा नहीं है। तू चलता रहेगा, चलता रहेगा; और सदा आगे आकाश दिखाई पड़ता रहेगा। क्योंकि अंत यहां कहीं आता नहीं।
किसी भी चीज का तुमने अंत आते देखा? रुपये कमाओ, हजार हों, लाख हों, करोड़ हों, अंत आते देखा? करोड़ आ जाते हैं, मगर अंत तो नहीं आता! संख्या का फैलाव आगे मौजूद है।
इस पद पर हो जाओ, उस पद पर हो जाओ; अंत आता है? किसी पद पर हो जाओ, अंत नहीं आता। आगे कुछ कायम है!
और फिर एक ही वासना होती तो भी ठीक था। वासनाएं अनेक हैं। तुम एक चीज में आगे हो जाते हो, तो दूसरी चीजों में पीछे हो।
नेपोलियन की ऊंचाई कम थी, इससे वह बड़ा तकलीफ पाता था। सम्राट हो गया-- बड़ा शक्तिशाली सम्राट। दुनिया में दस-पांच नाम ही उसके मुकाबले खड़े हो सकते हैं। लेकिन यह पीड़ा हमेशा उसे पकड़े रहती। जब भी रास्ते पर किसी छह फीट के आदमी को दखता, एकदम घबड़ा जाता; एकदम आंख बचा लेता। उसे बड़ी पीड़ा होती थी इस बात की कि मैं केवल पांच फीट दो इंच!
पांच फीट दो इंच! कोई भी उसे झेंपा देता। उसके सिपाही लम्बे थे, और उसके पहरेदार लम्बे थे। एक दिन घड़ी लगा रहा था ठीक जगह पर, लेकिन हाथ उसका पहुंच नहीं रहा था। दिवाल ऊंची थी, जहां लगाना चाहता था। तो उसके बॉडी- गॉर्ड ने, अंगरक्षक ने कहा कि "मालिक, आप रुकें; मैं आपसे ऊंचा हूं, मैं लगाए देता हूं।" उसने कहा कि "चुप, नासमझ। दुबारा यह शब्द उपयोग मत करना। मुझसे ऊंचा? मुझसे लम्बा भला हो--ऊंचा नहीं। लंबाई-ऊंचाई में फर्क है! अहंकार बड़ी पीड़ाएं देता है--मन बड़ी पीड़ाएं देता है। तुम्हारे पास धन
हो जाता है, सब हो जाता है, लेकिन धन को कमाने में स्वास्थ्य खो जाता है। फिर एक दिन तुम देखते हो एक फकीर को--अलमस्त फकीरा! चला जा रहा है--अपनी बांसुरी बजाते। छाती जल-भुन कर रह जाती है।
तुम प्रधानमंत्री हो गए, लेकिन जिंदगी उसी में गंवा दी--दौड़ते दौड़ते। फिर देखते एक दिन, एक आदमी कोः उसका स्वर मीठा है; उसके काव्य में जीवन है, और तुम उदास हो गए। या देखते किसी आदमी की आंखों को और वहां शांति की गहरी झील है। और तुम्हारे भीतर सिवाय पागलपन के कुछ भी नहीं। पागलपन न होता, तो राजनीति में क्यों होते? दौड़ते क्यों? तुम्हारी आंखों में सिर्फ विक्षिप्तता है और देखते हैः किसी की आंखों में शांति की झील। मन एकदम तृष्णा से भर जाता है, लोभ से भर जाता है।
कोई तुमसे ज्यादा सुंदर है, कोई तुमसे ज्यादा ज्ञानी है। किसी के पास तुम से ज्यादा धन है! किसी के पास तुम से ज्यादा स्वास्थ्य है। किसी के पास कुछ, किसी के पास कुछ! क्या क्या करोगे! कहां कहां दौड़ोगे? पार कहां पाओगे।

"मन तू पार उतर कहं जैहौं।" कोई न कोई आगे होगा। किसी न किसी दिशा में आगे होगा। पीड़ा होती रहेगी। मन सभी
दिशाओं में सब से आगे होना चाहता है। यह असंभव है। यह असंभव इसलिए है
कि दिशाएं एक-दूसरे के विपरीत हैं।
समझोः अगर तुम सब से बड़े राजनेता होना चाहते हो, तो तुम सब से बड़े संन्यासी नहीं हो सकते। वे विपरीत हैं। एक पूरा होगा, तो दूसरा नहीं हो सकता। जो पूरब जाना चाहता है, वह पश्चिम नहीं जा सकता--एक ही साथ। दो घोड़ों पर कौन सवार हो सकता है! और यहां दो घोड़े नहीं हैं, यहां हजार घोड़े हैं। और हजार घोड़ों पर इकट्ठे सवार होने का मन है!
तुम्हें एक को तो चुनना ही पड़ेगा। जीवन में विकल्प है। अगर तुमने राजनीति चुनी, तों धर्म से तुम चूक जाओगे। क्योंकि धर्म और राजनीति विपरीत दिशाएं है। राजनीति में दूसरे को जीतना है; धर्म में स्वयं को जीतना है।
राजनीति में धोखा-धड़ी है, बेईमानी है। बिना बेईमानी के, धोखा-धड़ी के वहां कोई नहीं जीतता। वहां चालबाजियां हैं, कूटनीतियां हैं।
धर्म में धोखा-धड़ी कभी नहीं जीतती! परमात्मा के साथ कैसी धोखा-धड़ी? वहां सरल चित्त सीधे-सादे लोग जीतते हैं। वहां जिनके पास बाल-हृदय है, वे जीतते हैं। वहां निष्कलुष लोग जीतते हैं। वहां ध्यानस्थ लोग जीतते हैं। राजनीति में ध्यानस्थ तो हार ही जाएगा। क्योंकि राजनीति में तो बड़ा विचार चाहिए, दूर का विचार चाहिए। राजनीति तो शतरंज का खेल है। कहते हैंः शतरंज का खिलाड़ी तभी जीत सकता है, ठीक से जब आगे की पांच चाल का हिसाब उसके भीतर हो; कम से कम पांच चालों का! मैं यह चलूंगा, दूसरा क्या चलेगा। फिर मैं क्या चलूंगा। दूसरा क्या चलेगा; फिर मैं क्या चलूंगा; फिर दूसरा क्या चलेगा--ऐसी कम से कम पांच चाल का जिसे पहले से हिसाब हो, वही शतरंज में जीत पाता है। तो शतरंज तो पागल कर ही देगी।
मैंने सुना है, इजिप्त में ऐसा हुआः एक सम्राट शतरंज का बड़ा शौकीन था, खिलाड़ी, था वह पागल हो गया। वह शतरंज खेलते ही खेलते पागल हुआ। शतरंज भी राजनीति का ही खेल है। राजा, हाथी, घोड़े--वे सब प्रतीक हैं। शतरंज यानी दिल्ली, इसको गिराओ, उसको उठाओ; इसको चलाओ, उसको भुलाओ। सब चलता रहता है। राम आए, राम गए! यह चलता रहता है। इधर आए, उधर गए; इस पार्टी से उस पार्टी में खिसक गए। यह सब चलता रहता है। अपना घोड़ा दूसरे का हो गया; वह दूसरा उस पर सवार हो गया। यह उठा-पटक--सारा खेल है।
तो सम्राट बड़ा शौकिन था। जिंदगी भर तो युद्धों में उलझा रहा, अब बूढ़ा
हो गया था, युद्धों में जाने की सामर्थ्य न थी, तो वह शतरंज खेलता था। फिर पागल हो गया। मनोचिकित्सकों ने कहा कि "कोई इलाज नहीं है इसका। इलाज एक ही है कि कोई इसके साथ शतरंज खेलता रहे।" कौन उसके साथ शतरंज खेले--पागल आदमी के साथ? एक तो सम्राट--और फिर पागल! तो करेला और नीम चढ़ा! यह तो सम्राट, इसके साथ वैसे ही लोग खोलने में डरते थे। क्योंकि वह कभी भी तलवार निकल ले या फांसी लगवा दे। अगर न जीते, तो मुसीबत में डाल दे। और अब पागल हो गया था; इसके साथ खोले कौन?
लेकिन काफी रुपये देने का वायदा किया गया, तो एक खिलाड़ी आ गया। कहते हैं, सालभर वह खिलाड़ी उसके साथ खेलता था। सम्राट ठीक हो गया--खिलाड़ी पागल हो गया।
अब पागल के साथ शतरंज खेलोगे, तो कितने दिन होशियार रह सकते हो? ज्यादा देर होशियार नहीं रह सकते। पागल की चालों को समझोगे; पागल का हिसाब-किताब रखोगे; पागल क्या चल रहा है, क्या कर रहा है--तुमको उसके जवाब खोजने पड़ेंगे। धीरे-धीरे तुम भी पागल हो जाओगे। इसीलिए अक्सर ऐसा होता है कि दो राजनैतिक पार्टियां लड़ते-लड़ते, बिल्कुल एक-जैसी हो जाती है; उनमें कोई फर्क नहीं रहता।
अभी तुम देखते होः जनता पार्टी में कांग्रेस से कोई फर्क नहीं है। हो नहीं सकता फर्क। एक
दूसरे से लड़ते-लड़ते, एक दूसरे की चाल सीखते-सीखते बात एक सी हो जाती है। वही हालत अमरीका में है। वही हालत इग्लैंड में है। दो विरोधी

पार्टियां होती हैं, मगर उनमें भेद कुछ नहीं रह जाता। कोई नीति का भेद नहीं है। कोई लक्ष्य का भेंद नहीं है। इतना ही भेद होता है कि हम ताकत में हों, कि तुम ताकत में हों। बस, इतना ही भेद होता है। और जनता को धोखा खाने में आसानी रहती है।
दो पार्टियां रहती हैं, तो जनता को सुविधा रहती है। एक आदमी को कंधे
पर बिठाए-बिठाए पांच साल में थक गए; कहा कि "देवी उतरो, अब भाई को बिठाएंगे।" पांच साल में भाई से थक जाओगे; फिर भाई को उतार देना। जनता को मूढ़ बने रहने में इससे सुविधा मिलती हैं।
जो दो पार्टियों की राजनैतिक व्यवस्था है, वह जनता को मूढ़ बनाए रखने
का उपाय है। उसमें वह कभी थक गए, पांच साल... ।
और जनता की स्मृति बड़ी कमजोर होती है। अगर पांच साल जनता पार्टी सत्ता में रह गई, तो जीत नहीं सकेगी। अभी भी चुनाव लड़े तो उतनी बड़ी जीत नहीं होगी, जितनी पांच महीने पहले हुई थी। जनता थकने लगी! पांच साल में थक जाएगी। जनता पार्टी की सारी बुराइयां दिखाई पड़ने लगेंगी। और कांग्रेस की सारी बुराइयां पांच साल में भूल जाएंगी। स्मृति बड़ी कमजोर है जनता की। तब तक कांग्रेस का फिर सितारा चमकने लगेगा। यह राजनीतिज्ञों की मिली-जुली भगत है। यह षडयंत्र है।
ये दुश्मन नहीं होते एक दूसरे के। ये दोनों ही मिल कर जनता के दुश्मन हैं! इनका दोनों का काम जनता का शोषण है।
जिससे तुम लड़ते हो, उस जैसे हो जाओगे। धीरे-धीरे तुम्हारा रंग-ढंग, तुम्हारी व्यवस्था तुम्हारी शैली उस जैसी हो जाएगी।
जो आदमी धन ही धन के लिए दौड़ता रहता है, और धन ही पाने के युद्ध में लगा रहता है, तुमने कभी खयाल किया, उसके चेहेरे पर घिसे-पिटे रुपये-जैसा भाव आ जाता है। गंदे नोट-जैसी शकल हो जाती है। कई हाथों में चलते-चलते नोट गंदा हो ही जाता है। दाग लग जाते हैं, वैसी उसकी शकल हो जाती है। रुपये में जैसी घिनौनी-सी चमक आ जाती है--चलते-चलते-चलते--ऐसे ही उसकी शकल हो जाती है।
जो आदमी जो करेगा, स्वभावतः वैसा हो जाएगा।
कामी की आंख में वासना की गंदगी दिखाई पड़ने लगती है। प्रार्थना करनेवाले की आंख में परमात्मा की झलक आने लगती है।
और यहां इतनी चीजें हैं पाने को, कि आदमी इधर दौड़ता है। फिर सोचता हैः उधर भी दौड़ लूं। फिर सोचता हैः इधर भी दौड़ लूं। यहां हजार रास्ते हैं। यह चौराहा हजार रास्तों का चौराहा है। इसमें यहां जाऊं, वहां जाऊं... पगलाया जाता है आदमी।
कबीर कहते हैंः "मन तू पार उतर कहं जैहौं।" जाएगा कहां तू? जाने को है कहां। मंजिल कहां है?
"आगे पंथी पंथ न कोई, कूच-मुकाम न पैहों।" न कोई मुकाम है आगे। चलता जाएगा, चलता जाएगा, थकेगा--हारेगा; नई-नई वासनाएं खोज लेगा। मगर कभी कोई मुकाम पर नहीं पहुंचा। मन की मान कर कोई कभी सिद्धि को नहीं पहुंचा; उस जगह नहीं पहुंचा, जहां सब आनंद हो जाए। उस जगह नहीं पहुंचा, जहां आगे चलने का कोई उपाय न रह जाए।
मुकाम का अर्थ हैः ऐसी जगह, जिसके आगे फिर और कोई जगह जाने को न बची। आ
गए अपने घर। पहुंच गए--जहां पहुंचना था। फिर विश्राम है। उसको हम मोक्ष कहते हैं।
और मन भाग-दौड़ करता है, लेकिन मन तो बदलता नहीं है। मन वही का वही है।
यहां जाए, वहां जाए--मन वही है।
नगमे से अगर महरूम है दिल, माहौल को मत बदनाम करो।
कितना ही जुनूजा हो मौसम, कब काग गजल ख्वां होते हैं।
चाहे वसंत आ गया हो, तो भी कौए गजलें नहीं गा सकते हैं।
"नगमे से अगर महरूम है दिल... ।" अगर गीत तुम्हारे दिल में नहीं है--"माहौल को मत
बदनाम करो"--तो वातावरण को गालियां मत दो।

"कितना ही जुनूजा हो मौसम"।... मधुशाला खोल दी हो परमात्मा ने, सब तरफ वसंत छाया हो, फूल खिले हों, सब तरफ मस्ती हो, फिर भी, "कितना ही जुनूजा हो, मौसम कब काग गजल ख्वां होते हैं।" कौए कब मीठे गीत गा सकते हैं?
तुमने कहानी सुनी होगी ईसप कीः एक कौआ उड़ा जा रहा था; कोयल ने उससे पूछा कि "चाचा, कहां जा रहे हैं?" कौए ने कहा कि "पूरब की तरफ जा रहा हूं। क्योंकि यहां के लोग मेरे गीतों को पसंद नही करते हैं!"
कोयल ने कहा, "चाचा, पूरब के लोग भी पसंद नहीं करेंगे। खराबी पूरब और पश्चिम में नहीं है। आपके गीत ही ऐसे अनूठे हैं!"
यह मन जो है, यहां दुखी है, वहां भी दुखी होगा। इस मन का ढंग दुख है।
यह मन दुख पैदा करता है। तुम्हारे पास हजार रुपये हैं, तुम दुखी हो।
दस हजार होंगे, तो दस गुने दुखी हो जाओगे, बस। और कुछ भी न होगा। तुम्हारी क्षमता दुख की दस गुनी हो जाएगी। मन तो यही का यही है। करोड़ हो जाएंगे, तो और दुखी हो जाओगे।
यह आकस्मिक नहीं है कि अमरीका में सर्वाधिक दुख है। यह आकस्मिक नहीं
है कि जितना धन बढ़ता जाता है, उतना उसके साथ दुख बढ़ता जाता है। होना तो नहीं चाहिए। गणित के बाहर है यह बात। तर्क के विपरीत है। सुख बढ़ना चाहिए धन के साथ। लेकिन धन के साथ दुख बढ़ता है। क्योंकि मन तो वही का वही है।
मन वही है और धन मिल जाने से, मन को बल मिल जाता है। मन का आधार वही है।
यही समझो कि कौए को लाउड-स्पीकर मिल गया। गीत तो वही का वही है, लेकिन
अब हजारगुना होकर फैलने लगा।
एक आदमी को लॉटरी मिली। गरीब आदमी था; दर्जी था। रूसी कहानी है। लॉटरी मिली--एक लाख रुपये की। भरोसा ही नहीं आया उसे। वह तो आदतवश हर महीने एक रुपये की टिकट खरीद लेता था। ऐसा कोई बीस साल से कर रहा था। न कभी मिली थी, न मिलने की कोई आशा थी। आदत थी। एक शौक था। एक रुपये में कुछ जाता भी नहीं था। मिल गई तो मिल गई; नहीं मिली तो... । अब तो कुछ आशा भी छोड़ दी थी। बीस साल बहुत आशा की; फिर धीरे-धीरे आदत में शुमार हो गया था कि एक तारीख को जाकर, एक टिकट खरीद लेता था। मगर मिल गई!
लॉटरी आई, तो उसे भरोसा नहीं आया। एकदम दीवाना हो गया। ताला लगाकर दूकान पर, उसने चाबी जो थी, कुएं में फेंक दी। अब करना क्या है? लाख रुपये पास! जिंदगी के लिए बहुत हैं। अपनी जिंदगी के लिए नहीं--बच्चों की जिंदगी के लिए भी बहुत हैं। सस्ते जमाने की बात। तब लाख रुपये का बहुत मूल्य होता था।
लेकिन वह साल भर में लाख रुपये उड़ गए। न केवल लाख रुपये उड़ गए, साथ ही स्वास्थ्य भी उड़ गया। क्योंकि खुब शराब पी; वेश्यागमन किया; जुआ खेला। रात-रात जागे। इतना दुख कभी नहीं भोगा था, जितना इस साल में भोगा।
वह बड़ा सोचता भी था कि बात क्या है? लोग तो कहते हैंः धन हो, तो सुख होता हे! मैं पहले ही सुखी था। अपना दिन भर काम कर लेता था। रुपये, दो रुपये कमा लेता था, सब मौज थी। रात अपने घर जाकर शांति से सो जाता था। रुपये ही नहीं थे, तो शराबघर कैसे जाता? रुपये ही नहीं थे, तो वेश्या कहीं खोजता? रुपये ही नहीं थे, तो जुआ कहां खेलता?
कुछ बातों का उसे पता ही नहीं था--कि जुआ घर भी होते हैं; वेश्याएं भी गांव में हैं, शराब भी चलती है--यह उसे पता भी नहीं था। यह पता भी कैसे होता? इसकी सुविधा नहीं थी।
मगर जब लाख रुपये पास आए, तो न केवल सुविधाएं खुल गईं। जिन लोगों की, इसके लाख रुपये पर नजर थी, वे भी आने लगे। कोई इसको जुआ-घर ले गया--कि पागल, यह मौका न चूक। लाख से और ज्यादा कमा सकता है। कोई इसे वेश्यालय ले गया--कि अब तेरे पास पैसे हैं, तो भोग ले। चार दिन की जिंदगी है, फिर अंधेरी रात! देखते हैंः भोगी कहता हैः चार दिन की जिंदगी है, फिर अंधेरी रात! कबीर कहते हैंः "चार पहर निसि भोरा"--यह चार दिन की अंधेरी रात है, फिर सुबह है। भोगा। साल भर में बिल्कुल मुरदे जैसा हो गया। रुपया भी चला गया। उलटी उधारी चढ़ गई। कभी जिंदगी में उधारी न रही थी। उधार करने की कभी हिम्मत ही न की थी। सामर्थ्य ही नहीं थी। सदा शान से चला था। अब लोगों से बच कर निकलने लगा।

साल भर बाद जब वह आकर अपनी दुकान पर खड़ा हुआ, तो ऐसा जैसा कि बीस साल जिंदगी खराब गई हो; जैसे बीस साल बीमार रहा हो; खाट से लगा रहा हो। हड्डी-हड्डी हो गया था। आंखें धंस गई थीं। कुऐं में उतर कर किसी तरह चाबी खोजी; फिर अपनी दूकान करने लगा। और भगवान को कहा कि अब दुबारा भूल कर भी यह लॉटरी मत खुलवाना।
मगर पुरानी आदत जारी रही; वह एक रुपये के टिकट खरीदता रहा। और संयोग
की बातः साल भर बाद फिर लॉटरी आ गई! जब दरवाजे पर लॉटरी के रुपये लेकर आदमी आकर खड़े हुए, तो उसने छाती पीट ली। उसने कहा, "हे प्रभु! फिर से... !
हालांकि चाहता नहीं है अब, मगर छोड़ भी नहीं सकता। वह मन कहता है कि पागल, अब फिर एक मौका मिला! और पता है सब, कि वह पहला मौका जो मिला था, सिर्फ दुख दे गया; हड्डी-हड्डी कर गया; .जार-.जार कर गया; सीने में छेद ही छेद कर गया। घाव ही घाव छोड़ गया। कभी पति-पत्नी में झगड़ा न हुआ था, वह साल झगड़े में बीता। कभी बच्चों ने गालियां न दी थीं, बच्चों ने पिटाई की। कभी पड़ोसियों ने अनादर न किया था जहां जाए, वहां अनादर हो लगा। सड़कों पर पड़ा रहा। गलियों में, नालियों में पड़ा रहा--रात--पीकर। सब तरह से सब खराब हो गया। और अब जानता है। लेकिन फिर उठ कर खड़ा हो गया।
आदमी इतना बेहोश है! मन ऐसा है फिर द्वार पर ताला लगा दिया। हालांकि उतने बल से नहीं, जितना पहली बार; लेकिन फिर भी लगा दिया। अब सोचता है कि चाबी न फेंकूं, फिर खोजना पड़ेगी। लेकिन कुछ आदत--कुछ पुराना--कि अब करना क्या है? सोचते-सोचते भी चाबी कुएं में फेंक दी। लेकिन उस साल वह बच न सका, मर गया। इसलिए कहानी आगे बढ़ी नहीं।
आदमी का मन ऐसा है!
कबीर कहते हैंः "मन तू पार उतर कहं जैहौं।"
धरनी-गगन-कला कछु नाहीं, ना कछु वार न पारा।।
नहिं तहं नीर नाव नहिं खेवट, ना गुर खैंचनाहारा।
आगे पंथी न पंथ कोई, कूच-मुकाम न पैहो।।
शायद मन कहे कि ठीक है, इस संसार में नहीं जाना है कबीर, न जाओ। परलोक
तो खोजो! परमात्मा कोतो खाजो? तो कबीर उसको भी चेताते हैंः "नहिं तन, नहिं मन, नहिं अपनपौं, सुन्न में सुद्धा न पैहों। तन भी खो जाए, मन भी खो जाए, अपनापन भी खो जाए तो भी मन के द्वार जो स्थिती आएगी वह रिक्त शून्य की होगी। उसमे पूर्ण नहीं हो सकता।
मन शून्य से पार नहीं ले जा सकता। और कबीर तो पूर्ण के प्रेमी हैं। "बलीवान होय पैठो घट में, वाहीं ठौरें होईहौ।" कबीर कहते हैंः कही जाने की जरूरत नहीं है पागल। अपने घर में बैठ जा; अपने भीतर बैठ जा।
"बलीवान होय पैठो घट में"--यही ध्यान का अर्थ है, जब जमकर अपने भीतर बैठ जाओ; हिलो मत। कंपन छोड़ो, निष्कंप हो जाओ।
"बलीवान होय पैठो घट में, वाहीं ठौरें होइहौ।" और वहीं से ठौर मिलेगी; वहीं से मुकाम मिलेगा।
बाहर नहीं है मंजिल, मंजिल भीतर है। जिस हीरे को तुम खोज रहे, वह बाहर नहीं पड़ा है। उसे तुम लेकर आए हो। वह जन्म के पहले भी तुम्हारे साथ था। वह तुम्हारा स्वरूप है। सच्चिदानंदरूप हो तुम। इसलिए उपनिषद कहते हैंः तत्त्वमसि। वह तुम ही हो--जिसको तुम खोज रहे हो। खोजी में ही खोज का सारा अर्थ छिपा है। खोजनेवाले में ही मंजिल छिपी है। "बलीवान होय पैठो घट में, वाहीं ठौरें होइहौ।" अपने ही घट में बैठ जाओ, और वहीं से मंजिल मिल जाएगी। "बार हि बार विचार देख मन, अंत कहूं मत जैहौ।" कहते हैं कबीरः तू खूब सोच ले, कितना ही विचार करना हो कर ले, लेकिन एक बात अंततः निर्णय में ले लें, कि कहीं जाने से कुछ भी नहीं होना है; जाने से कुछ भी नहीं होना है। आना है--जाना नहीं है। भीतर आना है--बाहर जाना नहीं है। दूर तो हम वैसे
ही अपने से बहुत हैं--न मालूम क्या-क्या खोजते। अब हमें अपने घर लौट आना है।
"कहै कबीर सब छाड़ि कल्पना... ।" ये सब कल्पनाएं हैंः धन की, पद की, प्रतिष्ठा की, पुण्य की, स्वर्ग की--ये सब कल्पनाएं हैं।

"कहै कबीर सब छाड़ि कल्पना, ज्यों के त्यों ठरहै हो।" और अगर सारी कल्पना छूट जाए तो, तुम जो हो, वही हो जाओगे, इसी क्षण हो जाओगे। कल्पना से ही बाधा पड़ रही है।
"ज्यों के त्यों ठरहैहौ।" और तब तुम अपने स्वरूप में ठहर जाओगे। वह स्वरूप-स्थिति ही मुक्ति है। वही पूर्ण का अनुभव है। और उस अनुभव के अतिरिक्त कोई आनंद नहीं, कोई शांति नहीं, कोई उत्सव नहीं।
"ज्यूं मन मेरा तुज्झ सौं, यों जे तेरा होइ।" कबीर कहते हैंः जैसा मेरा मन परमात्मा में लगा, ऐसा परमात्मा भी मुझ में लग जाए। "ज्यों मन मेरा तुज्झ सौ"--जैसा मेरा मन तेरी तरफ दौड़ रहा है, ऐसी ही जब तेरी कृपा होगी और तू मेरी तरफ दौड़ेगा, तेरा प्रसाद बरसेगा--"यों जो तेरा होइ... ।" "ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोई।" मैं तो तुझे चाह रहा हूं, मैं तो तुझे पुकार रहा हूं। मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि तू मिल जाए, लेकिन तेरे बिना प्रसाद के क्या होगा! मेरा प्रयास और तेरा प्रसाद--जब दोनों मिलेंगे, तब मिलन होगा। "ताता लोहा यौ मिलै... ।" मैं तो गरम हुआ जा रहा हूं; मैं तो पुकार-पुकार
कर उत्तप्त हुआ जा रहा हूं; मैं तो प्यासा हूं-विरह में। आग जल रही है मेरे भीतर विरह की। "ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ।" और जब दो गरम लोहे मिल जाते हैं, तो बीच में कोई संधि नहीं छूटती।
कबीर कहते हैं... लेकिन जब तेरा प्रसाद भी इतना ही उत्तप्त होकर मेरी तरफ बहेगा, जितनी उत्तप्तता से मैं बह रहा हूं, तभी मिलन होगा।
भक्त की यह बड़ी गहरी सूझ है कि आदमी के प्रयास से आधा ही काम होता है। आधा काम तो अनुकम्पा से, उसकी कृपा से... । इस सूझ के कारण भक्त को अहंकार कभी खड़ा नहीं होता। नहीं तो यही अहंकार आ जाता है कि मेरे ही प्रयास से पा रहा हूं। मैने परमात्मा को पाया।
भक्त ऐसा कभी नहीं कह सकता कि मैने परमात्मा को पाया। भक्त इतना ही कहता हैः परमात्मा ने मुझे पाया। मैंने पुकारा, मैंने खोजा, लेकिन मुझसे क्या होगा, मेरे छोटे हाथ इस विराट को कैसे खोज पाएंगे!
कबीर जाको खोजते, पायो सोई ठौर।
सोई फिरिकै तूं भया, जाको कहता और।।
कबीर जाको खोजते... ।" परमात्मा को खोजते-खोजते, खोजते-खोजते एक दिन ठौर मिल जाता है। अपने में ही खोजना है, कहीं बाहर जाना नहीं है। यह अंतर्गति है।
"कबीर जाको खोजते पायो सोई ठौर।" और जिस दिन वह मिल जाता है, उस दिन ठौर मिल गई। "सोई फिरि कै तूं भया"--और तब, हम फिर वही हो जाते हैं--जो हम हैं। हम फिर वही हो जाते हैं, जो हमारा असली होना है।
"सोई फिरि कै तूं भया, जाको कहता और।" अब तो परमात्मा को दूसरा कहना भी संभव नहीं। भक्त उस घड़ी भगवान हो जाता है, उस घड़ी बूंद सागर में मिल जाती है। बूंद सागर हो जाती है।
मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारे और।
लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर।।
कबीर कहते हैंः कुछ लोग परमात्मा को पीड़ा के कारण पुकारते हैं, दुख के कारण पुकारते हैं, क्योंकि जिंदगी में बड़ी मार पड़ती है।
"मारे बहुत पुकारिया... ।" कोई हार गया, परमात्मा को याद करता है। किसी
का दिवाला निकल गया--परमात्मा को याद करता है। किसी की पत्नी मर गई, पति मर गया--परमात्मा को याद करता है। यह याद ऐसी ही है, जैसे "मारे बहुत पुकारिया"--जैसे किसी की पिटाई पड़े और वह याद करने लगे परमात्मा की। वह याद बहुत सच्ची नहीं। जब दुख चला जाएगा, फिर भूल जाएगी।
दुख में तो सभी परमात्मा को याद करते हैं, मगर दुख में याद किया परमात्मा ज्यादा देर टिकता नहीं; सुख आया--कि गया। सुख में कौन याद करता है? सुख में तुम बिल्कुल भूल जाते हो। जब सब ठीक चलता होता है, परमात्मा का क्या प्रयोजन? जब चीजें गलत में होती हैं, मुश्किल में होती है, तब तुम याद कर लेते हो। तुम मतलब से याद करते हो। इसलिए दुख में जिसने याद की, उसने परमात्मा को कभी नहीं पाया। जिसने सुख में याद की--उसने पाया।

"मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारे और।" तो जो पिट-पिट के पुकारते हैं,
यह एक बात है। और पीर से पुकारना बिल्कुल दूसरी बात है। पीर यानी प्यार की पीड़ा।
"मारे पुकारिया"-- यह एक बात है। तुम पर डन्डे पड़े, और तुम झुक गए, यह झुकना असली नहीं। प्रेम से झुके--यह झुकना और है।
"पीर पुकारे और"... । पीर का मतलब होता हैः मीठी पीड़ा, जहां मिठास है, प्यास है, प्रेम है। इसलिए नहीं पुकार रहे हैं कि हम दुख में हैं, हमारी दूकान ठीक से चला दे; कि पत्नी बीमार है, इसकी बीमारी ठीक कर दे; कि लड़के की नौकरी नहीं रह गई, नौकरी लगवा दे--इसलिए नहीं। बल्कि इसलिए--कि तेरे बिना-- तेरे बिना कुद भी नहीं है। दुकान भी ठीक चल रही है। पत्नी भी स्वस्थ है। लड़के की भी नौकरी लग गई, मगर तेरे बिना कुछ भी नहीं। तुझे पाने के लिए पुकारते हैं।
खयाल रखनाः परमात्मा से कुछ और मांगा तो, तुमने परमात्मा का अपमान किया। परमात्मा से बस, परमात्मा को ही मांगना। उससे अन्यथा मांगना अत्यंत अपमानजनक है। अन्यथा मांगने का अर्थ हैः तुम परमात्मा से भी मूल्यवान कोई चीज मांगते हो।
एक सम्राट युद्ध पर गया। जब लौटता था, तो उसने अपनी पत्नियों को खबर भेजीः क्या ले आऊं तुम्हारे लिए। सौ पत्नियां थीं उसकी। निन्यानबे ने बड़ी लम्बी फेहरिस्तें भेजीं। किसी को हीरे चाहिए, किसी को मोती चाहिए। किसी को कुछ, किसी को कुछ। सिर्फ एक पत्नी ने उसे लिखाः आप आ जाओ, सब आ गया। निन्यानबे के लिए चीजें आईं, लेकिन सम्राट उस सौवीं पत्नी के लिए आया
और उसने कहाः एक तेरा ही प्रेम मेरे प्रति मालूम होता है। बाकी किसी को फिकर नहीं है मेरी। मैं आऊं कि न आऊं, हीरे आने चाहिए, जवाहरात आने चाहिए। एक तूने मुझे पुकारा। तेरे लिए मैं अपना हृदय लाया हूं।
परमात्मा भी उसी के हृदय में आएगा, जिसने अकारण पुकारा है; पीर से पुकारा है--कुछ और मांगने के लिए नहीं। धन मत मांगना, पद मत मांगना। उन्हीं मांगों का कारण तो तुम्हारी प्रार्थना गंदी हो जाती है; पंख कट जाते हैं प्रार्थना के। जमीन पर गिर जाती है। परमात्मा तक नहीं पहुंच पाती।
मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारे और।
लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर।
और कबीर कहते हैंः जिसने पीर से पुकारा, वह आज नहीं कल किसी सदगुरु को खोज लेगा। क्योंकि जिसने पीर से पुकारा--धन के लिए नहीं पुकारा, पद के लिए नहीं पुकारा--पीर से पुकारा, प्रेम से पुकारा, वह आज नहीं कल, किसी सदगुरु को खोजने में समर्थ हो जाएगा।
परमात्मा सीधा नहीं मिलता। जैसे तुम तैरना सीखते हो, तो पहले उथले में सीखते हो, फिर गहरे में जाते हो। ऐसे जब तुम परमात्मा से मिलते हो, तो पहले परदे में मिलते हो।
परमात्मा की रोशनी बहुत ज्यादा होगी। तुम उसे न झेल पाओंगे। किसी बुद्ध की रोशनी, किसी कृष्ण की रोशनी; किसी क्राइस्ट की रोशनी--पहले इसे झेलो। पहले क्राइस्ट से आंख में आंख मिलाओ, फिर धीरे-धीरे तुम इस योग्य हो जाओगे। क्राइस्ट की आंखों में तैरते-तैरते तुम इस योग्य हो जाओगे कि परमात्मा के गहरे सागर में उतर जाओ।
"लागी चोट मरम्म की... ।" सदगुरु की वाणी की ही चोट लगती है, तब मरम्म की चोट लगती है। पहले तो पीर चाहिए। धन न हो, पद न हो, कुछ और मांग न हो, परमात्मा की मांग हो। जिसने परमात्मा को मांगा, उसको सदगुरु मिलता है। जिसने परमात्मा को मांगा, उसको निश्चित सदगुरु मिलता है। परमात्मा भेज देता है। तुम्हें खोजता सदगुरु आ जाता है। अनायास आ जाता है। अंधेरे में तुम्हारे हाथ को पकड़ लेता है।
तुमने सूरज मांगा; सूरज एकदम नहीं आता, किरण आती है। किरण यानी सदगुरु। किरण को पचा लेना आसान होगा। सूरज को अभी तुम न पचा पाओगे। सूरज एकदम आ जाए, तो शायद अंधे हो जाओ। शायद जल कर खाक हो जाओ। वह बहुत ज्यादा होगा।

और जब सदगुरु की वाणी तुम्हारे पीर, तुम्हारी पीड़ा को, तुम्हारे प्रेम को उकसाने लगती है... । सदगुरु जब तुम्हारी पीर के साथ अपनी अंगुलियों का खेल खेलने लगता है, सदगुरु जब तुम्हें और उकसाने लगता है, "लागी चोट मरम्म की" जब सदगुरु मरम्म की बात कहने लगता है, तब बीज बोए जाने लगे। जब सद्गुरु मरम की बातें कहता है, तो तुम्हारी प्यास में बड़ी अग्नि प्रज्वलित होती है। तुम पयास ही प्यास हो जाते हो। वह जो प्यास धीमी-धीमी सी थी अकेले में, सदगुरु के पास आकर प्रज्वलित होकर जलने लगती है। उसकी लपटें उठने लगती हैं।
"लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर।" और जब चोट की ऐसी गहराई लगती है
कि आरपार हो जाए, हृदय को छेद दे, तुम्हारे केंद्र में तीर लग जाए, बस वहीं तुम ठिठक कर रह जाते हो।
जब हृदय में तीर छिद जाता है सद्गुरु का, तुम वहीं के वहीं ठिठक कर रह जाते हो। "रह्यो कबीरा ठौर... ।" तब कबीर जहां का तहां रह गया। उसी जहां के तहां रह जाने में परमात्मा की पहली झलक मिलती है; मन ठिठक जाता है। सद्गुरु के पास ही मन अवाक हो जाता है, ठिठक जाता है। एक क्षण को भी ठिठक जाए, उस संस्पर्श में, उस संपर्क में, उस सत्संग में--एक क्षण को भी ठिठक जाए--तो तत्क्षण तुम पाते होः अरे, मैं कहां खोजने जाता था, परमात्मा मेरे भीतर रहा! मैं किन मंदिर-मस्जिदों के दरवाजे खटकाता था! मैं उसका मंदिर हूं। यह सारा अस्तित्व उससे भरा है! मैं भी उससे भरा हूं।
इसलिए सब से निकटतम अपने ही भीतर उसे पाना है, और जिसने अपने भीतर पा लियाः "रह्यो कबीरा ठौर"... जिसने अपने भीतर उसे पा लिया, वह जब आंखा खोल कर देखाता हे, तो सब के भीतर उसे पाता है। तब यह सारा जगत वही है। संसार विपुल हो जाता है, सिर्फ परमात्मा ही अनंत-अनंत रंगों, रूपों में, अनंत-अनंत इंद्रधनुषों मे, अनंत अनंत फूलों मे प्रकट होता दिखाई पड़ता है। तब एक ही अनेक में छिपा है।
मगर पहली पहचान अपने भीतर, अपने घट के भीतर... ।
कबीर जाको खोजते, पायो सोई ठौर।
सोई फिरि के तू भया, जाको कहता और।।
मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारे और।
लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर।
तो अगर प्यास हो, तो हृदय खोलो और मरम्म की चोट खाओ। तुम भी ठरह जाओगे।
मन के दौड़ने में संसार है--मन के ठहर जाने में परमात्मा।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
छठवां प्रवचन

सदगुरु की महत्ता

पहला प्रश्नः कबीर साहब का एक पद इस प्रकार थाः "मेरो संगी दोई जन, एक वैष्णो एक राम। यो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम।।" लेकिन शब्दकोश उलटते हुए मुझे दूसरी साखी मिली, जो कुछ और बात कहती हैः "हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार।"
आप क्या कहते हैं?

स्मरण स्मरण में फर्क है। एक तो स्मरण है, जो किया जाता है; और एक स्मरण है, जो होता है। उस भेद को समझा तो इन दोनों सूत्रों का विरोधाभास समाप्त हो जाएगा।
साधक जब शुरू करता है, तो प्रयास से शुरू करता है। जप करता है। न करे
तो जप नहीं होगा। जप कृत्य होता है। चेष्टा करनी पड़ती है, स्मरण रखना पड़ता है, तो होता है।
फिर धीरे-धीरे जब भीतर के तार मिल जाते हैं, तो साधक को जप करना नहीं पड़ता। नानक ने उस अवस्था का अजपा-जाप कहा है। फिर जाप अपने से होता है। साधक तब साक्षी हो जाता है--सिर्फ देखता है। मस्त होता है, डोलता है। बीन अब खुद नहीं बजाता है। बीन अब बजती है। इसलिए उस नाद को अनाहत-नाद कहा है। अपने से होता है। न कोई वीणा है वहां, न कोई मृदंग है वहां, न कोई बजाने वाला है वहां, लेकिन नाद है। अपरंपार नाद है। जिसका पारावर नहीं--ऐसा नाद है।
समझोः सदियों की खोज से यह अनुभव में आया है कि वह नाद कुछ-कुछ ऐसा होता है, जैसा--ओम्। लेकिन यह तो हमारी व्याख्या है कि ऐसा होता है। यह ऐसे ही है, जैसे कोई सूरज को उगते देखे, और कागज पर एक तस्वीर बना ले। सूरज उग रहा है कागज पर, और लाकर कागज तुम्हें दे दे और कहे कि सुबह बड़ी सुंदर थी और मैंने सोचा कि तस्वीर बना दूं, ताकि तुम्हें भी समझ में आ जाए--कैसी थी। वह जो कागज पर तस्वीर है, उसमें न तो सूरज की गरमी है; न सूरज की किरणें हैं; न सूरज का सौंदर्य है। प्रतीकमात्र है। या ऐसे समझो कि जैसे तुम्हें कोई हिमालय का नक्शा दे दे। उसमें न तो हिमालय की शांति है, न हिमालय का सन्नाटा है, न हिमालय के उत्तुंग शिखर हैं, न उत्तुंग शिखरों पर जमी हुई कुंवारी बरफ है। कुछ भी नहीं है। नक्शा है। लेकिन नक्शा प्रतीक है।
ऐसे ही ओम प्रतीकमात्र है। कागज पर बनाया गया नक्शा है, उस अजपा-जाप का, जो भीतर कभी प्रगट होता है। वह ध्वनि जो भीतर अपने आप फूटती है। जिसको कबीर "शब्द" कहते हैं।
तुम जब शुरू करोगे, तब तो तुम ओम्, ओम्, ओम के जाप से शुरू करोगे। यह जाप तुम्हारा होगा। इस जाप को अगर करते गए और गहरा होता गया यह जाप... । गहरे का मतलब हैः पहले होंठ से होगा; फिर वाणी में होगा, लेकिन होंठ पर नहीं आएगा; कंठ में ही रहेगा; मन में ही गूंजेगा। फिर घड़ी आएगी, जब मन में भी नहीं गूंजेगा, कंठ में भी नहीं होगा। तुम अपने भीतर ही उसे किसी गहन तल से उठता हुआ पाओगे।
तो एक तो जाप था, जो तुमने किया और एक जाप है, जिसे एक दिन तुम साक्षी
की तरह देखोगे। ये दो सुमिरण हैं। इन्हीं दो सुमिरणों के कारण इन दो वचनों में भेद मालूम पड़ता है।
पहला वचन हैः "मेरो संगी दोइ जन, एक वैष्णो एक राम।" कबीर कहते हैंः मेरे दो साथी हैं, दो मित्र हैं। एक तो राम--और एक राम का भक्त। एक तो राम-- और एक राम की तरफ ले जाने वाला सदगुरु। एक तो राम--और एक राम से भरा हुआ-- आपूर, आकंठ भरा हुआ व्यक्ति।
विष्णु से जो भरा है--वह वैष्णव। विष्णु जिसके रोएं-रोएं में गूंज रहा है--वह वैष्णव। तो एक तो विष्णु; राम यानी विष्णु का एक रूप। और एक वैष्णवजन--ये दो मेरे मित्र हैं।

"यो है दाता मुक्ति का... ।" राम तो है दाता--मुक्ति का, मोक्ष का। उससे
तो परम प्रसाद मिलेगा "वो सुमिरावै नाम"--और वह जो वैष्णवजन हैं, जिसके भीतर सुमिरण आ गया है, उसके संग-साथ बैठ कर, उसकी संगति में उठ-बैठ कर उसके भीतर उठती हुई तरंगें धीरे-धीरे तुम्हें भी तरंगित कर देती हैं। उसके भीतर बजती वीणा धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर की सोई वीणा को भी जगा देती है। उसका स्वर आघात करता है और तुम्हारे भीतर सोया हुआ आनंद धीरे-धीरे जागने लगता है।
तो राम तो है मुक्ति का दाता, और गुरु है राम की सुरति दिलाने वाला।
बिना गुरु के राम नहीं मिलेगा। क्योंकि याद ही कोई न दिलाएगा, कोई इशारा ही न करेगा--अज्ञात की ओर; कोई तुम्हारा हाथ न पकड़ेगा। अनजान में न ले चलेगा तो राम नहीं मिलेगा। यद्यपि गुरु मुक्ति नहीं देता है। गुरु तो केवल राम की याद दिला देता है। फिर राम की याद करते-करते एक दिन राम अवतरित होता है; तुम्हारे भीतर जगा है और तुम रोशन हो जाते हो, तुम प्रकाशित हो जाते हो। मुक्ति फलती है।
तो गुरु तो राम की याद दिलाता है; राम मुक्ति देता है। यह तो पहले वचन
का अर्थ। दूसरे वचन का अर्थ विपरीत मालूम पड़ता है। दूसरे वचन में कहा है, "हरि सुमिरै सो वार है"--वार यानी यात्रा का प्रारंभ, पहला कदम।
"हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार।" और जो गुरु का स्मरण कर ले, वह पार ही हो जाता है। और हरि को याद करो, तो वह तो केवल यात्रा का प्रारंभ है। गुरु को याद करने से यात्रा का अंत हो जाता है। यह बात उलटी लगती है--स्वभावतः।
पहले वचन में गुरु तो केवल राम को याद दिलाता है; राम मुक्ति देता है। दूसरे वचन में राम की याद तो केवल शुरुआत है, और गुरु की याद यात्रा का अंत। पहले में लगता हैः गुरु--प्रारंभ; राम--पूर्णता। दूसरे में लगता हैः राम--प्रारंभ। गुरु--पूर्णता। सह सुमिरण सुमिरण के भेद के कारण फर्क पड़ रहा है।
जब तुम परमात्मा को याद करना शुरू करोगे--बिना गुरु के "हरि सुमिरै सो वार है", तो तुमने यात्रा का प्रारंभ किया। तुम गुरु भी कैसे खोजोगे, अगर तुम हरि की याद न करो? ऐसे ही जुड़ी हैं ये बातें, जैसे अंडा मुरगी जुड़े हैं।
कोई पूछे कि अंडा पहले कि मुरगी पहले? तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। तय करना संभव नहीं होता। अंडा कहो पहले, तो अड़चन आती है--कि बिना मुरगी के अंडा रखा किसने होगा! मुरगी कहो पहले, तो अड़चन आती है कि मुरगी बिना अंडे के हुई कैसे होगी? मुरगी के पहले अंडा है; अंडे के पहले मुर्गी। असल में दोनों को दो करके देखने में ही उपद्रव हो गया है।
मुरगी और अंडा दो नहीं हैं। अंडा मुर्गी की एक स्थिति है। और मुरगी अंडे की एक स्थिति है। जैसे तुम्हारा बचपन और तुम्हारी जवानी दो चीजें नहीं हैं। एक की ही दो स्थितियां हैं। ऐसे ही मुर्गी या अंडा, एक ही जीवन-यात्रा के दो चरण है।
तो पहले तो तुम गुरु ही क्यों खाजोगे, अगर राम का स्मरण न हो! अगर परमात्मा नहीं खोजना है, तो गुरु किसलिए खोजना है? आदमी बीमार होता है, स्वास्थ्य चाहता है, तो डाक्टर के पास जाता है। जब आदमी को ईश्वर का अभाव खलने लगता है जीवन में, कि उसके बिना सब अंधेरा है, सब खाली-खाली है--रिक्त; उसके बिना सब बेस्वाद, तिक्त, कडुवा; उसके बिना जीवन में कोई रसधार बहती नहीं मालूम पड़ती; कोई गीत नहीं जगता, कोई नृत्य पैदा नहीं होता; जीवन एक बोझ मालूम पड़ता है, तो परमात्मा की याद आनी शुरू होती है। तो आदमी पूछता हैः जीवन का अर्थ क्या है? किसने बनाया? क्यों बनाया? हम किस तरफ जा रहे हैं? यह जीवन का कारवां आखिर कहां पूरा होगा? कौन सी मंजिल है? कहां मुकाम है--ऐसी जिज्ञासा उठती है, तो तुम गुरु की तलाश करते हो।
गुरु की तलाश के पहले तुम परमात्मा का स्मरण करते हो। वह स्मरण नाममात्र का स्मरण है। क्योंकि अभी तो परमात्मा को जानते नहीं, तो स्मरण कैसे करोगे? स्मरण तो उसी का हो सकता है, जिसे हमने जाना हो; जिसे हमने प्यार किया हो; जिससे हमारी स्मृति जुड़ी हो; जिससे हमारा कोई अनुभव का

संबंध बना हो, उसकी ही याद करोगे। अभी परमात्मा का तो पता ही नहीं, तो याद कैसे करोगे?
तो यह तो नाममात्र की याद है। इतना ही पता चल रहा है कि जो जीवन है हमारा, व्यर्थ है। सार्थकता की खोज कर रहे हैं।
जैसा जीवन अभी तक जीया है, उसमें सार नहीं मालूम पड़ता। तो कोई और जीवन
की शैली मिल जाए, इसकी खोज में निकले हैं। है भी ऐसी जीवन की शैली या नहीं, इसका भी कुछ पक्का नहीं है।
अभी तुम परमात्मा की याद नाममात्र को करोगे। तुम कहोगेः प्रभु की खोज है। तुम्हारा प्रभु बहुत सार्थक नहीं होगा। सिर्फ अभाव उसकी परिभाषा होगा। तुम्हें जिन-जिन चीजों की कमी मालूम पड़ती है--आनंद नहीं जीवन में, रस नहीं जीवन में, ज्योति नहीं जीवन में, तो तुम्हारे प्रभु में ये ही चीजें होंगी सब। ज्योति होगी, आनंद होगा, रस होगा। सच्चिदानंद--इसलिए हम परमात्मा को कहते हैं।
इन तीन चीज की कमी आदमी को मालूम पड़ती हैः सत्य की, चित्त की, आनंद की,
तो हम इन तीन को परमात्मा में रख कर सोचते हैं कि कहीं जगह होगी, कोई पड़ाव होगा, मुकाम होगा, जहां यह सब मिल जाएगा--जो मुझे अभी नहीं मिलता है।
तुम परमात्मा की याद करते हो, मगर अभी याद क्या होगी? अभी प्यारे को देखा भी नही; अभी उसकी कुछ शक्ल का भी पता नहीं, सूरत का भी पता नहीं, उसके नाक-नक्श का भी पता नहीं, उसके नाम का भी पता नहीं। अभी किस दिशा में उसको खोजने चलें, यह भी पता नहीं है। अभी है भी या नहीं--यह भी पता नहीं है।
अभी इतना ही पता है कि भीतर एक अनजानी सी प्यास उठ रही है, जिसका कोई साफ-साफ रूप नहीं है। एक अराजक प्यास उठ रही है। कुछ हो रहा है भीतर लेकिन अभी निदान नहीं हुआ है। निदान के लिए ही तो गुरु के पास जाओगे। गुरु के चरण में सिर रखोगे और कहोगे कि जो मेरा जीवन है, वह व्यर्थ मालूम हो रहा है और सार्थक कैसा जीवन हो, इसका मुझे पता नहीं है। अगर सार्थक कोई जीवन हो सकता हो तो मुझे दिशा दें, मार्ग दें, निर्देश दें। मैं तयार हूं चलने को, खतरे उठाने को, कीमत चुकाने को, कसौटी पर कसे जाने को--मैं तैयार हूं।
"हरि सुमिरै सो वार है... ।" इस दूसरे सूत्र में हरि के उसी स्मरण को कबीर ने कहा है कि जो प्रभु की खोज में निकलेगा, याद करेगा परमात्मा की, यह तो यात्रा का प्रारंभ हुआ। "गुरु सुमिरै सो पार... । फिर यह हरि को ही बैठे- बैठे सुमरते रहे, जिसकी तुमसे कोई पहचान नहीं है। मुलाकात नहीं है। साक्षात्कार नहीं है; इसी हरि को बैठे-बैठे गुनगुनाते रहे, तो कहीं न पहुंचोगे। यह तो प्रारंभ ही था, यहीं मत रुक जाना। यह तो पहला कदम था। यह तो पहली सीढ़ी थी।
अब उसको खोजो, जो जिसको मिल गया हो। अब उसके पास जाओ, जिसने पा लिया हो। अब उसकी आंखों में झांको, जिसकी आंखों में बसा हो। अब उसके पास बैठो, जहां फूल खिला है और जहां सुगन्ध फैल रही है। वहीं यात्रा की पूर्णता होगी। इसलिए कहते हैं कबीरः "हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार।" और पहला वचन गलत नहीं है। गुरु को सुमरने से पार क्यों हो जाओगे? क्योंकि जब गुरु का स्मरण करोगे, और गुरु के पास बैठोगे, गुरु का सत्संग करोगे, साध-संगत होगी, तभी तुम पाओगेः "यो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावे नाम।" गुरु के पास बैठ-बैठ कर ही हरि का ठीक स्मरण शुरू होगा। और हरि का ठीक स्मरण हो जाए, तो हरि ही एक दिन मुक्ति का दाता है।
गुरु तुम्हें पार कर देगा, क्योंकि गुरु वहां तक पहुंचा देगा, जहां तक जाना जरूरी है, ताकि प्रभु का प्रसाद मिल जाए। गुरु तुम्हें पात्र बना देगा। प्रभु की वर्षा होगी, तो तुम भर जाओगे।
तो हरि के दो तरह के स्मरण हैं। इसलिए ये दो पद हैं। इनमें विरोध कुछ
भी नहीं हैं। अलग-अलग लोगों से कहे होंगे कबीर ने।
पहला पद तो उनसे कहा होगा, जो गुरु के पास आ गए हैं। जिन्हें गुरु मिल गया है। पहला पद तो कबीर ने अपने साधुओं से कहा होगा। कहा होगाः "मेरो संगी दोउ जन, एक वैष्णो एक राम। यो है दाता मुक्ति का, वो सुमरावै नाम।" यह तो साधुओं से कहा होगा। सुनो भाई साधो... । अपने शिष्यों से कहा होगा, जिनको गुरु तो मिल ही चुका है। अब उनको यह बात कही जा सकती है कि गुरु तो सिर्फ

याद दिलानेवाला है, संकेतमात्र। असली घटना तो परमात्मा के प्रसाद से घटेगी। मैं तुम्हें वहां तक ले चलूंगा, जहां तक मनुष्य का पहुंचना जरूरी है। उसके बाद फिर जाने की जरूरत नहीं है, फिर परमात्मा ले लेता है।
ऐसा ही समझो कि एक पत से तुम कूदना चाहते हो। जब तक नहीं कूदे हो, तब तक
पत पर हो। कूद गए एक बार तो कूदने के बाद फिर क्या करना पड़ता है? फिर कुप नहीं करना पड़ता। फिर तो जमीन की कशिश खींच लेती है। ऐसा थोड़े ही है कि कूदने के बाद तुम्हें कोशिश करते रहनी पड़ती है कि अब मैं कूद तो गया, अब जमीन तक कैसे पहुंचूं? इसकी फिर तुम फिकर पोड़ो। फिर जमीन ही फिकर कर लेगी। ऐसी ही घटना है। गुरु तुम्हें राम की ठीक-ठीक याद दिला देता है; पलांग
लग जाती है। कूद गए तुम। फिर तो राम ही खींच लेता है। उससे बड़ी कशिश और कहां? उससे बड़ा आकर्षण और कहां? उससे बड़ा गुरुत्वाकर्षण और कहां? वही तो ग्रेविटेशन है, वह तो खींच लेगा। हां, जब तक तुम अटके हो अपने अहंकार में और पलांग नहीं लगाई, तब तक अटके हो।
एक जहाज पर ऐसा हुआ। एक स्त्री गिर पड़ी। सारे यात्री डैक पर इकट्ठे हो गए। और स्त्री डूब रही है और चिल्ला रही है, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही कि कोई कूद जाए।
एक बूढ़े धनी ने कहा कि लाख रुपये दूंगा, कोई भी कूद जाए और बचा ले। तभी लोगों ने
देखा कि एकदम से मुल्ला नसरुद्दीन कूदा; स्त्री को बचा कर बाहर लाया।
जब ऊपर आया, तो लोग फूलमालाएं उसके गले में डाले और उस बूढ़े ने लाख रुपये का चेक दिया। मुल्ला ने कहा, "चेक रख एक तरफ। पहले यह बताओ, मुझे धक्का किसने दिया?"
वह कुप अपने से नहीं कू दा था। किसी ने धक्का दे दिया था। वह देख रहा
था झुक कर।
एक दफा धक्का लग जाए... । गुरु धक्का ही दे सकता है। एक दफा धक्का लग जाए, पहुंच जाओगे। फिर तो कशिश अपना काम खुद कर लेगी।
पहला वचन कबीर ने कहा होगा साधुओं सेः "मेरो संगी दोइ जन, एक वैष्णो एक राम। "प्यारा वचन है।" यो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम।" परमात्मा ही है देने वाला मुक्ति का, लेकिन वह मुक्ति तभी मिलेगी, जब गुरु ने नाम सुमरा दिया हो।
दूसरा वचन कबीर ने कहा होगा उनसे, जो गुरु के बिना ही हरि को जप रहे हैं। जो साधक नहीं है, साधु नहीं हैं; जिन्होंने जीवन को दांव पर लगाया नहीं है। जिन्होंने किसी गुरु से दोस्ती नहीं की है। जो बड़े अहंकारी हैं। जो किसी के चरणों में झुकना न चाहेंगे। जो शिष्य बनने में अड़चन पाते हैं। कहते हैंः हम अपना खुद कर लेंगेः गीता पढ़ लेंगे, गुरु-ग्रंथ पढ़ लेंगे; बाइबिल पढ़ लेंगे; हम अपना खुद कर लेंगे। शास्त्र तो रखै हैं, अब और गुरु को क्या खोजना है? हम अपना पढ़ लेंगे शास्त्र। खुद बैठ कर स्मरण कर लेंगे। कबीर ने इनसे कहा होगा, "हरि सुमरै सो वार है।" कहा होगा कि हरि याद करना, तो केवल यात्रा का प्रारंभ है। इसमें भटक मत जाना। "गुरु सुमिरै सो पार"--जो गुरु को सुमरेगा, वही पार होगा।
ये दो विभिन्न तरह के पात्रों से कहे गए वचन हैं, इनमें विरोधाभास नहीं है।
और सदगुरुओं के वचन जब तुम पढ़ने चलो, कभी विरोधाभास पाओ, तो याद रखनाः विरोधाभास हो ही नहीं सकता। अगर दिखता हो, तो तुम्हारी ही कहीं कुप भूल-चूक होगी। खोज-बीन करोगे, तो तुम पाओगे कि कहीं न कहीं रास्ता मिल गया-- संगति बैठ गई।
गुरुओं ने जो वचन कहे हैं, अलग-अलग लोगों से कहे हैं, अलग-अलग स्थितियों में कहे हैं। किसी आदमी को एक बीमारी है, उसके लिए एक दवा है। किसी आदमी को दूसरी बीमारी है, उसके लिए वही दवा नहीं है। और जो एक के लिए दवा है,
दूसरे के लिए जहर हो जाएगी। और जो एक के लिए जहर है, दूसरे के लिए दवा
हो जाती है।

तो गुरु तो ऐसा समझो कि जैसे तुम दवा की दुकान पर जाते हो। तुम्हारा
जो प्रिस्क्रिप्शन होता है, केमिस्ट तुम्हें जल्दी से दवा तैयार करके दे देता है। दूसरे को दूसरी दवा तैयार करके देता है। तो तुम झगड़ा नहीं करते। तुम यह नहीं कहते कि यह मामला क्या है, मुझे लाल रंग की दवा दे दी, इसे हरे रंग की दवा दे दी? तुम जानते होः तुम्हारी बीमारी अलग है, इसकी बीमारी अलग है।
ऐसे ही सदगुरुओं के वचन हैं; वे दवाए हैं, औषधियां हैं।
पहली औषधि दी गई है शिष्य को। क्यों शिष्य को दी गई है। क्योंकि शिष्य
के साथ एक खतरा हैः कहीं वह गुरु को जरूरत से ज्यादा न पकड़ ले। कही ऐसा न हो कि गुरु को ही पकड़ ले और भगवान को भूल ही जाए। शिष्य के साथ यह खतरा है ही क्योंकि गुरु पकड़ में आता है; भगवान तो पकड़ में आते नहीं। गुरु से मोह लग जाता है। भगवान तो अदृश्य है, गुरु दृश्य है। गुरु देह में है, भगवान तो विराट में है।
गुरु से मोह लग जाता है, ममता लग जाती है। मेरे-तेरे का भाव जुड़ जाता है। गुरु से अहंकार का संबंध बन जाता है। मेरा गुरु--तो मेरे "मैं" को मजबूत करने लगता है।
तो शिष्यों को समझाया कबीर नेः "यो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम।" कहा कि गुरु तो सिर्फ स्मरण करवाता है परमात्मा का। अब इसी में मत रुके रह जाना। गुरु से सीख लो--और चलो। गुरु की सुनो--और चलो। गुरु का उपयोग कर लो, गुरु का सेतु बना लो और उस पार जाओ। जाना परमात्मा में है। मुक्ति तो वहीं घटेगी। यह शिष्यों से कहा।
लेकिन कुछ ऐसे हैं, जो शिष्य बने ही नहीं; जो अपने अहंकार को पकड़े बैठे हैं। जिनके अहंकार के कारण वे किसी गुरु के पास झुक नहीं सकते हैं। ऐसे लोग मुर्दा गुरुओं के पास बैठे रहते हैं।
मुर्दा गुरु का कोई मतलब नहीं होता। अगर बुद्ध जिंदा हों, तो वे न जाएंगे। जब बुद्ध मर जाएंगे, तब उनके धम्मपद को पढ़ेंगे; किताब को पढ़ेंगे! मुर्दा गुरु के साथ एक सुविधा है; तुम्हारा जो मन हो, वैसी व्याख्या
कर लो। जो अर्थ निकालना हो, निकाल लो। मुर्दा गुरु बीच में आकर कह नहीं सकता कि तुम क्या कर रहे हो!
सिगमंड फ्रायड के जीवन में एक उल्लेख है। जब बूढ़ा हो गया फ्रायड, तो मनोवैज्ञानिकों की, उसके खास-खास शिष्यों की, उसने एक बैठक बुलाई! शायद दो- चार महीने और जीएगा--कि साल; अब कुप पक्का नहीं है। उसे शक होने लगा है कि जाने के दिन करीब आ गए हैं। तो उसने अपने खास शिष्यों को बुलाया कि उनसे आखिरी बार मिल ले। उसके शिष्य सारी दुनिया में फैले थे। उसने बड़ा भारी आंदोलन चलाया--मनोविश्लेषण का।
शिष्य आए भी। कोई तीस खास-खास आदमी उसने बुलाए थे, वे आए। सांझ को उन्होंने फ्रायड के साथ भोजन लिया, और भोजन के बाद जब वे गपशप कर रहे थे, तो फ्रायड बैठा चुपचाप सुनता रहा। उन सब में बड़ा विवाद मच गया। विवाद इस बात पर मच गया कि फ्रायड के किसी कथन में ऐसा कहा है कि वैसा कहा है? यह कहा है कि वह कहा है? अलग-अलग व्याख्याएं होने लगीं। तीस लोग थे, तो तीस व्याख्याएं! और उनमें बड़ा विवाद पिड़ गया। और फ्रायड सुनता रहा घंटे भर। और उसने जोर से टेबल बजाई और उसने कहा, "मैं अभी जिंदा हूं, मुझसे नहीं पूछते? (वह जिंदा बैठा है!)। तुम लड़े जा रहे हो! तुम विवाद कर रहे हो कि फ्रायड का अर्थ क्या है? और फ्रायड जिंदा है! उसने कहा, "मैं अभी जिंदा हूं, इतनी जल्दी तो न करो। जब मैं मर जाऊं, तब तुम विवाद कर लेना। अभी तो मैं मौजूद था, अभी तुम्हें किसी को नहीं सूझा कि इस बूढ़े को पूछ लें--कि इसका मतलब क्या है? मेरे मरने के बाद क्या हालत होगी?" फ्रायड ने कहा।
बुद्ध के मरने के बाद क्या हालत हुई! बौद्धों के पच्चीसों संप्रदाय
हो गए। महावीर के मरने के बाद क्या हालत हुई? कितने ही संप्रदाय फैल गए। मोहम्मद के मरने के बाद; जीसस के मरने के बाद... ।
संप्रदाय का मतलब क्या होता है? व्याख्या करने में लोग स्वतंत्र हो गए। जिसको जैसी व्याख्या करनी हो, वैसी व्याख्या करे। अब महावीर बीच में

आकर कह न सकेंगे कि यह गलत है; मैंने ऐसा कभी कहा नहीं। या मैंने कुप और कहा था।
मुरदा गुरु के तुम मालिक हो जाते हो। जिंदा गुरु तुम्हारा मालिक होता है। और अहंकार किसी को अपना मालिक नहीं बनाना चाहता।
तो दूसरा वचन उनसे कहा है, जो अपने अहंकार में अटके हैं। पहला वचन उनसे कहा है, जो गुरु में अटक सकते हैं। पहला वचन उनसे कहा, जो गुरु में अटक सकते हैं, वे अटकें नहीं। उनको याद दिलाई--कि गुरु से ही मुक्ति नहीं मिल जाएगी। गुरु तो याद दिला देगा। इशारा कर देगा। फिर यात्रा करनी होगी। मुक्ति तो परमात्मा से मिलेगी।
दूसरी याद उन्हें दिलाई कि इसका मतलब यह मत समझ लेना कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। गुरु के बिना इशारा कौन करेगा? इसलिए कहाः "हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार"।
गुरु की सारी चेष्टा यही है कि पहले उसके पास आओ, ताकि संसार से दूर हो जाओ। और फिर उसकी चेष्टा होती हैः अब मुझसे दूर हो जाओ, ताकि परमात्मा के पास हो जाओ। इस फर्क को खयाल में ले लेना।
संसार से दूर करने में गुरु अनिवार्य है। और फिर परमात्मा के पास भेजना हो, तो तुम्हें धक्का देने लगेगा, कि अब तुम परमात्मा की तरफ जाओ; अब मुझमें उलझ कर मत बैठ जाओ। मैं तो साधन था एक, उसका तुमने उपयोग कर लिया। अब साधन में अटको मत। मैं तो मार्ग था, मैं मंजिल नहीं हूं। इसलिए ये दो वचन हैं।

दूसरा प्रश्नः मैं अपने अतीत को क्यों नहीं भूल पाता हूं? यद्यपि मेरे अतीत में दुखों के अतिरिक्त और कुप भी नहीं है।

शायद इसीलिए। आदमी दुखों को कुरेद-कुरेद कर याद करता है। क्योंकि दुख में एक मजा है। तुम चौंकोगे। तुम कहोगेः दुख में और मजा! दुख में कैसा मजा? दुख में एक मजा है। दुख अहंकार का भोजन है। आनंद की अवस्था में अहंकार विलीन हो जाता है। दुख की अवस्था में अहंकार खूब सघन हो जाता है।
लोगों ने दुख ऐसे ही थोड़े चुन लिया है! होशियारी से चुना है! समझदारी
से चुना है। लोग दुखी हैं--ऐसे ही थोड़े! लोग दुखी इसलिए हैं कि दुख में ही अहंकार बचता है। मैं कुछ हूं--यह दुख में ही बचता है। जैसे ही आनंद की लहर आती है, तुम बह जाते हो। अहंकार बचता ही नहीं।
इसलिए लोग आनंद की बात करते हैं, लेकिन आनंदित होना नहीं चाहते है; डरते है। आनंदित हुए तो यह जो "मैं" का भाव है, यह नहीं बच सकेगा। इसीलिए सारे संतों ने कहा है कि आनंद पाना हो, तो "मैं" पोड़ दो। क्योंकि दोनों एक ही बात है। "मैं" पोड़ दो, तो आनंद हो जाता है। आनंदित हो जाओ, तो "मैं" पूट जाता है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
लेकिन तुम दुख को खूब सम्हाल-सम्हाल कर रखते हो, जैसे वह संपति हो! दुख
की ढेरी पर तुम अकड़ कर बैठे रहते हो! लोग अपना दुख भी बड़ा कर-कर के बताते हैं। यह तुमने खयाल किया! तुमने खुद भी अपने पर देखा हो, तो खयाल में आ जाएगा। जरा सी बीमारी हो जाती है, तो उसको बड़ा करके बताते हैं। क्यों? बड़े दुख के साथ बड़ा अहंकार हो जाता है। तुम्हें अगर कोई बीमारी हो और दूसरा कह देः अरे यह कोई खास बीमारी नहीं है, तो भी दुख होता है कि यह आदमी हमारी बीमारी को कह रहा हैः खास बीमारी नहीं हैं! मेरी बीमारी! और तुम कह रहे हो, कुप खास बीमारी नहीं? तुमने समझा क्या है?
तुम्हें जरा सा फोड़ा फुंसी हो जाए, तो तुम ऐसी चर्चा करते हो, जैसे कैंसर हो गया। जरा से सिरदर्द को तुम बताते हो कि जैसे सारी दुनिया के दुख-दर्द तुम पर टूट पड़े। जरा सा कांटा क्या चुभ जाता है, तुम चिल्लाते हो कि सूली लग गई!
तुम अपने दुखों को खूब बढ़ाते हो! तुम अपने दुखों को खूब फैलाते हो। तुम अपना ही जीवन जांचोगे, तो पजा चल जाएगा। कल तब तुम अपने दुख की चर्चा करो, तो जरा देखनाः कितना बढ़ा रहे हो। तुम हैरान होओगे कि दुख बढ़ाने की चीज है क्या? दुख तो घटाना है और तुम बढ़ा-बढ़ा कर बता रहे हो।

लोग दुख की ही बात करते हैं; सुख की तो कोई बात करता नहीं। दो आदमी मिलते हैं, दुख ही चर्चा शुरू कर देते हैं। दुख में लोग कुप अतिशय रस लेते मालूम पड़ते हैं। दुख उनकी संपदा मालूम होती है।
तुम पूछते होः "मैं अपने अतीत को क्यों नहीं भूल पाता हूं? और यद्यपि मेरे अतीत में दुखों के अतिरिक्त कुप भी नहीं है।"
तुम अपने अतीत को नहीं भूल पाओगे, जब तक तुम यह सत्य न समझ लो कि दुख अहंकार का निर्माण करते हैं। जिस दिन तुम अहंकार से मुक्त होने को तैयार होओगे, उसी दिन अतीत से भी मुक्त हो जाओगे, क्योंकि अतीत भी अहंकार का निर्माता है। अतीत के बिना तुम्हारा क्या अहंकार है?
समझ लो कि एक जादू का डंडा मैं घुमा दूं तुम्हारे सिर के पास, और तुम्हारा अतीत तुम्हें भूल जाए--सब--जैसे स्लेट पोंप दी। फिर तुम्हारे पास क्या अहंकार बचेगा? तुम क्या अकड़ कर कह सकोगेः मैं इंजीनियर हूं, डाक्टर हूं, प्रधानमंत्री हूं? वे तो अतीत की बातें थी; वे तो सब पुप गईं। तुम एकदम कोरी स्लेट हो गए। तब क्या तुम कह सकोगे कि मैं फलाने कुल में पैदा हुआ; बड़े कुलीन घर से आ रहा हूं; फलाने महाराजा का बेटा हूं।
वह तो पुप गया; अतीत तो पोंछ दिया। तुम कोरी स्लेट हो गए। तुम क्या घोषणा कर सकोगे--उस कोरी स्लेट में? तुम्हें कुछ भी न सूझेगा। तुम कह ही न सकोगे कि मैं कौन हूं। तुम्हारा नाम भी पुछ गया। तुम्हारी जाति भी पुप गई। तुम्हारा ब्राह्मण होना, तुम्हारा यह होना, वह होना; तुम्हारी डिग्रियां, पदवियां, पद्मभूषण, भारतरत्न इत्यादि सब पुछ गया। कुप नहीं बचा। तुम खाली कोरे कागज हो। क्या कहोगे?
तुम उस कोरे कागज में अचानक पाओगे कि कुप कहने को नहीं है। मैं की कोई घोषणा ही नहीं बनती।
"मैं" का सारा रूप-रंग अतीत से आता है। "मैं" का नक्शा अतीत से आता है। "मैं" की रेखा, परिभाषा अतीत से आती है। तो आदमी अपने अतीत को सम्हाल कर रखता है। जोड़ता जाता है अतीत की पूंजी। अनुभव इकट्ठे करता जाता है। कूडा करकट जो भी हो, इकट्ठा करता जाता है। ढेरी बड़ी होनी चाहिए। तुम्हारी ढेरी सब से बड़ी हो--ऐसी तुम्हारी आकांक्षा होती है। इस कारण आदमी अतीत को नहीं भूल पाता है। अहंकार है जड़ में। सुनो; इस पर सोचोः
तल्खी-ए-जहर अभी शामिले-जां रहने दे,
मुझ पे जो गुजरी है कुप उसका निशां रहने दे
ये बुझे जाम, ये रोई हुई शमएं न हटा
चंद घड़ियां खलिशे-ऐशे-गिरां रहने दे
देख उजड़े हुए मंजर अभी दिल-शोज नहीं
और कुप रोज युंही रंगे-खिजां रहने दे
कुप तो रोशन हों मेरे जिस्म की तारीक रगें
मौजा-ए-खूं से कोई शमए-रवां रहने दे
वो तेरे दर्द की गहराई कहीं देख न ले
नोहा-ए-जख्म को महरूमे-जबां रहने दे
चंद गुमनाम सी यादों की महक है दिल में
इस खराबे में ये गुलहाए-खिजां रहने दे
"तल्खी-ए-जहर अभी शामिले-जां रहने दे।" यह जो जिंदगी से कड़वाहट आ जाती है, जहर आ जाता है, आदमी कहता हैः इसे भी रहने दो, पीन मत लो।
"तल्खी-ए-जहर अभी शामिले-जां रहने दे।"
मेरी जिंदगी में सम्मिलित रहने दो यह जहर; मुझ से पीन मत लेना; मैंने बड़ी मेहनत से कमाया है। बड़ी कुरबानियां की हैं, तब यह जहर कमाया है। यह घाव मुफत नहीं है, बड़ी कीमत से खरीदे हैं।
तल्खी-ए-जहर अभी शामिले-जां रहने दे,
मुझ पे जो गुजरी है कुप उसका निशां रहने दे
तुम पर जो गुजरा है, वह एक दुखस्वप्न था। कांटे ही कांटे थे वहां; फूल वहां कभी न खिले, वसंत कभी न आया, सदा पतझड़ रही। रोग ही जाने हैं तुमने। जीवन का स्वाद तो कभी तुम्हें मिला नहीं। मृत्यु से ही कई बार मुलाकात हुई है। जीवन से कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। लेकिन फिर भी मन कहता हैः "मुझ पर

जो गुजरी है, कुप उसका निशां रहने दे।" उसके निशान रहने दो, क्योंकी वे निशान मिट जाएं, तो "मैं" ही मिट जाता हूं।
"ये बुझे जाम, ये रोई हुई शमएं न हटा।" ये दीये जो बुझ गए, ये दीये जो अब सिर्फ अतीत में बहे हुए आंसुओं की याद दिलाते हैं और कुप भी नहीं... ।
"ये बुझे जाम, ये रोई हुई शमएं न हटा।" चंद घड़ियां खलिशे-ऐशे-गिरां रहने दे।" और जो खलिश पुट गई है, जो जीवन के नाना प्रकार के भोगों के कारण कांटे चुभे रह गए हैं, जो बोझ छूट गया है--चंद घड़ियां खलिशे-ऐशे-गिरां रहने दे।" उसे हटा मत लो। वह बोझ मेरे ऊपर रहने दो। कुप नहीं तो कुप घड़ियां ही रहने दो।
देख उजड़े हुए मंजर अभी दिल-शोज नहीं
और कुप रोज युंही रंगे-खिजां रहने दे
आदमी कहता है पतझड़ ही सही मेरे अतीत में, लेकिन पतझड़ का रंग अभी रहने दो। अभी मुझे और सुन्दर दृश्यों की आकांक्षा भी नहीं है। मुझे मेरे पतझड़ में जीने दो।
कुप तो रौशन हों मेरे जिस्म की तारीक रंगें
मौजा-ए-खूं से कोई शमए-रवां रहने दे
वो तेरे दर्द की गहराई कहीं देख न ले
नौहा-ए-जख्म को महरूमे-जबां रहने दे
चंद गुमनाम सी यादों की महक है दिल में
इस खराबे में ये गुलहाए-खिजां रहने दे
सब व्यर्थ हो गया है, सब खंडहर हो गया है। अतीत यानी खंडहर।" इस खराबे में, इस खंडहर में ये गुलहाए-खिजां रहने दे।"
तुमने पतझड़ को भी फूल समझ लिया है। तुम कहते होः ये पतझड़ के फूल, ये कांटे--मगर चुभे रहने दो; इनकी खलिश बची रहने दो। ये बोझ मुझसे हटा मत लो; यही तो मेरी संपदा है। यही मेरा जीवन है।
तुमने जो नरक भोगे हैं, वही तो तुम्हारी आत्म-कथा है। और तुम्हारी आत्म-कथा क्या? सुख की तो किरण कभी उतरी नहीं। राम की धुन तो कभी उतरी नहीं, अनाहत का तो नाद कभी सुना नहीं। जो सुना है, बाजार का शोरगुल है। या वेश्यालयों का, या शराबघरों का, या गाली-गलौज का, या क्रोध, ईर्ष्या-मद-मत्सर--इनके बीच ही घिरे रहे हो। यही तुम्हारी कुल जमा-पूंजी है। यही तुम्हारा हिसाब किताब है। यही तुम्हारी खाता-बही है। इसलिए आदमी पोड़ना नहीं चाहता।
तुम्हारी ही ऐसी बात नहीं है, कोई अपने अतीत को पोड़ना नहीं चाहता। अपने घावों को लोग कुरेदते रहते हैं--कि कहीं भर न जाएं। भर जाएं, तो फिर क्या होगा? यही तो कुल-जमा है--बात करने की संपदा। यही मिट गया, तो हमारे पास तो कहने को कुप भी न बचेगा।
समझोगे इसे, तो अतीत को भूलने की जरूरत न रह जाएगी। समझोगे इसे, तो अतीत का बोझ गिरा दोगे। तुम्हीं सम्हाले हो।
अतीत तुम पर सवार नहीं है। अतीत तो जा चुका। जो जा चुका उसी का नाम अतीत है, तुम्हारी कल्पना भर में रह गया है। तुम्हारी स्मृति भर में अटका रह गया है। और वह भी तुम अटकाए हो, इसलिए रह गया है।
तुम समझ लोगे कि यह व्यर्थ है, इस धूल को अब ढोने की कोई जरूरत नहीं; इन खंडहरों में और रहने की जरूरत नहीं। नये घर बनाएं, वर्तमान में रहें। वर्तमान में रहोगे, तो भविष्य के द्वार खुलेंगे। अतीत में रहोगे, तो कब्र में रहोगे। कोई द्वार नहीं खुलेगा।
अतीत का तो कोई भी उपयोग नहीं है; अतीत में तो कुछ संभावना बची नहीं;
वह तो चली हुई कारतूस है; अब उसको लिए फिरो! रखे रहो सम्हाल कर पाती में अपनी! चली हुई कारतूस का करोगे क्या? कुप नये को जियो। आज जीयो--आज में जीयो, क्योंकि आज से कल पैदा होगा। उससे द्वार खुलेंगे। उससे संभावनाएं वास्तविक बनेंगी; बीज खिलेंगे।
"मैं अपने अतीत को क्यों नही भूल पाता हूं?" क्योंकि तुमने अभी तक वर्तमान में जीने की कला नहीं सीखी। क्योंकि तुम्हें अभी तक अज्ञात में जीने की हिम्मत नहीं है।

अतीत में बड़ी सुरक्षा है, सब साफ-सुथरा है, क्योंकि सब हो चुका है। भविष्य बिल्कुल अराजक है। कुप भी हुआ नहीं है अभी। सब हो सकता है, मगर अभी कुप हुआ नहीं है।
कल--आनेवाला कल बिल्कुल अराजक है। खाली केनवास है, चित्र तुम्हें बनाना होगा। तुम जो चाहोगे, बन जाएगा। नरक बनाना चाहोगे--तो नरक; और स्वर्ग बनाना चाहोगे--तो स्वर्ग।
अतीत का चित्र बिल्कुल साफ-सुथरा है, क्योंकि बात घट चुकी, तस्वीर उतर गई; उसमें कुप करने को बाकी नहीं है। कुप मेहनत भी नहीं है। तो आलस्य, काहिली, अकर्मण्यता--अतीत से चिपटी रहती है। जागरूकता वर्तमान में जीती है।
अभी बहुत चित्र बनाने हैं। अभी असली चित्र तो बना ही नहीं। क्योंकि अभी परमात्मा का चित्र नहीं बना। जब तक तुम्हारे हृदय में परमात्मा का चित्र अंकीत न हो जाए, तब तक अभी कुप भी नहीं हुआ; अभी असली बात तो होने को है। अभी जो हुआ, व्यर्थ ही हुआ है।
परमात्मा के पहले तृप्त मत हो जाना। परमात्मा को पाए बिना राजी मत हो जाना। अभी परमात्मा होने को है, तो क्या फिकर कर रहे हो कि किस स्कूल में पढ़े, किस कालेज में पढ़े; कौन सी डिग्री पाई, नहीं पाई; किस स्त्री ने धोखा दिया, किस पुरुष ने धोखा दिया; कौन दो पैसे पीन ले गया; कौन अपमान कर गया--इन व्यर्थ की बातों में समय मत खराब करो, ऊर्जा मत खराब करो। क्योंकि यही ऊर्जा परमात्मा की निर्मात्री है। इसी ऊर्जा से तुम्हारा मोक्ष निर्मित होगा। इस ऊर्जा का बड़ा मूल्य है, इसे कू ड़ाघरों में मत फेको।
तो वर्तमान को जीना सीखो; भविष्य पर आंख रखो। नजर आगे रहे, नजर पीपे नहीं।
जिसकी नजर पीपे है, उसके जीवन में दुर्घटनाएं होंगी। ऐसा ही समझो कि कोई आदमी कार चला रहा है और पीपे की तरफ देख रहा है। देखता पीपे की तरफ है, गाड़ी आगे की तरफ जा रही है। खतरा न हो, तो चमत्कार है। खतरा हो, तो इसमें कौन सी खास बात है! होना ही चाहिए। कितनी देर यह आदमी बिना खतरे के चल लेगा? यह देखता पीपे है। इसकी गर्दन पीपे की तरफ देख रही है और यह जा रहा है आगे की तरफ। खतरे आगे हैं, पत्थर-पहाड़ आगे हैं। राहों के मोड़ आगे हैं। पीछे तो सिर्फ धूल उड़ती रह गई है अब। जिन रास्तों से तुम गुजर गए, उनसे अब कभी न गुजरोगे। जो हो गया, हो गया। अब तुम
दुबारा बच्चे न होओगे; अब तुम दुबारा जवान न होओगे।
जो हो गया, वह तो धूल है--उड़ती हुई पीछे; कब तक इस धूल में अपनी आंखों को डूबाए रखोगे? गर्दन को मोड़ो।
और कोई जबरदस्ती यह काम नहीं किया जा सकता। तुम समझोगे, तो ही होगा। मैंने सुना हैः मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते के किनारे बैठा था। एक मोटर साइकिल पर सवार आदमी और उसके पीपे एक युवक पास ही आकर गिर गए। उसने दौड़ कर उस पीपे बैठे युवक को, जाकर उठाने की कोशिश की। क्योंकि ड्राइवर तो ठीक हालत में था। गिर तो गया था, चोट भी आ गई थी, लेकिन मुल्ला को लगा कि पीपेवाले की हालत बहुत खराब है। और हालत उसे इसलिए खराब लगी क्योंकि उसका सिर उलटा हो गया था। तो उसने एक जल्दी से पटका देकर उसका सिर सीधा कर दिया। तब तक ड्राइवर भी उठ कर पास आ गया। दूर गिर गया था। उसने कहा, "उसकी क्या हालत है?" मुल्ला ने कहा, "जब तक इसका सिर उलटा था, कुछ-कुछ बोलता था। जब से मैंने इसका सिर सीधा किया, यह बोलता ही नहीं!" वह आदमी बोला, तुमने मार डाला उसे। क्योंकि तेज हवा चल रही थी, ठंडी हवा, तो उसने उलटा कोट पहन लिया था। रास्ते में तेज हवा थी, पाती में हवा लग रही थी, तो उसने उलटा कोट पहन लिया था; उसका सिर बिल्कुल सीधा था। तुमने मार डाला उसको!
जबरदस्ती किसी का सिर सीधा करना मत। क्या पता उलटा कोट पहने हो!
जबरदस्ती तुम्हारे साथ कुप भी किया नहीं जा सकता। समझ से ही हो। समझ
से हो, सहजता से हो, तुम्हारे बोध से हो।
देखना शुरू करो कि अतीत को देखते रहने से क्या सार होगा? सार आगे है।
सार अभी होने को है। अभी हुआ नहीं है। जो जहां सार है, वहां देखो।

और मैं यह नहीं कर रहा हूं कि तुम आगे इतना देखने लगो कि वर्तमान को देखना पोड़ दो। क्योंकि यह भी हो जाता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो पीछे देखते हैं। अगर उनको किसी तरह समझ में आ जाए, तो आगे देखने लगते हैं। लेकिन पीछे तो है, जो जा चुका और आगे अभी हुआ नहीं है। फिर भी भ्रांति हो जाएगी। यूनान में एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हुआ, वह एक रात तारों का अध्ययन करता हुआ जा रहा था। ज्योतिषी था, तो तारों का अध्ययन कर रहा था; आकाश में आंखें अटकाए था। एक कुंए में गिर पड़ा, चोट खा गया। खयाल ही नहीं रहा; चलता-चलता रास्ते से उतर गया। कुएं में गिर गया। कुएं में गिर गया, तो चिल्लाया। पास की एक बूढ़ी औरत ने जो खेत में रहती थी, उसने आकर किसी तरह उसको निकाला। उस ज्योतिषी ने कहा कि "मां, तेरा बड़ा उपकार। शायद तुझे पता न हो कि किसको तूने बचाया! मैं यूनान का सब से बड़ा ज्योतिषी हूं। किसी का भविष्य बताने के लिए हजारों रुपये मेरी फीस है। मैं तेरा भविष्य मुफ्त बता दूंगा।"
उस बूढ़ी ने कहा, "चल रहने दे। तुझे अपने सामने आया हुआ कुआं दिखाई नहीं पड़ता। तू मुझे मेरा भविष्य बताएगा? तुझे जमीन के कुंए नहीं दिखाई पड़ते; तेरे पैर के सामने आए कुएं नहीं दिखाई पड़ते?"
यह कहानी मुझे प्रीतिकर लगती है। कुछ लोग हैं, जो बहुत आगे देखने लगते हैं, तो कुओं में गिरते हैं। कुप लोग हैं, जो पीपे देखते रहते हैं, तो भविष्य से टकरा जाते हैं।
सम्यक दृष्टि वर्तमान में होती है। सम्यक दृष्टि होती वर्तमान में है, भविष्य उन्मुख होती है।
देखना तो अभी है, यहां है। और भविष्य तो प्रतिपल वर्तमान बन रहा है, तो भविष्योंमुखता है। लेकिन भविष्य पर आंखें नहीं गड़ा देनी हैं।
अतीत स्मृती है; भविष्य कल्पना है; वर्तमान यथार्थ है। यथार्थ को देखो, क्योंकि यथार्थ से ही सत्य की तरफ जाने का द्वार है।

तीसरा प्रश्नः ममता के, मेरेपन के भाव के बिना क्या संभव है कि कोई मां अपने बच्चों का पालन दुलार के साथ कर सके? ममता, मेरेपन का पर्याय कैसे बन गई? और क्या ममता और प्रेम के बीच कुप सम्बन्ध नहीं है?

"ममता" शब्द बना है मम से। मम यानी मेरा, ममता यानी मेरेपन का भाव।
और ध्यान रहे, अधिकतर लोग ममता का अर्थ प्रेम कर लेते हैं। प्रेम और ममता बड़े विपरीत हैं। प्रेम में मेरेपन का भाव होता ही नहीं। क्योंकि मेरेपन का भाव वस्तुओं से हो सकता है; व्यक्तियों से कैसे हो सकता है? तुम कह सकते हो कि यह मकान मेरा है। चलो, ठीक, कबीर तो इसमें भी कहते हैं कि शरम खाओ, संकोच करो, लाज खाओ। मकान को मेरा कह रहे हो! यह तो परमात्मा का है। तुम्हारा इसमें क्या है? मेरा-तेरा क्या है?
लेकिन चलो, माफ कर दें आदमी को--कि मकान को मेरा कहे। लेकिन पत्नी को मेरा कहे, यह तो ज्यादती हो गई; यह तो माफ नहीं की जा सकती। क्योंकि पत्नी के पास आत्मा है! पत्नी वस्तु तो नहीं है! कोई कुर्सी तो नहीं है! कोई मकान तो नहीं है! कोई फर्नीचर तो नहीं है कि तुम कहो कि मेरा है! कि लेबल लगा दो। पत्नी के पास व्यक्तित्व है। वस्तु तो नहीं है पत्नी। कैसे मेरा कह सकते हो? मेरे कहने से तो व्यक्तित्व मर जाता है और वस्तु हो जाती है!
बेटे को भी; बेटी को भी--अपने बच्चे को भी मेरा कैसे कह सकते हो? क्योंकि इतना जीवंत, इतना परमात्मा के घर से अभी-अभी, ताजा-ताजा आया हुआ, इस पर तुम मेरे का क्या दावा करोगे?
खैर, मकान शायद तुमने बनाया अभी हो, ईंट-पत्थर जोड़ा हो, गारा लाया हो। शायद फर्नीचर तुमने बनाया भी हो। लकड़ी काटी हो, औजार उठाया हो। लेकिन बच्चे को तो तुमने बनाया भी नहीं। तुम ज्यादा से ज्यादा परमात्मा के हाथ में निमित्त मात्र थे। बच्चा अपने से बना है--या परमात्मा ने बनाया है! तुम बनाने वाले कौन हो?
बच्चे को तो मेरा कह ही नही सकते हैं। यह तो बड़ा अपमानजनक है।

और मनोवैज्ञानिक से पूछो, तो वह भी राजी होगा इस बात से। बच्चे के प्रति सम्मान चाहिए। ममता का भाव नहीं--सम्मान का भाव। बच्चा परमात्मा से आया है। यह परमात्मा की भेंट है; इसके प्रति आदर चाहिए--गहन आदर चाहिए। वही पत्नी के प्रति, वही पति के प्रति।
व्यक्ति व्यक्ति के बीच आदर का संबंध होना चाहिए। और जहां आदर है, वहां प्रेम है। जहां प्रेम है, वहां आदर है। जहां आदर है, वहां स्वतंत्रता है। और जहां स्वतंत्रता है, वहां प्रेम है। और जहां प्रेम है, वहां स्वतंत्रता है।
जहां तुमने मेरेपन की बात उठाई, वहां स्वतंत्रता मर जाती है। तुमने फांसी लगा दी। तुमने कहा, यह मेरा बच्चा है... । लोग कहते हैं कि यह मेरा बच्चा है, जो चाहूंगा, करूंगा। तुम बच्चे की जान ले रहे हो। तुम बच्चे के चारों तरफ फांसी का फंदा कस रहे हो।
तुम कहते होः मैं हिन्दू हूं, तो इसको हिंदू बनाऊंगा। मैं मुसलमान हूं, तो इसको मुसलमान बनाऊंगा। यह अपमानजनक है। तुम कौन हो निर्णायक? तुम्हें किसने हक दिया कि तुम इसे हिन्दू बनाओ कि मुसलमान बनाओ? तुम्हें किसने हक दिया कि तुम इसे आचरण दो। तुम ज्यादा से ज्यादा प्रेम दो और स्वतंत्रता दो। आचरण इसका जन्मे।
हां, तुम इसे मस्जिद भी ले जाओ और मंदिर भी ले जाओ; गुरुद्वारा भी और गिरजा भी। तुम इसे सब तरफ से पहचान करवा दो, फिर इसे स्वतंत्रता दो कि यह जो चुनना चाहे। गुरुद्वारा भला लगे, तो गुरुद्वारा। और गिरीजा भला लगे, तो गिरीजा। और मंदिर भला लगे, तो मंदिर। मगर इसकी स्वतंत्रता में बाधा न बनो। तुम हो कौन कि इसका धर्म चुनो? धर्म चुनने का अर्थ तो यह हुआ कि तुमने इसके ईश्वर का भी निर्णय कर दिया! इसकी पुजा का भी निर्णय कर दिया।
तुम हो कौन कि इसकी प्रेयसी चुनो? तुम कहते होः मेरा बेटा है, इसकी पत्नी मैं चुनूंगा! तुम हो कौन! तुम कैसे चुन सकोगे इसके लिए पत्नी? इसे चुनने दो। तुम इसे प्रेम दो, ताकि यह भी प्रेम करने में सफल हो जाए और कुशल हो जाए।
फिर इसके प्रेम को मुक्ति दो, ताकि यह चुने--कि किस स्त्री के साथ जीना चाहेगा, किस पुरुष के साथ जीना चाहेगी--कौन इसका मित्र होगा, कौन इसका संगी-साथी होगा, इसे चुनने दो। तुम अपनी कुशलता, अपनी बुद्धिमानी, अपना अनुभव बीच में न लाओ। क्योंकि यह बच्चा अपनी जिंदगी जीएगा; तुम्हारी जिंदगी नहीं दोहराएगा। और तुम जिस दुनिया में जीए थे, वह दुनिया अब नहीं है। यह किसी और दुनिया में रहेगा, जो आगे आनेवाली है। तुम इसे मुक्त करो। नहीं, ममता में प्रेम नहीं है; ममता में मालकियत है। और मालकियत में कहां प्रेम?
मालिक तो--वस्तुओं का--आदमी होता है। व्यक्तियों का कैसे? हालांकि कबीर तो कहते हैंः वस्तुओं के भी मालिक मत होना। यह भी परमात्मा के साथ ज्यादती है। यह अन्याय है, अनैतिक है। कुप तो संकोच करो, वे कहते हैं, यहां अपना क्या है? सब उसका है।
ये वृक्ष जो इस बगीचे में उगे हैं, क्या तुम कहोगेः हमारे हैं? तुमने इनमें क्या किया? एक पत्ता तो तुम पैदा नहीं कर सकते। जिसके हैं, उसके हैं। परमात्मा के हैं। हां, तुमने कुछ थोड़ी सी सेवा की हैः पानी डाला है; खाद जुटाई है। तुम निमित्त के कारण बने हो। तुम से थोड़ा सहयोग मिला है। परमात्मा ने तुम्हारा उपयोग किया है। उसे धन्यवाद दो, कि तूने मुझे इन वृक्षों की सेवा में थोड़ा अपनी सेवा का मौका दिया लेकिन ये वृक्ष तुम्हारे नहीं हैं। न बच्चे तुम्हारे हैं।
जीवन पर हक हो ही नहीं सकता। जीवन पर ममता का भाव घातक है। और दुनिया इतनी तकलीफ पा रही है--इस ममता के भाव के कारण।
अगर तुम मनोविश्लेषक के पास जाकर पूछो, तो सौ सालों का अनुभव यह है कि बच्चे जो भी मानसिक रूप से रुग्ण होते हैं, उनका सब कारण उनकी मां या उनके पिता में होता है। ज्यादातर तो मां में, क्योंकि पिता तो अक्सर घर होता ही नहीं। उसका संबंध कुप बच्चे से ज्यादा होता नहीं; लेकिन मां से चौबीस घंटे होता है।

कल ही रात एक युवती ने मुझे कहा कि मेरा बच्चा बार-बार अस्थमा से पीड़ित हो जाता है। ऐसा पहले तो नहीं होता था। जब से मैं अपने पति से अलग हो गई हूं तब से बच्चे को अस्थमा पकड़ने लगा है। तो मुझे शक होता है कि कारण क्या है अस्थमा का! यह बच्चा कमजोर होता जाता है। यह खाना भी नहीं खाता! और वह रोने लगी।
जाहिर था, वह बहुत चिंता कर रही है बच्चे की। बच्चा भी सामने बैठा है। पोटा-सा बच्चा! वह भी सुन रहा है। जब मैंने पूरी बात समझी, तो मुझे समझ में आया कि वह मां जरूरत से ज्यादा बच्चे के पीपे पड़ी है। अस्थमा उसी के कारण पैदा हो रहा है।
पति से अलग हो गई है, तो उसको एक अपराध का भाव है, कि बच्चे का पिता पिन गया। तो पिता का काम भी पूरा कर रही है, मां का काम भी पूरा कर रही है। दोहरा दबाव डाल रही है बच्चे पर। चौबीस घंटे बच्चे के पीपे पड़ी है कि इसको अच्पा कर के, बना कर बता देना है। शायद पति ने यह भी कहा है कि बच्चा बरबाद हो जाएगा, अलग होने से। तो अब उसके अहंकार को चुनौती है--कि वह बना कर बता देगी।
तो वह इस बच्चे के बुरी तरह पीपे पड़ गई है। उसी की वजह से बच्चे को ऐसा
लग रहा है, जैसे उसका कोई गला दबा रहा है; तो अस्थमा पैदा हो रहा है। वह गला दबाना मनोवैज्ञानिक है। मानसिक भाव है बच्चे का--कि कोई गला दबा रहा है। तो अस्थमा पैदा हो रहा है।
बच्चे ने खाना-पीना बंद कर दिया है। क्योंकी वह मां दिन-रात चिंतित है। और बच्चे को ऐसा लगने लगा होगा कि मेरे कारण ही मेरी मां इतनी चिंतित है। तो उसमें मरने की वृत्ती पैदा हो गई है। वह मर जाना चाहता है, क्योंकि "मेरे कारण मेरी मां कितनी चिंतित है"। यह जाहिर नहीं है।
जब मैं यह बात उसकी मां से कर रहा था, तो वह पोटा बच्चा भी--सुनते-सुनते उसकी आंखों में रोशनी आ गई, उसके चेहरे में फर्क आ गया। वह पहले जब आया था तो बहुत बेचैन सा मालूम पड़ रहा था। बात मैं उसकी मां से करता रहा, लेकिन आंख की नजर से मैं बच्चे को भी देखता रहा--उसमें फर्क क्या पड़ रहे हैं। वह स्वस्थ होकर बैठ गया। उसे यह बात जंची। हालांकि पोटा है अभी, लेकिन बात उसकी समझ में आ गई, कि कुछ ऐसा हो रहा है।
मां को भी यह बात दिखाई पड़ गई, कि मैं अतिशय प्यार कर रही हूं। अतिशय प्यार यानी अतिशय ममता।
यह प्रेम नहीं है। यह अपने अहंकार का ही आरोपण है। "यह मेरा बच्चा है;
इस बच्चे को दुनिया में सब से श्रेष्ठ बच्चा होना चाहिए।" "यह भी क्या पागलपन है! तुम्हारा होने से इसने कोई कसूर किया! यह मेरा बच्चा है, इसको कक्षा में प्रथम आना चाहिए। क्यों? दूसरों के बच्चे भी तो हैं। तुम्हारे बच्चे का ही क्या अपराध है कि वह प्रथम आए! और प्रथम आने में तुम सोचते हो कि बच्चे से तुम्हें प्रेम है, तो तुम गलती में हो। यह सिर्फ तुम्हारा अहंकार है, शायद तुम प्रथम नहीं आ पाए थे स्कू ल में; अब तुम बच्चे की पाती पर चढ़ कर प्रथम आना चाहते हो; ताकि तुम मोहल्ले में जाकर लोगों से कह सको कि "देखो, मेरा बच्चा प्रथम आया है!" यह बच्चे के पीपे से, बच्चे के कंधे पर बंदूक रख कर गोली चलाना चाहते हो। देखो, मेरा बच्चा ऐसा--मेरा बच्चा वैसा... !
देखते हैं नः माताएं, पिता, कैसे बच्चों की चर्चा करते हैं--कि मेरा बच्चा ऐसा, मेरा बच्चा वैसा। इस चर्चा में गौर से सुनना, तो तुम उनके अहंकार का ही गीत सुनोगे। यह उनका अहंकार है कि मेरा बच्चा है। यह मैं इसके भीतर पिपा हूं; यह मेरा खून, मेरा मांस-मज्जा, यह मेरा प्रतिनिधी है। मैं तो कल चला जाऊंगा, लेकिन दुनिया को यह दान दे जाऊंगा। यह मेरा बच्चा है। यह मेरी याद्दाश्त कायम रखेगा।
यह अहंकार है। तुम नहीं भर पाए, अब तुम बच्चे के द्वारा भरना चाहते हो। इस अहंकार के कारण तुम इस बच्चे की गरदन को दबा दोगे।
सौ में निन्यानबे बच्चे मां-बाप मार डालते हैं; जिंदा ही नहीं रहने देते उनको। इसलिए तो दुनिया इतनी मुरदा दिखाई पड़ती है। यहां रोशनी नहीं

है, जीवन नहीं है, तरंग नहीं है, उत्सव नहीं है। मार डालते हो; सब तरह से मार डालते हो।
न बच्चे को अपनी अनुभूति से चलने देते, न अपनी अनुभूति से चुनने देते।
और तो और धर्म भी उस पर थोप देते हो। और तो और प्रेम भी उस पर थोप देते हो।
कहते होः "मैं अनुभवी हूं, तो मैं यह पत्नी तेरे लिए खोज लाया हूं।" अनुभव से प्रेम का क्या संबंध है? अगर अनुभव से प्रेम का संबंध हो, तो लोगों को बुढ़ापे में शादी करनी चाहिए।
प्रेम की तरंग अनुभव से नहीं उठती। प्रेम की तरंग तो युवा मन में उठती है--अनुभवहीन मन में उठती है। प्रेम का तो विस्तार ही अनुभवहीनता में होता है। प्रेम तो एक तरह का पागलपन है। जब तुम बहुत अनुभवी हो जाते हो, तो प्रेम की तरंग उठती नहीं। अनुभव मार डालता है तरंग को।
और जब तुम अनुभव से सोचते हो, तो तुम कुप और बातें सोचते हो। अनुभवी पिता सोचता है कि लड़.की का परिवार कैसा; लड़के का परिवार कैसा। धन, दौलत, प्रतिष्ठा, शिक्षा--ये बातें सोची जाती हैं। इनका प्रेम से क्या लेना- देना?
कभी तुमने सुना कि कोई आदमी किसी की एम.ए. की डिग्री के प्रेम में पड़ गया हो? या कोई लड़की या कोई लड़का किसी की एम.ए. की डिग्री... । क्योंकि गोल्ड मेडल मिला है, इसलिए प्रेम में पड़ गया हो। प्रेम से इसका क्या संबंध है? गोल्ड मेडल और प्रेम!
प्रेम जब उतरता है, तो बड़ा अनजाना उतरता है। बिना किसी कारण के उतरता है। प्रेम का कारण भी नहीं बताया जा सकता। लेकिन तुम प्रेम भी थोप देते हो; ज्ञान भी थोप देते हो; जीवन की सारी चर्या थोप देते हो, और फिर तुम चाहते होः लोग प्रफुल्लित हों! फिर तुम चाहते हो--लोग आनंदित हों। और तुम चाहते हो--कि बच्चें मां-बाप के प्रति सम्मान से भरे रहें। असंभव है। तुमने ऐसा कुप भी नहीं किया, जिसके कारण बच्चों का सम्मान तुम पाओ।
ममता प्रेम नहीं है। ममता जरूर तुमने दिखाई है। लेकिन प्रेम तुमने नहीं दिखाया।
मैं तुमसे कहना चाहूंगा... । पूछा तुमनेः ममता के, मेरेपन के भाव के बिना क्या संभव है कि कोई मां अपने बच्चों का पालन दुलार के साथ कर सके? तभी संभव है। जब तक ममता है, तब तक प्रेम कहां, दुलार कहां?
और अगर इसीलिए तुम बच्चे की फिकर कर रहे हो, कि यह तुम्हारा है, तो तुम बच्चे की फिकर कर ही नहीं रहे हो। तुम अपनी ही फिकर कर रहे हो।
बच्चा तुम्हारा है, इसलिए फिकर की, तो बच्चे की क्या फिकर की? बच्चा परमात्मा का है, तुम्हारा क्या? उसकी भेंट है। उसने तुम पर अनुग्रह किया, प्रसाद किया। तुम उसके लिए धन्यवाद हो। और बच्चे की फिकर कर रहे हो, क्योंकि यह सेवा का मौका परमात्मा ने तुम्हें दिया है। तुम्हें इस बच्चे से प्रेम है, लगाव है। तुम चाहोगे कि यह बच्चा आनंदित हो।
तुम इस बच्चे का आचरण नहीं दोगे, क्योंकि थोथा, ऊपर से थोपा गया आचरण इसे उदास कर देगा। तुम इस बच्चे को साहस दोगे कि तू हिम्मत कर। खोज। हम भी खोजते रहे हैं, तू भी खोज।
और तुम इस बच्चे को झूठी बातें न दोगे। तुम इस बच्चे से झूठ न कहोगे कि ईश्वर है। तुम्हें पता नहीं; तो तुम कैसे कहोगे? प्रेम झूठ नहीं बोलेगा। ममता अक्सर झूठ बोलती है।
तुम्हें पता नहीं है, तुम बच्चे को कहते होः ईश्वर है। और अगर बच्चा प्रश्न उठाए, तो तुम बच्चे को... जल्दी से उसका मुंह बंद कर देते हो। तुम कहते होः ये बातें जरा कठिन हैं। तेरी अभी समझ में नही आएंगी। बड़ा होगा, तब समझ में आ जाएगी। जैसे तुम्हें समझ में आ गई हैं! न तुम्हें समझ में आई हैं, न तुम्हारे पिता को समझ में आईं। बड़े तुम हो गए हो, समझ में क्या आ गया है? जिंदगी का रहस्य बच्चे को जितना समझ में आ सकता है, बड़े को उतना नहीं आ सकता है। इसलिए जीसस ने कहा हैः जो बच्चों की भांति सरल हैं, वे प्रभु को समझ पाएंगे।

सारी दुनिया के संतों ने कहा है कि बच्चों कि भांति सरल हो जाओ, तो परमात्मा करीब आ जाता है। अनुभवी के पास परमात्मा नहीं आता है। अनुभवी से परमात्मा बचता है--कि ये अनुभवी आ रहा है--भागो!
ज्ञानी से परमात्मा डरता है; पंडित से परमात्मा डरता है। पंडित से परमात्मा भयभीत होता है। शांत निर्दोष चित्तता चाहिए।
बच्चा परमात्मा के ज्यादा करीब है। और अगर उसे स्वतंत्रता दी जाए और उसके चारों तरफ प्रेम बरसता हो, और ममता मे जाल और फंदे न हों, और कोई अहंकार, उसकी पाती पर सवार न होता हो, तो बच्चे एक दूसरी तरह की दुनिया बनाएंगे। बच्चे एक दूसरी तरह की दुनिया में बड़े होंगे। वही असली प्रेम होगा।
प्रेम की कसौटी क्या है? कहते हैं; फल कसौटी है वृक्ष की। तुम वृक्ष तो खूब लगाओ, और फूल कभी खिलें ही न, तो कहीं कुछ भूल हो रही है--ऐसा मानोगे या नहीं? तुम वृक्ष तो खूब लगाओ, आम कभी फले ही नहीं, तो कुप भूल हो रही है ना कहीं! अगर आम फलें भी, तो भी कड़वे हो जाएं, तो कहीं कुप भूल हो रही है या नहीं?
दुनिया इतना प्रेम कर रही है, लेकिन दुनिया में उदासी है। फूल तो लगते
ही नहीं! मधुर और मीठे फल तो लगते ही नहीं। जहर ही जहर है। तो जरूर कहीं प्रेम में भूल हो रही है। प्रेम के नाम पर कोई और धोखा दे रहा है। ममता प्रेम का धोखा दे रही है। और अहंकार प्रेम की नकाब ओढ़ कर चल रहा है।
ममता से मुक्त हो जाओ, ताकि प्रेम प्रकट हो सके। सम्मान दो, क्योंकि
इस पृथ्वी पर जो भी है, परमात्मा का है। पौधे भी, बच्चे भी, चांद-तारे भी। यह पूरी पृथ्वी उसका मंदिर है।
और निश्चित ही जब तुम किसी का सम्मान करते हो, तो आरोपण नहीं करते।
तुम्हारे मन में प्रतिष्ठा होती है। अगर बच्चा एक प्रश्न पूछेगा, तुम जानते हो, तो जवाब दोगे। जितना जानते हो, उतना जवाब दोगे--अगर सम्मान है बच्चे के प्रति। और ऐसा धोखा कभी न दोगे कि--बड़े होकर तुझे पता चल जाएगा। तुम बच्चे से यह कहोगे कि मैं भी खोज रहा हूं। अभी तक मुझे परमात्मा
का पता नहीं चला। तू भी खोज। तू शायद ज्यादा करीब है परमात्मा के घर के। मेरे और परमात्मा के बीच तो कई साल का फासला हो गया। तू अभी-अभी आया परमात्मा के घर से। तू भी ध्यान कर, तू भी प्रार्थना कर, तू भी खोज। अगर तुझे मुझसे पहले पता चल जाए, तो मुझे बताना। क्योंकि तू अभी ज्यादा ताजा है; तू अभी ज्यादा निर्दोर्ष है। अभी तू ज्यादा कपट से नहीं भरा; तर्क से नहीं भरा। अभी तेरी श्रद्धा अखंडित है। अभी तू सरल है। अभी तू संत है ही मुझे तो संत होना पड़ेगा, तू है। तू भी खोज।
यह होगा सम्मान, यह होगा प्रेम। और अगर ऐसा पिता कर सके, मां कर सके, तो क्या तुम सोचते हो, इनके बच्चे कभी इनका अपमान कर सकेंगे? असंभव है।
आज दुनिया में यह पीड़ा बहुत है लोगों को कि उनके बच्चे उनका अपमान करते हैं। क्यों? तुमने उनका बहुत अपमान किया है, उसका प्रतिशोध है। हालांकि तुमने अपमान किया, तो तुमने कभी नहीं सोचा कि तुम अपमान कर रहे हो। तुम्हारा अपमान इतना स्वीकृत है कि तुम सोचते ही नहीं कि यह अपमान है। मैं एक घर में मेहमान हुआ। और मैं बहुत से घरों में मेहमान हुआ--देश में यात्रा करता था तो। तो अक्सर यह उपद्रव हर घर में था। बाप अपने बेटे को लेकर आ जाए कि "जरा इसको समझाइए। इस बुद्धू को कुप... ।" (उसके ही सामने उसको बुद्धू कह रहे हैं!)--"इसको कुछ अकल नहीं है।"
मैं चौंकता। मैं उनसे कहताः"यह आश्चर्य की बात है कि यह बुद्धू अभी तक आपकी पिटाई नहीं करता; यह आपका सिर नहीं खोल देता। यह बुद्धू पूरा नहीं है। आप एक अपरिचित, अजनबी के सामने उसे खड़ा कर के बुद्धू कह रहे हैं? वह बरदाश्त कर रहा है। सज्जन मालूम होता है। मेरे लिए तो आप दुर्जन मालूम होते हैं। यह अपमान है। वह घूंट पी रहा है अपमान के, क्योंकि अभी कम.जोर है; क्योंकि अभी आप पर निर्भर है रोटी-रोजी के लिए। लेकिन कभी बदला लेगा। यह जहर इकट्ठा होता रहेगा। एक दिन आप कमजोर हो जाएंगे... ।"
एक दिन बाप कमजोर हो जाएगा, बच्चा तब जवान होगा, नौकरी में होगा, प्रतिष्ठा मैं होगा, और बाप कमजोर हो गया होगा, तब यह बदला लेगा। इसे भी

पता नहीं चलेगा कि क्यों बदला ले रहा है। लेकिन बदला लेगा। तब जिस तरह आप अपमान कर रहे हैं, यह आपका अपमान करने लगेगा। कहने लगेगाः बूढ़ा, खूसट--इस तरह के शब्दों का उपयोग करेगाः कि तुम अपनी जबान बंद रखो; कि तुम्हें बोलने की बीच में जरूरत नहीं हैं; कि तुम जाओ अपने कमरे में बैठो। या भेज दिया किसी वृद्धाश्रम में--कि चले जाओ, वहां भरती हो जाओ। यह घर में ज्यादा कलह हमें पसंद नहीं है। और तब तुम कहोगेः बच्चा मेरा अपमान क्यों कर रहा है! और तुम्हें याद भी नहीं है कि तुमने कितना अपमान किया था।
फलों से परीक्षा होती है। अगर बच्चे बड़े होकर बाप का, मां का, अपमान करते हैं, तो इस बात की खबर देते हैं कि बचपन में मां-बाप ने उनका अपमान किया था।
प्रेम के नाम पर बड़ा झूठ चल रहा है। और अगर तुमने प्रेम दिया था, तो प्रेम का पुरस्कार मिलता है। प्रेम का पुरस्कार सदा प्रेम है। दो प्रेम-- मिलता है प्रेम। तुमने कुप और दिया होगा। ये भी कुप और देंगे।
इसलिए ममता से मुक्त होओ; प्रेम को जगने दो। प्रेम दो, सम्मान दो। यहां सब में परमात्मा के हस्ताक्षर हैं।

चौथा प्रश्नः संत पुरुषों ने जीवन को सदा दुख की भांति क्यों निरूपित किया है? क्या यह दुखवाद उचित है?

संतों ने जीवन को दुख की भांति निरूपित नहीं किया है। संतों ने जीवन
को देखा और दुखरूप पाया। यह निरूपण नहीं है। संतों ने चेष्टा नहीं की है इसे सिद्ध करने की यह दुख है। संतों ने देखाः यह दुख है।
अब तुम्हारे पैर में कांटा गड़े और तुम कहो कि मुझे पीड़ा हो रही है, तो क्या कोई कहेगा कि आप ऐसा क्यों निरूपण कर रहे हैं! कि पैर में पीड़ा हो रही है! यह तो दुखवाद है।
अब किसी के नासूर हो गया है, और जघन्य पीड़ा हो रही है और वह कहेः मुझे पीड़ा हो रही है। और आप कहोः "ऐसा निरूपण न करो। यह तो दुखवाद है! आदमी को सुखवादी होना चाहिए। कहो कि नासूर से बड़ा आनंद हो रहा है! कहने से क्या होगा?
संतों ने जीवन को देखा, और जैसा है वैसा ही निरूपित किया है। ऐसा संत
का दर्शन नहीं है कि जीवन दुखरूप है, ऐसा संत का अनुभव है कि जीवन दुखरूप है।
और संत की पोड़ो, तुम्हारा क्या अनुभव है? तुम जरा अपने अनुभव की ही परख लो। क्या सुख पाया है? सुख पाने की आशा है जरूर, मगर पाया क्या है? पाया तो दुख ही है। कितने-कितने प्रकार से दुख पाया है! सुनोः
पांव के कांटे रूह के नश्तर जीवन-जीवन बिखरे हैं
मेरे अहद के इन्शां हैं या जख्म के खिरमन बिखरे हैं।
हिम्मत हो तो झांक के देखो हस्ती की महराबों से
वक्त है वो दीवार कि जिसमें दर्द के रोजन बिखरे हैं।
नग्मों पर सर धुनने वाले, साज की सीना चीर के देख
गीत का चंचल रूप बदल कर रूह के शेवन बिखरे हैं।
जब भी तेरी याद का मौसम दिल को पूकर गुजरा है
मेरी प्यासी आंखो से जलते हुए सावन बिखरे हैं।
लुट जाएगी जिस्म की चांदी, सीमबरो हुशियार रहो
शहर की ख्वाबीदा गलियों में जागते रहजन बिखरे हैं।
लोग तुम्हारे आरिज-ओ-लब से कर लेंगे ताबीर उन्हें
कुप अनदेखे जल्वे हैं जो चिलमन-चिलमन बिखरे हैं।
मोती जैसे जगमग करते, पत्थर जैसे भारी लोग
राहों में कंकर की तरह हालात के कारण बिखरे हैं।
मुझसे मेरे दौरे-जुनूं के नागुफता हालात न पूप
जलते आंसू, भीगे शोले, दामन-दामन बिखरे हैं।
थोड़ा आंख खोल कर देखो। "पांव के कांटे रूह के नश्तर जीवन-जीवन बिखरे हैं--तुम्हारे पांव कांटों से भरे हैं--और तुम्हारे हृदय भी। तुम्हारे

पांवों पर फफोले हैं--" और तुम्हारे हृदयों पर भी। और तुम्हारे पांवों में जख्म हैं--और तुम्हारी आत्माओं में भी।
अपने को ही देखो। जरा अपने को ही खोलो। जरा अपने ही संबंध में सीधा- सीधा साक्षात्कार करो। तो तुम ऐसा न पाओगे कि संत दुखवादी हैं। तुम इतना ही पाओगे कि संत यथार्थवादी हैं। जैसा है, उसको वैसा ही कहते हैं। झुठलाते नही हैं। भ्रम पैदा नहीं करते हैं। दुख को दुख कहते हैं।
तुम? तुम बेईमान हो। तुम दुख को भी सुख कहे चले जाते हो। तुमने औपचारिकतएं सीख ली हैं। तुमने धीरे-धीरे शिष्टाचार सीख लिए हैं। किसी से कहोः कैसे हो? वह कहता हैः बड़ा सुखी है। तुम्हें भी भ्रांति हो जाती है। तुम से कोई पूपता हैः कहो, आप कैसे हैं? आप कहते हैंः बड़े आनंद में हैं, बड़े मस्त हैं। न तुम सच बोल रहे हो, न वह सच बोल रहा है। और दोनों एक-दूसरे को धोका खड़ा कर रहे हो।
यह बात सच है--तुम जो कह रहे हो कि सब ठीक है? सब ठीक हो जाए तो तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ। सब ठीक है, तो फिर बचा क्या? फिर तो परमात्मा मिल गया। परमात्मा मिलने पर ही सब ठीक होता है।
और तुम जब कहते होः बड़ा मस्त हूं; सब आनंद चल रहा है; मजा-मौज है; तब तुम क्या कह रहे हो? तुमने सच न बोलने की कसम खा ली है? हालांकि मैं समझता हूं कि अब दूसरे के सामने दुख रोने से भी क्या प्रयोजन हैं? तो कह दिया कि भाई चलो... । अब यह कोई ऐसा गंभीर प्रश्न था भी नहीं। उसने पूपा भी नहीं था इसलिए। यह मैं जानता हूं।
रास्ते पर कोई मिल गया। जय रामजी की। उसने पूछाः कहिए, कैसे हैं? तो वह
यह भी नहीं कह रहा था कि अब घंटे भर तुम्हारा दुख का रोना सुनने के लिए पूछा है। वह यह भी नहीं कह रहा था कि अच्पा बैठो।
तो अब सब अपनी, एक्सरे वगैरह, और अपने सब ले आता हूं, सब दिखा देता हूं
कि हालत कैसी है!
उसने इसलिए पूछा भी नहीं था। वह तो औपचारिक ही था। और तुमने औपचारिक उत्तर दे
दिया। उसमें भी मुझे एतराज नहीं हैं। लेकिन इस भ्रांति में मत पड़ जाना, क्योंकि बार-बार दोहराने से ऐसा लगता है कि यही सच है।
रोज-रोज दोहराते हो। जो मिला, वही पूछता है। तुम कहते होः बड़े मजे में हूं। धीरे-धीरे तुमको खुद ही भ्रांति होने लगती है, निरंतर दोहराने से, कि मजे में हूं, मजे में हूं। इस तरह का एक सम्मोहन बैठ जाता है।
कभी अपने हृदय का घूंघट खोल कर देखो। "पांव के कांटे रूह के नश्तर जीवन-जीवन बिखरे हैं, मेरे अहद के इन्शां हैं या जख्म के खिरमन बिखरे है।" यहां तो जख्म ही जख्म के खलिहान हैं। चारों तरफ जख्म के खिरमन बिखरे हैं। "हिम्मत हो तो झांक के देखो हस्ती की महराबों से" हिम्मत हो तो, तो ही यह हो सकता है देखना।
हिम्मत हो तो झांक के देखो हस्ती की महराबों से
वक्त है वो दीवार कि जिसमें दर्द के रोजन बिखरे हैं।
यहां समय की दीवार में दर्द ही दर्द के छेद हैं। गौर से देखो। मगर हिम्मत हो तो ही कोई देख सकता है।
गैर-हिम्मती तो भागा चला जाता है। वह खड़ा ही नहीं होता कि खड़े हुए तो कहीं कुप दिखाई न पड़ जाए। वह तो कुछ-कुछ काम में उलझा रहता है। उलझे न रहे, तो कहीं कुप दिखाई न पड़ जाए!
भीतर सांप-बिच्छू चल रहे हैं। और तुम चांद-तारों की बातें किए चले जाते हो। भीतर जहर ही जहर है, और तुम अमृत के गीत गाए चले जाते हो। धीरे- धीरे तुम गीतों में ही सोचने लगते हो कि सब मिल रहा है। प्रेम जाना ही नहीं है और प्रेम की कहानियां पढ़ते रहते हो। कहानियों में ही खो जाते हो। नग्मों पर सर धुनने वाले, साज की सीना चीर के देख
गीत का चंचल रूप बदल कर रूह के शेवन बिखरे हैं।
यहां गीतों के नाम पर जो चल रहा है, अगर उनका सीना चीर कर देखोगे, तो तुम पाओगे कि हर गीत के भीतर रोना पिपा है। हर गीत के भीतर आंसू पिपे हैं।

यह आसुंओ को पिपाने की तरकीब है तुम्हारे गीत, और तुम्हारे उत्सव और तुम्हारे साज-समारोह।
मुझसे मेरे दौरे-जुनूं के नागुफ्ता हालात न पूछ
जलते आंसू, भीगे शोले, दामन-दामन बिखरे हैं।
संत कोई दर्शन प्रस्तावित नहीं कर रह हैं कि जीवन दुख है। ऐसी उनकी जीवन की व्याख्या नहीं है। ऐसा उनके जीवन का अनुभव है।
तुम पूछते होः "संत पुरुषों ने जीवन को सदा दुख की भांति क्यों निरूपित किया?" क्योंकि जीवन दुख है।
संत करें भी तो क्या करे?
इसलिए तो संतों की बात तुम सुनते नहीं। तुम कवियों की बात सुनना पसंद करते हो। कवि उलटा काम करता है। वह जिंदगी में सपने खड़े करता है। संत सपने तोड़ता है, सत्य का दिर्ग्दशन करता है। कवि प्रेम के गीत गाते हैं, प्रेम ही कहानियां लिखते हैं।
और तुम कभी इन कवियों से मत मिल जाना, नहीं तो तुम इनके जीवन में न प्रेम पाओगे और न कोई गीत पाओगे। अक्सर कवियों से मिल कर बड़ी निराशा होती है। इनका गीत सुना, उनका गीत पढ़ो, बड़ा प्यारा लगता है, बड़ी आकाश की ऊंचाइयां हैं। और हो सकता है, कभी महाराज मिलें, तो किसी नाली में शराब पीए पड़े मिल जाएं। कि बीड़ी पी रहे हों बैठे कहीं और उनकी शकल पर मक्खियां उड़ रही हों। मरघट पाया हो। और तुम्हें भरोसा ही न आए कि ये सज्जन इतना ऊंचा गीत कैसे गाए?
असल में वह गीत अपने को भुला रखने का उपाय है। ऐसा हुआ नहीं है। प्रेम हुआ नहीं है, तो प्रेम का गीत गा-गा कर अपने को समझा रहे हैं। प्रेम से चूक गए हैं, तो प्रेम का गीत गाकर मन को भुलावा दे रहे हैं।
यह कोरी बातचीत है।
कवि लोगों को भ्रमजाल में उलझाए रखते हैं; लोगों की आशाओं का उकसाते रहते हैं। लोगों का खयाल दिलाते रहते हैं कि कुप हो सकता है। जरा कुप कोशिश करो, तो हो जाए। थोड़ी मेहनत करने से हो जाएगा।
लोगों की आशा का जगाए रखते हैं।
संत तो लोगों को वही दिखा देते हैं, जैसा है, अगर मौत आ रही है तो संत कहता हैः मौत आ रही है।
संत तुम्हें ले जाता है मरघट पर। दिखा देता है कि यह असलियत है; यही जीवन का अंत है।
हालांकि तुम संत से नाराज होओगे। क्योंकि वह तुम्हारी आशाएं तोड़ता है। और आशाएं तोड़ कर तुम्हारे बदलने का उपाय करता है।
कवि से तुम नाराज नहीं होते। कवियों का तुम सम्मान करते हो। तुमने देखाः एक भी कवि को कभी सूली नहीं दी गई। कवियों का लोग सम्मान करते है, नोबल प्राइज देते हैं।
एक भी संत को नोबल प्राइज नहीं मिली। संतों को सूलियां लगती है--कि जीसस, कि मंसूर, कि सुकरात--कि संतों पर पत्थर फेंके जाते हैं। कवियों को सम्मान मिलता है! और कवि सिर्फ झूठ का धन्धा करता है। उसका व्यवसाय झूठ है। वह झूठ को खूब सौंदर्य से प्रकट करता है। वह झूठ को खूबशृंगार करता है। झूठ को खूब रंग-रोगन लगाता है। वह झूठ को ऐसा जीवित बना देता है कि सच जैसा मालूम पड़ने लगता है।
संत का सारा ध्येय सत्य को नग्न करके तुम्हें दिखा देना है। और जब सत्य को नग्न करके दिखाया जाता है, तो अड़चन होती है।
तुमने कभी देखा, कभी अस्पताल गए, वहां देखा, हड्डियों का अस्थि-पंजर खड़ा हुआ। तो तुम्हें खयाल नहीं आया कि यही अपने भीतर है? घबड़ाहट नहीं होती? घबड़ाहट होती है। थोड़ा डर भी लगता है कि यह अपनी हालत हो जानेवाली है कल! और असलियत में यही हालत है। चमड़ी के भीतर यही पिपा है--यही अस्थिपंजर।
संत तुम्हारी चमड़ी उघाड़ कर तुम्हारे भीतर की सचाई जाहिर कर देता है।
वह कहता हैः यह है। और कवि तुमसे बातें करता है, तुम्हारी संगमरमरी देह, तुम्हारी सोने की काया... ! जंचती है यह बात--कि यह बात ठीक है।

संत की सुनो। वह कहता है कि मल-मूत्र के सिवाय यहां कुप भी नहीं है। कहां की सोने की बातें कर रहे हो? कौन सी संगमरमरी देह? कहां की बातें कर रह हो? किन सपनों में खोए हो? यहां मल-मूत्र भरा हुआ है।
मल-मूत्र की बात तुम्हें जंचती नहीं। हालांकि सच यही है। इसे झुठला न सकोगे। यही सच है। अगर तुम्हारी देह तुम्हारे सामने खोल कर रख दी जाए, तो बड़ी घिनौनी मालूम पड़ेगी। घबड़ा जाओगे। यह तो चमड़ी के पीपे पड़ी है, इसलिए पता नहीं चलता।
जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो, तो तुम कवि की बातें मानना पसंद करोगे। संत की बातें मान कर तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
संत तो तुम्हें एक्सरे वाली आंखें दे देता है। वह तो तुम्हें ऐसी आंखें दे देता है कि तुम जहां भी देखोगे, वहीं अस्थि-पंजर दिखाई पड़ेगा।
यहीं देखो, अपने पास में जरा गौर से देखना, अस्थि-पंजर दिखाई पड़ेगा। हड्डी-मांस-मज्जा, मल-मूत्र! सचाई तो वही है। यथार्थ तो वही है। और यथार्थ की सीढ़ियों से चढ़ कर ही कोई आदमी परमात्मा तक पहुंचता है। कविताओं से सीढ़ियों नहीं बनतीं। कविताएं तो कोरी बातें हैं।
तुम पूछते होः "संत पुरुषों ने जीवन को सदा दुख की भांति क्यों निरूपित किया है?"
क्योंकि सदा उन्होंने दुख की भांति जाना।
फिर तुम यह भी पूछते हो कि "क्या यह दुखवाद उचित है?"
यह दुखवाद है ही नहीं। यह तो यथार्थवाद है।
और जैसा है, उसको जानना पड़ेगा। जैसा है वैसा ही जानना पड़ेगा। वैसा ही जान कर तो तुम आगे जाओगे।
अगर शरीर तुम्हें व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा, तो ही तो तुम आत्मा की खोज करोगे। और अगर संसार तुम्हें व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा, तो ही तो तुम परमात्मा की याद करोगे।
संत की आकांक्षा यही है कि तुम कूड़े-करकट में न उलझे रहो, यहां हीरे- जवाहरात भी छिपे हैं। लेकिन अगर तुम कूड़े-करकट को हीरे-जवाहरात समझते रहे तो कब खोजोगे? हीरे-जवाहरात कब खोजोगे? कंकड़-पत्थर ही बीनते रहे सागर तट पर, तो मोती कब खोजोगे? हालांकि मोती खोजने हों, तो कंकड़-पत्थर पोड़ने पड़ेंगे। ये रंगीन पत्थर काम नहीं आएंगे, और सागर में गहरी डुबकी लगानी पड़ेगी।
जो गहरे जाता है, वही पाता है। मगर पहले तो तट से पूट जाना जरूरी है। व्यर्थ को व्यर्थ की भांति जान लेना, सार्थक की दिशा में पहला कदम है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, जब से सुना है कि आश्रम दूसरी जगह जा रहा है, तब से
मन में प्रश्न बन रहा है कि मैं पूना छोड़ कर साथ हो लूं? या यहीं रह कर काम करूं? प्रश्न लिख कर पूछने ही वाला था कि आज सुबह के प्रवचन में उत्तर सुनाई पड़ाः "ठिकाने का सोच रहे हो! अब ठहरना कहां है? सभी जगह तुम्हारी है। किसी एक जगह घर बसाना नहीं है। अब तो भगवान जहां भेजे, जहां रखे--वहां जाना है, वहां रहना है। गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विश्राम।" यह सब इतना स्पष्ट रूप से आया कि मैं ठिठक गया। क्या यही सही उत्तर है? या मेरा मन धोखा दे रहा है? भगवान कृपया मुझे चेताएं।

पूछा है स्वामी अजित सरस्वती ने।
नहीं, मन धोखा नहीं दे रहा है। अब मन धोखा दे भी नहीं सकेगा। अब उस जगह
आ गए हो, जहां से मन के धोखे साफ
दिखाई पड़ जाएंगे। यह आवाज मन की है भी नहीं। गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में विश्राम--यह आवाज मन की हो भी नहीं सकती।
मन तो शून्य से बड़ा डरता है और मन तो अनहद से बड़ा भयभीत होता है। मन तो चाहता हैः हर चीज की हद होनी चाहिए, सीमा होनी चाहिए, परिभाषा होनी चाहिए। मन क्षुद्र का मालिक हो सकता है--जिसकी सीमा हो। असीम में तो मन खो जाता है। मन तो नदी-नालों से खेलता है, सागरों से नहीं जूझना चाहता। वह तो बड़ा मामला है। वहां गए--तो डूबे। वहां गए--तो मिटे।

यह आवाज मन की नहीं है। ठीक ही सुनाई पड़ा है। यही उत्तर है।
मेरे साथ जो हो लिए हैं, उनका अब शून्य में ही घर है। संन्यासी का अर्थ
ही यही है कि उसका घर शून्य है। रहे कहीं, मगर उसका असली घर शून्य है। करे कुछ, लेकिन असली बात विश्राम; असली बात--अकर्ताभाव, साक्षीभाव।
तो अजित से मैं कहूंगाः ठीक सुन लिया है। मेरे साथ जुड़ गए हो, तो अब जहां मैं हूं--तुम हो अजित! अब अपने को इतना भी मत बचाओ--कि अलग-अलग सोचो। उतना फासला भी गिर जाने दो।
अच्छा ही किया जो प्रश्न नहीं पूछा। उत्तर जो अपने से आया; वह ज्यादा मूल्यवान है।
जो मुझ से जुड़ गया है, इस लोक में भी जुड़ गया--उस लोक में भी। यह जोड़ अब टूटने वाला नहीं है। जुड़ जाए एक बार कोई, तो यह जोड़ टूटने वाला नहीं है। इस जोड़ में सब भांति समर्पित हो जाओ। फिर जो परमात्मा की मरजी। जैसा हो--होने दो।
अब नाव को खेना नहीं है। अब तो पाल खोल देने हैं। जहां उसकी हवाएं ले जाएं, जो करवाएं, उसी में राजी। उसकी राजी में राजी।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
सातवां प्रवचन

प्रभु-प्रीति कठिन

सूत्र

साई से लगन कठिन है भाई।
जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई।।
प्यासे प्राण तरफै दिनराती, और नीर ना भाई।।
जैसे मिरगा सब्द-सनेही, सब्द सुनन को जाई।।
सब्द सुने और सत-प्राणदान दे, तनिको नाहिं डराई।
जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।।
पावक देखि डरै वह नाहीं, हंसते बैठे सदा माई।
छोड़ो तन अपने का आसा, निर्भय हवे गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहिं तो जन्म नसाई।।

लोका जानि न भूलो भाई!
खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रह्यो समाई।
अला एकै नूर उपजाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूरै थें सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।
ता अला की गति नाहिं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।
कहै कबीर मैं पुरा पाया, सब घटि साहब दीठा।

जहिया किरतम न हता, धरती हती न नीर।
उतपति परलय ना हता, तब की कहै कबीर।।

"साई से लगन कठिन है भाई।"
प्रभु से प्रेम कठिन है। कारण? अपने से प्रेम बहुत; अहंकार से लगाव बहुत। वहां कठिनाई है। कबीर के वचन तुम्हें विरोधाभासी लगेंगे, क्योंकि एक तरफ तो वे बार-बार कहते हैं--सहज-योग; प्रभु को पाना बड़ा सहज है और आज अचानक कहते हैंः "साईं से लगन कठिन है भाई।"
दोनों बातें सच हैं। परमात्मा को पाना सहज ही है, क्योंकि वह हमारा स्वभाव है। उससे दूर होना कठिन है। स्वभाव से कोई कैसे दूर हो सकेगा!
जो हमारे प्राणों का प्राण है, उससे हम क्षण भर को भी विलग कैसे हो सकते हैं! भूल जाएं भला; भूलने से कुछ बात बदलती नहीं। तुम्हें याद न रहे कि तुम कौन हो, लेकिन फिर भी तुम वही होते हो--जो तुम हो। विस्मरण हो जाता है, स्मरण हो जाता है, लेकिन अस्तित्व तो एकरस है। जब जानते थे, तब भी वही; जब नहीं जानते, तब भी वही। जब फिर जान लोगे, तब भी वही।
इसलिए बुद्ध ने कहा कि जब मैंने जाना, तो इतना ही जाना कि जानने को कुछ
भी नहीं था। और जब मैंने पाया, तो इतना ही पाया कि पाने को कुछ भी नहीं था। जो मैं था, उससे भर पहचान हो गई। था मैं सदा से वही।
परमात्मा तुम्हारी श्वास की श्वास है; तुम्हारे रोएं-रोएं में समाया है। तुम झूठ हो; परमात्मा सच है। इसलिए परमात्मा को पाना कठिन तो कैसे होगा?
मछली जैसे सागर में है, ऐसे हम परमात्मा में हैं। मछली को सागर पाना कठिन है? यह बात ही व्यर्थ है। मछली ने सागर कभी छोड़ा ही नहीं। और मछली तो कभी सागर छोड़ भी दे, तुम परमात्मा को नहीं छोड़ सकते। क्योंकि परमात्मा बाहर ही होता तो छूट भी जाता। परमात्मा भीतर भी है। परमात्मा ही है। इसलिए जब कोई पूछता है कि ईश्वर कहां खोजें, तो गलत सवाल पूछता है। खोजा--कि भटक जाओगे। खोज का मतलब ही होता हैः तुमने मान लिया--कहीं दूर है।
खोज का मतलब ही होता है कि तुमने मान लिया कि तुम खो चुके हो। ऐसी भ्रांति से शुरुआत करोगे, तो पाओगे कैसे?
परमात्मा खोजना नहीं पड़ता। खोज व्यर्थ है--ऐसा जानते ही मिल जाता है।

परमात्मा को पाने के लिए दौड़ना भी नहीं पड़ता। दौड़ते तो दूर के लिए हैं। जो पास से भी पास है, उसके लिए कहां दौड़ कर जाओगे? दौड़ोगे, तो और दूर निकल जाओगे! दौड़ोगे, तो भटक जाओगे। रुक जाओ। ठहर जाओ। शरीर तो चले ही नहीं, मन भी न चले। जहां तन-मन दोनों ठहर जाते हैं, वहीं मिलन हो जाता है।
यह मिलन बड़ा अदभुत है। दौड़ कर नहीं होता--ठहर कर होता है। आपा-धापी भागा-भागी आवश्यक नहीं है। थिरता, अपने में बैठ जाना, रम जाना।
एक क्षण को भी जब तुम्हारा चित्त कहीं और न जाएगा, जब कोई वासना की तरंग तुम्हें अपने पर सवार करके दूर-दूर न ले जाने लगेगी; जब कोई इच्छा तुम्हारे भीतर पंख न फड़फड़ाएगी; जब सब शांत होगा और मौन होगा; तुम उसी क्षण पाओगेः पाने को कुछ भी नहीं है। जिसे हम खोजते थे, वह सदा से हमारा है। शायद पाने की दौड़-धूप में ही भूल गए थे। पाने में इतने उत्सुक हो गए थे कि याद ही न रही थी!
कभी तुमने देखा नः आदमी चश्मा आंख पर रखा होता है और चश्मे को ही खोजने लगता है। चश्मे से ही चश्मे को खोजने लगता है--कि चश्मा कहां है? कभी तुमने देखा नहीं कि आदमी अपनी पेंसिल, अपनी कलम काम में लगाए होता है और खोजने लगता है! कई बार तुमने भी चीजें खोजी होंगी, जो तुम्हारे हाथ में थीं; भूल गए क्षण भर को। बस, ऐसी ही भूल हुई है।
परमात्मा खोया नहीं है हमने, सिर्फ भूल गए हैं। विस्मृति है। इसलिए संत कहते हैंः स्मृति से, सुमिरन से फिर मिलन हो जाएगा।
तो कबीर एक तरफ तो सहज-योग के प्रतिपादक हैं--कि परमात्मा से ज्यादा सरल और कोई बात नहीं। लेकिन आज कहते हैंः "साई से लगन कठिन है भाई।" यह उसका दूसरा पहलू है।
परमात्मा को पाना तो सरल है, लेकिन परमात्मा से प्रेम लगाना बड़ा कठिन है। बाधा परमात्मा नहीं है; बाधा हमारा अहंकार है।
प्रेम में तो अहंकार को जलना होता है। प्रेम में तो आदमी को पागल होना होता है। और हमारा अहंकार बड़ा बुद्धिमान है! बड़ा हिसाबी-किताबी है!
हृदय की तो हम सुनते ही नहीं। अगर हृदय की हम सुनें, तो परमात्मा को अभी पा लें। हम बुद्धि की सुनते हैं। बुद्धि गणित है--प्रेम नहीं। परमात्मा को पाने का द्वार प्रेम है--गणित नहीं। गणित से संसार की चीजें पाई जाती हैं। तर्क से संसार जीता जाता है। परमात्मा की तरफ जो चला है, वह तो प्रेम से ही पाएगा। और मजा है कि तर्क जीतना चाहता है, प्रेम हारना चाहता है। प्रेम हार कर विजेता हो जाता है! प्रेम एक तरह का जादू है। तो कबीर जब यह कहते हैं कि "साईं से लगन कठिन है भाई", तो वे यह कह रहे हैं कि तुम बड़े कठिन हो। तुम बड़े कठोर हो। तुम्हारा हृदय पाषाण हो गया है। तुम्हारे भीतर से प्रेम की उमंग उठती ही नहीं। तुम्हारे भीतर से प्यास उठती ही नहीं।
तुम परमात्मा की भी कभी बात करते हो, तो ऐसे ही ऊपर-ऊपर; दांव पर जरा भी कुछ लगाने की तैयारी नहीं होती। छोटी सी चीज भी दांव पर लगानी हो, तो तुम झिझक जाते हो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर हम गैरिक वस्त्र न पहनें, तो संन्यास नहीं हो सकता? वस्त्र ही बदल रहे हो, कुछ खास बदल भी नहीं रहे हो! मगर वह भी बदलना न पड़े--ऐसी आकांक्षा है।
"वस्त्र न बदलें, तो नहीं चलेगा?"--लोग पूछते हैं! वस्त्र तक बदलने में घबड़ा रहे हो, आत्मा बदलने में तो बड़ी मुश्किल पड़ेगी।
वस्त्र बदलने में क्या अड़चन आएगी? लोग हंसेगे चार दिन। व्यंग्य करेंगे। समझेंगेः पागल हो गए! होश गंवा दिया। यही न--कि अहंकार को थोड़ी चोटें लगेगी और क्या होगा?
एक अहंकार था तुम्हारा कि तुम बड़े बुद्धिमान हो। अब लोग कहेंगे कि तुम पागल हो गए। चार दिन लोग हंस लेंगे; इस अहंकार को चोटें पड़ेंगी।
एक सम्राट एक सूफी फकीर के पास गया। वह संन्यस्त होना चाहता था। फकीर
का दरबार लगा था। उसके शिष्य बैठै थे; उसकी बातें सुन रहे थे।
जब सम्राट ने निवेदन किया मैं संन्यस्त होना चाहता हूं, मुझे भी दीक्षा दें, तो उस फकीर ने कहा कि "शर्त पूरी कर सकोगे?" सम्राट सम्राट ही

था। उसने कहा, "पूछने की जरूरत नहीं है। जब मैं आया ही हूं संन्यस्त होने, तो कोई भी शर्त पूरी करूंगा। बेशर्त मेरा समर्पण है। जो कहोगे--पूरा करूंगा। जब तय कर लिया परमात्मा को पाना है, तो अब जो भी दांव पर लगता हो, लग जाए। सब लगाने की तैयारी करके ही आया हूं। पूछने की जरूरत नहीं है। आज्ञा हो।"
फकीर ने कहा, "तो ऐसा करोः कपड़े उतार दो और नग्न हो जाओ। और ये जूते पड़े
है मेरे, ये हाथ में ले लो और चले जाओ बीच बाजार में; अपने सिर पर जूता मारते जाना और हंसते रहना। पूरे गांव का चक्कर लगा आओ।"
नंगे--जूता मारते--सम्राट अपनी ही राजधानी में! लेकिन सम्राट ने वस्त्र उतार दिए; जूता उठा लिया।
फकीर के शिष्यों को दया आ गई। एक बूढ़े शिष्यने कहा कि "आप यह क्या कह रहे हैं? हमसे आपने कभी ऐसी अपेक्षा नहीं की। आज आप इतने कठोर क्यों हैं? आप में हमने सदा दया पाई है, करुणा पाई है। आज आप इतने पत्थर जैसे कठोर क्यों हैं? और यह बेचारा सम्राट है; इसकी की यह राजधानी है। आप भलीभांति परिचित हैं। इसे नग्न उड़ाएंगे। भीड़-भाड इसके पीछे चलेगी। लोग पत्थर फेकेंगे। लोग गालियां देंगे। लोग कहेंगेः सम्राट पागल हो गया है।"
फकीर ने कहा, "कठोर हूं, इसीलिए कि तुम जब आए थे, तो तुम्हारा अहंकार भी बहुत छोटा था। इतने कठोर होने की जरूरत भी न थी। यह आदमी सम्राट रहा है; इसका बड़ा सुसंस्कृत,शृंगारित अहंकार है; बड़ा सुशिक्षित, बड़ा सूक्ष्म, बड़ी व्यवस्था से सम्हाला और बड़ा किया गया, आरोपित किया गया अहंकार है। इसके साथ मुझे कठोर होना ही पड़ेगा।"
लेकिन सम्राट तो चल पड़ा; उसने तो यह बात भी नहीं सुनी। उसने तो जूता उठा लिया और वह सिर पर जूते मारने लगा। सारा गांव हंसा।
और ध्यान रखनाः अगर एक साधारण फकीर जूता मारता निकल जाए तो शायद ज्यादा लोग न भी हंसें। लेकिन जब सम्राट अपने को जूता मारते निकले और नंगा... ।
तो सारी राजधानी इकट्ठी हो गई, लोगों ने दुकानें बंद कर दीं। काम-धाम
सब बंद हो गया। भारी जुलूस हो गया इकट्ठा! और जब वह राजमहल के सामने पहुंचा, तो उसकी स्त्रियां रोती थीं; उसके बेटे रोते थे--कि यह क्या हो गया।
लेकिन जब सम्राट लौटा, तो वह दूसरा ही आदमी होकर लौटा था। घंटे दो घंटे का ही फर्क हुआ था। घंटे दो घंटे ही नगर में घूमा था। लेकिन लौटा, तो वह आदमी ही दूसरा था।
वह फकीर के चरणों में गिर पड़ा। फकीर ने कहा, "अब मुझे और कुछ न करना पड़ेगा। तूने आखिरी बात पहले कदम में कर दी। तू निश्चित हिम्मतवर है। तू निश्चित ही सम्राट होने योग्य आदमी है। तू वस्तुतः सम्राट है।
तुम कभी आकर मुझसे पूछते होः कपड़े न बदलें तो? तुम क्या पूछ रहे हो? तुम यह पूछ रहे हो कि दांव पर कुछ न लगाना पड़े। किसी को पता न चले कि मैं कुछ ऐसी बात कर रहा हूं, जो बुद्धिमान नहीं करते। तुम अपनी प्रतिष्ठा जरा भी नहीं खोना चाहते। तुम अहंकार को बचाना चाहते हो--और परमात्मा को पाना चाहते हो। यह नहीं होगा। इसलिए कबीर कहते हैंः "साईं से लगन कठिन है भाई।" साईं स्वामी का रूप है। साईं का अर्थ होता है--प्यारे। प्यारे से लगन लगानी हो, तो प्रेम से ही लगती है। प्यारे को पाने का ढंग प्रेम है। कैसा प्रेम?
"जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई।" जैसे पपीहा चिल्लाता--रोता; बूंद के लिए तड़फता। "पिया पिया रट लाई... " ऐसा ही प्रेमी जब रटन से भर जाता है, जब परमात्मा के सिवाय न कुछ सूझता, न कुछ बूझता; जब उसकी ही तस्वीर दिखाई पड़ती है आंखों में और उसके ही सपने तैरते रातों में; उठता है, बैठता है, तो उनकी ही धुन समाई रहती है।
जो भी देखता है चारों तरफ, उसकी ही याद आती है। फूल को खिलते देखता है,
तो उसी को, खिलते हुए पाता है। सूरज को ऊगते हुए देखता है, तो उसी को ऊ गते हुए पाता है। रात तारों से भरी देखता है, तो उसी का जलवा; उसी का चमत्कार।

जहां भी नजर अटकती है प्रेमी की, वहां वह अपने प्यारे को ही पाता है।
प्रेमी कुछ और देखता ही नहीं। प्रेम अंधा हो जाता है। उसे एक ही चीज दिखाई पड़ती है। अनेक खो जाते हैं।
हर एक दुख का मदावा भी मुहब्बत
मुहब्बत मुस्तकिल आजार भी है।
मेरी मस्ती पे इतना तयन क्यूं है।
कोई इस बज्म में हुशियार भी है।
न दे दाद इस कदर भी जप्ते गम की
ये गम नाकाबिले इजहार भी है।
प्रेमी जानते हैं कि हर मुसीबत की जड़ भी प्रेम है। और हर मुसीबत का इलाज भी प्रेम है।
खयाल करनाः तुम्हारी मुसीबत क्या है? तुम्हारे जीवन का संताप दुख-पीड़ा क्या है? तुम्हारी चिंता क्या है?--संसार से बहुत प्रेम या अपने अहंकार से बहुत प्रेम। यही तुम्हारी मुसीबत है। यही तुम्हारा रोग है।
औषधि क्या है? उपचार क्या है?--परमात्मा से प्रेम।
"हर इक दुख का मदावा भी मुहब्बत।" प्रेम ही उपचार है हरेक दुख का।
"मुहब्बत मुस्तकिल आजार भी है।" लेकिन सारे उपद्रवों को जड़ में भी मुहब्बत है।
मुहब्बत को तुम समझ लो, तो सब समझ लिया। प्रेम को समझ लिया, तो जीवन के
सब राज समझ लिए।
गलत से प्रेम हो जाए, तो मुश्किल और सही से प्रेम हो जाए, तो सब ठीक।
सही के प्रेम में तुम भी ठीक हो जाते हो। गलत के प्रेम में तुम भी गलत हो जाते हो।
प्रेम तुम्हारा नरक भी है--तुम्हारा स्वर्ग भी। प्रेम तुम्हारी परतंत्रता भी--तुम्हारी स्वतंत्रता भी।
सत्य से प्रेम लग जाए, साईं से लगन लग जाए, तो फिर जीवन में हजार--हजार कमल खिलते हैं। फिर जीवन एक उत्सव बन जाता है। संसार से प्रेम लग जाए, तो जीवन में दुख बढ़ते चले जाते हैं; रोज-रोज अंधेरा घना होता चला जाता है। "मेरी मस्ती पे इतना तयन क्यूं है?" और प्रेमी कहता है--कि मेरी मस्ती
की इतनी निंदा, मेरी मस्ती पर इतनी नाराजगी! मेरी मस्ती का इतना अस्वीकार! मेरी मस्ती पे इतना तयन क्यूं है
कोई इस बज्म में हुशियार भी है।
और इस सारे संसार में तुमने किसी को हुशियार देखा है? सिर्फ मेरी मोहब्बत पर इतनी नाराजी? सिर्फ मेरी बेहोशी पर इतनी नाराजी? सिर्फ मेरे पागलपन पर इतनी नाराजी?
यहां सभी पागल हैं। हां, कोई धन के पीछे पागल है, तो तुम उसे पागल नहीं कहते। और कोई ध्यान के पीछे अगर पागल हो जाए, तो उसे पागल कहते हो। बड़ा मजा है! तुम्हारा तर्क भी खूब!
कोई पद के पीछे पागल हो जाए, तो उसे तुम पागल नहीं कहते। और कोई प्रभु
के पीछे पागल हो जाए, तो तुम पागल कहते हो!
यहां सभी पागल हैं। अलग-अलग ढंग के पागलपन हैं। ठीक पागलपन है। और गलतपन है; लेकिन यहां सभी पागल हैं।
मेरी मस्ती पे इतना तयन क्यूं है।
कोई इस बज्म में हुशियार भी है।
और प्रेमी कहता हैः
न दे दाद इस कदर भी जप्ते गम की
ये गम नाकाबिले इजहार भी है।
और प्रेमी कहता है कि मैं चुप हूं, अपने गम को कहता भी नहीं, तो मेरी प्रशंसा मत करो--मेरी चुप्पी, मेरे मौन की प्रशंसा मत करो। मजबूरी है मेरी। यह गम ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता। यह चोट ऐसी है कि बताई नहीं जा सकती। जो खाता है, वही जानता है।
साईं से लगन कठिन है भाई।
जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई।

प्यासे प्राण तरफै दिनराती, और नीर ना भाई।
चाहे कुछ भी हो जाए, उसे और नहीं चाहिए; उसे कुछ और नहीं चाहिए। उसकी सारी चाहतें एक चाहत बन गई है।
मनुष्य की हजार चाहतें हैं--भक्त की एक चाहत।
मनुष्य चाहता हैः यह भी हो, वह भी हो। धन भी, पद भी; प्रतिष्ठा, मान, सम्मान--हजार चाहतें हैं। इसलिए मनुष्य बंटा है--हजार खंड़ो में। भक्त की एक ही चाहत है--कि परमात्मा हो। इसलिए भक्त अविभाजित हो जाता है, एक हो जाता है।
जब एक चाह होती है, तो तुम एक हो जाते हो। जब एक चाह होती है, तो तुम्हारे सारे खंड एक दूसरे में मिल कर संयुक्त हो जाते हैं। तुम्हारे जीवन में एक केंद्र पैदा हो जाता है। तुम्हारे भीतर आत्मा होती है।
जब तुम्हारी चाहें हजार होती हैं, तो तुम हजार हिस्सों में बंट जाते हो। हजार चाहों को पूरा करोगे; तो हजार हिस्सों में बंटना ही पड़ेगा। एक हाथ से पद खोजोगे; एक हाथ से धन खोजोगे; एक पैर से टटोलोगे कुछ और। एक हिस्सा इस दिशा में भेजोगे, एक हिस्सा उस दिशा में भेजोगे! छितर-बितर जाओगे। खंड-खंड हो जाओगे। टूट जाओगे।
इसलिए तो तुम संसार में टूटे हुए लोग देखते हो--जिनके जीवन में कोई एक एकजूटता नहीं है। एकजूटता हो भी तो कैसे हो? एक चाह नहीं है।
भक्त एकजूट होता है। एक ही उसकी चाह है--परमात्मा। इसलिए उसे हजार दिशाओं में नहीं जाना पड़ता।
और परमात्मा की चाह कुछ ऐसी है कि उसे कहीं जाना ही नहीं पड़ता। बाहर जाने की जरूरत ही नहीं रह जाती। आंख बंद कर के भीतर डूबने लगता है। भक्त में आत्मा का जन्म होता है।
लेकिन कठिन है। क्योंकि यह जो मन है, यह कहता हैः भोग लो; चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात! यह भी भोग लो; वह भी भोग लो। यह मन कहता है कि थोड़ी चेष्टा करोगे, तो सब मिल जाएगा। चेष्टा की बात है। थोड़ा पुरुषार्थ करो। यह अहंकार कहता है कि यहां से ऐसे ही बिना भोगे चले गए! कुछ नाम कर जाओ। कुछ दिखा जाओ दुनिया को कि आए थे; कि लोग याद रखें कि कोई था। ऐसे ही शून्य की तरह आए और शून्य की तरह चले गए! नहीं; इतिहास में रेखाएं छोड़ जाओ। हस्ताक्षर कर जाओ पत्थरों पर। तुम तो चले जाओगे, लेकिन तुम्हारी याद रहे। तुम विशिष्ट हो। तुम खास हो। तुम अपने खासपन को सिद्ध करो। ऐसा अहंकार उकसाता है। मन फुसलाता है।
और जिंदगी धीरे-धीरे इतने खंडों में बंट जाती है कि तुम एक व्यक्ति हो
यह कहना भी ठीक नहीं मालूम पड़ता है। तुम एक भीड़ हो जाते हो। फिर भीड़ का शोरगुल है। फिर भीड़ की ऐचां-तानी है।
जैसे एक ही आदमी कई घोड़ों पर सवार हो गया है या एक ही आदमी कई नावों पर सवार हो गया है, जो अलग दिशाओं में जा रही है; उसके जीवन में अगर तनाव न होगा, तो क्या शांति होगी?
लेकिन हम इस तनाव को झेलने को राजी है! हम इस तनाव के नीचे दबे पड़े हैं;
उठ भी नहीं सकते। हम तैयार हैं इसके लिए! लेकिन परमात्मा की तलाश पैदा नहीं होती। क्योंकि यह सारा तनाव एक आशा पर टिका है--कि आज नहीं कल मैं धनी हो जाऊंगा, पद पर पहुंच जाऊंगा। यह थोड़े ही दिन की बात है; पर मंजिल करीब आती है। पहुंच जाऊंगा। थोड़ा श्रम और, थोड़ी तकलीफ और। कोई कभी नहीं पहुंचा। कोई कभी नहीं पहुंचता है। कोई कभी पहुंच भी नहीं सकता है।
जिंदगी बहुत छोटी है। और ये आशाएं दुष्पूर हैं। और ये वासनाएं ऐसी हैं कि कभी भरती ही नहीं। वासना का स्वरूप ही न भरना है। जितना भरो, उतनी ही जैसे कोई आग को बुझाने के लिए घी फेंकता हो... । जितना भरने की कोशिश करो, उतना घी मिलता है आग को। उतनी आग भभक कर उठती है।
जो भी तुम वासना को देते हो, वह वासना का भोजन बन जाता है। वासना और मजबूत हो जाती है।
धन की चाह है; जितना धन दोगे, धन की चाह उतनी बढ़ती चली जाएगी। पद की चाह है; जितना पद मिलेगा, उतनी पद की चाह बढ़ती चली जाएगी।

तुम अपने ही जीवन के निरीक्षण से देखो। ये कोई सिद्धांत नहीं हैं। ये जीवन के सहज तथ्य हैं।
तुमने अब तक कुछ तो पूरा करने की कोशिश की होगी, वह पूरा हुआ? तुमने जो
भी पूरा करने की कोशिश की है, जितनी तुमने कोशिश की है, उतनी ही भूख बढ़ती गई है, और प्यास बढ़ती गई है! यह कैसा जल है कि कंठ जल रहा है? जल से तृप्ति तो मिलती नहीं, कंठ की और आग भड़कती है। यही सारा संसार है।
इसलिए बुद्ध ने कहा हैः यह सारा संसार लपटों से घिरा है। तुम जागो। और इसमें बंट मत जाओ; बिखर मत जाओ। अपने को समेटो। इस समेटने का नाम ही योग है।
योग का अर्थ हैः जो अपने को समेट ले। योग शब्द का अर्थ हैः जो अपने को जोड़ ले; जो एक बन जाए। जिसके जीवन में योग घट जाए, उसके जीवन में आत्मा फलित होती है।
भोग का अर्थ हैः खंड-खंड टूट जाना। योग का अर्थ हैः अखंड हो जाना।
"साईं से लगन कठिन है भाई।"
जुआरी चाहिए कोई!
और परमात्मा के प्रेम में बहुत बार ऐसे पड़ाव आएंगे, जब मन कहेगाः लौट चलो। बहुत हो गया। पता नहीं--परमात्मा है भी या नहीं।
बड़ी प्रगाढ़ श्रद्धा चाहिए। यह भरोसा चाहिए कि परमात्मा न भी हो, तो भी खोजने जैसा है। और संसार है भी, तो भी खोजने जैसा नहीं है। यही श्रद्धा का अर्थ है।
संसार दिखाई पड़ता है--फिर भी खोजने जैसा नहीं। और परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, फिर भी खोजने जैसा है। शायद इसीलिए खोजने जैसा है।
जो नहीं दिखाई पड़ता, उसी को देखने का मजा है। जो हाथ नहीं आता, उसी को हाथ लेने का आनंद है।
जो छिपा है, उसी को उघाड़ना है। संसार तो उघड़ा खड़ा है, नंगा खड़ा है।
परमात्मा घूंघट में है। यह घूंघट उठाना पड़े। मगर इस घूंघट को उठाने की कीमत भी चुकानी पड़ती है।
दिल जलाने से कहां दूर अंधेरा होगा
रात ये वो है कि मुश्किल से सबेरा होगा।
क्यूं न अब बज-ए-जुनूं तर्क करें, लौट चलें
इससे आगे है जो जंगल वो घनेरा होगा
ये जरूरी तो नहीं, इतना भी खुशफह्म न बन
वो जमाना जो न मेरा रहा, तेरा होगा खिदमते-राजमहल पर उन्हें देखा मामूर
जो ये कहते थे सरे-दार बसेरा होगा राहे-पुरपेज को सहल इतना बतानेवाला
राहबर हो नहीं सकता है, लुटेरा होगा
वो भी इन्सान है ऐ दिल उसे इल्.जाम न दे
जाने उसको भी किन आफात ने घेरा होगा
दिल जलाने से कहां दूर अंधेरा होगा।
रात ये वो है कि मुश्किल से सबेरा होगा
नहीं; मुश्किल से ही नहीं--सबेरा होता ही नहीं। रात ये वह कि यहां सबेरा होता ही नहीं।
संसार ऐसी रात है, जिसका कोई सवेरा नहीं। और परमात्मा ऐसा सवेरा है, जिसकी कोई सांझ नहीं। इसे शास्त्रों ने अलग-अलग ढंग से कहा है। लेकिन यही बात है। सार की, और पते की बात है; याद रखना। संसार ऐसी रात है, जिसका कोई सबेरा नहीं। परमात्मा ऐसा सवेरा है, जिसकी कोई सांझ नहीं। रोशनी है परमात्मा। प्रकाश है परमात्मा। और संसार तो गहन अंधेरा है। फिर इसमें तुम कितना ही दिल को जलाओ।
दिल जलाने से कहां दूर अंधेरा होगा
रात ये वो है कि मुश्किल से सबेरा होगा।

और कई बार तुम्हें लगेगा; बार-बार लगता है; रोज तो लगता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसे यह बात कई बार झलक में न आ जाती हो कि संसार में कुछ सार नहीं है।
इतना बुद्धिहीन आदमी होता ही नहीं, जिसको यह समझ में न आ जाता हो कि यहां कुछ सार नहीं है। फिर भी लगे रहते हैं--किसी पुरानी आदत के कारण, संस्कार के कारण। न लगें, तो क्या करें--इस कारण।
न जाएं संसार में, तो कहां जाएं? कुछ और सूझता नहीं।
सारे लोग संसार में जा रहे हैं! सारा समूह यहां जा रहा है! भीड़ की धक्का-धुक्की में तुम भी चलते जाते हो। बहुत बार तुम्हें समझ में भी आता है कि क्या फायदा? कहां जा रहा ह्नूं! लेकिन और कहां जाएं?
"क्यूं न अब बज-ए-जुनूं तक करें, लौट चलें?"
कई बार ऐसा खयाल आता है कि यह क्या पागलपन कर रहे हैं! इस पागलपन को छोड़ें और लौट चलें। "इससे आगे जो जंगल है वो घनेरा होगा।" क्योंकि यह सारे संसार की यात्रा अंततः मौत में ले जाती है। तुम्हारा जीवन और कहां ले जाता है? मौत में ले जाता है। "इससे आगे जो जंगल है, वो घनेरा होगा।"
अगर जीवन का तुमने ठीक उपयोग न कर लिया, तो जीवन सिर्फ मौत में ले जाएगा। कब्र में उतार देगा।
निश्चित ही जो जंगल आगे आ रहा है, वह ज्यादा घना है। और जो अंधेरा आगे
आ रहा है, वह और भी भयंकर है।
जिंदगी का अंधेरा ही बड़ा है, मौत का अंधेरा तो निश्चित ही और भी बड़ा होगा।
लेकिन हमारा मन ऐसा कहता रहता है--कि माना सिकंदर का नहीं हुआ; नेपोलियन नहीं जीता; माना बड़े-बड़े अरबपति भी खाली हाथ गए; लेकिन कौन जाने-- मैं जीत जाऊं! कौन जाने मैं अपवाद होऊं!
तुम अपने को सदा अपवाद मानते रहते हो। जब भी कोई मरता है, तुम यही सोचते हो कि बेचारा! तुम्हें यह खयाल नहीं आता कि मेरी भी घड़ी करीब आती है। तुम दो आंसू टपका आते हो। तुम दो सहानुभूति की बातें कह आते हो। तुम इस तरह समझते हो, जैसे इस बेचारे पर कोई मुसीबत आ गई। इस पर जो मुसीबत आई है, वह तुम पर भी आ रही है। इस पर आने के कारण तुम्हारी और करीब आ गई है। यह भी क्यू में खड़ा था; एक आदमी कम हुआ। तुम्हारा क्यू और आगे सरक गया। मौत के करीब तुम पहुंच गए--थोड़े और ज्यादा।
हर आदमी के मरने में तुम मरते हो। लेकिन मन कहता कि मैं नहीं मरूंगा। मौत सदा किसी और की होती है। सदा कोई और मरता है!
ये जरूरी तो नहीं, इतना भी खुशफह्म न बन
वो जमाना जो न मेरा रहा, तेरा होगा?
लेकिन जो जानते हैं, उनसे पूछो। वे कहते हैंः जो जमाना हमारा नहीं हुआ
वह तुम्हारा कैसे होगा? "इतना भी खुशफह्म न बन।" इतना भी अपने सौभाग्य का भरोसा मत कर। यह जमाना किसी का भी नहीं हुआ।
"राहे-पुरपेज को सहल इतना बताने वाला
राहबर हो नहीं सकता है, लुटेरा होगा।
और जो जिंदगी के इस उलझे हुए रास्ते को सहल ही कह देता है, वह राहबर नहीं हो सकता--पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकता--लुटेरा होगा। वह कहीं ले जाकर गली-कूचों में अंधेरे में लूट लेगा। इसलिए कबीर कहते हैंः "साईं से लगन कठिन है भाई।"
जो कह देता हो कि रोज सुबह दस मिनट मंत्र पढ़ लेने से सब हो जाएगा; कि एक किताब में राम-राम लिख लेने से रोज, सब हो जाएगा; कि किसी पत्थर की मूर्ति के सामने दीया जला लेने से सब हो जाएगा; कि चार फूल पड़ोसियों के बगीचे से चुरा कर मंदिर में चढ़ा आने से सब हो जाएगा--इतना जो सरल कहते हों, वे राहबर नहीं हैं, वे पथ-प्रदर्शक नहीं हैं; वे लुटेरे हैं।
वे तुम्हारे मन को समझते हैं... तुम सस्ती चीजें चाहते हो, वे सस्ता परमात्मा तुम्हें दे देते हैं। सस्ता परमात्मा पाने की आशा में तुम लुट जाते हो।

ये जो इतने हिंदू, इतने मुसलमान, इतने जैन, ईसाई लुटते हैं--मंदिरों में, मस्जिदों में--ये अकारण ही नहीं लुट रहे हैं। इसके पीछे एक तर्क हैः सस्ते में परमात्मा पाना चाहते हैं। मुफ्त मिल जाए।
अब कैसा मजा हैः कोई सोचता है कि एक तिलक लगा लेने से; कि एक जनेऊ पहन लेने से; कोई सोचता है कि रोज जाकर मंदिर में सिर पटक आने से; कोई सोचता है रोज सुबह गीता या कुरान पढ़ लेनें से बस, सब हो जाएगा। नहीं; मामला इतना आसान नहीं। पपीहे से पूछो।
जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई।
प्यासे प्राण तरफै दिनराती, और नीर भा भाई।
और पानी तुम ले जाओ दूसरा, तो तैयार नहीं है। चातक तो स्वाति की ही बूंद मांगता है। और पानी नहीं स्वीकार करता। स्वाति की बूंद ही जब गिरेगी, तो उसके कंठ को स्वीकार होगी।
सिंह घास-पात नहीं खाते हैं। और मान-सरोवर के हंसों को तुम नाली की कीचड़ में न बिठा सकोगे। "हंसा तो मोती चुगै।"
जब तुम्हारे भीतर परमात्मा की प्यास उठेगी, तो तुम सिर्फ मोती ही चुगोगे। तुम सिर्फ परमात्मा को ही पाना चाहोगे और कुछ भी तुम्हें तृप्त न कर सकेगा। ये संसार के खिलौने फिर तुम्हें भरमा न सकेंगे।
दीये भी हों तो पुजारी सूरज के, सांस क्या लेंगे तारंगी में
कहो पतंगों से रक्स करलें, चिराग की धीमी रौशनी में।
मुआफ ऐ नाजे-रहानुमाई, पहुंच के मंजिल पे भी न पाई
वो लज्जते-ख्वाब जो मयस्सर हुई हो सरे-राहे-खस्तगी में।
बफा को थोड़ी सी बेनियाजी कम इल्तफाती ने तेरी दे दी
अब और क्या चाहिए खुदी को मेरी मुहब्बत की बेखुदी में।
छुपी न जब खाके-आस्तां मे छुपेगी क्या चश्मे-चुक्तदां से
वो इक शिकन जो जरा सी उभरी जबीने-मजबूरे बंदगी में।
इधर अंधेरे की लानते हैं, उधर उजाले की जहमतें है
तेरे मुसाफिर लगाएं बिस्तर, कहां पे सहरा-ए-जिंदगी में।
"जमील" हम उठ के गिर पड़े और गुजर गया कारवां हमारा
गुबारा की बात तक न पूछी मुसाफिरों ने रवारवी में।
जब तुम गिरोगे... । यह कारवां, जिसके साथ तुम चले थे, जिस पर बड़ा भरोसा किया था; यह भीड़-भाड़; पूछेगी भी नहीं तुम्हारी बात। जब तुम गिर पड़ोगे, यह कारवां ऐसे ही चलता जाएगा। यह लौट कर भी नहीं देखेगा कि कौन गिर गया। "जमील" हम उठ के गिर पड़े और गुजर गया कारवां हमारा
गुबार की बात तक न पूछी मुसाफिरों ने रवारवी में।
लोग इतनी जल्दी में हैं जाने की, कौन फिकर करेगा कि कोई मिट्टी में गिर गया; कि कोई पीछे दब गया! इसी भीड़ के पैरों के नीचे दब कर मर जाओगे। जिस भीड़ को तुमने संगी-साथी समझा है, यह भीड़ संगी-साथी नहीं है। ये भागते हुए लोग, ऐसे भागते रहेंगे; तुम गिर जाओगे, तो कोई हाथ का सहारा भी न देगा। और इनमें से कोई तुम्हारे साथ जाने को राजी भी न होगा।
"दीये भी हों तो पुजारी सूरज के, सांस क्या लेंगे तीरंगी में।" यह ठीक बात कही है--कि दीया भी जला दो अंधेरी रात में, तो सूरज का चाहक है, उसे कुछ आनंद न आएगा। जो सूरज को चाहता है, दीयों से तृप्त नहीं होगा।
इस जिंदगी में अगर थोड़े बहुत कहीं कोई सुख के क्षण भी आते हों, तो वे इतने क्षणभंगुर है--पानी के बबूलों जैसे हैं--कि जिसने शाश्वत को चाहा है, उसे उनसे कोई तृप्ति नहीं हो सकती।
यहां कभी-कभी झलक भी मिल जाती हो प्रेम की, तो भी जिसने प्रार्थना को पहचाना है, उसे उस प्रेम से कुछ तृप्ति नहीं होती। उस प्रेम में बड़ी गंदगी मिली है। उस प्रेम में शुद्ध सुवास नहीं है। उसमें वासना की दुर्गंध है। "दीये भी हों तो पुजारी सूरज के, सांस क्या लेंगे तीरंगी में।"
अंधेरी रात में सूरज का पुजारी तो रोता ही रहेगा। दीया भी जला हो, तो
भी रोता रहेगा।
"कहो पतंगों से रक्स कर लें, चिराग की धीमी रौशनी में।" हां, कोई पतंगे हों, तो वे नाच लें--चिराग की धीमी रोशनी में। लेकिन सूरज का पुजारी... ?

इस संसार के लोग पतंगों की तरह हैं, जो टिमटिमाती रोशनियों में--जो अब बुझी तब बुझी, जो कभी न कभी बुझ जाने वाली हैं--रक्स कर लेते हैं; नाच कर लेते हैं।
शाश्वत को खोजो, क्योंकि उसी को खोज कर फिर खोना नहीं पड़ता।
सूरज के पुजारी बनो। मिट्टी को दीयों की पूजा कब तक? रोशनी खोजो। अंधेरे के द्वार पर
बंदगी कब तक? देह के सुख और उनके भ्रमों में कब तक पड़े रहोगे? आत्मा का सुख खोजो।
कठिन है। कठिन इसलिए है कि ये जो हजार-हजार सुख मालूम होते हैं--देह के, ये कहेंगेः इतनी जल्दी क्या! थोड़े रुको। थोड़ा यह भी कर लो, थोड़ा वह भी कर लो; फिर परमात्मा तो सदा है, पीछे कर लेना।
इसलिए तो लोग कहते हैंः संन्यास जीवन के अंत में ले लेंगे। बूढ़े हो जाएंगे, तब ले लेंगे। अभी तो जिंदगी है; जिंदगी रक्स पर है। अभी तो ताजा है। अभी तो थोड़ा भोग लें। अभी तो जवानी है, थोड़ा जवानी का रस ले लें। ध्यान रखनाः जवानी में ही ऊर्जा है और शक्ति है। चाहे संसार का रस ले
लो, और चाहे परमात्मा को पुकार लो।
बुढ़ापे में न तो संसार भोगने की शक्ति रह जाती; जब संसार ही भोगने की शक्ति नहीं रह जाती, तो तुम कैसे परमात्मा को भोगने चल सकोगे? वह तो हारे- थके आदमी का नाम है। वह कहता हैः अब संसार में तो कुछ मिलने को रहा नहीं; अब संसार में रहनें की हिम्मत भी नहीं रही। चलो, अब परमात्मा को ही पुकार लें। कुछ हो जाए तो हो जाए। वह तो धोखा है, आत्म-प्रवंचना है।
इसलिए बुद्ध और महावीर ने युवकों को संन्यास दिया। हिंदू बहुत नाराज हुए थे। क्योंकि हिंदुओं ने सदा से मान रखा थाः संन्यास बुढ़ापे की बात है। चौथी अवस्था में--पचहत्तर साल के बाद। पहले तो पचहत्तर साल तक बहुत कम लोग जीते हैं। और उन दिनों तो बिल्कुल नहीं जीते थे, जिन दिनों ये पचहत्तर साल की बात लिखी गई। उन दिनों तो ज्यादा से ज्यादा आदमी चालीस साल... । क्योंकि जितनी पुरानी हड्डियां मिली हैं, खोज-बीन की गई सारी दुनिया में, तो ऐसी कोई हड्डी नहीं मिली है अब तक जो चालीस की उम्र से ज्यादा आदमी की हो। तुम्हारे शास्त्र कुछ भी कहें, लेकिन प्रमाण जरा भी नहीं है कि लोग सौ साल जीते थे। यह बात बिल्कुल झूठी है। एक आदमी की हड्डी नहीं मिली, जो चालीस से ऊपर की उम्र की हो। लोग चालीस के इर्द-गिर्द मर जाते थे। लेकिन यह था--कि लोगों को न आंकड़े आते थे, न संख्या आती थी, न कैलेंडर था, न डायरी थी, न घड़ी थी। तो चालीस साल भी शायद चार सौ साल जैसे लगते हों। अभी भी गांव में ऐसा हो जाता है।
देहात में जाकर आदमी से पूछोः तुम्हारी उम्र कितनी है? उसे पता नहीं है! कब पैदा हुए थे? उसे पता नहीं। उसकी गिनती ही दस अंगुलियों पर पूरी हो जाती है। इसके आगे गिनना बहुत मुश्किल मामला है। उसे फिकर भी नहीं है। एक लिहाज से अच्छा भी है।
शायद यही कारण है कि पुरानी किताबें कहतीं हैं कि उन दिनों में बूढ़े आदमियों के भी बाल सफेद नहीं होते थे। यह बात सभी संभव हो सकती है, जब बूढ़े आदमी तीस पैंतीस साल में मर जाते हों।
बूढ़े आदमियों के दांत नहीं गिरते थे। लोग सोचते हैं कि बहुत मजबूत रहे होंगे! कुल मामला इतना है कि वे तीस-चालीस के पहले मर जाते थे, तो दांत कहां से गिरेंगे?
पुराने शास्त्र कहते हैं कि उन दिनों कोई बेटा बाप के सामने नहीं मरता था। बात ठीक है। जब बाप पैंतीस-चालीस साल में मर जाए, तो बेटों को इतनी जल्दी मरने की जरूरत भी नहीं है। अब तो बहुत बेटे बाप के सामने मरते हैं। और जितनी उम्र बढ़ती जाती है, जैसे अमरीका में या स्वीडन में, जहां उम्र अस्सी साल, पचासी साल हो गई हो--औसत उम्र, जहां सौ साल का आदमी आसानी से मिल जाता हो, उसके बच्चे अगर उसके सामने मर जाएं, तो कुछ आश्चर्य नहीं। कभी-कभी तो नाती-पोते मर जाते हैं।

रूस में जहां कुछ लोगों की उम्र डेढ़ सौ के करीब पहुंच गई है, वहां तो बेटों के बेटों के बेटे भी मर जाते हैं। तो डेढ़ सौ साल का कोई आदमी जीएगा, तो उसकी लम्बी यात्रा हो गई।
वैज्ञानिक कहते हैं कि पुराने दिनों में, आज से तीन हजार साल पहले, चालीस साल आखिरी उम्र की सीमा थी। और हिंदू कहते हैं, पचहत्तर साल में संन्यासी हो जाना! पच्चीस साल तक तो ब्रह्मचर्य; फिर पचास साल तक गृहस्थ; फिर पचहत्तर साल तक वानप्रस्थ; फिर पचहत्तर से सौ साल तक संन्यासी! तो शायद ही कभी संन्यासी कोई हो पाए।
इसलिए जब तक ये शास्त्र मान गए--इस देश में संन्यासियों की संख्या बहुत नहीं थी। ऐसे इक्के-दुक्के ऋषि-मुनि होते थे, क्योंकि उतनी लंबी उम्र तक कोई नहीं जीता था।
इस देश में संन्यासियों का प्रादुर्भाव हुआ--बुद्ध और महावीर के साथ। क्योंकि उन्होंने जवान को दीक्षित किया। जब जवान को दीक्षित किया, तो हजारों लाखों की संख्या में लोग संन्यस्त हुए।
लेकिन फिर भी संन्यास अटका रहा। हिंदुओं ने उम्र से अटका दिया था; और महावीर ने संन्यास का अर्थ ऐसा किया--कि संसार छोड़ कर ही जाना पड़ेगा--उससे अटका दिया। बहुत लोग संसार छोड़ कर नहीं जा सके। और जरूरी नहीं है कि वे बुरे लोग हों।
अक्सर तो ऐसा होता है कि बुरे लोग जल्दी से संसार छोड़ कर चले जाते हैं। जिस आदमी में थोड़ी दया है, करुणा है, वह अपने बच्चे की भी सोचेगा कि इसको मैं छोड़ जा रहा हूं; पैदा मैंने किया है। इसको छोड़ कर जंगल भाग जाऊंगा--क्या यह उचित है? क्या यह अहिंसा है?
जैनियों ने कभी नहीं पूछी यह बात! पानी छान कर पीते हैं। लेकिन एक आदमी अपने छोटे से बच्चे को जो अभी-अभी पैदा हुआ है, छोड़ कर भाग जाता है, इसमें हिंसा नहीं देखते!
एक स्त्री को तुम विवाह कर लाए थे। भरोसा दिया था--जीवन भर साथ देने का। फिर एक दिन तुम अचानक जंगल चले जाते हो। और तुम यह भी नहीं सोचते कि तुमने कोई हिंसा की।
तुम एक अंधेरी रात में स्त्री को अकेली छोड़ आए हो। तुम्हारे भरोसे पर चली थी। तुम्हारे भरोसे के कारण तुम्हारे बच्चे की मां बनी थी। और तुम भागे जा रहे हो!
मेरे देखे बुरे लोग जल्दी संसार छोड़ कर भाग जाते हैं, क्योंकि उनमें करुणा का कोई बोध नहीं होता। कठोर लोग, हिंसक लोग, दुष्ट प्रकृति के लोग जैनमुनि हो जाते हैं। जिनमें थोड़ी सी भी सदवृत्ती होगी, वे हजार बार सोचेंगे।
तो उम्र से तो मुक्त कर दिया बुद्ध और महावीर ने, तो संख्या बढ़ी। संन्यासी काफी संख्या में हुए। बुद्ध के लाखों और महावीर के हजारों संन्यासी हुए। यह शुभ थी बात। लेकिन उन्होंने एक दूसरी झंझट लगा दी--कि संसार छोड़ कर जाना चाहिए।
सभी लोग संसार छोड़ कर नहीं जा सकते। और सभी लोग चले जाएं, तो महावीर को
भी रोटी देने वाला नहीं मिल सकता। सभी लोग चले जाएं, तो जो छोड़ कर चले गए हैं, उनका पालन-पोषण करने वाला कोई नहीं रहेगा।
अगर जैन मुनियों की सब जैन मान लें और कहें कि चलो, हम भी मुनि हुए जाते हैं, तो तुम एक दिन देखोगे कि जैन मुनि दुकान कर रहे हैं! कि बाजार में काम खोज रहे हैं कि नौकरी के दफ्तर के सामने क्यू में खड़े हैं! क्या करोगे फिर?
तुमने संसार छोड़ दिया है, इसीलिए छोड़ सके हो कि तुम्हारा संसार में कोई है, जो तुम्हारी देखभाल कर लेता है, रोटी-रोजी-कपड़ा-मकान का इंतजाम कर देता है। अगर वह भी छोड़ दे, तो पता चलेगा।
मैं चाहता हूं कि तुम जहां हो, वहीं रह कर संन्यस्त हो जाओ। संन्यास
मन की भाव-दशा हो। यह चित्त का जागरण हो।
संसार में तुम्हारा रस न रह जाए। बस, इतना काफी है। विरस हो जाओ।
संसार में तुम्हारी दौड़ न रह जाए, तुम्हारी दौड़ परमात्मा में हो जाए, फिर

तुम जहां हो, वहीं रहो। कहीं जाने की जरूरत नहीं। पति हो तो पति; और पत्नी हो तो पत्नी। बच्चे हैं, तो बच्चों की फिकर करना। यह भी तुम्हारा परमात्मा की तरफ प्रेम प्रकट करने का एक ढंग है। यह उसका ही संसार है। ये पत्नी, बच्चे बेटे उसके ही हैं। इसमें तुम्हारा क्या है?
जिस तरह मैं संन्यास को देखता हूं, अगर वैसी धारणा प्रचलित हो जाए, तो दुनिया में बहुत लोग संन्यासी हो सकते हैं।
उम्र की बाधा नहीं और यह त्याग का अतिशय आग्रह नहीं। वृत्ति-त्याग-- वस्तु-त्याग नहीं। वस्तुएं उसी की हैं--और उसी की रहेंगी। इसलिए कबीर कहते हैंः मेरा-तेरा क्या हैं? और शरम नहीं आती--मेरा तेरा कहते!
जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई।
प्यासे प्राण तरफै दिनराती, और नीर ना भाई।
जैसे मिरगा सब्द-सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै और प्रानदान दे, तनिको नाहिं डराई।
मृग बांसुरी की आवाज सुन कर पास आ जाता है। या सर्प बीन की आवाज सुन कर पास आ जाता है। फिकर नहीं करता कि प्राण खोने पड़ेंगे। ऐसे ही परमात्मा का परम प्रेमी अगर मौत भी आती हो, तो भी परमात्मा के प्रेम में बाधा नहीं बनने देगा। न तो जीवन बाधा बनेगा, न मृत्यु बाधा बनेगी।
सब दांव पर लगाने की तैयारी होनी चाहिए। इतना ही पागलपन हो, इतना ही उन्माद हो, तो ही कोई पा सकता हैः
जैसे मिरगा सब्द-सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै और प्रानदान दे, तनिको नाहिं डराई।
सर ये कहता है गवारा नहीं अब बारिशे संग।
दिल ये कहता है उसी कूचे में जाया जाय।
जिस कूचे में पत्थर पड़े हैं सिर पर तो बुद्धि तो कहती हैः अब वहां मत जाओ। वह प्रेमी की जो गली है या प्रेयसी की जो गली है, अब वहां मत जाओ--भूल कर मत जाओ--बुद्धि कहती है। वहां पत्थर पड़ते हैं।
"सर ये कहता है गवारा नहीं अब बारिशे संग।" अब और पत्थर खाने की हिम्मत नहीं है।
"दिल ये कहता है उसी कूचे में जाया जाय।" लेकिन दिल कहता हैः चलो वहीं। सिर जाए तो जाए; प्राण जाएं तो जाए; चलो वहीं,
मंदिर वहीं है।
जैसे मिरगा सब्द सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै और प्रानदान दे, तनिको नाहिं डराई
जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।
पावक देखि डरै वह नहीं, हंसत बैठे सदा माई।
"जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।" यह अपूर्व घटना केवल इस देश में घटी है। सती की घटना सिर्फ इस देश में घटी है। क्योंकि इस देश ने प्रेम के तत्व को समझा।
दुनिया में कोई देश इतना सौभाग्यशाली नहीं है कि प्रेम के तत्व को इतना समझा हो। और स्त्रियों ने पुरुषों को मात दे दी सती होने में। और स्त्रियों ने सदा के लिए सिद्ध कर दिया कि पुरुष के प्रेम की बातचीत ऊपरी- ऊपरी है।
हजारों स्त्रियां अपने प्रेमियों के साथ चिता पर चढ़ गईं। लेकिन एक भी प्रेमी अपनी प्रेयसी के साथ चिता पर नहीं चढ़ा है। सतियां बहुत हुईं; सता एक भी नहीं हुआ। इससे जाहिर होता है कि पुरुष हृदय से नहीं जीता, बुद्धि से ही जीता है; लफ्फाजी करता है!
हालांकि यह मजे की बात है कि प्रेम के सब गीत पुरुष लिखते हैं। प्रेम
की कहानियां पुरुष लिखते हैं। प्रेम के उपन्यास पुरुष रचते हैं। लेकिन स्त्रियों ने प्रेम के प्रमाण दिए हैं। और इससे बड़ा कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि प्रेमी चल बसा, तो स्त्री ने तय किया कि अब उसके बिना रहने का क्या अर्थ होगा! रहने का मजा उसके साथ था। रहने में सार्थकता उसके साथ थी। वही प्राणों का प्राण था। उसके बिना क्या अर्थ? उसके बिना जीवन मृत्यु से भी बदतर है।

यह अपूर्व घटना थी। असाधारण घटना थी। अतिमानवीय घटना थी। और आसान नहीं है। तुम्हें पता हैः जरा सा हाथ जल जाता है, तो कितनी तकलीफ होती है! जरा आग के पास हाथ ले जाओ, तो पता चलेगा।
जलती चिता में जीते जी बैठ जाना! अपनी देह को जलते देखना! जरूर प्रेम
का बल देह के बल से ज्यादा होगा, तभी यह संभव हो सकता है। प्यारे से लगाव अपनी देह के लगाव से ज्यादा होगा, तभी यह हो सकता है।
इस स्त्री ने, जो चिता पर चढ़ गई है, और शांत भाव से बैठ कर आग में अपने
को समर्पित कर दिया है, इस बात की घोषणा कर दी कि आदमी शरीर ही नहीं है; आदमी शरीर से कुछ ज्यादा है। आदमी आत्मा है। नहीं तो यह घटना घट ही नहीं सकती।
अगर आदमी केवल शरीर मात्र है, जैसा कि पदार्थवादी और नास्तिक कहते हैं कि आदमी सिर्फ देह मात्रा है, तो यह सती की घटना नहीं घट सकती। फिर यह कौन है? क्योंकि देह तो जलना नहीं चाहती। देह क्यों जलना चाहे? देह तो कहेगीः यह आदमी गया, तो गया; दूसरा आदमी खोज लो।
इसलिए देहवादी देशों मे सती का तो सवाल ही नहीं है। सती की तो बात ही व्यर्थ है। देहवादी देशों में तलाक का प्रचार बढ़ गया। क्योंकि ठीक है; इस आदमी से जब तक सुख मिलता है, ठीक है! जब नहीं मिलता, बात खत्म हो गई। संबंध देह का है। और
देह के पास कोई ऊंचे मूल्य नहीं है! सुख मिलता हो इस आदमी के साथ, तो ठीक है। नहीं मिलता हो, तो बात खातम हो गई। तो विदा हो जाओ।
जो स्त्रियां चिता पर चढ़ गईं और सहज भाव से मृत्यु को अंगीकार कर लिया; मृत्यु के अंगीकार में ही पता चलता है कि उन्हें कुछ-कुछ अमृत का स्वाद लग गया होगा।
जरा सोचोः एक स्त्री को, एक युवती को, एक विधवा को अपने प्रेमी की चिता
पर बैठे हुए... सोचो... उसके भीतर क्या घटता होगा? देह तो कहती होगीः चलो उठो। ये भयंकर लपटें; यह असह्य पीड़ा; यह नरक। देह तो होश खो देती होगी। देह तो खींचती होगी कि चलो, उठो, भागो। देह तो भगा ही देगी। लेकिन कौन उसे रोके हुए है? देह से कुछ ज्यादा है मनुष्य। उस ज्यादा का उसे अनुभव हो रहा है। इस चिता पर चढ़े हुए, जलते-जलते वह स्त्री की आत्मा का अनुभव कर लेगी।
यह तो आत्मा को ही अनुभव करने का एक उपाय था--सती का प्रयोग।
पुरुष इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाए। यद्यपि पुरुषों ने शास्त्र लिखे हैं कि आदमी देह नहीं है, आत्मा है। और पुरुषों ने शास्त्र लिखे हैं कि प्रेम से ही सत्य मिलता है। और पुरुषों ने सारी बातें कहीं है; लेकिन एक पुरुष ने भी यह हिम्मत न की--कि अपनी प्रेयसी के साथ चढ़ जाता चिता पर।
इधर प्रेयसी मरी नहीं कि पुरुष दूसरी स्त्री की तलाश में लग जाता है। मरघट पर ही उसके घरवाले विचार करने लगते हैं कि अब इसकी शादी कहां कर दें! इसमें पुरुष का बड़ा गहरा अपमान है। इसमें जाहिर होता है कि पुरुष ज्यादा शरीरवादी है; स्त्री ज्यादा आत्मवादी है।
"जैसे सति चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई। उसने कहा; जीवन जाए--जाए लेकिन मैं पिया के साथ जाती हूं। "पिया की राह मन भाई।" अब पिया मर गया तो मैं भी मरती हूं। जीवन साथ था, मौत भी साथ होगी।
सती की यह व्यवस्था धीरे-धीरे विकृत हो गई, क्योंकि इस जगत में श्रेष्ठतम सत्य भी विकृत हो जाते हैं। और विकृत की पुरुष ने। विकृति कब हो गई?
धीरे-धीरे पुरुष को यह भाव पकड़ गया कि मेरे मरने के बाद मेरी स्त्री मेरी चिता पर चढ़नी ही चाहिए। प्रतिष्ठा की बात हो गई। फलां आदमी मरा, उसकी स्त्री चिता पर चढ़ गई। अब तुम सोचने लगे कि मैं मर जाऊं, पता नहीं, मेरी स्त्री चढ़े चिता पर, न चढ़े। न चढ़े, तो मेरी बदनामी होगी। यह भी अहंकार का हिस्सा हो गया! तो मेरी स्त्री भी चढ़नी चाहिए इसका आयोजन पक्का कर लेना जरूरी है। नहीं तो लोग कहेंगेः अरे, इसकी स्त्री नहीं चढ़ी। तो इनमें प्रेम नहीं था! या इसकी स्त्री इसके प्रति सच में ही लगाव से भरी नहीं थी। या इस स्त्री का मन किसी और से लगा था। या यह स्त्री दुराचारिणी है। या यह पुरुष

इस स्त्री को तृप्त नहीं कर पाया। न मालूम लोग क्या-क्या सोचेंगे। बदनामी हाथ लगेगी।
तो लोग इंतजाम करने लगे कि इनकी पत्नी को चढ़ना चाहिए।
जो बात सहज होती है, उसमें तो सौंदर्य है। जो बात सहज होती है, उसमें
तो एक अपूर्व घटना है, चमत्कार है। लेकिन जब जबरदस्ती की जाने लगी, तो बात गंदी हो गई। और गंदगी पुरुष लाया--अहंकार के कारण।
तो आयोजन होने लगा कि जब भी कोई मरे, तो सारा गांव उसकी स्त्री को खदेड़
कर जाकर चढ़ा दे चिता पर। स्त्रियां भाग रही हैं और उनको जबरदस्ती चढ़ाया जा रहा है! जबरदस्ती चढ़ाने के लिए पूरा इंतजाम किया जाता था। इतना घी फेंका जाता था, इतना तेल फेंका जाता था कि आग ऐसी भभके कि एक ही भभके में स्त्री समाप्त हो जाए।
और चारों तरफ पंडे-पुजारी हाथ में जलती मशालें लेकर खड़े रहते थे--कि अगर स्त्री भागे, निकले... । क्योंकि आग आग है। और जब तुम अपने मन से नहीं गए हो, तो भागोगे ही। तो कहीं अधजली स्त्री बाहर न आए, तो उसकी मशालों से वापस चिता में धकेल देने की व्यवस्था थी।
और ढोल-नगाड़े बजाए जाते थे खूब, ताकि वह रोएगी, चीखेगी, चिल्लाएगी... । मरेगा कोई तो ऐसे ही थोड़े मरेगा! हां, अपने स्वानुभाव से कोई मरता हो, स्वप्रतीति से कोई मरता हो, सहज स्फूर्ति से कोई मरता हो, तब तो बात और है। लेकिन जब जबरदस्ती किया जा रहा है, तो वह चीखेगी। भयंकर चीख निकलेगी। वह चीख लेकिन जब पूरे गांव में गूंज जाएगी। और चीख सिद्ध कर जाएगी कि स्त्री को जबरदस्ती... सती हुई नहीं है, करवाई गई है। तो बड़े बैंड़-नगाड़े बजाते और बड़े जोरों से मंत्रोच्चार करते हैः हरे कृष्ण हरे राम करते। और इतना घी फेंकते कि धुआं काफी हो जाए, ताकि किसी को दिखाई भी न पड़े कि क्या हो रहा है।
यह तो हत्या थी! इसलिए अंग्रेजों को यह हत्या बंद करनी पड़ी। अंग्रेजों ने सती की प्रथा बंद नहीं की। सती की प्रथा तो उसके बहुत पहले मर चुकी थी। जो उन्होंने बंद किया, वह स्त्रियों की हत्या थी। इसलिए मैं नहीं कहता कि उन्होंने बुरा किया। उन्होनें ठीक किया। असली बात तो खो गई थी। असली फूल तो जा चुके थे; प्लास्टिक के फूल रह गए थे। और इनके कारण हजारों स्त्रियां सताई जा रही थीं। जबरदस्ती सताई जा रही थीं।
अगर कोई स्त्री किसी तरह बच भी जाती, न जाती, न होती सती, तो जीवन भर अपमान सहती। जीवन भर समझी जाती कि उसका आचरण गलत है। इसलिए विधवा को कोई सम्मान नहीं होता था। विधवा का अपमान था। उसका जीना दूभर हो जाता था। यह जीवन दूभर कर देना इसी के लिए था, ताकि आदमी यही तय करे कि बेहतर यह है कि मैं मर जाऊं। जीना तो और भी मुश्किल होगा!
कोई स्त्री विधवा हो जाती, तो सोचती कि अब बेहतर यही है कि मर ही जाऊं। क्योंकि जीना तो और कठिन होगा। मरना तो क्षण में हो जाएगा। आग की तकलीफ है; दो घड़ी में बीत जाएगी। मगर यह जिंदगी तो न मालूम कितने वर्ष चले। यह अपमान भारी होगा, लंबा होगा। सती की प्रथा अपने आप में बड़ी प्यारी थी। वह प्रेम का बड़ा अदभुत प्रमाण थी; और आत्मा की बड़ी घोषणा थी।
जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।
पावक देखि डरै वह नाहीं, हंसत बैठे सदा माई।
वहां बैठी है आग पर, लेकिन प्रसन्न है। प्रसन्न है कि अपने प्रेमी के साथ जा रही है। उमंग से भरी है--कि अपने प्यारे के हाथ में हाथ है। कि अपने प्यारे का सिर अपनी गोद में लिए बैठी है। कि जीवन में साथ था ही था, मृत्यु में भी साथ है। मृत्यु भी जुदा न कर पाई। प्रेम ने मौत को भी हरा दिया। ऐसा ही जब कोई परमात्मा को भी प्रेम करता है कि अपने जीवन से भी अगर कीमत चुकानी पड़े, तो तैयार हो; आग में भी जल जाना पड़े, तो तैयार हो; तभी कोई मिल पाता है।
साईं से लगन कठिन है भाई।
छोड़ो तन आने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
और जब तक तुम्हें अपने तन में बहुत रस लगा है, तब तक तुम परमात्मा को न
पा सकोगे।

परमात्मा तुम्हारे भीतर ही मौजूद है; तुम्हारे तन में ही छिपा है। तन तुम्हारा मंदिर है; परमात्मा तुम्हारे मंदिर का देवता है। लेकिन तुम्हारी नजरें दीवारों पर अटकी हैं। इसलिए मंदिर में विराजे देवता को तुम नहीं देख पाते हो।
"छोड़ो तन आने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।" छोड़ो फिकर तन की। तन की फिकर छोड़ते ही आदमी में अभय का जन्म होता है। तन के कारण भय है। क्योंकि तन के कारण मृत्यु है। मृत्यु के कारण भय है। जिस दिन तुमने जानाः मैं तन नहीं हूं, उसी दिन मृत्यु भी गई--और भय भी गया। फिर तुम--"निर्भय हूवै गुन गाई।" फिर तुम प्रभु का निर्भय होकर गुणगान करो; स्तुति करो। फिर नाचो। फिर ही नाच सकोगे।
"कहत कबीर सुनो भाई साधो, नहीं तो जन्म नसाई।" और सुन लो, कबीर कहते हैं, ऐसा कर लो तो ठीक, नहीं तो जीवन का अवसर व्यर्थ गया।
माना कि प्रेम लगाना कठिन है प्रभु से, लेकिन लगा लो। न लगाया, तो जीवन अकारण गया। तब तुम कृतार्थ नहीं हुए। फल न लगे, फूल न लगे तुम्हारे जीवन में। तुम्हारा जीवन ऐसे ही था, जेसे बांझ वृक्ष।
"लोका जानि न भूलो भाई।" कबीर कहते हैंः प्रभु की महिमा को जानो--भूलो मत। इस संसार में अपनी स्मृति को बहुत मत उलझा दो।
"लोका जानि न भूलो भाई।"
संसार है--ठीक है; अपनी जगह ठीक है, मगर इसमें इतने मत भरम जाओ कि प्रभु
का स्रमण भूल जाए। उसकी याद तो बनी ही रहे। क्योंकि अंततः वही हमारा घर है। अंततः वही हमें जाना है। क्योंकि वहीं से हम आए हैं, वही स्रोत है; वही गंतव्य है।
"खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रह्यो समाई।" सृष्टिकर्ता सृष्टि में छिपा है--"खालिक खलक खलक में खालिक।" सृष्टिकर्ता सृष्टि में छिपा है।
और सृष्टि सृष्टिकर्ता में छिपी है। यह वक्तव्य ध्यान में रखना।
परमात्मा संसार से अलग-थलग नहीं है। कहीं दूर आकाश में नहीं बैठा है।
यहीं छिपा है। कण-कण में छिपा है। क्षण-क्षण में छिपा है। परमात्मा इस सारे अस्तित्व में छिपा है।
जैसे परमात्मा इस अस्तित्व में छिपा है, यह अस्तित्व परमात्मा में छिपा है। दोनों संयुक्त हैं।
दोनों जुड़े हैं। इसलिए संसार को छोड़ने की जरूरत नहीं है--परमात्मा को पाने के लिए। सच तो यह हैः अगर संसार तुमने बिल्कुल छोड़ दिया, तो कैसे परमात्मा को पाओगे? क्योंकि परमात्मा संसार में छिपा है।
यहीं पाओ; यहीं खोजो; यहीं खोदो। जैसे मिट्टी खोदो, तो जल हाथ लगता है। ऐसे संसार खोदो, तो परमात्मा हाथ लगता है। तुम सोच कर कि मिट्टी खोदने से क्या सार; मिट्टी छोड़ कर भाग गए, तो जल का स्रोत जो छिपा था, उससे भी वंचित रह जाओगे।
"खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रह्यो समाई।" सब तरफ वही है; सब में वही है।
"अला एकै नूर उपजाया, ताकि कैसा निंदा।" और कहते हैं कबीर कि एक ही आाह
ने एक ही नूर से, एक ही रोशनी से सब उपजाया है, इसलिए संसार की कैसी निंदा करते हो?
"अला एकै नूर उपजाया, ताकि कैसा निंदा।" अपनी रोशनी से संसार को बनाया है। यह संसार उसकी सृष्टि है। जैसे कोई चित्रकार अपने प्रेम से चित्र बनाता; कोई मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता; और कोई कवि गीत रचता; ऐसे परमात्मा ने सृष्टि रची। यह उसका आनंद है। इसकी निंदा कर रहे हो?
संसार की निंदा मत करो, क्योंकि संसार की निंदा अंततः परमात्मा की निंदा है। संसार से जागना तो जरूर है, लेकिन निंदा की कोई आवश्यकता नहीं है।
ऐसा ही समझो कि अगर किसी की मूर्ति, किसी मूर्तिकार की मूर्ति को देख
कर तुम मूर्ति की निंदा करो, तो यह अंततः मूर्तिकार की ही निंदा है। मूर्ति की निंदा मूर्तिकार की तरफ ही इशारा करेगी। मूर्ति की प्रशंसा मूर्ति की ही थोड़ी प्रशंसा है; मूर्तिकार की ही प्रशंसा है। और यह भी सच है

कि मूर्ति से जागना है; मूर्ति में खो नहीं जाना है। नहीं तो मूर्तिकार को कब पाओगे? मूर्ति की निंदा भी नहीं करनी है; और मूर्ति में खो भी नहीं जाना है। मूर्ति ही सब कुछ नहीं है। मूर्ति तो केवल संकेत है कि आस-पास कहीं मूर्तिकार छिपा है।
ऐसा ही समझो कि एक जंगल में तुम जा रहे हो; घने जंगल में जहां कोई रास्ता नहीं। पगडंडी भी नहीं। और अचानक तुम्हे अपने पैर के पास पड़ी हुई एक घड़ी मिल जाती है। क्या तुम्हें उसी क्षण प्रमाण न मिल जाएगा कि घड़ी का मालिक आस-पास होगा? और घड़ी अगर चल भी रही हो, तो ज्यादा देर नहीं हुई घड़ी के मालिक के हाथ से छूटे हुए। हालांकि कोई और प्रमाण नहीं है। न पैरों का कोई चिह्न है। लेकिन घड़ी है; तो घड़ी किसी की खबर दिलाती है; कोई होगा। आस-पास ही होगा। ज्यादा दूर भी नहीं निकला होगा।
यह जगत चल रहा है; यह घड़ी चल रही है। और यह इतना विराट आयोजन है कि बिना मालिक के नहीं हो सकता। यह व्यवस्था सूचक है। यह किन्हीं हाथों की खबर देती है; किन्हीं अनोखे हाथों की। यह रचयिता की तरफ इशारा करती है।
तुम जब वृक्षों को देखते हो, पक्षियों को देखते हो, चांद-तारों को देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन में यह सवाल नहीं उठताः इतना विराट आयोजन! इतनी शांति और संगीत से चल रहा है! यह व्यवस्था बिना केंद्र के नहीं हो सकती। कभी की अराजकता हो गई होती। चीजें टकरा गई होतीं। टूट गई होतीं। बिखर गई होतीं, गिर गई होतीं।
हम जिंदगी में व्यवस्था कर करके भी नहीं व्यवस्था कर पाते और यहां व्यवस्था दिखाई ही नहीं पड़ती और फिर भी सब व्यवस्थित है!
हम तो चौराहे पर पुलिसवाला खड़ा करते हैं, तब भी लोग गलत चलते चले जाते हैं। चांद-तारों के राहों पर कोई पुलिसवाला नहीं खड़ा है और कहीं तख्तियां भी नहीं लगी हैं कि बाएं चलो! और कहीं रास्ते पर लाईट भी नहीं लगी है--कि अभी रुको; अभी मत चलो। अभी दूसरे निकल रहे हैं।
कितने चांद-तारे हैं, कोई टकराता नहीं! सब अपूर्व शांति से चल रहा है अनूठी व्यवस्था है। व्यवस्थापक दिखाई भी नहीं पड़ता।
इतना विराट आयोजन--और कहीं कोई सीधे-साफ प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते। इससे यह सिद्ध होता है कि जो व्यवस्थापक है, वह भीतर ही कहीं छिपा है--बाहर नहीं खड़ा है। बाहर खड़ा होता, तो हम देख लेते। वह आज्ञा नहीं दे रहा है--कि हे चांद-तारों, बाएं चलो; कि अभी रुको; अभी दूसरे तारे निकलते हैं। अभी ट्रैफिक बंद किया जाता है। अभी दूसरों को निकल जाने दो!
कोई कहीं आता नहीं देता। और सब ऐसे चल रहा है, जेसा आज्ञा देने से भी नहीं चल सकता है। तो व्यवस्थापक कहीं व्यवस्था में ही छिपा है। हाथ अलग नहीं हैं। वृक्षों में फैला है। पहाड़ो में छिपा है। चांद-तारों में छिपा है। तुम में मुझ में छिपा है।
खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रह्यो समाई।
अला एकै नूर उपजाया, ताकि कैसी निंदा।
ता नूरै थें सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।
और कबीर कहते हैंः उसी एक ने ही सब पैदा किया, फिर कौन अच्छा? कौन बुरा? हिंदू अच्छे, कि मुसलमान; कि ब्राह्मण अच्छे कि शूद्र? सब नासमझियां हैं।
कौन अच्छा और कौन बुरा? सब एक परमात्मा से आए हैं, इसलिए सभी परमात्मरूप हैं। अच्छे बुरे की बातें सब व्यर्थ हैं।
ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।
"ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।" सदगुरु इतनी मीठी बातें देते हैं, ऐसा मीठा गुड़ देते हैं, फिर भी तुम स्वाद नहीं ले पाते? क्या है स्वाद सदगुरु का? सदगुरु का एक ही स्वाद है--कि अल्लाह की गति
का पता चल जाए; परमात्मा के रहस्य का पता चल जाए।
"ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।"
सद्गुरु एक ही तो मिठाई बांटते हैं!

एक बार ऐसा हुआ कि काशी की एक छोट सी गली में... । काशी की गलियां ऐसे ही छोटी! दो काशी के दुकानदारों में झगड़ा हो गया। दोनों मिठाई वाले थे। जब झगड़ा हो गया, तो एक-दूसरे पर लड्डू फेंकने लगे। और कुछ था भी नहीं फेंकने कोई मारामारी हो गई लड्डू की! भीड़ इकट्ठी हुई! भीड़ ने खूब मजा लूटा, क्योंकि लड्डू मिले। इधर के लड्डू भी मिले, उधर के लड्डू भी मिले। कहते हैं, कोई फकीर वहां खड़ा देख रहा था, वह बहुत हंसने लगा। उसने कहाः ऐसे ही गुरुओं के बीच कभी अगर विवाद भी छिड़ जाता है, तो लड्डू ही फेंके जाते हैं। अब महावीर और बुद्ध में जो विवाद है, देखने वाले के लिए, दोनों तरफ से लड्डू फेंके जा रहे हैं। शंकराचार्य और बुद्ध में जो विवाद है, दोनों तरफ से लड्डू फेंके जा रहे हैं। अगर तुम्हारे पास आंखें हों, तो तुम खूब लूट लो। मगर तुम अंधे हो! तुम लड्डू तो देखते ही नहीं। तुम अपने पत्थर उठा लेते हो। तुम्हारे पास तो पत्थर ही हैं।
तो शंकराचार्य का अनुयायी बुद्ध के खिलाफ हो जाता है--कि उखाड़ फेंको बुद्ध धर्म को हिंदुस्तान से; कि बुद्ध के भिक्षुओं को जला देता है अग्नि में। कड़ाओं पर चढ़ा देता है। तुम्हारे पास यही है। तुम चूक ही गए।
संत तो विवाद भी करते हैं, तो भी मिठाई ही बरसती है और तुम अगर सम्वाद
भी करते हो, तो भी गाली-गलौच के अतिरिक्त और तुम्हारे पास है भी क्या!
"ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।" कबीर कहते हैंः गुरु
एक ही तो बात देता है। हजार तरह से एक ही बात कहता है। नये-नये रंग, नये-नये ढंग से एक ही गीत गाता है। उसकी टेक एक है और वह टेक यह है कि किसी तरह तुम्हें आाह की यह छिपी हुई गति दिखाई पड़ जाए।
यह जो सारा जगत गतिमान हो रहा है, उस गतिमान के पीछे उसका ही हाथ है। वही गत्यात्मक है। यही जिस दिन समझ में आ जाएगा, उस दिन सभी सदगुरुओं की मीठी वाणी तुम्हें समझ आ गई। वेद-कुरान-पुराण--सब समण आ गए।
"कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।"
और जब मैंने गुरु के वचन का पूरा रस ले लिया, तो मैंने सब पा लिया। "कहै कबीर मैंने पूरा पाया।"
पूरे पाने की कसौटी क्या है? किस आदमी ने परमात्मा को पूरा पा लिया? इसकी कसौटी क्या है? इसकी कसौटी कबीर कहते हैंः "सब घटि साहब दीठा।" जिसको सब जगह परमात्मा दिखाई पड़ने लगे--मंदिर में मस्जिद में, गुरुद्वारे में गिरजे में, स्त्री में पुरुष में, ब्राह्मण में, शूद्र में, हिंदू-मुसलमान-इसाई में, जैने में बौद्ध में, पशुओं-पक्षियों में पत्थर-पहाड़ों में, राम में रावण में, अच्छे में बुरे में, साधु में असाधु में,--जिसे सब जगह परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। उजाले में अंधेरे में; जिंदगी में मौत में; जिसे कोई द्वंद्व न रह जाए, उसने पूरा पा लिया।
ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।
जहिया किरतम न हता, धरती हती नीर
उतपति परलय ना हता, बत की कहै कबीर
बड़ा अदभुत वचन है। अनूठे वचनों में से एक है। जीसस के वचनों में एक वचन है, जो इसके करीब आता है।
जीसस एक गांव में लोगों को समझा रहे हैं। यहूदियों की भीड़ है। क्योंकि यहूदी ही थे; और तो वहां कोई था नहीं। एक यहूदी रबाई ने पूछा कि महानुभाव! अब्राहम का नाम सुना कभी?"
अब्राहम यहूदियों का सब से पहला पैगंबर, यहूदियों का पिता, जैसे राम हिंदुओं के लिए प्यारे, वैसे अब्राहम यहूदियों के लिए प्यारे। और कुछ का तो कहना है कि राम और अब्राहम एक ही आदमी के दो नाम हैं। अब्राहम का पुराना नाम है--अबराम। और "अब" का मतलब होता है--श्री--हिब्रू में। तो जो हिंदी में श्रीराम का अर्थ होता है, वह अबराम का अर्थ होता है--हिब्रू में।
संभव है कि कहीं बहुत प्राचीन समय में, दूर, राम को मानने वाले लोग दो हिस्सों में बंट गए हों। और ये ही दो धर्म दुनिया में सब से ज्यादा पुराने हैं--हिंदू और यहूदी। और इन्हीं दो धर्मों से दुनिया के सब धर्म निकले

हैं। यहूदियों से निकली--ईसाइयत और इस्लाम। और हिंदुओं से निकले--बौद्ध और जैन। इतने ही धर्म हैं दुनिया में खास।
यहूदी और हिंदू दो मूलधर्म मालूम होते हैं। दोनों के पीछे राम का नाम है।
तो उस यहूदी ने पूछा कि "अब्राहम का नाम सुना कभी?" और जीसस ने जो कहा,
वह बड़ी अनूठी बात कही। जीसस ने कहा, "जब अब्राहम भी पैदा नहीं हुआ था, तब भी मैं था।" यह तो बड़ी चोट करने वाली बात हो गई। और यहूदियों को बहुत बुरा लगा कि "जब अब्राहम भी नहीं थे, तब भी मैं था! मैं अब्राहम से पुराना हूं।" जीसस यह कह रहे हैं कि मैं शाश्वत हूं। तुम भी शाश्वत हो। रूप आते हैं, जाते हैं। अब्राहम आया और गया। जीसस आया और गया। तुम आए और गए। ये रूप ही हैं, जो आते हैं और जाते हैं--आकृतियां। लेकिन जो भीतर छिपा हुआ सत्य है, वह शाश्वत है।
"कबीर कहते हैंः "जहिया किरतम न हता... ।" कबीर कहते हैंः जब कर्ता भी नहीं था; "धरती हती न नीर... ।" और न पानी था और न पृथ्वी थी; "उतपति परलय ना हता... ।" जब उत्पत्ति भी नहीं हुई थी संसार की; प्रलय की तो बात ही कहां! "तब की कहै कबीर।" कबीर तब की कह रहा है।
कबीर उस मूल स्त्रोत की कह रहा है, जिससे सब आया। कबीर उसकी देख कर कह रहा है। अब्राहम से पहले जीसस!
और कबीर तो और भी एक कदम आगे बढ़ गए; वे कहते हैंः परमात्मा से पहले कबीर। "जहिया किरतम न हता"--कर्ता भी नहीं था, बनाने वाला भी नहीं था; कुछ बना नहीं था--"धरती हती न नीर... । सृष्टि हुई ही न थी; सब शून्य था--महाशून्य था।
"उतपति परलय ना हता, तब की कहै कबीर।"
तुम भी थे तब--अब्राहम से पहले। तुम भी थे तब--धरती हती न नीर। तुम पुराने हो। तुम अति पुरातन हो। तुम सनातन हो। तुम्हें याद भर नहीं रही, कबीर को याद आ गई है।
तुम वही हो, जो मूल में था। यही अर्थ है कहने का तत्वमसि--तुम परमात्मा हो। सब तुम्हारे बाद में हुआ है। और सब मिट जाएगा, तब भी तुम बचोगे।
तुम्हारा कोई मिटना नहीं; तुम अमृत हो।
ता अला की गति नहीं जानी, गुरि गुड़ दीवा मीठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।
जहिया किरतम न हता, धरती हती न नरी।
उतपति परलय ना हता, तब की कहै कबीर।
कबीर पर पंडित-पुरोहित, मुल्ला-मौलवी बहुत नाराज हो गए थे--कि कबीर अपने को समझता क्या है! जुलाहा है कबीर, अपने को समझता क्या है? यह कह क्या रहा है कि जब कुछ भी नहीं था, तब भी मैं था। और मैं तब की बात कह रहा हूं।
कोई नई बात नहीं कह रहा हूं। वेद नहीं रचे गए थे, तब की मैं कह रहा हूं। उपनिषद के ऋषि नहीं हुए थे, तब की मैं कह रहा हूं। बुद्ध, महावीर को किसी ने जाना नहीं था, तब की मैं कह रहा हूं।
कबीर की यह हिम्मत की बात... । पंडित-पुरोहित तो आग बबूला हो गए। उस समय
के पंडित-पुरोहितों ने मिल कर कबीर के खिलाफ बड़ा उपद्रव मचा दिया। वे तो कहने लगेः यह आदमी अहंकारी है। यह अक्सर हुआ है।
सत्य की घोषणा अक्सर भ्रांति दे सकती है कि यह अहंकार है। लेकिन सत्य
की घोषणा वही कर सकता है, जिसका अहंकार बिल्कुल चला गया हो।
कबीर में अगर जरा भी अहंकार होता, तो थोड़े झिझकते। सोचते कि यह मैं क्या कह रहा हूं? थोड़े डरते कि लोग क्या कहेंगे!
अहंकारी आदमी बहुत सोच-समझ कर चलता है। असल में अहंकारी आदमी अपने अहंकार की घोषणा बड़े परोक्ष ढंग से करता है; प्रत्यक्ष ढंग से कभी नहीं करता। क्योंकि प्रत्यक्ष ढंग से करेगा, तो और सब अहंकारी मौजूद हैं, वे गरदन दबा देंगे।
अहंकारी आदमी अपने अहंकार की घोषणा ऐसे करता है कि तुम्हें पता भी चल जाए, और तुम उसके खिलाफ कुछ कर भी न सको। वह हाथ जोड़ दे--जैसा राजनेता करते

हैं--वह हाथ जोड़ कर झुक जाता है। और कहता हैः आप के पैर की धूल हूं। मैं तो आपका सेवक!
सेवकों को सत्ता में जाने का इतना रस क्यों है? ऐसे ही पैर दबाओ लोगों के; लोग तैयार हैं। कौन मना कर रहा है? लेकिन सेवकों को सत्ता में जाने का रस है। असल में सत्ता में जाने के लिए ही वे सेवक बनने का ढोंग रचते हैं, झुकते हैं। तुम्हारे चरण छूने को तैयार रहते हैं। सिर पर चढ़ने की आकांक्षा है। बड़ी विनम्रता का वातावरण पैदा करते हैं।
तुम उसी राजनेता को ज्यादा मत दोगे, जो बहुत विनम्रता बताएगा। जो झुकेगा; जो तुम्हारे अहंकार को फुसलाएगा; जो कहेगाः मैं तो कुछ नहीं, बस, आप का सेवक हूं। एक छोटा-मोटा सेवक--मुझे मौका दो सेवा का।
मगर सेवा के लिए सत्ता में जाने की कोई जरूरत ही नहीं। और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है। कि जनता कहती हैः हमें आप से सेवा करवानी नहीं। मगर आप कहते हैंः हम करके रहेंगे। हम तो सेवा करेंगे। चाहे तुम करवाओ, न करवाओ; हम तो करेंगे। हमें तो सेवा में रस है।
मैंने सुना, एक स्कूल में पादरी ने बच्चों को कहा कि कुछ सेवा का काम किया करो। सातवें दिन उसने पूछा कि कुछ सेवा का काम किया? एक बच्चे ने हाथ हिलाया। उससे पादरी ने पूछाः "क्या सेवा का काम किया?" उसने कहाः "एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवा दिया।" पादरी ने कहाः "बहुत अच्छा किया। सदा बूढ़ों का ध्यान रखो।"
दूसरे से पूछाः "तुने क्या किया?" वह भी हाथ हिला रहा था। उसने कहा कि "मैने भी एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवा दिया।"
पादरी थोड़ा सोचा कि इसको भी बूढ़ी स्त्री मिल गई! मगर कोई आश्चर्य नहीं। कई बूढ़ी स्त्रियां हैं।
तीसरा हाथ हिला रहा था, उससे पूछा, "तूने क्या किया?" उसने कहाः "मेने
भी एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवा दिया।" तब तो बात जरा ज्यादा हो गई। उसने कहाः "तुम तीनों को बूढ़ी स्त्रियां मिल गईं!"
उन तीनों ने कहाः "तीन नहीं थीं। एक ही थी।" तो पादरी ने पूछा, "एक को पार करवाने के लिए तीन की जरूरत पड़ी?" उन्होने कहा, "तीन भी बड़ी मुश्किल से पार करवा पाए। वह तो जाना ही नहीं चाहती थी उस तरफ। वह तो हमें सेवा करनी थी। आपने कहा थि किसी बूढ़े को रास्ते पार करवाना। हम सेवा का मौका तलाश कर रहे थे। वह स्त्री तो बड़ी चिल्लाती थी; गालियां बकती थी। मगर हमने करवा ही दिया!"
ऐसे कुछ राजनेता सेवा करने को उत्सुक है, वे कहते हैंः हम तो करेंगे सेवा। सेवा में इतनी क्या उत्सुकता होगी? सेवा में नहीं--सत्ता में उत्सुकता है। और सत्ता सेवा से मिलती है; काम से कम--सेवा के ढोंग से मिलती है।
अहंकारी आदमी बड़ी तरकीबों से अपने अहंकार पूरे करता है।
यह घोषणा तो निर-अहंकारियों की है। जीसस का यह कहना कि मैं अब्राहम के पहले था; कृष्णा का यह कहना अर्जुन सेः "सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकम शरणम व्रज--सब छोड़; मेरी शरण आ।" कबीर का यह कहनाः
"कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।"
जहिया किरतम न हता, धरती हती न नीरी।
उतपति परलय ना हता, तब की कहै कबीर।
यह अत्यंत विनम्रता की घोषणाएं हैं; निर-अहंकार की घोषणाएं हैं। अहंकारी तो इतनी हिम्मत कर ही नहीं सकते। क्यों--अहंकारी इतनी हिम्मत क्यों नहीं कर सकते? क्योंकि अहंकार के लिए तो उन्हें लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस बात को समझना।
तुम्हारा अहंकार तो लोगों के ऊपर निर्भर है। अगर लोग सम्मान करेंगे,
तो ही तुम्हारा अहंकार बचता है। अगर लोगों ने सम्मान नहीं किया, तो तुम्हारा अहंकार कहां रहेगा?
तो अहंकारी को तो दूसरे के अहंकार को तृप्त करना पड़ता है, ताकि परोक्ष रूप से उसका अहंकार तृप्त हो। अहंकारी अगर खुद घोषणा कर दे, तो तुम सब हट जाओगे। तुम कहोगे, यह आदमी अहंकारी है।

जैसे कोई नेता आकर खड़ा हो जाए और कहे कि नमस्कार करो मुझे। तुम मेरे चरण की धूल हो। और मैं सत्ता में उत्सुक हूं। और मुझे दिल्ली जाना है। मुझे प्रधानमंत्री बनना है। मुझे वोट देना। और नहीं दिया, तो ठीक नहीं होगा।
तो यह आदमी जीतेगा कभी? यह आदमी कभी नहीं जीत सकेगा। इसके जीतने का कोई उपाय नहीं। उसको एक वोट नहीं मिलेगा। यह तो कोई उपाय न हुआ!
अहंकार के लिए तो दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है। तो दूसरा जैसा चाहते हैं, वैसा ढोंग रचाना पड़ता है।
कबीर यह घोषणा कर रहे हैं। इस घोषणा का मतलब है कि कबीर दूसरे पर निर्भर नहीं हैं। इसका यह मतलब है कि अब कबीर को दूसरे से अपने अहंकार को पुष्ट करवाने की कोई आकांक्षा नहीं है। यह निर-अहंकार की घोषणा है। हालांकि बड़ी अहंकारी मालूम पड़ती है। इससे भ्रांति में मर पड़ जाना।
जब जीसस कहते हैंः मैं ईश्वर का पुत्र हूं और जब बुद्ध ने कहा कि मैंने वह समाधि पा ली है, जो सर्वोत्कृष्ट है; जिसको कभी करोड़ दो करोड़ में, हजारों वर्षों में कोई एकाध पा सकता है--तो यह मत समझना कि यह अहंकार की घोषणा है। यह केवल तथ्य की सूचना है।
जब महावीर ने कहा कि मैं परमात्म-रूप हो गया हूं; कि मेरी आत्मा परमात्मा हो गई है, तो यह कोई अहंकार की घोषणा नहीं है।
अहंकार तो समाज-निर्भर होता है। अहंकार तो तुम्हें दूसरों से मांगना पड़ता है। अहंकार तो भिखारी है। अहंकार इतनी हिम्मत कहां कर सकेगा? भिखमंगों की इतनी हिम्मत नहीं होती। यह तो सम्राटों की ही हिम्मत है।
ता अला की गति नहीं जानी, गुरु गुड़ दीवा मीठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा।
मैने पूरा-पूरा पा लिया--कबीर कहते हैं। कुछ नहीं बचा पाने को, मैंने
सब पा लिया। मैंने पूरा परमात्मा पा लिया। मैं परमात्मा हो गया हूं।
जहिया किरतम न हता, धरती हती न नीर।
उतपति परलय ना हता, तब की कहै कबीर।
और यह कबीर के संबंध में घोषणा नहीं है; यह तुम्हारे संबंध में घोषणा है। कृष्ण जब कहते हैः मेरी शरण आ, तो कृष्ण "अपनी" शरण की बात नहीं कर रहे हैं। कृष्ण कह रहे हैंः जो मेरे भीतर छिपा बैठा है, मैंने पहचान लिया, तू ने नहीं पहचाना। पहचानने वाले की शरण आ जा, ताकि तू भी पहचान ले।
यह मेरी-तेरी की बात ही नहीं है। मेरा-तेरा कहां?
जब जीसस कहते हैंः मैं अब्राहम से पहले था; अब्राहम भी नहीं था तब मैं था; तब वे सिर्फ याद दिला रहे हैं तुम्हें कि तुम भी पहले थे।
इतिहास पीछे आया; हम पहले से हैं; हम सदा से हैं; हम शाश्वत हैं। समय तो छोटी सी कहानी है--सपना है; हम समय के बाहर हैं।
वही कबीर कह रहे हैं। जब कबीर कह रहे हैं कि मैं पहले था, तो वे यह नहीं
कह रहे हैं कि मैं पहले था; तुम पहले नहीं थे। वे कह रहे हैंः मैंने पहचान लिया; तुमने अभी तक नहीं पहचाना। तुम भी पहचान जाओ, इसलिए मकान की मुंडेरों पर चढ़ कर चिल्लाता हूं। तुम भी पहचान जाओ। इसलिए कहता हूं। जो मैं अपने संबंध में कह रहा हूं, वह तुम्हारे संबंध में भी उतना ही सच है। क्यों? क्योंकि कबीर जानते हैं कि मैं और तू अलग कहां है। एक का ही राज है। एक का ही विस्तार है।
जो यहां बोल रहा है, वही तुम्हारे भीतर सुन रहा है। तो जो भी मैं अपने संबंध में कहूं, याद रखना, वह तुम्हारे संबंध में भी कहा गया है। अगर मैं अपने संबंध में कहूं और तुम्हारे संबंध में इनकार करूं, तो अहंकार होगा।
लेकिन मेरी घोषणा में अगर तुम भी सम्मिलित हो, तुम्हारी घोषणा भी सम्मिलित है, तो अहंकार का कोई प्रश्न ही नहीं।
लेकिन यह वचन जब तुम पहली दफे पढ़ोगे, तो अहंकार जैसे मालूम पड़ सकते हैं। पड़ेंगे ही। क्योंकि तुम्हारे अहंकार को चोट लगेगी।
अक्सर ऐसा होता है कि जब तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है, तब तुम चिल्लाते लगते हो कि यह आदमी अहंकारी है। लेकिन तुम गौर से देखना। इस आदमी ने कुछ बात कही अहंकार की--या कि सिर्फ तुम्हारे अहंकार को चोट लगी?

तुम उस आदमी को विनम्र कहते हो, जो तुम्हारे अहंकार का पोषण करता है। कोई आकर तुम्हारे पैर छू लेता है। तुम कहते होः "बड़े विनम्र हैं। बड़े भले आदमी हैं आप।" और कोई आकर तुम्हारा सिर झुका कर अपना पैर छुआ दे, तो तुम को विनम्र बना रहा है कोई बुरा तो नहीं कर रहा है! तुम्हारा लाभ ही कर रहा है; तुम्हारा कल्याण ही चाहता है। मगर तब तुम नाराज हो जाओगे।
अहंकार को चोट लगती है, तो तुम तिलमिलाते हो। तुम अपनी तिलमिलाहट का बदला ऐसा लेते हो कि तुम कहते होः कबीर अहंकारी है।
कबीर को मारने की कोशिश की गई। कबीर की हत्या की कोशिश की गई। कबीर को जहर देने की कोशिश की गई। क्योंकि ब्राह्मणों को यह बात जंची नहीं--कि हम कुछ भी नहीं; और जुलाहा कहता है कि जब भगवान भी नहीं था, जब कुछ बना भी नहीं था--धरती हती न नीर, तब की कहै कबीर! यह कहां की बातें कर रहा है? यह जुलाहा होश में है अपने? कि पागल हो गया है?
कबीर पागल हुए हैं--ऐसी चर्चा ब्राह्मणों ने चला रखी थी। और कबीर अहंकारी हैं--ऐसी अफवाहें रखी थी। इसलिए कबीर जैसे अदभुत पुरुष से भी यह देश वंचित रह गया।
कबीर का जैसा लाभ हो सकता था; कबीर की वाणी जितनी मंगलदायी हो सकती थी, नहीं हो पाई।
कबीर में बड़ा रहस्य, बड़ा जादू है। कबीर में ऐसा जादू है कि जो तुम्हें जगा दे। कबीर में ऐसा जादू है कि तुम्हें कबीर बना दे। कबीर में ऐसा जादू है कि तुम्हें वहां पहुंचा दे--उस मूल-स्रोत पर--जहां से सब आया है; और जहां एक दिन सब लीन हो जाता है।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
आठवां प्रवचन

प्रेम का अंतिम निखार--परमात्मा

पहला प्रश्नः कमोबेश सभी संतों ने प्रेम की महिमा बताई है। लेकिन आपने प्रेम को गौरीशंकर पर आसीन कर दिया! क्या सच ही प्रेम इस महापद का अधिकारी है? और क्या अस्तित्व में प्रेम इतना अधिक स्थान घेरता है, जितना आप उसे देते हैं?

प्रेम परमयोग है; उससे ऊपर कुछ भी नहीं है। लेकिन प्रश्न इसलिए उठता
है कि प्रेम परम भ्रांति भी है और उससे नीचे भी कुछ नहीं।
प्रेम गिरे तो नरक है, प्रेम उठे तो स्वर्ग है।
प्रेम समग्र अस्तित्व को घेरता है--निम्नतम से श्रेष्ठतम तक। प्रेम
ही है जो लाता है--दुख, चिंता, संताप। प्रेम ही है जो लाता है--ईर्ष्या, जलन, वैमनस्य। प्रेम ही है जो लाता है--घृणा, हिंसा, क्रोध। प्रेम ही है जो लाता है--पागलपन, विक्षिप्तता। और प्रेम ही मोक्ष भी है--निर्वाण भी। क्योंकि प्रेम ही लाता है सुख--महासुख।
ये दोनों ही चूंकि प्रेम से आते हैं, इसलिए प्रेम को समझना बड़ा बेबूझ
हो जाता है। अगर एक ही बात आती होती प्रेम से, तो सब स्पष्ट हो जाता; अड़चन न होती। लेकिन ये दोनों विपरीत, प्रेम में जुड़े हैं।
असल में जो भी सत्य है, वहां द्वंद्व संयुक्त होगा। जो भी सत्य है, वहां विपरीत और विरोधी जुड़े होंगे। क्योंकि सत्य सेतु है।
एक प्रेम है, जो वासना बनता है; और एक प्रेम है, जो प्रार्थना बनता है।
एक प्रेम है, जो कीचड़ ही रह जाता है; और एक प्रेम है, जो कमल बनता है। कमल की निंदा इस कारण मत करना कि कीचड़ में पैदा हुआ। और कमल के कारण कीचड़ में ही पड़े मत रह जाना--कि कीचड़ में कमल पैदा होता है।
प्रेम के मार्ग पर बड़ी सावधानी की जरूरत है। इसलिए संतों ने प्रेम को खड्ग की धार कहा। वह तलवार की पतली धार पर चलने जैसा है। इधर गिरे तो कुआं, उधर गिरे तो खाई। सम्हले--तो पहुंचे।
तो प्रेम का मार्ग बारीक है; अति सूक्ष्म है। और इसलिए प्रेम शब्द भी बहुत अर्थ रखता है। जब कामी इस शब्द का उपयोग करता है, तो प्रेम का अर्थ होता है--काम। और जब भक्त इसी शब्द का उपयोग करता है, तो प्रेम का अर्थ होता है--राम। काम से लेकर राम तक सब प्रेम से जुड़ा है।
तो तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। तुम्हारे मन में चिंता हुई होगी कि मैं प्रेम को इतना परमपद देता हूं, और तुम्हारे जीवन अनुभव तो कुछ विपरीत ही कहता है। तुमने जो भी दुख जाने हैं, चिंताएं झेली हैं, संताप जाने हैं, वे सब प्रेम के कारण ही जाने हैं। इसलिए तो लोग, बहुत लोगों ने तय कर लिया है कि प्रेम न करेंगे; चाहे कुछ हो, प्रेम न करेंगे; प्रेम से बचेंगे। क्योंकि जो प्रेम से बच जाता है, वह दुख से बच जाता है। लेकिन ध्यान रहे; जो दुख से बच जाता है, वह सुख से भी बच जाता है।
इस संसार में भगोड़े संन्यासी क्यों पैदा हुए? प्रेम की इस दुविधा के कारण। यह सारा संसार प्रेम का ही फैलाव है। वह जो
आदमी दुकान पर बैठा दुकान कर रहा है, वह भी प्रेम के कारण दुकान कर रहा है। दुकान असली नहीं है; गौर से खोजोगे, भीतर खोजोगे, तो प्रेम पाओगे। किसी स्त्री से प्रेम किया है। किसी बच्चे से प्रेम किया है। किसी परिवार से-- मां से, पिता से प्रेम किया है। अब उत्तरदायित्व है; अब उसे निभाना है। तो वह बाजार में धक्के खा रहा है; कि राह पर पत्थर तोड़ रहा है; कि पसीना बहा रहा है; कि हजार तरह की लानत-मलामत सह रहा है। हजार तरह के अपमान झेल रहा है।
मगर प्रेम किया है, तो प्रेम का दायित्व है; उसे निभाना है; तो वह सब कुर्बानी दे रहा है। अगर यह भाग जाए आदमी, इस बाजार से, इस झंझट से, इस प्रेम के उपद्रव से, तो निश्चित ही दुख से मुक्त हो जाएगा। क्योंकि दुख का

कोई कारण नहीं रह जाएगा। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि सुख को उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि जहां दुख का ही कारण न रहा, वहां सुख का कारण भी न रहा।
तुम शोरगुल से भाग जाओगे, इससे शांत हो जाओगे--यह जरूरी नहीं है। शोरगुल से भाग कर बाहर का शोरगुल बंद हो जाएगा। लेकिन अक्सर ऐसा होगाः जब बाहर का शोरगुल बंद हो जाएगा, तो भीतर का शोरगुल और भी प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ेगा, सुनाई पड़ेगा।
रात के सन्नाटे में, एकांत में, किसी पहाड़ की गुफा में बैठ कर देखा है;
तो विचार जितना आक्रमण करते हैं, उतना कभी न किए थे। उस एकांत में विचार बुरी तरह घेर लेते हैं। एकांत, पृष्ठभूमि बन जाता है। और एकांत और शांति के कारण, बाहर की शांति के कारण, भीतर जरा सा भी कोलाहल होता है, तो बहुत मालूम होता है।
बाजार में बैठ कर भीतर कोलाहल होता है--होता रहता है--लेकिन बाहर इतना कोलाहल है कि भीतर की सुनता कौन है?
तो तुम्हारा जो भगोड़ा संन्यासी है, वह दुख से तो भाग जाता है। लेकिन सुख को उपलब्ध नहीं होता। इसलिए तुम अपने साधुओं के जीवन में दुख तो न पाओगे; दुख का कोई कारण ही नहीं है। दुख की सारी व्यवस्था से वे हट गए हैं। लेकिन सुख तुमने पाया? उनकी आंखों में तुमने कोई शांति के झरने बहते देखे? और उनके हृदय में तुमने उल्लास देखा? तुमने गीत लगते देखे आनंद के? तुमने उन्हें नाचते देखा?
और जब तक संन्यासी नाचता न हो, तब तक संन्यासी में कुछ कमी रह गई।
संसार से तो हट गया, लेकिन परमात्मा नहीं मिला। संसार में रहने वाले
भी कभी-कभी नाच लेते हैं, लेकिन तुम्हारा संन्यासी तो कभी नहीं नाचता। संसार में रहने वालों को कभी-कभी क्षण भर के लिए सुख की झलक मिलती है।
न मिलती होती, तो लोग संसार में रहते ही न। क्षण भर को मिलती है; सच है। मगर मिलती है। तुम्हारे संन्यासी को क्षण भर को भी नहीं मिलती।
कभी-कभी संसारी के मन पर तो थोड़ी सी रोशनी फैल जाती है; सुबह हो जाती है; कोई दीया जगमगाता है; हालांकि थोड़ी देर ही टिकता है। क्योंकि संसार में ज्यादा देर कोई चीज टिक नहीं सकती। समय में ज्यादा देर कोई चीज टिक नहीं सकती।
समय क्षणभंगुर का विस्तार है। पानी का बबूला ही सही; मगर पानी का बबूला भी जब होता है, तो होता है। यह मत समझना कि नहीं होता है। नहीं हो जाएगा, सच है; लेकिन जब होता है, तब पूरी तरह होता है। और पानी का बबूला भी जब होता है, तो इतना ही होता है, जितने पहाड़ होते हैं। होने होने में थोड़े ही फर्क होता है? घड़ी भर बाद फूट जाएगा, बिखर जाएगा; इससे आज है--अभी है-- इसमें संदेह थोड़े ही है? और जब पानी का बबूला भी होता है और पानी की सतह पर तैरता है, तो वही अस्मिता होती है, वही अहंकार होता है--जो तुम्हारा है। सूरज की रोशनी पानी के बबूल पर सतरंगा इंद्रधनुष बनाती है। क्षण भर
को ही टिकेगा यह रंग; क्षणभर को ही टिकेगा यह होना।
लेकिन संसार में क्षण भर को सुख मिलता है। न मिलता होता, तो लोग इतना दुख झेलते ही नहीं। उसी क्षण भर के सुख के लिए इतना दुख झेल लेते हैं। इतना दुख भी झेल लेते हैं--उस क्षण भर के सुख के लिए। सौ मौकों में एक बार मिलता है। निन्यानबे बार चूकना पड़ता है। लेकिन फिर भी लोग निन्यानबे बार चूकने को तैयार है; एक बार तो मिलता है न! मरुस्थल है बड़ा--माना--लेकिन कभी-कभी इसमें मरूद्यान भी होते हैं। कभी-कभी वृक्षों की हरी छाया भी होती है। कभी-कभी ही पानी का झरना भी होता है। प्यास तृप्त भी होती लगती है। हो या न हो।
मगर तुम्हारे संन्यासी के जीवन में तो मरुद्यान भी नहीं है। मरुस्थल
के भय के कारण वह मरुद्यान से भी भाग गया है।
तो प्रेम में झंझटें हैं जरूर। दुनिया में जितने रोग हैं; सब प्रेम के रोग हैं। फिर भी मैं तुम से कहता हूं; प्रेम से भागना मत; प्रेम को समझना।
प्रेम को रूपांतरित करना।
जो नीचे ले जाता है रास्ता, वही ऊपर भी ले जाता है। जो सीढ़ी नीचे ले जाती है, वही सीढ़ी ऊपर ले जाती है। इतना सीधा गणित है। सिर्फ दिशा का भेद

होता है। नीचे जाते वक्त तुम नीचे की तरफ आंखें गड़ाए होते हो। ऊपर जाते वक्त तुम्हारी ऊपर की तरफ आंखें अटकी होती हैं। नीचे की तरफ अटकी आंखों को में वासना कहता हूं; ऊपर की तरफ उठी आंखों को मैं प्रार्थना कहता हूं।
बस, इतना ही फर्क है--प्रार्थना और वासना का। अन्यथा सीढ़ी वही है।
नीचे उतरो तो संभोग, ऊपर चढ़ो तो समाधि। और कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है... । अक्सर पाओगे ऐसा होता--कि दो आदमी एक ही जगह खड़े है, और एक नीचे की तरफ जा रहा है, और एक ऊपर की तरफ जा रहा है। जहां तक खड़े होने का संबंध है, एक ही जगह खड़े हैं।
समझ लो कि सीढ़ी के किसी पायदान पर दो आदमी खड़े हैं। जहां तक पायदान का संबंध है, एक ही पायदान है। लेकिन एक नीचे की तरफ जा रहा है और एक ऊपर की तरफ जा रहा है। तो मैं यह कहना चाहूंगा कि जो ऊपर की तरफ जा रहा है, वह उसी पायदान पर नहीं है; दिखाई उसी पायदान पर पड़ता है। और जो नीचे की तरफ जा रहा है, वह भी उसी पायदान पर नहीं है; यद्यपि दिखाई उसी पायदान पर पड़ता है। नीचे जाने वाला का पायदान वही कैसे हो सकता है--जो ऊपर जाने वाले का पायदान है? यद्यपि दोनों एक ही सीढ़ी पर खड़े हैं। एक कदम और, और फर्क जाहिर हो जाएंगे। जो ऊपर जा रहा है, वह ऊपर की सीढ़ी पर होगा। जो नीचे जा रहा है, वह नीचे की सीढ़ी पर होगा। दो कदम और--और फर्क और बड़े हो जायेंगे। और जिंदगी के अंत में एक के हाथ में नरक लगता है, एक के हाथ में स्वर्ग लगता है।
मगर सीढ़ी से मत भाग जाना। सीढ़ी प्रेम की है। इसलिए मैंने प्रेम की परम महिमा तुमसे कही है।
मगर मेरी बात से भ्रांति भी हो सकती है। सभी सत्य खतरनाक होते हैं। सिर्फ असत्य ही खतरनाक नहीं होते है। क्योंकि असत्य नपुंसक होते हैं।
असत्यों में कैसा खतरा? असत्य होता ही नहीं, तो खतरा कैसे? लेकिन सत्य सभी खतरनाक होते हैं। इस दुनिया में जितने खतरे हुए हैं, सभी सत्य के कारण हुए हैं। असत्य के कारण कोई खतरा नहीं होता। असत्य तो खेल-खिलौनों की दुनिया है।
तुम एक उपन्यास पढ़ो; कोई खतरा नहीं होने वाला है। लेकिन बुद्ध के वचन पढ़ो--खतरा है। उपन्यास को ठीक समझो, तो भी कुछ होने वाला नहीं है। गलत समझो तो भी कुछ होने वाला नहीं है। उपन्यास आखिर उपन्यास है। क्षण भर का मनोरंजन है, फिर भूल जाओगे। लेकिन बुद्ध के वचन तुम्हारे कानों पर पड़ें, तो कुछ होने वाला है। कैसी तुम व्याख्या करोगे--इस पर सब निर्भर होगा। जिन्होंने गलत व्याख्या कर ली, वे बड़े गहन घने अंधेरों में भटक गए। जिन्होंने ठीक समझा, उन्होंने रोशनी का दरवाजा खोल दिया।
जब मैं तुमसे प्रेम की बात कहूं, तो तुम भूल कर भी अपने प्रेम की बात
मत समझ लेना--जो कि मन करता है समझने के लिए।
मन कहता है कि ठीक है; तो यही तो मैं कर रहा हूं। प्रेम की आप बात करते हैं। बिल्कुल ठीक करते हैं। यही तो मैं करता हूं।
लेकिन मैं तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं। मैं मेरे प्रेम की बात कर रहा हूं। और तुमने अगर तुम्हारे प्रेम का समर्थन समझा, तो तुम बुरी तरह भटक जाओगे।
मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, वह तुम्हारे प्रेम से बिल्कुल उलटा है। तुम्हारे प्रेम में प्रेम है ही कहां? प्रेम जैसा क्या है वहां? तुम जब कहते होः मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो तुमने गौर किया? तुम्हें दूसरे से कोई प्रयोजन भी है?
तुम्हारा प्रेम क्षण भर में तो घृणा में बदल जाता है! इसका भरोसा क्या है? जिस स्त्री को तुम प्रेम करते थे और कहते थेः प्राण दे दूंगा; अगर आज तुम्हें शक हो जाए कि वह किसी और के प्रेम में पड़ गई, तो तुम उसकी गर्दन उतार लोगे। यह कैसा प्रेम था? प्राण देने को तैयार थे; अब प्राण लेने को तैयार हो गए! क्षण भर की देर न लगी! जिसके लिए मर जाते, उसे मारने को तत्पर हो गए हो! यह कैसा प्रेम है?
नहीं; प्रेम तुम्हें स्त्री से न था। प्रेम तुम्हें अपने अहंकार से
था। स्त्री तो आभूषण थी। और अगर किसी और का आभूषण बनना चाहती है, तो तुम तोड़ दोगे, मिटा दोगे।

उपनिषद कहते हैंः पति पत्नी को प्रेम नहीं करता। पति अपने को ही प्रेम करता है पत्नी के बहाने। बाप बेटे को प्रेम नहीं करता; अपने को ही प्रेम करता है।
आज तक तुमने अपने बेटे को प्रेम किया। सब तरह की कुरबानियां दीं। अपने बेटे को पढ़ाया-लिखाया, बड़ा किया। शायद तुम भूखे रहे हो; शायद सुंदर वस्त्र न जुटा पाए हो अपने लिए, लेकिन बेटे के लिए सब कुछ किया। और आज अचानक तुम्हें एक पत्र मिल जाए पड़ा--घर के कूड़े-कर्कट में। सफाई करते वक्त दीवाली की, तुम्हें एक पत्र मिल जाए, जिससे यह शक पैदा हो जाए कि तुम्हारी पत्नी किसी और के प्रेम में थीं और यह बेटा तुम्हारा नहीं है तो तुम्हारा प्रेम गया।
तुम्हारे बेटे से प्रेम था--या मेरे बेटे से प्रेम था--मेरा हो तो प्रेम। तो प्रेम मेरे से ही था; बेटे-वेटे की बात तो बहाना है। ये तो बहाना है। कहीं तो मेरे को टिकाना पड़ता है, तो बेटे पर टिका लिया था। आज यह पता चल गया कि मेरा बेटा नहीं; किसी और का है, तो बात खत्म हो गई।
इस व्यक्ति से तुम्हारा क्या प्रेम था? यह व्यक्ति तो अब भी वही का वही है। कोई फर्क नहीं पड़ा इस व्यक्ति में। सिर्फ तुम्हारी एक धारणा में फर्क पड़ा है। इस बेटे को तो पता भी नहीं है। यह तो कल जैसा था, वैसा ही आज है। लेकिन तुम बदल गए। अब हो सकता है, तुम इसे जहर खिला दो; कि हो सकता है कि आज से तुम इसके जीवन में सहारा न बन जाओ, बाधक बन जाओ।
यह कैसा प्रेम है, जो घृणा बन सकता है? और तुम्हारा प्रेम प्रतिपल घृणा बनने को तैयार है। और तुम्हारे प्रेम में यह घृणा की जो संभावना है, यही ईर्ष्या जन्माती है।
तो तुम्हारा प्रेम ईर्ष्या के धुएं से भरा है। इस धुएं में प्रेम की ज्योति को खोजना तो बहुत मुश्किल है। धुआं ही धुआं है।
कितनी ईर्ष्या है प्रेम के कारण! तुम्हारी पत्नी किसी की तरफ देख कर मुस्कुरा न दे। तुम्हारा पति किसी के पास बैठ कर प्रसन्न न हो ले।
प्रेमी क्या है, एक दूसरे के दुश्मन है! और एक दूसरे के ऊपर पहरा दे रहे हैं! एक दूसरे की जासूसी कर रहे हैं! चौबीस घंटे नजर लगाए हुए हैं।
यह कोई प्रेम हुआ? जिसमें इतना भी भरोसा नहीं है; जिसमें इतनी भी श्रद्धा नहीं। दूसरे के प्रति इतना भी सम्मान नहीं। और
दूसरे की स्वतंत्रता के प्रति जरा भी सदभाव नहीं। यह प्रेम है?
मैं इस प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं। यह तो जहर है। यही तो तुम्हें संसार में बांधे हुए है। अब इसे तुम समझना।
जो प्रेम घृणा बन सकता है, जो प्रेम सदा ही ईर्ष्या से भरा हुआ है, जो प्रेम परिग्रह का ही एक
दूसरा नाम है--और अहंकार की ही घोषणा है, मैं उस प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं।
मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसमें परिग्रह का भाव ही नहीं उठता। प्रेम जानता ही नहीं--मेरा तेरा। मेरे-तेरे शब्द छोटे हैं, ओछे हैं। कबीर ने कहाः लाज नहीं आती--मेरा-तेरा कहते? शरम नहीं खाते? यहां क्या मेरा है, क्या तेरा है? सब परमात्मा का है।
जो प्रेम घृणा बन सकता है, वह प्रेम, प्रेम हो ही नहीं सकता। वह सिर्फ प्रेम का धोखा है, भ्रांति है; उससे जागना। और जिस प्रेम में ईर्ष्या घर किए बैठी हैं--सावधान--यह संकेत होने चाहिए कि प्रेम नहीं है।
ये तो सब प्रेम के दुश्मन हैं, जो घर में बैठे है। दरवाजे पर लिख रखा हैः प्रेम; और भीतर ये सब "देवता" विराजमान हैं। यह
मंदिर धोखे का है। इसमें देवता तो हैं ही नहीं; यह सिर्फ नाम का मंदिर है। भीतर जाओगे, तो सांप-बिच्छू पाओगे।
इन्हीं सांप-बिच्छुओं से घबड़ा कर अनेक लोगों ने प्रेम त्याग दिया। अनेक लोगों ने अगर संसार नहीं भी त्यागा, तो अपने हृदय को रोक लिया; सब भांति, कि कभी किसी के प्रेम में न पड़ेंगे। इसलिए तो दुनिया में इतना कम प्रेम दिखाई पड़ता है।

जो प्रेम में दिखाई पड़ते हैं, वे परेशान दिखाई पड़ते हैं। जो प्रेम में नहीं हैं वे कम परेशान है। उन्होंने कुछ दूसरे रास्ते खोज लिए हैं। वे प्रेम में नहीं पड़ते। वे झंझट में नहीं जाते हैं। इसलिए लोगों ने विवाह ईजाद किया।
विवाह प्रेम से बचने का उपाय है। प्रेम की झंझट में नहीं जाना है। यह कहां ले जाएगा, कुछ पता नहीं। विवाह ज्यादा व्यवस्थित, सुरक्षित है; ज्यादा सुविधापूर्ण है।
इसलिए बाल-विवाह कर देते थे हम पुराने दिनों में; अब भी चलता है। बाल-विवाह का मतलब यह होता था कि इसके पहले कि प्रेम की समझ उठे, उसके पहले ही विवाह कर देना। ताकि प्रेम किसी खतरे में न ले जाए। प्रेम की प्यास उठे, उसके पहले ही पानी का इन्तजाम कर देना। पानी पहले ही पिला देना, प्यास लगी ही न हो। तो न पानी का सवाल उठेगा पीछे, न प्यास उठेगी पीछे।
बाल-विवाह का अर्थ हैः प्यास तो है नहीं अभी, और पानी पिला दिया। भूख
तो है नहीं अभी, और भोजन करवा दिया। तो अब कभी भूख उठेगी भी नहीं, क्योंकि भोजन पहले से ही करवाते रहोगे। न उठेगी भूख, न होगा खतरा।
तो कुछ ने विवाह का आयोजन करके प्रेम से अपने को बचा लिया। कुछ संसार
से भाग कर अपने को बचा लिए। और जो संसार में रह गई, अधिक संख्या, उन्होंने अपने हृदय को कठोर कर लिया; पथरीला कर लिया। रहेगा कठोर हृदय, प्रेम इत्यादि की झंझट न होगी। और न करेंगे प्रेम, न किसी उपद्रव में पड़ेंगे। ऐसे लोग धन कमाते हैं, पद कमाते हैं, प्रतिष्ठा कमाते हैं--प्रेम से भर बचे रहते हैं। ऐसे लोग देश को प्रेम करते हैं! मनुष्यता को प्रेम करते हैं। मगर प्रेम कभी नहीं करते।
अब देश से क्या खाक प्रेम करोगे? देश-प्रेम का क्या मतलब हो सकता है? देश को कहीं पाया है? मिले हो? लोग भारत माता की तस्वीरें बनाए बैठे हैं! असली मां से बचने के लिए भारत माता की तस्वीर काफी काम आती है। असली मां मौजूद है। उससे तो प्रेम उठाने में खतरा है और झंझट है। भारत माता बिल्कुल ठीक है। वह कैलेंडर में ही होती है। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। मनुष्य--असली से--प्रेम करना बहुत कठिन है। मनुष्यता से प्रेम बिल्कुल सरल है। मनुष्यता से कहीं मिलना होता है? कभी मनुष्यता से मिलना हुआ है? कभी ऐसा हुआ कि मनुष्यता से जय-जय रामजी हो गई हो?
जब भी कोई मिलता है, तो मनुष्य मिलता है। लेकिन तुम तो मनुष्यता से प्रेम करते हो, तो मनुष्य से प्रेम करने की कोई जरूरत नहीं। बल्कि बड़ा मजा यह है कि अगर मनुष्यता के लिए जरूरत पड़े तो मनुष्य की तुम कुर्बानी देने को तैयार हो। भारत माता के लिए जरूरत पड़े तो लाखों लोगों को कटवाने के लिए तैयार हो। यह कैसा प्रेम हुआ?
यह भारत माता कौन है? यह मनुष्यता क्या है? इसलाम से लोगों को प्रेम है। हिंदू धर्म खतरे में हो, तो जान देने को तैयार हैं।
ये तरकीबें हैं--निजी प्रेम के उपद्रव से बचने की। मगर जो तूफान से बचता है, वह चुनौती से बच जाता है।
मैं तुमसे कहता हूंः बच कर भागने की कोई जरूरत नहीं है; न हृदय को कठोर करने की जरूरत है। प्रेम के अपूर्व राज को समझने की जरूरत है--कि प्रेम है क्या?--हम प्रेम के माध्यम से क्या खोजना चाहते हैं?
जब तुम्हे किसी स्त्री मे सौंदर्य दिखाई पड़ता है--या किसी पुरुष में--
तो वस्तुतः तुम्हें क्या दिखाई पड़ा है? जब तुम्हें एक गुलाब के फूल में सौंदर्य दिखाई पड़ता है, तो क्या दिखाई पड़ा है। अगर ठीक से समझोगे, शांत मन बैठ कर, ध्यानपूर्वक, तो तुम पाओगेः गुलाब में जो सौंदर्य दिखाई पड़ा है, वह पदार्थ का नहीं है। पदार्थ में परमात्मा की कुछ झलक हुई है।
इसलिए तो गुलाब के फूल को अगर तुम वैज्ञानिक के पासे ले जाओ, तो वह विश्लेषण करके बता देगा कि उसमें सौंदर्य जैसी कोई चीज नहीं हैं। हां कुछ रासायनिक द्रव्य हैं, खनिज इत्यादि हैं; पानी है, मिट्टी है। सब निकाल कर अलग-अलग बोतलों में रख देगा। लेबल लगा देगा। तुम उससे पूछोगेः और सौंदर्य किस बोतल में है? वह कहेगाः सौंदर्य तो पाया नहीं। ये चीजें मिली; इन्हीं का जोड़ फूल था।

और शायद कोई तर्कगत मार्ग भी नहीं है, उसे गलत सिद्ध करने का। लेकिन तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूं, वह भी जानता है--कि सौंदर्य था। सपना ही रहा हो, शायद, मगर था तो। दिखा तो था। उसे एकदम झुठलाया नहीं जा सकता। फिर कहां खो गया? पदार्थ के विश्लेषण में कहीं खो गया।
ऐसे ही, जैसे एक छोटा बच्चा नाच रहा है, किलकारी ले रहा है, हंस रहा है।
और तुम उसे वैज्ञानिक के पास ले जाओ और वह बच्चे को काट-पीट कर उसके भीतर खोज-बीन करे, कि किलकारी कहां है! मुस्कान कहां है? यह जो आनंदभाव इस बच्चे में था, यह कहां है? हड्डी-मांस-मज्जा मिलेगी। सब मिल जाएगा और, लेकिन किलकारी नहीं मिलेगी। वह मुस्कराहट नहीं मिलेगी। वह जो बच्चे में जीवंतता थी, वह नहीं मिलेगी।
यह ऐसे ही है, जैसे तुम एक सुंदर कविता को गणितज्ञ या तार्किक के पासे
ले जाओ। वह, कविता के सारे शब्दों का विश्लेषण करके बता दे; उनकी मूल धातुएं खोज कर बता दे। व्याकरण के सब नियम समझा दे। छंद, गद्य, पद्य का सब, जो भी शास्त्र है पूरा, तुम्हारे सामने खोल कर रख दे, लेकिन फिर भी कुछ बात खो गई। वह जो कविता का सौंदर्य था--खो गया।
कविता छंद नहीं है। और कविता मात्राओं का आयोजन भी नहीं है। सच तो यह हैः कविता शब्द में ही नहीं है। शब्द में झलकती है, लेकिन शब्द से आती नहीं है।
ऐसे ही समझो कि जैसे लकड़ियों को रगड़ने से आग पैदा हो जाती है। लकड़ियों
के रगड़ने से पैदा होती है। लेकिन आग लकड़ी नहीं है। लकड़ी से आती है--लकड़ी नहीं है। और मजा यह है कि अगर आग जलती रहे, तो लकड़ी को समाप्त कर देगी; लकड़ी को खा जाएगी; लकड़ी को पचा लेगी।
लकड़ी के बिना आग नहीं हो सकती, लेकिन फिर भी आग अलग है। एैसे ही शब्दों
के बिना काव्य नहीं होता, लेकिन काव्य अलग है। काव्य तो अग्नि जैसा है। अगर व्याकरण, गणित, तर्क के नियम से खोजोगे, तो शब्द पकड़ में आएंगे, काव्य खो जाएगा।
काव्य भाषा का हिस्सा ही नहीं हैं। ऐसे ही सौंदर्य पदार्थ का हिस्सा नहीं है; ऐसे ही सौंदर्य देह का हिस्सा नहीं है।
तो जब तुमने किसी स्त्री में सौंदर्य देखा, अगर तुम्हारी आंखें उज्ज्वल हों, अगर तुम्हारे भीतर समझ का दीया जलता हो, तो तुम पाओगेः यह परमात्मा की छबि झलकी। तुम स्त्री के प्रेम में न पड़ोगे; स्त्री के माध्यम से परमात्मा के प्रेम में पड़ोगे।
जब भी प्रेम हो, तो परमात्मा को खोजना; पदार्थ पर मत अटक जाना। पदार्थ
पर अटके--तो वासना और परमात्मा की सूझ-बूझ मिलने लगे--तो प्रार्थना।
पदार्थ पर अटके तो नीचे की तरफ गए--कीचड़ की तरफ और अगर परमात्मा की सुध-बुध स्मरण आने लगे, तो चले ऊपर की तरफ। पंख लगे तुम्हें। उड़े तुम आकाश की तरफ।
अनंत की यात्रा पर निकले।
मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, वह इसी दृष्टि का नाम है।
पदार्थ में क्या सौंदर्य हो सकता है? शब्द में क्या सार हो सकता है? शब्द के पार से आता है सार। हां, शब्दों में झलकता है। जैसे दर्पण में कोई प्रतिबिंब झलकता है। जैसे रात आकाश में चांद-तारे हों, और झील में झलकते हों। मगर झील में डुबकी मत मार लेना--खोजने के लिए चांद-तारे। अभी जो चांद पर यात्री गए, वे अपना रॉकेट लेकर और झील में नहीं घुस जाते हैं। घुस जाते, तो कुछ न पाते। वहां चांद नहीं है। वहां सिर्फ चांद झलकता है।
इसलिए संसार को ज्ञानियों ने माया कहा है। यहां असली है नहीं--सिर्फ झलकता है। यहां असली स्वप्नवत है। यहां असली की परछाईं पड़ती है; प्रतिबिंब बनता है। यहां असली की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।
यह तो जगत में संगीत है, यह जो वीणावादक संगीत उठाता है, यह जो बांसुरी बजाने वाला जो संगीत जगाता है, ये प्रतिध्वनियां हैं--असली संगीत की।
उस असली संगीत को संतों ने अनाहत नाद कहा है। इसलिए चीन में कहते हैं-- पुरानी कहावत है--कि जब कोई संगीतज्ञ सच में ही संगीतज्ञ हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है। वीणा का क्या करना फिर? फिर तो संगीत भीतर उठता है। फिर

तो भीतर जागता है। फिर तो वीणा की जरूरत ही नहीं रह जाती। न वीणा की--न वीणावादक की। फिर तो वाद्य के बिना संगीत उठता है।
कहते हैंः जब कोई चित्रकार अपनी कला में परिपूर्ण पारंगत हो जाता है,
तो तूलिका फेंक देता है। फिर क्या जरूरत रही? अब तो परम सौंदर्य उसे भीतर अनुभव होता है; प्रतिपल अनुभव होता है।
यह जगत छाया है; माया है। इस जगत में तुम्हारा जो प्रेम है, वह भी माया है; छाया है।
मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जो आकाश में चांद जैसा है; झील में झलके चांद जैसा नहीं।
मेरे प्रेम को तुम अपना प्रेम मत समझ लेना। और जब मैं यह कह रहा हूं,
तब मैं तुम्हारे प्रेम की निंदा नहीं कर रहा हूं। मैं कह रहा हूंः प्रेम तो ठीक ही है, सिर्फ दिशा गलत है। इसी प्रेम को ऊर्ध्वगामी करो।
पूछा तुमनेः कमोबेश सभी संतों ने प्रेम की महिमा बताई है। लेकिन आपने प्रेम को गौरीशंकर पर आसीन कर दिया।
फर्क है। और संतों ने प्रेम के संबंध में जो कहा है, मेरे और उनके कहने में बुनियादी फर्क है।
संतो ने बड़े डरते-डरते कहा है; बड़े भयभीत होकर कहा है। कहना तो पड़ा है, क्योंकि सत्य का उन्हें अनुभव हुआ है। लेकिन तुम्हारी तरफ देखा है और तुम्हारे प्रेम के जंजाल को देखा है, तो बहुत सावधान होकर कहा है; बहुत घबड़ा कर कहा है।
कहना तो पड़ा है, क्योंकि सत्य है। और तुमको देखा है; और तुम्हारे प्रेम को पहचाना है। और तुम्हारा प्रेम तुम्हें रोज नरक में उतारता जाता है। तो बहुत-बहुत सम्हाल कर, बहुत शर्तबंदी करके वक्तव्य दिए हैं। क्यों? क्योंकि यह सदा ड़र रहा है कि तुम गलत समझ लोगे।
लेकिन मैं जो तुमसे कह रहा हूं, तुम्हारे गलत समझने का जरा भी भय मुझे नहीं है। मुझे बात पूरी तुमसे कह देनी है--जैसी मुझे दिखाई पड़ती है। फिर तुम्हारी स्वतंत्रता--गलत समझो; ठीक समझो।
मैं तुम्हें औषधि दे देता हूं, फिर तुम इसका उपयोग बीमारी मिटाने में करोगे कि इस औषधि को ही खा-खा कर नई बीमारी कर लोगे--यह तुम्हारी स्वतंत्रता है।
और इतने सोच-विचार के दिए गए वक्तव्यों का भी तो परिणाम नहीं हुआ। जिन्हें गलत समझना था, उन्होंने गलत ही समझा। तब यह क्या फिकर करनी; गलती समझने वालों की क्या इतनी चिंता करनी?
अगर मेरी बात गलत न समझेंगे, तो किसी और की बात गलत समझेंगे। गलत समझने का ही तय किया है, तो उन्हें कोई सही पर नहीं ला सकता है। उनके कारण, जो लोग सही समझ सकते हैं, उनके लिए मैं कोई अधूरे, अधकचरे वक्तव्य नहीं दूंगा।
सौ में से अगर एक भी सही समझ लेगा, तो काम पूरा हो गया। वही आदमी काम का था। बाकी निन्यानबे तो गलत रहते ही--मेरी सुनते कि न सुनते। किसी और की सुनते कि न सुनते। वे जो भी सुनते, उसमें से गलत निकाल लेते।
आदमी जब सुनता है, तो अपने हिसाब से सुनता है।
तो मैं अगर डरते-डरते वक्तव्य दूं तो डर यह है कि वह सौ में से जो एक आदमी समझ पाता है, वह भी न समझ पाए। क्योंकि वक्तव्य अधूरा होगा।
वक्तव्य देते वक्त अगर मैं संकोच करूं, शर्तबंदी करूं, सब तरह की सुरक्षा का उपाय करूं--कि कहीं कोई गलत न समझ लें, तो जिसको गलत समझना है, वह तो गलत समझलेगा ही; लेकिन जो ठीक समझता था, वह भी इतनी शर्तबंदी में नहीं समझ पाएगा।
पुराने संतों ने--कहीं गलत न समझ लिए जाएं--इसकी बहुत फिकर की है। मेरी सारी फिकर यह है कि जो ठीक समझते हैं, उतने थोड़े से लेग समझ लें। बाकी की मुझे चिंता नहीं है। जिनने गलत समझने का तय किया है, वे गलत समझेंगे ही। उनकी मौज। मजे से समझें। जिंदगी उनकी है। वे जैसा उसका उपयोग करना चाहें, वैसा करे।

इसलिए प्रेम को मैं तो परमपद पर बिठाता हूं। मेरे लिए तो प्रेम ही परमात्मा है।
जीसस ने कहा हैः परमात्मा प्रेम है। मैं कहता हूं--प्रेम परमात्मा है। परमात्मा को चाहे छोड़ दो--चलेगा। प्रेम को मत छोड़ना। क्योंकि प्रेम के बिना परमात्मा कभी नहीं मिला है। और जिसने प्रेम को पा लिया, उसे परमात्मा मिल ही गया।
इसलिए परमात्मा छोड़ा जा सकता है। प्रार्थना, प्रेम--वे नहीं छोड़े जा सकते हैं।
परमात्मा समस्त प्रेम के अनुभवों का अंतिम जोड़ है। और मैं तुमसे यह
कह देना चाहता हूं कि जिस दिन तुम परमात्मा को पाओगे, उस दिन तुम यह भी पाओगे कि तुमने जो गलत-सही, नीचे जाने वाले, ऊपर जाने वाले--अनंत-अनंत काल में, अनंत-अनंत प्रेम किए थे, उन सबका जोड़ है परमात्मा। तुम्हारे गलत प्रेमों का भी जोड़ है।
प्रेम कितना ही गलत हो, लेकिन इसमें कोई किरण तो प्रेम की होती ही है।
सोना कितना ही मिट्टी में मिल जाए, उसमें कुछ अंश तो सोने का होता ही है।
निन्यानबे प्रतिशत मिट्टी हो जाए, तो भी एक प्रतिशत सोना तो होता ही है।
निन्यानबे प्रतिशत ईर्ष्या में भी जो प्रेम है, वह भी सोना है। हां, निन्यानबे प्रतिशत को धीरे-धीरे कम करो, सोने को धीरे-धीरे बढ़ाते जाओ।
प्रेम का मैं बेशर्त स्वागत करता हूं।
प्रेम ही है, जो इस जगत को चला रहा है। ये चांद-तारे प्रेम से बंधे चल रहे हैं।

दूसरा प्रश्नः उपनिषद परम तत्व को अदृश्य, अश्राव्य और अचिंत्य कहते हैं। मध्ययुगीन संत शब्द और नाद और सुरति का गीत गाते हैं। जो अश्राव्य है, उसे शब्द या श्राव्य नाम देना क्या विभ्रम को नहीं बढ़ाता है?

तर्कयुक्त है प्रश्न। मन में ऐसा संदेह स्वाभाविक है--कि एक तरफ उपनिषद कहते हैं कि उसे देखा नहीं जा सकता, वह अदृश्य है। और भक्त सदा कहते हैः तेरे दीदार की इच्छा है; तुझे देखना है।
उपनिषद कहते हैंः वह अश्राव्य है, सुना नहीं जा सकता। और भक्त कहते हैः सुनना है उसे, उसके नाद को सुनना है।
उपनिषद कहते हैं एक बात; भक्त ठीक दूसरी बात कहे जाते हैं, तो संदेह उठना स्वाभाविक है; कि इसमे तो थोड़ी सी विभ्रम की संभावना है, विरोधाभास है। पर जरा भी विरोधाभास नहीं हैं।
सच तो यह है कि बिना विरोधाभास के परमात्मा के संबंध में कोई वक्तव्य
ही नहीं दिया जा सकता; उपनिषद भी नहीं दे सकते। उपनिषद भी कहते हैंः परमात्मा दूर से भी दूर और पास से भी पास है। क्या अर्थ हुआ इसका? हम कहेंगेः या तो पास है, तो पास है। या दूर है, तो दूर है। यह क्या बकवास है कि दूर से भी दूर और पास से भी पास है!
राह पर तुम किसी से पूछो कि स्टेशन कहां है? वह कहेः दूर से भी दूर है,
और पास से भी पास है। तो तुम कहोगेः किसी पागल से मिलना हो गया है! हम पूछते हैः कहां है? तुम पहेलियां बूझते हो। या तो पास होगी, या दूर होगी। दोनों कैसे हो सकती है?
इस जगत के संबंध में हम जो भी कहते हैं, वे वक्तव्य विरोधाभासी नहीं होते हैं। लेकिन परमात्मा के संबंध में हम जो भी कहेंगे, वे वक्तव्य विरोधाभासी होंगे। कारण है उसका।
कारण ऐसा हैः परमात्मा दूर से दूर है, अगर तुम मजबूत हो। और परमात्मा पास से पास है, अगर तुम तरल हो। तुम पर निर्भर है, इसलिए वक्तव्य दिया गया है।
परमात्मा दूर से दूर है, अगर अहंकार तुम्हारा बहुत पथरीला है, मजबूत है; तो बहुत दूर है परमात्मा। तुम सारे संसार में खोजते फिरो, नहीं पाओगे।
तुम्हारा अहंकार ही हर जगह बाधा बन जाएगा।

और पास से भी पास है। अगर अहंकार न हो, तो तुम्हारी आंख के सामने जो है,
वह परमात्मा है। तुम्हारे हाथ के पास जो है, वह परमात्मा है। फिर परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी नहीं है--अगर अहंकार न हो। और अगर अहंकार हो, तो अहंकार के अतिरिक्त कोई भी नहीं है; कोई परमात्मा नहीं है। इसलिए दूर से भी दूर और पास से भी पास।
जब उपनिषद कहते हैंः परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता, तो वे यही कह रहे हैं कि परमात्मा का दर्शन वस्तु की भांति नहीं हो सकता। जैसे तुमने मुझे देखा, मैंने तुम्हें देखा--ऐसा परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। तुमने वृक्ष देखा; तुमने पहाड़ देखा; चांद-तारे देखे; सूरज देखा--इस तरह परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता।
परमात्मा तुमसे भिन्न होता, तो इस तरह का दर्शन हो सकता था, जैसे तुम
इन वृक्षों को देख रहे हो। मगर परमात्मा तो तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम्हारे प्राणों का प्राण है। तुम्हारे बाहर भी वही, तुम्हारे भीतर भी वही। इसको तुम वस्तु न बना सकोगे।
परमात्मा को ऑब्जेक्ट, वस्तु की तरह नहीं देखा जा सकता। इतना ही कहते हैं उपनिषद, जब वे कहते हैं कि परमात्मा अदृश्य है। उसे तुम दृश्य न बना सकोगे।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि संत गलत हैं। संत कहते हैंः तेरे दीदार
की बड़ी इच्छा है; तेरे दर्शन की बड़ी आकांक्षा है। वे यह कह रहे हैं कि परमात्मा को जाना जा सकता है, जब सारे दृश्य विसर्जित हो जाते हैं; जब आंख सभी दृश्यों से खाली हो जाती है; कोई विषयवस्तु आंख में नहीं रह जाती; चित्त परिपूर्ण शून्य में विराजमान हो जाता है, देखने को कुछ भी नहीं बचता, तब
देखने वाला स्वयं को देखता है; तब द्रष्टा अपने को ही देखता है।
जब तक देखने को कुछ है, तब तक हमारा मन वहां उलझा रहता है। जब देखने को कुछ भी नहीं, तो हम कहां जाएंगे? हमारा मन अपने पर ही लौट आऐगा। यह जो लौट आना है, जिसको पंतजलि ने प्रत्याहार कहा; महावीर ने प्रतिक्रमण कहा; वह जो अपने पर लौट आना है... । स्वयं पर लौट कर जो अनुभव होता है, उस अनुभव को ही वे दर्शन कह रहे हैं।
उपनिषद कहते हैंः अश्राव्य है परमात्मा, उसे सुना नहीं जा सकता। क्या मतलब इसका? इसका मतलब यह कि किसी के कहने से तुम उसे न समझ सकोगे। वक्तव्य में वह नहीं आएगा। अश्राव्य है। मैं कह रहा हूं तुमसे कि परमात्मा क्या है। मैं लाख कहूंः ऐसा कहूं, वैसा कहूं; इस ढंग से कहूं, उस ढंग से कहूं, फिर भी तुम सिर्फ मेरे कहने से उसे न समझ पाओगे। वह श्राव्य नहीं है।
मैं कुछ भी कहूं, मेरे कहने से तुम न समझ पाओगे। तुम उस दिन समझोगे, जब तुम्हारा अनुभव होगा। सुन-सुन कर नहीं समझोगे; जान कर--डूब कर समझोगे। तो अश्राव्य है परमात्मा।
शास्त्र को पढ़ लिया, इससे भी समझ में नहीं आता। संतों के वचन सुन लिए, इससे भी समझ में नहीं आता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि परमात्मा में कोई नाद नहीं है। परमात्मा परम नाद है। वह आखिरी संगीत है। वह चरम अवस्था है लय की। उसका माधुर्य है; उसकी स्वर लहरी है। उसकी मस्ती है।
जब तुम्हारे कान सभी शब्दों से शून्य हो जाएंगे और तुम बाहर की बिल्कुल न सुनोगे; जब तुम्हारे कान बाहर की तरफ काम ही नहीं करते होंगे; जब यह सारा बाहर का कोलाहल तुम्हारे जीवन से शांत, शून्य हो जाएगा; चाहे तुम बाजार में ही बैठे हो, तुम्हें कुछ और सुनाई न पड़ेगा। जब तुम्हें कुछ भी सुनाई पड़ता न होगा, तब तुम्हारे भीतर कुछ सुनाई पड़ेगा; तब तुम्हारे भीतर एक स्वर-लहरी जगेगी; एक नाद उमगेगा। यह तुम्हारे अंतर्तम में खिलेगा फूल; यह कान से भीतर नही जाएगा। परमात्मा बाहर नहीं है--कि भीतर जाए तुम्हारे। न आंख से भीतर जाएगा; न कान से भीतर जाएगा। आंख और कान अगर बाहर में उलझे रहे, तो भीतर जो है, उसका तुम्हें पता ही नहीं चलेगा। परमात्मा भीतर है। जब तुम कान और आंख के सब द्वार-दरवाजे बंद करके बैठ जाओगे... । इसलिए फकीर, संत, भक्त कहते हैः जब तुम सारे द्वार-दरवाजे बंद कर लोगे, जब आंखें उलटी हो जाएंगी, जब कान उलटे हो जाएंगे; जब इंद्रियां सक्रिय न होंगी,

निष्क्रिय हो जाएंगी, तब तुम्हारे भीतर ही जो है--पहली दफा--इस शोरगुल के बंद हो जाने के कारण तुम्हें वह धीमा सा स्वर सुनाई पड़ना शुरू होगा।
परमात्मा एक गीत है, जो तुम्हारे प्राण गा रहे हैं--सातत्य से, सदा से, सनातन से।
मेरी तारीकियों के दामन में एक माहे तमाम होता है
मेरी खामोशियों के परदों में एक शोरे कलाम होता है।
मेरी अक्लो खिर्द के हाथों में एक भरपूर जाम होता है
दिल की बेताबियों में छुप-छुप कर कोई मस्ते-खराम होता है।
बंद होती हैं जब मेरी आंखे तेरा दीदार आम होता है
मैं बजाहिर खामोश होता हूं लब पे तेरा ही नाम होता है।
खिलवतों में जो गुनगुनाता हूं बस तुझी से कलाम होता है
देखना है मगर अभी बाकी कब तेरा जलवा आम होता है।
समझनाः "मेरी तारीकियों के दामन में एक माहे तमाम होता है।" वह जो गहन अंधकार है मेरे जीवन में, वह भी एकदम अंधेरा नहीं है, उसमें एक पूरा चांद भी है। "मेरी तारीकियों के दामन में एक माहे तमाम होता है।" अंधेरे से अंधेरी रात है; अमावस है। सब तरफ अंधकार है। लेकिन फिर भी भीतर एक दीया जलता ही रहता है। एक रोशनी वहां बनी ही रहती है। वही रोशनी तो तुम्हारा अस्तित्व है। वही रोशनी तो तुम्हारी श्वास है। वही रोशनी तो तुम्हारा प्राण है। वहां एक पूर्ण चांद सदा बना ही रहता है। और संतों ने सदा उसे चांद कहा--सूरज नहीं, क्योंकि चांद शीतल है; रोशन और फिर भी शीतल। उत्तप्त नहीं है; गर्म नहीं है।
वासना उत्तप्त है--प्रार्थना शीतल। वासना में एक उत्तेजना है। प्रार्थना में एक शांति है। तो चांद शीतल... ।
"मेरी तारीकियों के दामन में एक माहे तमाम होता है।" यह बात उलटी लगती है। अमावस की रात, अंधेरी रात--कहां चांद? लेकिन जिन्होंने भीतर जाकर देखा, उन्होंने पाया कि सब तरफ अंधेरी रात है, लेकिन भीतर चांद होता है। असल में अंधेरी रात में ही चांद का ठीक-ठीक दर्शन होता है। इसलिए तो दिन में चांद छिप जाता है, क्योंकि रोशनी सब तरफ है। चांद तो लटका है आकाश में अभी भी, रात दिखेगा।
जब कोई व्यक्ति अपनी आंखों, अपने कानों, अपनी इंद्रियों के सब द्वार बंद कर देता है; सब तरफ अंधेरा हो जाता है, उस अंधेरे में वह जो धीमी सी रोशनी है भीतर, वह जो शीतल दीया जलता है, वह प्रकट होता है।
"मेरी खामोशियों के परदों में एक शोरे कलाम होता है।" और जब कोई बिल्कुल चुप हो जाता है, तब एक काव्य का जन्म होता है भीतर। नहीं कि तुम उसे पैदा करते हो। तुम सिर्फ देखते हो, उसे पैदा होते।
जैसी तुम कमल को खिलते देखते हो। या एक पक्षी को आकाश में उड़ते देखते हो। तुम कुछ करते नहीं। ऐसे ही तुम्हारे भीतर एक गीत का जन्म होता है, एक कलाम होता है। तुम्हारे भीतर कोई गूंज उठने लगती है, जो तुम्हारी उठाई हुई नहीं है--खयाल रखना। ऐसा नहीं है कि तुम बैठे-बैठे राम-राम, राम-राम, जप रहे हो। जब तक तुम जप रहे हो, तब तक दो कौड़ी का तुम्हारा राम-राम है।
जब तुम्हारे भीतर जाप होगा... । नानक ने उसको अजपा-जाप कहा है; कबीर ने
भी अजपा-जाप कहा है। जब तुम्हारे बिना जपे कुछ भीतर उठेगा, नाम अपने आप होगा, तभी कुछ हुआ। तब तुमने मूलस्रोत के साथ संबंध जोड़ लिया।
मेरी खामोशियों के परदों में एक शोरे कलाम होता है
मेरी अक्लो खिर्द के हाथों में एक भरपूर जाम होता है।
और जब तुम अपने भीतर जाओगे, तभी तुम पाओगे--असली शराब। बाहर तो सिर्फ छाया है।
श्री मोरारजी देसाई बाहर की शराब बंद करना चाहते हैं, मैं भीतर का शराबखाना खोलना चाहता हूं। असल में बाहर के शराबखाने तभी तक चलेंगे, जब तक भीतर का शराबखाना न खुले। जब भीतर की मस्ती मिल जाती है, फिर कौन बाहर भीख मांगता है! जब आत्मा की शराब ढाल सकते हो, तो फिर अंगूर की शराब ढालने की कौन झंझट में पड़ेगा?

और बहार की शराब बेहोश करती है; भीतर की शराब होश लाती है। बाहर की शराब तो तुम्हारे जीवन को धीरे-धीरे नष्ट कर देती है। भीतर की शराब तुम्हें और जीवंत बनाती है। एक दिन तुम्हारे भीतर के परमात्मा को उजागर कर देती है।
और आज तक दुनिया में बाहर की शराब बंद नहीं हो सकी। क्योंकि आदमी शराब
की खोज कर रहा है। खोज तो कर रहा है परमात्मा की शराब की। लेकिन उसका कुछ पता नही चलता। तो यही जो बोतलों में बंद मिल जाता है परमात्मा, उसी को खरीद लेता है।
यह धोखा है। लेकिन ध्यान रखनाः नकली सिक्के के धोखे में तुम तभी आते हो, जब असली सिक्के की तलाश हो। नहीं तो क्यों आओगे? जिस आदमी को सिक्के से ही कुछ मतलब नहीं है... ।
तुम राह से जा रहे हो और एक सिक्का चांदी का पड़ा हुआ हैः तुम्हें मतलब
ही नहीं है सिक्के से। तो तुम न तो असली सिक्का उठाओगे, न नकली सिक्का उठाओगे। लेकिन जो आदमी असली सिक्के की तलाश कर रहा है, वह झट से उठा कर खीसे में रख लेगा। हो न हो, असली हो। कौन जाने असली हो?
दुनिया में शराब का जो इतना प्रभाव रहा है अनंत काल से, उसका कारण इतना है कि परमात्मा की हम तलाश कर रहे हैं।
शराब में परमात्मा नहीं है। लेकिन कुछ झलक मिलती है--बेखुदी की; अपने
को भूल जाने की। और यह "मैं" इतना भारी है, इतना कांटों से भरा है, इतना जहरीला है कि इसे थोड़ी देर को भी आदमी भूल जाता है, तो कोई भी कीमत ज्यादा नहीं मालूम होती।
शराब से शरीर का स्वास्थ्य नष्ट होता है; उम्र कम होती है; बीमारी आती है। लेकिन फिर भी आदमी... । सब जानते है; जो शराब पीते हैं, वे जानते हैं। कुछ ऐसा नहीं है कि तुम्हारे जानने के लिए ही रुके हैं; कि मोरारजी देसाई उनको समझाएं। ये सब जानते हैं कि क्या-क्या खराबी है। लेकिन इन सारी खराबियों के बाद कोई चीज आकर्षित करती है। वह क्या है, जो आकर्षित कर रहा है?
आदमी अपने अहंकार से बोझिल है। थोड़ी देर को इसे उतारकर रख देना चाहता है। राहत मिलती है; थोड़ी देर के लिए सारी... सारी चिंता-फिकर भूल जाना चाहता है। तुम उससे वह भी छीन लेना चाहता हो!
मैं उसे असली सिक्का देना चाहता हूं। असली सिक्का मिल जाए, तो नकली सिक्का अपने आप हाथ से गिर जाता है। उसे फिर कोई लिए नहीं चलता।
जिस दिन तुम्हें पता चल गया कि असली क्या है, असली को जानते ही नकली नकली हो जाता है। और असली को बिना जाने नकली नकली हो नहीं सकता। तुम नकली छीन रहे किसी आदमी से। असली उसने जाना नहीं है, और तुम नकली छीनना चाहते हो।
अभी कल मोरारजी देसाई ने कहा कि या तो शराब रहेगी या मैं जाऊंगा। मैं उनसे कहना चाहता हूंः बहुत मोरारजी देसाई दुनिया में आए और गए। शराब रही है--और रहेगी।
कितने अनंतकाल से लोग शराब-बंदी की कोशिश कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ उसके खिलाफ; धर्मगुरु उसके खिलाफ; समाज सुधारक उसके खिलाफ--सब भले आदमी उसके खिलाफ, मगर फिर भी बंद नहीं होती। और मजा यह है कि जो भले आदमी उसके खिलाफ हैं, वे भी अपने निजी जीवन में उसके खिलाफ नहीं हैं। सार्वजनिक जीवन में खिलाफ।
और एक दूसरा और एक गहरा मामला है; जो सार्वजनिक जीवन में उसके खिलाफ हैं और निजी जीवन में भी उसके खिलाफ हैं; उन्हें तुम गौर से देखना, उन्हें किसी और शराब ने पकड़ा है। जैसे मोरारजी देसाई; उनको एक शराब जिंदगी भर पकड़े रही--पद की शराब। किसी तरह पद पर होना है। वह शराब है। वह नशा है।
इसलिए हमने उसको पद-मद कहा है।
किसी को धन की शराब पकड़े हुए है, उसको धन-मद कहा है। ये सब नशे हैं। एक नशेलची दूसरे नशेलचियों को सुधारना चाहता है! यह पद की शराब है।

और मैं तुम से कहूंः शराबियों ने इतना नुकसान नहीं किया, जितना पद के शराबियों ने दुनिया का किया। इतने युद्ध, इतनी हिंसायें, इतने उपद्रव, इतनी जाल-साजियां!
शराबी बेचारा इस लिहाज से निर्दोष है। हां, कभी-कभी रास्ते की नाली में गिर जाता है; थोड़ा शोरगुल मचा देता है; किसी की नींद में दखल डाल देता है। बस, इसी तरह की भूल-चूकें हैं उसकी। कभी गाली-गलौज कर देता है। कभी पीट देता है; कभी पिट जाता है। मगर उस पर कोई बड़े जुर्म नहीं हैं। उसने कोई दुनिया में महायुद्ध नहीं किए हैं। और उसने दुनिया में आदमियों के साथ जालसाजियां नहीं की हैं। उसने लोगों की छाती नहीं रौंदी है। राजनेता वही करते रहे हैं--और वे शराब के खिलाफ हैं! उनके पास एक शराब है, जिसका उन्हें खयाल नहीं है। उनको एक मद चढ़ा हुआ है। उस मद में ही वे जी रहे हैं! इनकी शराब ज्यादा महंगी है।
हालांकि मैं कोई शराब का पक्षपाती नहीं हूं। मैं भी चाहता हूं-- दुनिया से शराब जाए। लेकिन राजनेता उसे न रोक पायेंगे। धर्मगुरु भी उसे नहीं रोक पाएंगे। उसे तो रोक पायेंगे केवल संत और संत भी तभी रोक पाएंगे जब इस भीतर की मधुशाला के द्वार ख्ल्लल दें।
जिस दिन भीतर की मस्ती तुम्हें छूने लगती है; तुम उसमें डुबकी लेने लगते हो, उस दिन फिर क्या करना है? चिंता गई--और सदा को गई। और अहंकार उतरा-- और सदा को उतरा; फिर कभी न चढ़ेगा।
और भीतर की शराब का जो गुण है, वह यही है कि वह होश को बढ़ाती है।
मेरी अक्लो खिर्द के हाथों में एक भरपूर जाम होता है
दिल की बेताबियों में छुप-छुप कर कोई मस्ते खराम होता है
बंद होती हैं जब मेरी आंखें तेरा दीदार आम होता है
बंद होती हैं जब मेरी आंखें... ।
परमात्मा को देखना आंख का देखना नहीं है। वह आंख की पहचान नहीं है। वह बंद आंख का देखना है।
जब तुम आंख बंद करते हो, तो संसार बंद हुआ। जब तुम आंख खोलते हो, तो संसार खुला। जब आंख तुम खोलते हो, तो संसार पर तुम्हारी दृष्टि होती है-- अपने पर नहीं होती। जब तुम आंख बंद करते हो, तो दृष्टि अपने पर होती है। मगर मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम जब भी आंख बंद कर लेते हो, तो यह अनिवार्य होता है कि तुम्हारी दृष्टि अपने पर होती है। आंख बंद करके भी अधिक लोग तो संसार को देखते रहते हैं। वही उलझनें वही चिंताए, वही बेचैनियां, वही वासनाएं, वही कामनाएं, वही दौड़-धूप। आंख बंद करके भी क्या तुम अपनी दुकान में ही होते हो! आंख बंद करके भी अपने नाते-रिश्तों में होते हो। आंख बंद करके भी बाहर का संसार भीतर चलता रहता है।
आंख बंद करने का अर्थ सिर्फ पलक बंद कर लेना नहीं है। आंख बंद करने का अर्थ हैः बाहर की तरफ से बिल्कुल दृष्टि हटा लेना। इसी को तो ध्यान कहते हैं। बाहर कोई दृष्टि न रह जाए।
बाहर से सब भांति अपने को सिकोड़ लेना, जैसे कछुआ अपने को सिकोड़ लेता है; ऐसा ध्यानी अपने को सिकोड़ लेता है। वह अपने भीतर बैठ जाता है। बाहर जाता ही नहीं। विचार में भी नहीं जाता है। व्यवहार में भी नहीं जाता है। मन में एक तरंग भी नहीं छोड़ता है। क्योंकि सब तरंगे बाहर ले जाती हैं। तरंगमात्र बाहर ले जाती है। निस्तरंग हो जाता है। इस घड़ी का नाम है--आंख का बंद हो जाना।
"बंद होती हैं जब मेरी आंखें तेरा दीदार आम होता है।" और तब तू दिखाई पड़ता है... । बंद आंखों से परमात्मा दिखाई पड़ता है। खुली आंखों से संसार दिखाई पड़ता है।
"में बजाहिर खामोश होता हूं लब पे तेरा ही नाम होता है।" और जब मैं बिल्कुल खामोश होता हूं, चूप होता हूं, तब पहली
दफा तेरा नाम मेरे भीतर उठना शुरू होता है और मेरे प्राणों पर फैल जाता है, जैसे एक रोशनी फैल जाए; जैसे सुबह प्रभात फैल जाती है।
लेकिन तुम्हारे कहने की बात नहीं है। तुम तोता मत बन जाना। अनेक लोग तोते बने बैठे हैं! तीर्थ-स्थानों पर तुम तोतों की जमातें पाओगे। कोई राम-

158

राम जप रहा है; कोई कृष्ण-कृष्ण जप रहा है; कोई कुछ जप रहा है। कोई अल्लाह-अल्लाह कर रहा है। लोग लगे हैं रटने में! इस रटने से कुछ भी न होगा। यह रटन व्यर्थ है।
यह चेष्टा से की गई रटन गहरे नहीं ले जा सकती। यह झूठी है। और इस में
भी अगर गौर करोगे तो पीछे छिपी कोई वासना पाओगे। पीछे छिपी सदा वासना पाओगे।
प्रार्थना तक में वासना छिपी रहती है! तो तुमने प्रार्थना को भी कीचड़ में घसीट डाला। एक तो चीज जीवन में रहने दो--निष्कलुष!
चौबीस घंटे तुम्हारी वासना की कीचड़ से भरे हैं--ठीक। मैं तुमसे नहीं कहता, कि आज तुम पूरा सब बदल दो। इतना कहता हूंः कुछ क्षण तो निकाल लो, जो कीचड़ में सने न हों। कुछ क्षण तो निर्दोष, कुंवारे बचाओ। कुछ क्षण तो ऐसे हों जब तुम कुछ भी नहीं मांगते, सम्राट होते हो।
प्रार्थना तभी शुद्ध होती है, जब अपने से होती है; बिना कारण होती है; बिना मांग के होती है। तो प्रार्थना का एक ही उपाय है--खामोशी। तुम चुप हो जाओ, ताकि तुम्हारे भीतर जो नाद उठ ही रहा है, वह तुम्हें सुनाई पड़ने लगे। मैं बजाहिर खामोश होता हूं लब पे तेरा नाम होता है
खिलवतों में जो गुनगुनाता हूं बस तुझी से कलाम होता है।
एकांत में जो गुनगुनाहट उठेगी, वह परमात्मा का कलाम है। वह काव्य उसी
से उतर रहा है। इसलिए हमने वेदों को अपौरुषेय कहा है। क्योंकि वेदों को जिन ऋषियों ने गाया, उन्होंने स्वयं नहीं गाया है। वे तो खामोश बैठे थे; वे तो अपनी तनहाई में बैठे थे; वे तो अपने एकांत में थे। वे तो अपने भीतर थे। आंख--द्वार-दरवाजे--सब बंद करके, वे तो अपनी भीतर की अंतर-गुहा में बैठे थे, तब उतरा; इलहाम हुआ। तब यह नाद उतरा, तब ये अपूर्व वचन उतरे।
इसलिए वेद के वचनों में जो सौंदर्य है, वह कभी-कभी प्रकट होता है। उपनिषदों के वचनों में तो निर्दोषता है, जो सरलता है, वह बहुत कभी-कभी प्रकट होती है। या कुरान में जो गीत है।
तुमने किसी को कुरान तरन्नुम में पढ़ते सुना? तुम्हारी समझ में भी न आए अरबी, फिर भी तुम मस्त होने लगोगे। तुम्हें समझ में भी न आए कि अर्थ इसका क्या है; लेकिन कुरान की आयतें तुम्हारे दिल को डुला जायेंगी। तुम मगन हो उठोगे।
जब मोहम्मद को ये आयतें उतरी थीं, तो मोहम्मद को पता ही नहीं था कि ये आयतें उन पर उतर सकती थीं। वे तो पहाड़ की गुफा में बैठे ध्यान कर रहे थे; यह तो आकस्मिक हुआ। एकदम आयतें उतरने लगीं। इलहाम होने लगा। कोई वचन तैरने लगे उनकी चेतना में--जो इनके अपने नहीं थे; जो उन्होंने क भी सुने भी नहीं थे; जो उन्होंने कभी पढ़े भी नहीं थे। पढ़े-लिखे वे थे भी नहीं। पांडित्य से उनका कोई संबंध भी नहीं था। होता--तो शायद यह इलहाम हो भी नहीं सकता था। यह मोहम्मद जैसे सरल आदमी को ही होता है।
बुद्धि शास्त्रों से भरी होती, तो इतनी भीड़ होती बुद्धि में कि ये तो शब्द उतरते परमात्मा के, ये या तो विकृत हो जाते, इनकी व्याख्या बदल जाती, इनका रंग-ढंग बदल जाता, इरछे-तिरछे हो जाते, कुछ के कुछ हो जाते, और इनका सौंदर्य और इनका संगीत तो निश्चित खो जाता।
लेकिन मोहम्मद सीधे-सादे आदमी थे। घबड़ा गए। यह क्या हो रहा है? डर गए। कंपकंपी छा गई। बुखार चढ़ आया। घर की तरफ भागे और वे उतरती ही चली गईं आयतें। वे भीतर जैसे गिर रही थीं, जैसे वर्षा हो रही हो। आकाश से, शून्य आकाश से कुछ उतर रहा था।
घर जाकर दुलाई ओढ़ कर सो रहे। पत्नी से कहा, "जितनी दुलाइयां हों, सब मेरे ऊपर डाल दे। यह कंपकंपी कुछ ऐसी है कि जो मुझे छोड़ती नहीं। रोआं-रोआं मेरा कंप रहा है।" पत्नी ने कहा, "आखिर हुआ क्या? भले-चंगे गए थे!" उन्होंने कहा, "अभी तू मुझे दबा
दे। अभी मैं अपने होश में नहीं हूं। थोड़ा सम्हलूं, तो तुझसे कहूंगा।"
बाद में मोहम्मद ने कहा कि "मुझे बहुत डर लगता है... ।" और बड़ी अजीब बात कही अपनी पत्नी को। कहाः "या तो मैं पागल हो गया हूं या कवि हो गया हूं!"

यह बड़ा अद्भुत वचन है--कि या तो मैं पागल हो गया हूं या कवि हो गया हूं। "पागल की ही ज्यादा संभावना है", मोहम्मद ने कहा, "क्योंकि कविता को मैं जानता भी नहीं हूं। मगर अपूर्व उतर रहा है, संगीत से बंधा हुआ कुछ उतर रहा है। सब तैयार उतर रहा है। और साथ ही एक आवाज उतर रही है कि जा, गा; गुनगुना; कह--लोगों को कह। और मैं बहुत डरा हुआ हूं।"
पत्नी ने समझाया-बुझाया कि "घबड़ाओ मत। मैंने सुना है कि परमात्मा जब उतरता है, ऐसे ही उतरता है। तुम थोड़ा धैर्य रखो। तुम धन्यभागी हो।" मोहम्मद की पत्नी मोहम्मद की पहली शिष्या थी--पहली मुसलमान। उसने तो मोहम्मद को सम्हाला। तीन दिन तक समझाया-बुझाया, तब कहीं मोहम्मद थोड़े स्वस्थ हुए। डगा गई बात इतनी डगमगा गई बात इतनी... !
खिलवतों में जो गुनगुनाता हूं बस तुझी से कलाम होता है
देखना है मगर अभी बाकी कब तेरा जल्वा आम होता है।
अदृश्य है परमात्मा, फिर भी दृश्य होता है। अश्राव्य है, फिर भी सुना जाता है। दूर है, फिर भी पास है। खो गया है, यद्यपि तुमने कभी उसे खोया नहीं। कैसे उसे खो सकोगे? भूल गए हो, बस। परमात्मा में सारे विरोधाभास लीन हो जाते हैं।

तीसरा प्रश्नः कबीर बेबूझ हैं, आप बेबूझ हैं, फिर डूबें कैसे? कृपा करके समझाइए।

बेबूझ में ही डूबा जा सकता है। जिसको तुम बूझ लोगे, उसमें कैसे डूबोगे। जो बूझ लिया, वह तो चुल्लू भर पानी हो गया; उसमें क्या डूबोगे? जिसको तुमने बूझ लिया, वह तुमसे छोटा हो गया। जिसको तुम समझ गए, वह तुमसे बड़ा न रहा। बेबूझ ही तुम से बड़ा है। बड़ा है, इसलिए बेबूझ है। तुम मुट्ठी बांधना चाहते हो, बंधती नहीं। जैसे सागर को कोई समेटना चाहता हो अपनी बाहों में या आकाश को भर लेना चाहता हो अपने आंगन में। ऐसा ही... । कबीर को सुनोगे, तो ऐसा ही लगेगाः बड़ा है, विराट है, अगम्य है, बेबूझ है। निश्चित ही बेबूझ है। बेबूझ का मतलब क्या? बेबूझ का मतलब यह कि तुम्हारी बूझने की क्षमता छोटी है। और कबीर दिखला रहे हैं; दर्शा रहे हैं; वह बहुत बड़ा है।
तो तुम्हारी बूझने की क्षमता चम्मच जैसी है--चाय की चम्मच! और कबीर जो
ले आए है तुम्हारे सामने, वह सागर जैसा है। हां, अगर तुम्हारी चम्मच में समा जाए, तो तुम समझ लोगे--बूझ लिया। तुम प्रसन्न भी होओगे तब, क्योंकि जो तुम बूझ लेते हो, उसके तुम मालिक हो जाते हो। जो तुम बूझ लेते हो, वह तुम्हारी बुद्धि का हिस्सा हो जाता है। वह तुम्हाराशृंगार, सजावट हो जाती है। उससे तुम बदलते नहीं! तुम्हारे ज्ञान की संपदा थोड़ी और बढ़ जाती है। अकड़ थोड़ी और बड़ी हो जाती है।
जो तुमने बूझ लिया, वह तुम्हारे अहंकार को मजबूत कर जाता है। बेबूझ घबड़ाता है। बेबूझ तुम्हें तोड़ता है। बेबूझ का खयाल ही यह है कि मेरा अहंकार बड़ा छोटा पड़ गया।
बेबूझ में ही डूबोगे। बेबूझ में ही डूब सकते हो।
यह निमंत्रण डूबने के लिए ही है। यह कबीर जो पुकार रहे हैं, या सदा से भिन्न-भिन्न ज्ञानियों ने जो कहा है, वह सभी बेबूझ है; मनुष्य की बुद्धि में नहीं आता। इसलिए जो अहंकारी हैं, वे तो कह देते हैं--गलत ही है। वे तो पहले से ही कह देते हैंः गलत है। ईश्वर हो ही नहीं सकता, क्योंकि उनको बेबूझ लगता है। आत्मा हो ही नहीं सकती, क्योंकि उनको बेबूझ लगती है। मोक्ष हो ही नहीं सकता, क्योंकि उनको बेबूझ लगता है।
जो उनको बेबूझ लगता है, वे कह देते हैं कि हम मानते ही नहीं कि यह हो सकता है। क्योंकि उससे उनके अहंकार को चोट लगती है--कि ऐसा कुछ है जगत में, जिसको मैं न समझूं? जो मेरी समझ में न आए!
ऐसा होने की जुर्रत ही कोई कैसे कर सकता है? मेरी समझ में सब आता है; मेरी समझ आखिरी है। इसलिए अहंकारी नास्तिक हो जाता है।

नास्तिक इतना ही कह रहा है कि ऐसी कोई चीज स्वीकार करने को राजी नहीं हूं, जो मुझसे बड़ी हो, मुझसे विराट हो, मुझसे विस्तीर्ण हो। जो मेरी मुट्ठी में आ सके और मेरी तिजोड़ी में बंद हो सके, वही मैं स्वीकार करूंगा। उससे ज्यादा को स्वीकार नहीं करूंगा।
आस्तिक का अर्थ यही है कि जो मेरी समझ में आ जाए, वह तो दो कौड़ी का हो गया। मेरी समझ में आ गया; उसका मूल्य भी क्या हो सकता है? मैं उस दिशा में जाऊंगा, जहां कभी समझ में न आने वाले का वास है; जहां बेबूझ बसा है। अहंकारी ज्ञात में रुक जाता है। निर-अहंकारी अज्ञात की यात्रा पर निकलता है। इसलिए मैं आस्तिक को साहसी कहता हूं--नास्तिक को कायर। हालांकि आमतौर से लोग समझते हैंः नास्तिक बड़ा साहसी। आमतौर से लोग समझते हैंः आस्तिक बड़ा कायर। असलियत यह नहीं है। मगर आमतौर से जो समझा जाता है, उसमें भी कारण है।
सौ में निन्यानबे आस्तिक, आस्तिक ही नहीं हैं; वे छिपे हुए नास्तिक हैं। कहते हैं ऊपर से कि ईश्वर को मानते हैं, मगर जो भी व्यवहार करते हैं, उसमें जाहिर करते हैं कि ईश्वर वगैरह कोई नहीं है।
कहते हैं कि हम मंदिर जाते हैं, पूजा-प्रार्थना करते हैं, लेकिन यह सब औपचारिक है, दिखावा है, पाखंड है।
सौ में निन्यानबे आस्तिक भीतर से नास्तिक हैं। और सौ में निन्यानबे नास्तिक भीतर से आस्तिक हैं।
जो आदमी ईश्वर को इनकार कर रहा है, प्रगाढ़ता से इनकार कर रहा है, वह यही कर रहा है कि मुझे डर लग रहा है ईश्वर का। मुझे कंपकंपी आ रही है। मुझे भय लगता है। मैं यह देखना नहीं चाहता। मैं इस दिशा में देखना ही नहीं चाहता।
तुमने देखा कभी! अगर तुम पहाड़ पर खड़े होकर गहराई में देखो, तो कंपकंपी
आ जाती है; प्राण थर्रा जाते हैं। और परमात्मा अनंत गहराई है। और हम सब पहाड़ पर खड़े हैं। उसी गहराई के किनारे खड़े हैं। तो हमने एक तरकीब निकाल लीः पीठ कर लो उस तरफ। न दिखाई पड़ेगा, न अड़चन होगी।
तो अधिक नास्तिक ईश्वर को इनकार करते हैं, सिर्फ इसीलिए कि उनको ईश्वर बहुत करीब मालूम पड़ता है और डर पकड़ता है। और अधिक आस्तिक मंदिर में प्रार्थना-पूजा कर आते हैं, क्योंकि उन्हें ईश्वर की गहराई तो दिखाई ही नहीं पड़ी है; उन्होंने ईश्वर को भी अपनी सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा बना लिया है।
अच्छा रहता है; अगर आदमी मंदिर में पूजा कर आता है तो दुकान ठीक से चलती है। लोग समझते हैंः धार्मिक आदमी हैः बेईमानी नहीं करेगा। बेईमानी करने की और सुविधा हो जाती है! लोग समझते हैं कि राम-राम की चदरिया ओढ़े बैठा है; भला आदमी है। जेब नहीं काटेगा। और मुख में राम बगल में छुरी। वे राम-राम की चदरिया में छुरी लिए बैठे हैं। इससे और सुविधा हो जाती है। इससे दूसरा आदमी और गाफिल हो जाता है और बेहोश हो जाता है।
इसलिए आमतौर से जो लोग कहते हैं, वे ठीक ही कहते हैं कि नास्तिक में थोड़ी हिम्मत मालूम होती है। कम से कम ईश्वर को इनकार तो करता है! यह आस्तिक तो बिल्कुल ही नपुंसक मालूम पड़ता है। इसने इनकार ही नहीं किया। और जिसने इनकार नहीं किया, वह स्वीकार क्या खाक करेगा?
मेरे देखे भी जब कोई नास्तिक आस्तिक होता है, तो दुनिया में आस्तिक का जन्म होता है। जो कभी नास्तिक ही नहीं हुआ, वह आस्तिक कैसे हो सकता है। जिसने--"नहीं"--नहीं कही, उसके "हां" का क्या मूल्य हो सकता है? उसका हां नपुंसक होगा।
तुम्हारे घर में एक बेटा है; तुम जो कहो, उसमें "हां" भरता है। तुम जो कहो, उसमें "हां" भरता है। उसने कभी नहीं की ही नहीं। उसकी हां में कुछ जान होगी? उसकी हां में रीढ़ नहीं हो सकती। बेजान, लचर होगी। वह कहेगा हां, क्योंकि वह कमजोर है।
जीसस ने कहानी कही है। एक बाप के दो बेटे थे। बाप ने पहले बेटे को बुलाया और कहा कि तू बगीचे में जा; आज काम की बहुत जरूरत है मजदूर कम हैं; और फल तोड़ ही लेने हैं, अन्यथा सड़ जाएंगे। उसने कहा कि "मैं नहीं जाऊंगा।

मुझे और काम हैं।" ऐसा कह कर वह चला गया। लेकिन पीछे पछताया। उसने सोचा कि पिता को मैंने नाहक इनकार कर दिया। पछतावे के कारण वह खेत में चला गया; बगीचे में चला गया। दिन भर काम किया।
दूसरा बेटा था। जब पहले ने इनकार कर दिया तो दूसरे बेटे को बाप ने बुलाया और कहा कि "तू जा बगीचे में, काम जरूरी है।" उसने कहा, "अभी जाता हूं।" और कभी भी नहीं गया। उसने इतनी जल्दी हां भर दी कि उसे पश्चात्ताप भी होने का कोई कारण नहीं रहा। बात ही खत्म हो गई।
जीसस पूछते थे अपने शिष्यों से, कि किसने अपने बाप की आज्ञा पालन की? जिसने हां भर दी थी उसने? हालांकि बाप भी उससे प्रसन्न हुआ था कि उसने हां भरी। या जिसने नहीं की थी और जो पछताया और जो गया उसने? हालांकि बाप उससे नाराज हुआ था।
तुम्हारे हां और न कहने का सवाल नहीं है। तुम्हारे भीतर क्या है? भीतर "नहीं" है, ऊपर से "हां"--यही तुम्हारे आस्तिकों की हालत है। इन्होंने "न" कहना सीखा ही नहीं है। तो सामान्य भाव में भी कुछ राज है। मगर फिर भी मैं तुमसे कहना चाहता हूंः अंतिम विश्लेषण में असली आस्तिक साहसी होता है। और असली नास्तिक कायर होता है।
नास्तिक का मतलब ही यह है कि बेबूझ से घबड़ा गया है। घबड़ाहट में इनकार
कर रहा है।
एक सज्जन को मेरे पास लाया गया; उनकी पत्नी ले आई। उनकी पत्नी ने कहा, "ये आपकी शायद सुनें। हमारी सुनते नहीं हैं। ये बीमार हैं, और ये डाक्टर के पास जाते नहीं हैं। ये कहते हैं, मैं बीमार हूं ही नहीं, तो जाऊं क्यों?" मैंने उन सज्जन की तरफ देखा। उनके चेहरे पर पसीना है; घबड़ाहट है। मैंने उनसे पूछा कि "चले क्यों नहीं जाते? इस बेचारी को राहत मिलेगी। इसके लिए चले जाओ। तुम तो बिल्कुल स्वस्थ हो। तुम तो मुझे बिल्कुल गामा मालूम पड़ते हो! तुम चले ही जाओ। इस गरीब पर दया करो। यह परेशान होती है। एक दफा जांच हो जाएगी; इसको दिलवा देना एक्सरे और सब! यह सभी को सम्हाल कर रख लेगी। इसकी निश्चिंतता कर दो। इस पर दया करो।"
उनको यह बात जंची। दूसरे जो उनको समझाते थे, वे सभी यह कहते थेः तुम बीमार हो, जाते क्यों नहीं?
बीमार वे थे। रक्तचाप भी था; हृदय दुर्बलता भी थी, और कैंसर की भी संभावना निकली। बीमारी वे सब तरह से थे। लेकिन मैंने जिस दिन उनको देखा, तो बात मेरी समझ में आ गई कि वे जाना क्यों नही चाहते। वे डरते हैं कि कहीं सच ही बीमारी न निकल आए। बीमारी का एहसास है। वह जानता था। जो आदमी बीमार है, उसको एहसास नहीं होगा!
चार कदम चलते थे, तो हांफ जाते थे। सीढ़ी चढ़ नहीं सकते थे। नींद आनी बंद
हो गई थी। शरीर सूखता जाता था। वजन रोज-रोज कम होता चला जाता था। चेहरे से सारी सुर्खी चली गई थी। चेहरा पीला पड़ गया था। एक पीले पत्ते की तरह हो गए थे। कोई भी देख कर कह देता कि बीमार हो। मगर वे यह बात मानने को राजी नहीं थे। वे कहते थे मैं बिल्कुल ठीक हूं। जाऊं क्यों डाक्टर के यहां?
मैंने उनके ही तर्क का उपयोग किया। मैंने कहा कि "तुम इतने ठीक मालूम पड़ते हो, कि डाक्टर खुद्द ही चकित होगा कि तुम आए किसलिए! तुम चले ही जाओ। डर क्या है? बीमार आदमी हो तो डरे जाने में, कि कहीं बीमारी निकल ही न आए। तुम तो इतने स्वस्थ हो!"
उन्हें मेरी बात पर भरोसा तो नहीं आया; भरोसा कैसे आए? हालांकि मैं ही उनसे राजी हो रहा था। कोई उनसे राजी नहीं हुआ था। मगर मुझे इनकार न कर सके। मैंने कहा, "जब तुम बीमार ही नहीं हो, तो तुम घबड़ाते क्यों हो? हां, बीमार आदमी घबड़ाते हैं जाने में। तुम चले जाओ।"
चले गए। सब तरह की बीमारियां निकलीं।
मैंने बाद में उनसे पूछा कि "ईमानदारी से कहो, तुम्हें इन सब बीमारियों का शक-सुबहा नहीं होता था?" उन्होंने कहा, "होता था; आपने ही फंसवाया। होता था, इसीलिए डाक्टर के पास नहीं जाता था। मुझे लगता था कि है तो सब गड़बड़ अब जितने दिन चले जाए, उतना ठीक। अब देखो, अस्पताल में पड़ा हूं!"

लेकिन मैंने कहा, "अब इलाज का उपाय है। अस्पताल सही, मगर इलाज हो सकता है। कुछ देर ज्यादा जी सकोगे। वह तो तुम मौत को अपने हाथ से बुला रहे थे!" ऐसी ही हालत नास्तिक की है। वह कहता हैः ईश्वर नहीं है। जो जितने जोर
से कहेः ईश्वर नहीं है, समझना कि उसने ईश्वर का एहसास किया है। वह अनंत शून्यता उसे पास ही मालूम पड़ती है, कि अगर वह जरा राजी हुआ, उस तरफ देखने को, तो बेबूझ दिखाई पड़ जाएगा। और फिर व्यवस्था जुटानी मुश्किल हो जाएगी। किसी तरह अपने जीवन की व्यवस्था जमा ली है। सब साफ-सुथरा कर लिया है।
ऐसा ही जैसे हम एक बगीचा बना लेते हैं; सब साफ-सुथरा; लॉन लगा लेते हैं;
सब कटा--व्यवस्थित, आयोजित। और उसके पार ही महा जंगल खड़ा है। ऐसे ही आदमी अपने तक के जाल बिछा कर थोड़ा सा बगीचा लगा लेता है। और उन तर्कों के जाल के पास ही परमात्मा का विराट जंगल पड़ा है। उस जंगल में जाने की हिम्मत का नाम ही आस्तिकता है।
कबीर तुम्हारी हिम्मत को पुकारते हैं। मैं भी तुम्हारी हिम्मत को पुकारता हूं। यह चुनौती है तुम्हारे साहस को--कि आओ और बेबूझ को बूझाने की कोशिश में लगो।
बेबूझ को तुम बूझ पाओगे, ऐसा मैं नहीं कहता। लेकिन बेबूझ को बूझने जाओगे, तो खो जाओगे; डूब जाओगे। और उस डूब जाने में ही परम रस है, परम आनंद है। क्योंकि उस डूब जाने में ही स्वयं से मिल जाना है।
जीससे ने कहा हैः जो अपने को खोएगा, वही पाएगा। और जो अपने को बचाएगा, बुरी तरह खो जाएगा।
आओ, बेबूझ का निमंत्रण स्वीकर करो। चलें बेबूझ में, चलें अज्ञात में, चलें अज्ञेय में, चलें उस अनंत में, जिसकी शुरुआत तो है और अंत कोई भी नहीं।

चौथा प्रश्नः आपका मूल संदेश क्या है?

कठिन बात है। कठिन इसलिए कि मूल तो अनुभव करना होता है; शब्दों में नहीं आता और संदेश में नहीं आता। और जो शब्दों और संदेश में आ जाता है; वह मूल नहीं होता, वे पत्ते ही पत्ते होते हैं। फिर भी तुम्हारी बात मेरे खयाल में आई। तुम संक्षिप्त में कोई इशारा चाहते हो। तुम चाहते हो, ऐसी कोई बात, जिसे तुम सम्हाल कर रख लो; ऐसा कोई हीरा, जिसे तुम अपने प्राणों में प्रतिष्ठित कर लो।
इन पंक्तियों को याद रखनाः
तू खुदी से अपनी है बेखबर, यही चीज है तेरी बेबसी
तू हो अपने आप से आशना, तेरे इख्तयार में क्या नहीं।
ये नजर का तेरी कसूर है, तू दुई के परदे को दे हटा
ये जहां तुझी में है बस रहा, कोई और तेरे सिवा नहीं।
तू है बन्दा तो मैं खुदा सही, तू मेरे करीब तो आ जरा मुझे देख अपने पे कर नजर, कोई बन्दा कोई खुदा नहीं।
तू मेरे बगैर न जी सके, मैं तेरे बगैर न रह सकूं
ये फसूने इश्को जमाल है, तू वरना मुझसे जुदा नहीं।
तेरा इश्क अस्ले हयात है, तो बिनाए जीस्त तेरी वफा।
तू जो चाहे कौन से दर्द की, तेरी अपने पास दवा नहीं।
जिसे तू गुनाहो खता कहे, वो है एक लगजिशे पा फक्त
तू सम्हल गया तो गुनाह नहीं, कोई और खता नहीं।
तू मेरी ही शौके तलाश है, तू है हुस्त्र का मेरे आइना
कोई और तेरे सिवा नहीं, कोई और मेरे सिवा नहीं।
समझनाः "तू खूदी से अपनी है बेखबर"--यही मेरा संदेश है कि तुम्हें याद दिला दूं कि तुम खुदा हो।
"तू खुदी से अपनी है बेखबर"--तुम्हें पता नहीं है कि तुम कौन हो? तुम्हारे सामने आईना कर दूं कि तुम्हें दिखाई पड़ जाए--तुम्हारा अपना चेहरा। यही है मेरा मूल संदेश।

तुम्हारी मौलिक छवि का तुम्हें दर्शन हो जाए। तुम पहचान लो--अपने स्वभाव को, स्वरूप को, मैं कौन हूं--इसका उत्तर तुम्हें मिल जाए; शब्दगत नहीं--अस्तित्वगत। शास्त्रीय नहीं--अनुभव से।
"तू खुदी से अपनी है बेखबर, यही चीज है तेरी बेबसी।" और तुम्हारे जीवन
का एक ही दुख है कि तुम्हें अपना पता नहीं है। एक ही पीड़ा है कि तुम अपने से अपरिचित हो। और पीड़ा रहेगी ही। जो अपने से ही परिचित नहीं, वह जो भी करेगा-- गलत होगा। ठीक करने के लिए पहली जरूरत है--अपने से परिचित हो जाना-- आत्मज्ञान।
"तू हो अपने से आशना, तेरे इख्तयार में क्या नहीं।" एक बार तुम अपने आप
को पहचान लो तो तुम्हारा अधिकार अनंत है। क्योंकि तुम परमात्मा के हिस्से हो। तुम्हारी क्षमता अपार है।
"ये नजर का तेरी कसूर है, तू दुई के परदे को दे हटा।" और एक ही भ्रांति
है कि हम समझते हैंः दो हैं। मैं अलग, संसार अलग; देह अलग, आत्मा अलग; पदार्थ अलग, परमात्मा अलग। यह जो द्वैत है... । जीवन अलग, मृत्यु अलग; दिन अलग, रात अलग; यह जो द्वैत है, इस द्वैत को हटा दिया, तो सारा परदा गिर जाता है।
ये नजर का तेरी कसूर है, तू दुई के परदे को दे हटा
ये जहां तुझी में है बस रहा, कोई और तेरे सिवा नहीं।
यह सारा अस्तित्व तुम में बसा है। और तुम इस सारे अस्तित्व में बसे हो। यहां एक का वास है। यहां दूसरा है ही नहीं। "कोई और तेरे सिवा नहीं। तू है बंदा तो मैं खुदा सही।"
"तू मेरे करीब तो आ जरा; मुझे देख अपने पे कर नजर। कोई बंदा कोई खुदा नहीं।"
यही सारे सदगुरुओं ने कहा है। यही कबीर कह रहे हैं।
कबीर कह रहे हैंः कहै कबीर मैं पूरा पाया। मैंने संपूर्ण पा लिया, समग्र पा लिया। क्योंकि मुझे परमात्मा सब जगह दिखाई पड़ने लगा--मैं में भी, तू में भी; आकाश में भी, पृथ्वी में भी। "साहब सब घट दीठा"--वह जो प्यारा है, वह सभी घटों में दिखाई पड़ गया, इसलिए मैंने पूरा पा लिया है।
तू है बंदा तो मैं खुदा सही, तू मेरे करीब तो आ जरा। यही मूल संदेश हैः मेरे करीब आओ। "मुझे देख अपने पे कर नजर! कोई बंदा कोई खुदा नहीं।" यहां एक ही है। कौन बंदा, कौन खुदा? कौन भक्त, कौन भगवान?
तू मेरे वगैरे न जी सके, मैं तेरे वगैरे न रह सकूं
ये फसूने इश्को जमाल है, तू वरना मुझसे जुदा नहीं।
यह केवल प्रेम का एक खेल है--कि उधर तू, इधर मैं; कि "तू मेरे वगैर न जी सके, मैं तेरे वगैर न रह सकूं... ।" यह सब प्रेम का एक खेल है--छिया-छी है। अपने को ही बांट लिया है हमने दो में। इसलिए हिंदू इसे लीला कहते हैं--खेल। तेरा इश्क अस्ले हयात है, तो बिनाए जीस्त तेरी वफा
तू जो चाहे कौन से दर्द की, तेरे अपने पास दवा नहीं।
यही तुम्हें याद दिला रहा हूं कि तुम्हारे पास अमृत है, सब बीमारियों
की दवा है। तुम कहां भीख मांगते फिरते हो? तुम किसके सामने अपना भिक्षापात्र फैलाते हो? तुम सम्राटों के सम्राट हो, तुम शहनशाह हो।
तू जो चाहे कौन से दर्द की, तेरे अपने पास दवा नहीं।
जिसे तू गुनाहो खता कहे, वो है एक लगजिशे पा फक्त
तू सम्हल गया तो गुनाह नहीं, कोई और खता नहीं।
इस जगत में मुर्च्छित जीने के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। तुम सम्हल गए; तुम मूर्च्छित न रहे; तुमने जाग कर जिंदगी को जीना शुरू कर दिया; तुम होश से भर गए, ध्यान से भर गए... । "तू सम्हल गया तो गुनाह नहीं, कोई और खता नहीं।"
यही मेरा मूल संदेश है--जागो। तुमसे पुण्य करने को नहीं कहता। तुमसे पाप छोड़ने को नहीं कहता। तुमसे सिर्फ जागने कहता हूं। क्योंकि जागने में ही पाप छूट जाते हैं और पुण्य अपने आप प्रकट होता है। और जो अपने से प्रकट हो, वही पुण्य है।
"तू मेरा ही शौके तलाश है, तू है हुस्न का मेरे आइना

कोई और तेरे सिवा नहीं, कोई और मेरे सिवा नहीं।"
यह सारा जगत एक का ही अविर्भाव है। ये अनंत-अनंत छबियां हैं, ये अनंत-अनंत जो रूप हैं--इन सब के भीतर एक ही अरूप समाया है।

पांचवां प्रश्नः मुझे आपका प्रेम है या नहीं इससे मुझे जरा भी आंच नहीं है। मैंने आपको जो कष्ट दिए है, उसके लिए धन्यवाद भी नहीं दे पाता। इसका मुझे पूरा ज्ञान है कि आप जो भी करते हैं, मेरे हित में करते हैं। आप मुझे शिष्य की तरह स्वीकार नहीं करते, इससे जरूर कुछ पीड़ा होती है। लेकिन यह पीड़ा मीठी है, और पूछना चाहता हूं कि क्या आप भी इसका स्वाद ले सकते हैं? और प्रार्थना इतनी ही है कि धन्यवाद का भाव इतना सघन हो जाए कि बस, वही बचे।

पूछा है, स्वामी अच्युत बोधिसत्व ने।
शायद उन्हें यह भ्रांति हुई होगी कि मैं उनका नाम कभी नहीं लेता, तो उन्हें शिष्य की तरह स्वीकार नहीं करता हूं। नाम से इतना मोह न रखो। नाम तो कामचलाऊ है।
जो भी मेरे साथ जुड़ गया है, उसकी मुझे याद है--नाम लूं या न लूं। नाम तो औपचारिकता है। इसको बीच में मत आने दो।
और तुम पूछते हो कि "मुझे आपका प्रेम है या नहीं--इससे मुझे जरा भी आंच नहीं हैं।" आंच होगी, नहीं तो पूछते ही नहीं। समझा रहे हो अपने को, सांत्वना दे रहे हो--कि नहीं, कोई मुझे अड़चन नहीं है। मगर आंच होगी ही, अड़चन होगी ही। और होनी ही चाहिए।
तुमने समर्पण किया मेरे पास; तुमने मुझे अंगीकार किया; तुम हकदार हो मेरे प्रेम को पाने के। आंच होनी ही चाहिए। और प्रेम तुम पर बरस रहा है। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि हम शब्दों में कहा जाए, तो ही प्रेम भी पहचानते हैं। जब तक कोई तुमसे कहे ना--कि मुझे तुमसे प्रेम है, तब तुम समझते ही नहीं।
आंख नहीं देखते मेरी! तुम्हारी आंखों में झांकता हूं--यह नहीं देखते? मेरे पास तुम्हारे लिए प्रेम के अतिरिक्त और कुछ देने को है भी नहीं।
अब मैं एक-एक का हाथ पकड़ कर कहने चलूंगा कि मुझे तुमसे प्रेम है, तो उससे कुछ हल न होगा। और इतने दिन मेरे पास रहे हो, तो अब धीरे-धीरे निःशब्द सीखो। कहने की जरूरत न रहे।
किस-किस को कहूंगा! और कहने की आवश्यकता भी क्या है? और क्या तुम सोचते हो--कहने से ही प्रेम हो जाता है? कितने तो लोग तुमसे कहते हैं कि मुझे तुमसे प्रेम है। चारों तरफ तो कहने वाले लोग मौजूद हैंः पत्नी कहती है; बेटा कहता है; बाप कहता है; मां कहती है; मित्र कहते हैं--सब कहते हैं-- कि मुझे तुमसे प्रेम है। लेकिन यह प्रेम बहुत काम में आने वाला नहीं है। यह सब स्वार्थ है। उनके स्वार्थ हैं तुमसे।
मेरा तुमसे कोई स्वार्थ नहीं है। ऐसा कुछ भी तुम्हारे पास नहीं है, जो तुम मुझे दे सको। और ऐसी मुझे कोई भी जरूरत नहीं है, जो मैं तुमसे चाहूं। ऐसी ही संभावना में प्रेम घट सकता है जहां कुछ लेने-देने को नहीं है। जहां मैं तुमसे कुछ लेने को उत्सुक नहीं हूं; जहां तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं, जो तुम मुझे दे सको।
जो मुझे चाहिए, मुझे मिल गया है। जो मुझे चाहिए, भरपूर मिल गया है। कहै कबीर मैं पूरा पाया। और अब उससे आगे पाने को कुछ है नहीं। और जब परमात्मा दे रहा हो, तो अब किससे और मांगना है?
जहां-जहां स्वार्थ है, वहां-वहां प्रेम कहां? पत्नी कहती हैः मुझे तुमसे प्रेम है; उसका स्वार्थ है। बेटा कहता हैः मुझे तुमसे प्रेम है; उसका स्वार्थ है। बाप कहता हैः मुझे तुमसे प्रेम है; उसका स्वार्थ है। ये सब स्वार्थ के नाते हैं।
तुमने बाल्या भील की कहानी सुनी है? फिर बाल्या भील ही बाद में बाल्मीकि हो गया। वह लुटेरा था। नारद को पकड़ लिया था। लूटने ही जा रहा था

कि नारद ने कहाः "एक बात तो मैं तेरे से पूछ लूं। लूट भला। एक बात तेरे से पूछ लूं--कि यह तू लूट-पाट किसलिए करता है?"
उसने कहाः "किसलिए करता हूं? मेरी पत्नी है, बच्चे हैं, मां हैं, पिता हैं बूढ़े, उनकी सेवा करता हूं। उन्हीं के लिए धन कमाता हूं।"
नारद ने कहाः "तू एक काम कर; उनसे पूछ आ, कि इस पाप के हिस्सेदार उनमें
से कौन-कौन होंगे? नरक में सड़ेगा, तो तेरी पत्नी तेरे साथ जाएगी? तेरे पिता, तेरी मां तेरे बेटे... ?"
उसने कहा, "यह मैंने कभी सोचा नहीं! बाल्या भोला आदमी था। अकसर ऐसा होता है कि तुम्हारे तथाकथित सज्जनों से, तुम्हारे अपराधी ज्यादा भोले होते हैं। क्योंकि तुम्हारे तथाकथित सज्जन तो पाखंडी हैं।"
भोला-भाला आदमी था, उसने कहा, "यह बात मेरे मन में कभी आई नहीं। तुमने
भी खूब सवाल उठा दिया। अब देखो, कहीं धोखा मत दे देना कि मुझे इस बहाने घर भेज दो--कि तू पूछ मर आ--और तुम नदारद हो जाओ!"
तो नारद ने कहा कि "तू मुझे रस्सी से बांध दे, इस झाड़ से। उसने कहा, "यह बात जंचती है।"
वह बांध कर घर गया। उसने पत्नी से पूछा कि "मैं इतने पाप करता हूं; कभी किसी को मार भी डालता हूं; लूटने में करना ही पड़ता है। कितने लोगों को दुख देता हूं; सताता हूं। जब मैं मर जाऊंगा और नरक में कष्ट भोगूंगा, तू मेरे साथ जाएगी?"
पत्नी ने कहाः "इससे मुझे क्या लेना-देना? तुम मुझे पत्नी बना कर ले
आए थे, उस दिन तुमने तय कर लिया था कि मेरा निर्वाह करोगे, तो तुम निर्वाह करते हो। तुम कैसे करते हो, इससे मुझे कुछ लेना ही देना नहीं हैं। दुकान से करते हो, पुण्य से करते हो, कि पाप से करते हो--यह तुम समझो। निर्वाह तुम्हें मेरा करना है। मैं क्यों भागीदार होऊंगी! मुझे तो कुछ पता ही नहीं। मुझे तो कुछ लेना ही देना नहीं। तुम कैसे धन लाते हो--यह तुम समझो।" बूढ़े बाप से पूछा। बाप ने कहाः "मैं बूढ़ा हूं। तू मेरी सेवा न करे, तो कौन करेगा? मगर इससे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है कि तू कैसे लाता है। तू समझ।"
कोई राजी न था। बाल्या बदल कर लौटा। उसने नारद के अंग खोल दिए; उनके चरणों पर गिर पड़ा, और कहा मुझे कुछ मंत्र दो। देख कर आ गया कि--सोचता था कि जिनका मेरे प्रति प्रेम है--उनका सबका स्वार्थ है।"
मेरा तुमसे कोई भी स्वार्थ नहीं है। तुम यहां हो, तो तुम्हारी मौज; तूम यहां नहीं हो, तो तुम्हारी मौज। मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। और मेरे पास सिवाय प्रेम के कुछ देने को नहीं है। तुम चाहो लो, चाहे न लो; तुम चाहे स्वीकारो, चाहे न स्वीकारो। जैसे कोई फूल खिल जाता है, तो गंध फैलती है; फिर कोई चाहे अपने नाक पर रूमाल रख कर निकल जाए। रोशनी होती है, सुबह सूरज निकलता है, फिर चाहे तुम आंख बंद कर के बैठ जाओ; न स्वीकार करो। हवा का झोंका आता है; तुम चाहो, अपने दरवाजे बंद कर लो।
ऐसा मेरा प्रेम तुम्हारे पास आता हैः हवा के झोंके की तरह; फूल की गन्ध की तरह; सूरज की रोशनी की तरह। मगर फिर भी तुम्होर हाथ में है--तुम स्वीकार करो, न करो।
और शब्दों की फिकर मत करो। शब्दों में क्या रखा है! लाख दोहराओ कि मुझे तुमसे प्रेम है--इससे क्या होगा?
अकसर तो ऐसा होता है, तुम तभी दोहराना शुरू करते हो--मुझे तुमसे प्रेम है--जब प्रेम नहीं रह जाता। जब तक प्रेम होता है, तब प्रेम ही काफी होता है, शब्द की जरूरत नहीं होती।
जब दो प्रेमी नये-नये एक दूसरे के प्रेम में होते हैं, तो बहुत नहीं दोहराते--कि मुझे तुमसे प्रेम है। उनकी आंखें कहती हैं; उनकी तरंगें कहती हैं; उनका व्यक्तित्व कहता है। एक दूसरे को देख कर वे जैसे खिल उठते हैं। जैसे उमंग से भर जाते हैं--वह सब कहता है।
फिर शादी कर लेते हैं। फिर विवाह हो जाता है। फिर कहना शुरू करते हैं
कि मुझे तुमसे प्रेम है। क्योंकि अब डर लगता है कि अगर न कहा, तो अब आंखें

तो और हो गईं। अब तरंगें तो उठती नहीं। अब पत्नी को देख कर छाती बैठ जाती है।
पत्नी पति को देख कर उदास हो जाती है! जब भी तुम किन्हीं दो स्त्री पुरुषों को उदास जाते देखो, तो समझना पति-पत्नी हैं।
उदास, जड़ हो गया सब। कहीं कोई प्रेम की झलक नहीं रही। अब दोहराना पड़ता है।
डेल कारनेगी ने, जो कि अमरीका में इस समय पैगंबर समझने चाहिए; एक तरह
के पैगंबर हैं--अमरीकन पैगंबर! बाइबिल के बाद डेल कारनेगी की किताबें ही सब से ज्यादा अमरीका में बिकीं।
उन्होंने अपनी किताबों में लिखा है कि चाहे प्रेम हो या न हो, मगर पति
को रोज कम से कम चार-छह दफा मौका पाकर पत्नी के सामने दोहरा देना चाहिएः मुझे तुझ से प्रेम है। और कभी-कभी बाजार से फूल भी खरीद लाने चाहिए। और जब प्रेम बिल्कुल न रह जाए, तब तो यह बिल्कुल जरूरी है। क्योंकि फिर इसके ही सहारे चल सकता है।
शब्दों की तुम चिंता न करो।
यह डेल कारनेगी पाखंड सिखा रहे हैं। और अगर अमरीकन परिवार नष्ट हुआ,
तो इसी तरह की शिक्षाओं के कारण नष्ट हुआ।
जब हो तो ठीक, जब न हो तो स्पष्ट करो कि नहीं है।
लेकिन मेरा जो प्रेम है, उसके नहीं होने का उपाय नहीं है।
दो तरह प्रेम की अवस्थाएं हैं। एक तो प्रेम--संबंध का। तुम्हारा किसी
से प्रेम हो जाता है; यह एक संबंध है। फिर एक ऐसी अवस्था है, जब तुम प्रेमपूर्ण हो जाते हो। फिर यह संबंध नहीं है। तुम सिर्फ प्रेमपूर्ण हो। जिससे भी मिलोगे, प्रेमपूर्णता से मिलते हो।
जो मेरे पास हैं, जो मेरे निकट हैं, जो मेरे प्रेम में हैं--उनके प्रति मेरा प्रेम है। जो मेरे पास नहीं हैं, जो मेरे निकट नहीं हैं, जो मेरे प्रेम में नहीं हैं--जो मेरे विपरीत भी हैं--उनसे भी मेरा प्रेम है। उसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। वही एक देने को है। और कुछ है ही नहीं। राबिया के संबंध में कथा है कि उसने अपनी कुरान में सुधार कर लिए थे। राबिया सूफी फकीर औरत थी। बड़ी हिम्मत की औरत थी। मोहम्मद के जो गुण हैं, वही उसके गुण भी थे। इसलिए मैं मानता हूं कि वह हकदार थी कुरान में सुधार कर लेने के। हालांकि मुसलमानों ने बिल्कुल बरदाश्त नहीं किया; कोई कुरान में सुधार करे?
कुरान में एक वचन आता है कि शैतान से घृणा करो। उसने काट दिया। एक फकीर उसके घर मेहमान था। उस फकीर ने कुरान देखी। उसने कई जगह सुधार देखे। वह तो बड़ा हैरान हुआ।
इससे बड़ा कुफ्र मुसलमान सोच ही नहीं सकता--कि कुरान में और सुधार? जैसे कि तुम गीता में सुधार कर दो--कि यहां यहां गलती है, ठीक कर दें। या अब वेद में सुधार कर दो, तो हिंदू भी बरदाश्त नहीं करेंगे। और फिर मुसलमान तो बिल्कुल ही
बरदाश्त नहीं कर सकते।
वह जो फकीर था, वह तो एकदम नाराज हो गया कि किसने कुरान खराब कर दी! अपवित्र हो गई यह कुरान--राबिया?
राबिया ने कहा, "यह अपवित्र थी, मैंने इसे पवित्र किया है। इसमें यह बात भूल भरी है। यह किसी तरह प्रविष्ट हो गई होगी। यह मोहम्मद ने तो कही ही नहीं। यह मोहम्मद कह ही नहीं सकते।" हालांकि इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण राबिया के पास नहीं है। लेकिन अंतरसाक्ष्य है।
उसने कहा कि मैं जब यह नहीं कहती हूं, तो मोहम्मद भी नहीं कह सकते। मैं
यह कहना चाहती हूं कि जब से प्रभु-प्रेम का मेरे हृदय में पदार्पण हुआ है; जब से मैं उसके प्रेम से भर गई हूं, तब से मैं किसी को घृणा करने में असमर्थ हो गई हूं। शैतान भी सामने खड़ा हो, तो मैं प्रेम कर सकती हूं, इसलिए मैंने यह वचन काट दिया। अब मैं पालन ही नहीं कर सकती; इस वचन को कैसे अपने कुरान में रखूं? यह मेरी किताब न रहेगी फिर। जहां मैं हूं, वहां से शैतान को भी घृणा नहीं की जा सकती। घृणा ही नहीं की जा सकती। प्रेम मेरा स्वभाव है।"

तो अच्युत बोधिसत्व, तुम चिंताओं में न पड़ो। चाहे मैंने तुमसे कभी कहा न हो; कहने की जरूरत नहीं समझी।
शब्दों पर ध्यान मत दो। जो निशब्द मैं तुम्हें दे रहा हूं, उस पर खयाल करो।
और शिष्य की तरह मेरे स्वीकार करने का प्रश्न नहीं उठता। तुमने जिस दिन मुझे गुरु की तरह स्वीकार किया, उसी दिन तुम स्वीकार हो गए। शिष्य होना तुम्हारी भावदशा है, मेरी स्वीकृति-अस्वीकृति की बात ही नहीं है। जो आदमी यहां बैठ कर मुझसे सीखना चाहता है, वह शिष्य है। और तुम अगर वृक्षों से सीख लो, तो वृक्षों के शिष्य हो गए। चांद-तारों से सीख लो, तो चांद-तारों के शिष्य हो गए।
सूफी फकीर हसन जब मरा। उससे किसी ने पूछा कि तेरे गुरु कितने थे? उसने कहाः गिनाना बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि इतने-इतने गुरु थे कि मैं तुम्हें कहां गिनाऊंगा! गांव-गांव मेरे गुरु फैले हैं। जिससे मैंने सीखा, वही मेरा गुरु है। जहां मेरा सिर झुका, वहीं मेरा गुरु।"
फिर भी जिद्द की लोगों ने कि कुछ तो कहो, तो उसने कहा, "तुम मानते नहीं, इसलिए सुनो। पहला गुरु था मेरा--एक चोर।" वे तो लोग बहुत चौंके, उन्होंने कहाः चोर? कहते क्या हो! होश में हो। मरते वक्त कहीं एैसा तो नहीं कि दिमाग गड़बड़ा गया है! चोर और गुरु?"
उसने कहाः हां, चोर और गुरु। मैं एक गांव में आधी रात पहुंचा। रास्ता भटक गया था। सब लोग सो गए थे, एक चोर ही जग रहा था। वह अपनी तैयारी कर रहा था जाने की। वह घर से निकल ही रहा था। मैंने उससे कहाः "भाई, अब मैं कहां जाऊं? रात आधी हो गई। दरवाजे सब बंद हैं। धर्मशालाएं भी बंद हो गईं। किसको जगाऊ नींद से? तू मुझे रात ठहरने देगा?"
उसने कहाः "स्वागत आपका।" "लेकिन", उसने कहाः "एक बात मैं जाहिर कर दूंः मैं चोर हूं। मैं आदमी अच्छे घर का नहीं हूं। तुम अजनबी मालूम पड़ते हो। इस गांव में कोई आदमी मेरे घर में नहीं आना चाहेगा। मैं दूसरों के घर में जाता हूं, तो लोग नहीं घुसने देते। मेरे घर तो कौन आएगा? मुझे भी रात अंधेरे में जब लोग सो जात हैं, तब उनके घरों में जाना पड़ता हैं। और मेरे घर के पास से लोग बच कर निकलते हैं। मैं जाहिर चोर हूं। इस गांव का जो नवाब है, वह भी मुझसे डरता और कंपता है। पुलिसवाले थक आते हैं। तुम अपने हाथ आ रहे हो! मैं तुम्हें वचन नहीं देता। रात-बेरात लूट लूं! तो तुम जानो।"
हसन ने कहा कि मैंने इतना सच्चा और ईमानदार आदमी कभी देखा ही नहीं था,
जो खुद कहे कि मैं चोर हूं! और सावधान कर दे। यह तो साधु का लक्षण है। तो रुक गया। हसन ने कहा कि मैं रुकूंगा। तू मुझे लूट ही ले, तो मुझे खुशी होगी।
सुबह-सुबह चोर वापस लौटा। हसन ने दरवाजा खोला। पूछाः "कुछ मिला?" उसने कहाः "आज तो नहीं मिला, लेकिन फिर रात कोशिश करूंगा।" ऐसा, हसन ने कहा, एक महीने तक मैं उसके घर रुका, और एक महीने तक उसे कभी कुछ न मिला।
वह रोज शाम जाता, उसी उत्साह उसी उमंग से--और रोज सुबह जब मैं पूछता-- कुछ मिला भाई? तो वह कहता, अभी तो नहीं मिला। लेकिन क्या है, मिलेगा। आज नहीं तो कल नहीं तो परसों। कोशिश जारी रहनी चाहिए।
तो हसन ने कहा कि जब मैं परमात्मा की तलाश में गांव-गांव, जंगल-जंगल भटकता था और रोज हार जाता था, और रोज-रोज सोचता था कि है भी ईश्वर या नहीं, तब मुझे उस चोर की याद आती थी, कि वह चोर साधारण संपत्ति चुराने चला था; मैं परमात्मा को चुराने चला हूं। मैं परम संपत्ति का अधिकारी बनने चला हूं। उस चोर के मन में कभी निराशा न आई; मेरे भी निराशा का कोई कारण नहीं है। ऐसे मैं लगा ही रहा। इस चोर ने मुझे बचाया; नहीं तो मैं कई दफा भाग गया होता, छोड़ कर यह सब खोज। तो जिस दिन मुझे परमात्मा मिला, मैंने पहला धन्यवाद अपने उस चोर-गुरु को दिया।
तब तो लोग उत्सुक हो गए। उन्होंने कहा, "कुछ और कहो; इसके पहले कि तुम विदा हो जाओ। यह तो बड़ी आश्चर्य की बात तुमने कही; बड़ी सार्थक भी।
उसने कहाः और एक दूसरे गांव में ऐसा हुआ; मैं गांव में प्रवेश किया।
एक छोटा सा बच्चा, हाथ में दीया लिए जा रहा था किसी मजार पर चढ़ाने को।

मैंने उससे पूछा कि "बेटे, दीया तूने ही जलाया? उसने कहा, "हां, मैंने ही जलाया।" तो मैंने उससे कहा कि "मुझे यह बता, यह रोशनी कहां से आती है? तूने ही जलाया। तूने यह रोशनी आते देखी? यह कहां से आती हैं?"
मैं सिर्फ मजाक कर रहा था--हसन ने कहा। छोटा बच्चा, प्यारा बच्चा था; मैं उसे थोड़ी पहेली में डालना चाहता था। लेकिन उसने बड़ी झंझट कर दी। उसने फूंक मार कर दीया बुझा दिया, और कहा कि सुनो, तुमने देखा; ज्योति चली गई; कहां चली गई?
मुझे झुक कर उसके पैर छूने पड़े। मैं सोचता था, वह बच्चा है, वह मेरा अहंकार था। मैं सोचता था, मैं उसे उलझा दूंगा, वह मेरा अहंकार था। उसने मुझे उलझा दिया। उसने मेरे सामने एक प्रश्न-चिह्न खड़ा कर दिया।
ऐसे हसन ने अपने गुरुओं की कहानियां कहीं।
तीसरा गुरु हसन ने कहा, एक कुत्ता था। मैं बैठा था एक नदी के किनारे-- हसन ने कहा--और एक कुत्ता आया, प्यास से तड़फड़ाता। धूप घनी है, मरुस्थल है। नदी के किनारे तो आया, लेकिन जैसे उसने झांक कर देखा, उसे दूसरा कुत्ता दिखाई पड़ा पानी में, तो वह डर गया। तो वह पीछे हट गया। प्यास खींचे पानी की तरफ; भय खींचे पानी के विपरीत। जब भी जाए, नदी के पास, तो अपनी झलक दिखाई पड़े; घबड़ा जाए। पीछे लौट आए। मगर रुक भी न सके पीछे, क्योंकि प्यास तड़फा रही है। पसीना-पसीना हो रहा है। उसका कंठ दिखाई पड़ रहा है कि सूखा जा रहा है। और मैं बैठा देखता रहा। देखता रहा।
फिर उसने हिम्मत की और एक छलांग लगा दी--आंख बंद करके कूद ही गया पानी में। फिर दिल खोल कर पानी पीया, और दिल खोल कर नहाया। कूदते ही वह जो पानी में तस्वीर बनती थी, मिट गई।
हसन ने कहा, ऐसी ही हालत मेरी रही। परमात्मा में झांक-झांक कर देखता था, डर-डर जाता था। अपना ही अहंकार वहां दिखाई पड़ता था, वही मुझे डरा देता था। लौट-लौट आता। लेकिन प्यास भी गहरी थी। उस कुत्ते की याद करता; उस कुत्ते की याद करता; सोचता। एक दिन छलांग मार दी; कूद ही गया; सब मिट गया। मैं भी मिट गया; अहंकार की छाया बनती थी, वह भी मिट गई; खूब दिल भर के पीया। कहै कबीर मैं पूरा पाया... ।

आखिरी प्रश्नः प्रार्थना यानी क्या?

इन थोड़े से शब्दों पर ध्यान करनाः
तुम्हारे नूर से रौशन है कायनात तमाम
हमारे घर पे भी आओ बहुत अंधेरा है।
तुम आंख से हुऐ ओझल बढ़े घने साए।
छुपो न, सामने आओ बहुत अंधेरा है।
जला चुका है फलक अपनी सारी कंदीलें
तुम अपना मुखड़ा दिखाओ बहुत अंधेरा है।
ये जलते-जलते बने रश्के मेहरे आलम ताब
दिलो जिगर जलाओ बहुत अंधेरा है।
हुए हजारों दीये जोत से तेरी रौशन
जलाओ और जलाओ बहुत अंधेरा है।
भक्त की प्रार्थना इतनी ही है। "तमसो मा ज्योतिर्गमय,--मुझे अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चलो। "मृत्योर्मा अमृतं गमय"--मुझे मृत्यु से अमृत की तरफ ले चलो। "असतो मा सद्गमय"--मुझे असत से सत्य की तरफ ले चलो। प्रभु! प्रकाश बरसाओ।"
तुम्हारे नूर से रौशन है कायनात तमाम
हमारे घर पे भी आओ बहुत अंधेरा है।
प्रार्थना निमंत्रण है प्रभु को।
तुम आंख से हुए ओझल बढ़े घने साए
छुपो न, सामने आओ, बहुत अंधेरा है।
जला चुका है फलक अपनी सारी कंदीले तुम अपना मुखड़ा दिखाओ, बहुत अंधेरा है।

ये जलते-जलते बने रश्के मेहरे आलम ताब
दिलो जिगर जलाओ, बहुत अंधेरा है।
भक्त कहता हैः मेरे हृदय को रोशन करो। मेरे हृदय की ज्योती बनाओ; मेरे हृदय को जलाओ।
दिलो जिगर को जलाओ, बहुत अंधेरा है।
हुए हजारों दीये जोत से तेरी रौशन
भक्त कहता हैः कितने दीये तेरी ज्योति से रोशन हुए! कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई नानक... । कितने कितने दीये तेरी ज्योति से जले हैं!
हुए हजारों दीये जोत से तेरी रोशन
जलाओ और जलाओ, बहुत अंधेरा है।
इस मेरे छोटे दीये को भी जला। और तेरी ही रोशनी से सारा अस्तित्व भरा है; मेरे घर से ही क्या नाराजगी! यहां मेरे घर में बहुत अंधेरा है, तू यहां भी आ।
प्रार्थना निमंत्रण है। प्रार्थना पुकार है। प्रार्थना प्रेम है।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
नौवां प्रवचन

मन लागो यार फकीरी में

सूत्र

मन लागो मेरा यार फकीरी में।
जो सुख पायो राम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में।
भला बुरा सबको सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में।।
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनी आइ सबूरी में।
हाथ में कूरी बगल में सोंटा, चारो दिसि जागीरी में।।
आखिरी यह तन खाक मिलेगा, कहा फिरत मगरूरी में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिले सबूरी में।।

समझ देख मन मीत पियरवा, आसिक होकर सोना क्या करे।
पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय-पाय फिर खोना क्या रे।।
जब अंखियन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै कबीर प्रेम का मारग, सिर देना तो रोना क्या रे।।

सती को कौन सिखावता है, संग स्वामी के तन जारना जी।
प्रेम को कौन सिखावता है, त्यागी मांही भोग का पावना जी।

करिश्मे हैं बस इक हकीकत के दो
मेरी बन्दगी और खुदाई तेरी
है इक दूसरे की वो शाने नजूल
गरीबी मेरी किब्रयाई तेरी
जहां में जहूरे खुदी मुझसे है
मुझी में छुपी है खुदाई तेरी उठाया है बारे अमानत तेरा मेरे दम से है सब खुदाई तेरी जो देखो तो दो रुख है तस्वीर के
फकीरी मेरी पादशाही तेरी
जरा और भी मश्के नाज
मुझे हर अदा आज भाई तेरी
जो ठुकरा दिए मैंने दोनों जहां
तो किस्मत में आई गदाई तेरी।

जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः "धन्यभागी हैं वे, जो दरिद्र हैं।--ब्लेसिड
आर दि पुअर इन स्प्रीट।" आज का सूत्र जीसस के इसी वचन की व्याख्या है--और अनूठी व्याख्या है!
जीसस कहते हैंः धन्यभागी हैं वे, जो आत्मा से दरिद्र हैं; जो भीतर से गरीब हैं--अर्थात जो भीतर से खाली हैं, भरे नहीं हैं; जो भीतर शून्य से भरे हैं, जिनके भीतर एक आकाश है, रिक्त। क्योंकि उस रिक्त आकाश में ही परमात्मा प्रवेश कर सकता है।
गरीबी का मतलब समझना। इसलिए शब्द जो प्रयोग जीसस ने किए हैं--"पुअर इन
दि स्प्रिट"--भीतर जो दरिद्र हैं; अंतस्तल में जो दरिद्र हैं; जिनके भीतर कुछ भी दावा नहीं है--मेरे-तेरे का; जिनके भीतर न धन है, न पुण्य है, न प्रतिष्ठा है; जिन्होंने अपने भीतर कुछ इकट्ठा ही नहीं किया है; जिनके अंतर्जगत में किसी तरह का कूड़ा-कर्कट नहीं है; जो खाई की भांति हैं--अपने से खाली। तो जब वर्षा होगी, भरे पहाड़ खाली रह जाएंगे; और खाली खाई भर जाएगी और झील बन जाएगी।
वर्षा तो पहाड़ों पर भी होती है, लेकिन पहाड़ रिक्त के रिक्त रह जाते हैं--सूखे के सूखे; क्योंकि बहुत भरे हैं। और कुछ भर लें, इसकी सुविधा नहीं

है। खाइयां भर जाती हैं, क्योंकि खाइयां खाली हैं। जितनी बड़ी खाई होगी, उतनी ही बड़ी झील बन जाती है। जितना बड़ा शून्य होगा, उतना ही पूर्ण भर जाता है।
अंतस्तल की गरीबी का अर्थः भीतर कुछ भी न हो; कोई साज नहीं, कोई सामान नहीं। "मैं" का भाव भी न हो। क्योंकि "मैं" का भाव भी हो, तो पर्याप्त है तुम्हें भर देने को। जहां तुम हो, वहां परमात्मा का प्रवेश नहीं। भीतर कुछ हो ही न।
इसलिए ध्यान की परिभाषा है: शून्यता। इसलिए बुद्ध ने तो "परमात्मा" शब्द को भी छोड़ दिया और कहा कि तुम शून्य हो जाओ; शेष सब अपने से हो जाएगा। कुछ और करना नहीं है। परमात्मा तो आता ही है। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है। और बुद्ध ने ठीक ही किया कि परमात्मा की बात न उठाई। क्योंकि लोग ऐसे पागल हैं कि अगर शून्य भी होने को राजी होते हैं, शून्य की तरफ भी जाते हैं--तो इसी आकांक्षा से भरे जाते हैं कि परमात्मा मिलेगा। मगर यह आकांक्षा तुम्हें खाली ही न होने देगी, शून्य ही न होने देगी। यह आकांक्षा तो पहले ही भर देगी तुम्हें।
इस सूत्र को खूब खयाल में लेना: परमात्मा की आकांक्षा भी हो तो परमात्मा के मार्ग पर बाधा बन जाती है।
सब आकांक्षाएं बाधाएं हैं, क्योंकि सभी आकांक्षाएं तुम्हें भर देती हैं। जब निष्कांक्षा से भरा हुआ मन होता है--अर्थात खाली मन; जब निर्वासना में मन होता है--अर्थात खाली मन; जब कुछ पाने की इच्छा नहीं; जब कुछ पाया है, इसका दावा नहीं; जब न अतीत होता है तुम्हारे भीतर, न भविष्य होता है, क्योंकि अतीत भी संग्रह है और भविष्य भी; जब तुम इस मौजूद क्षण में सिर्फ मौजूद होते हो, सिर्फ अस्तित्ववान होते हो--उसी खाली घड़ी में, उसी अंतराल में सब मिल जाता है।
"करिश्मे हैं बस इक हकीकत के दो।" सत्य तो एक है। यथार्थ तो एक है। हकीकत तो एक है। लेकिन दो चमत्कार हैंः "मेरी बंदगी और खुदाई तेरी"--मेरा झुकना और तेरा मुझ में उतर आना; मेरा मिटना--और तेरा मुझ में आ जाना; मेरा न होना--और तेरा हो जाना।
कबीर ने कहाः "हेरत हेरत हे सखि रह्या कबीर हिराई"। खोजते-खोजते कबीर
खो गया और जिस दिन कबीर खोया, उसी दिन मिलन हुआ। जब तक कबीर था, तब तक मिलन नहीं। जिस दिन तुम खोजते-खोजते खो जाओगे... ।
ध्यान रहे: तुम्हारा परमात्मा से मिलन कभी भी नहीं होगा। क्योंकि तुम ही तो बाधा हो मिलन में। तुम्हारा मिलन कैसे होगा! तुम्हारे सामने परमात्मा कभी खड़ा नहीं होगा, क्योंकि तुम्हीं तो परदा हो तुम्हारी आंखों पर। तुम्हीं तो अड़चन हो; तुम्हीं तो अवरोध हो। तुम हट जाओगे, तो परमात्मा होगा।
इसलिए भक्त और भगवान का मिलन नहीं होता; इस अर्थ में नहीं होता कि दोनों मिलते हैं, झुक-झुक कर नमस्कार करते हैं, कि गले एक-दूसरे को लगाते हैं। मिलन ऐसा होता है कि भक्त तो मिट जाता है, और भगवान हो जाता है। जब तक भक्त है, तब तक भगवान नहीं; और जब भगवान है, तब भक्त कहां!
करिश्में हैं बस इक हकीकत के दो
मेरी बंदगी और खुदाई तेरी
हैं इक दूसरे की वो शाने न.जूल
गरीबी मेरी किब्रयाई तेरी
गरीबी मेरी, मेरा ना-कुछ होना और तेरा सब-कुछ होकर बरस जाना। मेरी दरिद्रता--और तेरी करुणा। किब्रयाई! मेरा शून्यभाव--और तेरी सर्व प्रभुतामय उपस्थिति। इधर मैं मिटता हूं, उधर तू प्रकट होने लगता है। और ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, अलग-अलग नहीं।
जो देखो तो दो रुख हैं तस्वीर के
फकीरी मेरी पादशाही तेरी।
जो आदमी फकीर होने को राजी हो गया, वह बादशाह हो जाता है। इसलिए स्वामी राम अपने को कहते थेः "बादशाह राम"--ठीक कहते थे। इसलिए तो हमने इस देश में बादशाहों को नहीं पूजा; फकीरों को पूजा। क्योंकि हमने असली

बादशाहत पहचान ली। जिनके पास बाहर का ही धन है, उनकी बादशाहत नकली है। जिनके पास मात्र धन ही है, उनकी बादशाहत नकली है; ठीकरों पर निर्भर है। जिनके पास ध्यान है, उन्हीं की बादशाहत असली है। क्योंकि धन तो छिन जाएगा; ध्यान नहीं छिनता है। धन तो लुट ही जाएगा; ध्यान नहीं लुटता है। धन तो मौत ले लेगी; ध्यान तुम्हारे साथ जाएगा। आग भी उसे जलाती नहीं और शस्त्र भी उसे छेदते नहीं। नैनं छिन्दंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। नहीं; आग भी नहीं जलाएगी और शस्त्र भी उसे छेदेंगे नहीं।
एक ध्यान ऐसी संपदा है, जो सदा के लिए तुम्हारी है। लेकिन ध्यान के लिए धन को ठुकराना जरूरी है।
जो देखो तो दो रुख हैं तस्वीर के
फकीरी मेरी पादशाही तेरी
जरा और भी और भी मश्के नाज
मुझे हर अदा आज भाई तेरी।
जिस दिन तुम जानोगे कि तुम्हारी गरीबी में परमात्मा उतरता है, उस दिन तुम्हें यह अदा भी भाएगी। हालांकि सदा तुम इससे डरे रहे। तुम भयभीत रहे कि कहीं मैं ना-कुछ न हो जाऊं!
आदमी जिंदगी भर करता क्या है? एक ही काम करता है कि मैं कुछ हूं; सिद्ध करना चाहता है कि मैं कुछ हूं; कुछ विशिष्ट, कुछ खास; साधारण नहीं हूं। आम नहीं हूं, ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा नहीं हूं; विशिष्ट हूं; प्रधानमंत्री हूं; राष्ट्रपति हूं; धनी हूं; प्रख्यात हूं। कोई न कोई उपाय आदमी खोजता है। अगर ठीक उपाय नहीं मिलते, तो गलत उपाय भी खोजता है। लेकिन बिना नाम के कोई नहीं रहना चाहता। चाहे दुनिया यही क्यों न कहे कि डाकू हूं, हत्यारा हूं-- मगर दुनिया कुछ कहे!
इसलिए लोग कहते हैंः नाम न हो तो कोई फिकर नहीं, बदनामी भी हो--कुछ नाम
तो होगा! मगर आदमी बिना नाम के नहीं जीना चाहता। शैतान ही कोई क्यों न कहे; मगर लोग जानें कि मैं हूं! मेरी उपस्थिति अहसास की जाए।
सारी जिंदगी, सारे लोगों की जिंदगी एक सूत्र में ढल जाती है कि हर आदमी यह सिद्ध करने में लगा है कि मैं कुछ हूं। हर आदमी चाह रहा हैः सारी दुनिया मुझ पर ध्यान दे कि मैं यहां हूं! मैं ऐसे ही न गुजर जाऊं कि जिसे किसी ने जाना नहीं और जो इतिहास पर कोई चिह्न नहीं छोड़ गया और समय कि धारा पर जिसने कुछ हस्ताक्षर नहीं किए। मैं याददाश्त छोड़ जाऊं! मैं तो मिट जाऊंगा, लेकिन नाम रहे, यश रहे, प्रतिष्ठा रहे; अगर यश-प्रतिष्ठा न हो सकती हो, तो अप्रतिष्ठा रहे।
तुम चकित होओगे यह जान कर कि तुम्हारे राजनेता और तुम्हारे अपराधियों में बहुत फर्क नहीं होता,
दोनों की इच्छा एक ही है। मनस्विद से पूछो। इन सौ वर्षों में मनसविद
ने बहुत सी बातें उदघाटित की हैं जो हर आदमी को जान लेनी जरूरी हैं। मनसविद कहता है: अपराधियों और राजनेता में कोई फर्क नहीं है। राजनेता अगर हार जाए, तो अपराधी हो जाए; उसकी तैयारी रखेगा। और अगर अपराधी को मौका मिलता, तो वह राजनेता खुद भी होना चाहता। नहीं मिल सका मौका। मगर दोनों की इच्छा है: हम कुछ हैं!
तुम्हें पता हैः आडोल्फ हिटलर सबसे पहले चित्रकार होना चाहता था! लेकिन विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं मिल सका। अब कहां चित्रकार होना, कहां एक सृजनात्मक विधा और कहां फिर दुनिया का सबसे बड़ा हत्यारा हो जाना! मगर गौर से देखो तो बात वही हैः कुछ होना चाहता था। अगर चित्रकार होने को नहीं मिला, अगर चित्र बनाने को नहीं मिले; कुछ बनाना चाहता था, अगर वह सुविधा नहीं मिली तो कुछ मिटाएगा--लेकिन कुछ तो होकर रहेगा!
जरा और भी और भी मश्के नाज
मुझे हर अदा आज भाई तेरी।
जिस दिन तुम जानोगे कि शून्य होने में अदभुत आनंद है, उस दिन तुम कहोगे: "तेरी हर अदा----।" तब तो मौत भी उसकी एक अदा है; जीवन भी उसकी एक अदा है। तब तो मौत में भी तुम नाचते हुए प्रविष्ट कर जाओगे। बांसुरी बजाते हुए मौत का भी स्वागत कर लोगे। वह भी उसकी अदा है।

वह मिटाए, तो भी मजा है। वह बनाए तो भी मजा है। उसके साथ, "उसके" होने में मजा है। उसके बिना कुछ भी मजा नहीं। उसके बिना सिवाय तकलीफ के और कुछ भी नहीं है।
जो ठुकरा दिए मैंने दोनों जहां
तो किस्मत में आई गदाई तेरी
जब मैंने दोनों जहान, इस लोक और परलोक, दोनो की फिक्र छोड़ दी... । क्योंकि दो तरह के लोग हैं। कुछ लोग यहां धन इकट्ठा कर रहे हैं, कुछ लोग परलोक में धन इकट्ठा कर रहे हैं। इनमें बहुत भेद मत करना।
जिनको तुम भोगी कहते हो, वे यहां धन इकट्ठा कर रहे हैं। जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे वहां धन इकट्ठा कर रहे हैं। मगर दोनों धन इकट्ठा कर रहे हैं। दोनों की दृष्टि धन पर लगी है। भोगी चाहता हैः यहां सुख भोग लूं! त्यागी सोचता है: यहां तो क्या मिलेगा? क्षणभंगुर है। वहां भोग लूं; पुण्य कर लूं--उपवास-व्रत-नियम! मगर दोनों की नजर क्या है? दोनों कि दृष्टि क्या है? कहीं भी भोग मिले। कहीं भी बलशाली हो जाऊं। शून्य न रह जाऊं।
"जो ठुकरा दिए मैंने दोनों जहां... !" जिसने यहां का धन और वहां का धन दोनों की आकांक्षा छोड़ दी, उसकी किस्मत में अपूर्व घटना उठती है। "तो किस्मत में आई गदाई तेरी।" तो फिर तेरी फकीरी हाथ में लगी।
फकीरी बड़ी कीमत से मिलती है; मुफ्त नहीं मिलती। ऐसा मत सोचना कि हर कोई फकीर हो जाता है। फकीरी किस्मत से मिलती है।
बल्ख और बुखारा का सम्राट था, इब्राहीम। वह फकीर हो गया था। जब फकीर
हो गया और एक सराय में ठहरा था, पहली ही रात, एक और भी फकीर वहां ठहरा था। दोनों फकीर अपरिचित थे। वह दूसरा फकीर उसे अपनी दुख की कथाएं कहने लगा--कि कुछ सार नहीं है। छोड़ कर भी देख लिया। न तो पाने से कुछ मिलता है, न छोड़ने से कुछ मिलता है। दुख वहां भी थे, दुख यहां भी हैं। गृहस्थ भी रह कर देख लिया, संन्यस्त होकर भी देख लिया--कुछ मिलता नहीं। है नहीं कुछ सार। सब बेकार है।
वह संन्यास के खिलाफ बहुत सी बातें कहने लगा। अनुभवी था। कोई पंद्रह बीस साल से संन्यासी था।
इब्राहीम सुनता रहा, सुनता रहा। अंत में इब्राहीम ने इतना ही कहा कि मुझे लगता है तुम्हे संन्यास सस्ता मिल गया। उस आदमी ने पूछा: "तुम्हारा मतलब? संन्यास भी सस्ता और महंगा होता है?"
इब्राहीम ने कहा कि "तुम्हें सस्ता हाथ लग गया, इसलिए तुम मूल्य नहीं समझ पाए। मुझे तो छोड़े अभी कुछ ही घंटे हुए हैं, लेकिन जैसा आनंद मुझपर बरसा है, ऐसा आनंद मेरे जीवन में कभी नहीं था। तुम पंद्रह-बीस साल से संन्यासी हो और तुम कहते हो, कि तुम्हारे जीवन में कोई किरण नहीं उतरी! तो कहीं न कहीं भूल-चूक हो रही है। तुमने इस जहान को तो छोड़ दिया, उस जहान को पकड़े हुए हो।"
मगर फर्क क्या है? वही मन जो यहां पकड़ता है, वहां पकड़ता है। वही मन जो यहां भोगना चाहता है, वहां भोगता है। वही मन जो यहां सुंदर स्त्रियां खोजता है, वहां अप्सराएं निर्मित करता है। वही मन जो यहां शराब घर मे जाता है, वहां स्वर्ग में, बहिश्त में शराब के चश्मे बहाता है। क्या है? वही मन, जो यहां हारा-थका है, फिर से आशांवित हो जाता है कि चलो, यहां नहीं मिला, वहां मिल जाएगा।
दोनों जहान छोड़ने का मतलब हैः मन की यह आदत छूट जाए।
इब्राहीम ठीक कहता है कि एक संन्यास है, जो इस संसार को छोड़ने से नहीं मिलता। क्योंकि इस संसार को छोड़ने के पीछे उस संसार को पाने की आकांक्षा अगर बनी रही, तो धोखा ही हो गया; कुछ फर्क नही पड़ा।
तुम जाओ, अपने मुनियों से पूछो, साधुओं से पूछो: क्यों संसार छोड़ दिया? अगर वे कहें--कुछ पाने के लिए, तो समझना कि बात हुई नहीं, चूक गए। अगर वे कहें, "कुछ पाने को है ही नहीं, इसलिए"--तो समझना कि संन्यास घटित हुआ है।
पाना ही छूट गया--तो संन्यास। यहां पाना, वहां पाना--इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। और जब कभी ऐसा संन्यास घटता है तो अहोभाग्य है।

जो ठुकरा दिए मैंने दोनों जहां
तो किस्मत में आई गदाई तेरी।
फिर तेरी फकीरी हाथ लगी।
कबीर का वचन सुनो: "मन लागो मेरा यार फकीरी में।"
मन तो लगता ही नहीं फकीरी में। जब मन फकीरी में लग जाता है, तो मन मन नहीं रह जाता। यह पहली बात समझ लेना।
मन तो अमीरी में लगता है। मन का अर्थ ही है: और ज्यादा और ज्यादा की आकांक्षा। मन का अर्थ है: जो है, वह काफी नहीं है, और चाहिए। और मन कभी भी ऐसा नहीं मानता कि काफी हो गया--कभी नहीं मानता। उसकी "और" की दौड़ विक्षिप्त है। वह जारी रहती है। हजार रुपये हैं, तो दस हजार चाहिए; दस हजार हैं, तो दस लाख चाहिए; दस लाख हैं, तो दस करोड़ चाहिए--मांगता ही चला जाता है। मन की कल्पना की कोई सीमा नहीं है। ज्ञान है--तो और ज्ञान चाहिए। त्याग है--तो और त्याग चाहिए।
ध्यान है तो और ध्यान चाहिए। मगर चाहिए और!
मन यानी और। और की वासना का नाम मन है।
यह कबीर का सूत्र बड़ा अदभुत है
"मन लागो मेरा यार फकीरी में।"
जिस दिन मन फकीरी में लग गया, उसका मतलब क्या हुआ? उसका मतलब हुआः मन
अब मन न रहा, अ-मन, हुआ। मन अब और की मांग नहीं कर रहा है; जो है, उससे समग्ररूपेण तृप्त है; जैसा है उसमें रत्ती भर शिकायत नहीं है! फकीरी का यह मतलब होता है।
फकीरी का यह मतलब नहीं होता कि तुम दुकान छोड़ कर भाग जाओ। क्योंकि दुकान छोड़ कर भागने में कोई न कोई वासना ही काम करेगी।
कबीर ने कभी दुकान नहीं छोड़ी, याद रखना। कबीर ने अभी अपना काम नहीं छोड़ा, पत्नी नहीं छोड़ी, बच्चे नहीं छोड़े। कबीर परमज्ञान को उपलब्ध हो गए लेकिन जुलाहे थे, सो जुलाहे रहे। बुनते थे, सो बुनते रहे। कपड़े बुनते थे तो कपड़ों का बुनना जारी रहा। अब उन्हीं कपड़ों में राम की धुन भी बनने लगे। अब उन्हीं कपड़ों में अपना हृदय भी फैलाने लगे। पहले साधारण आदमियों के लिए बुनते थे, फिर राम के लिए बुनने लगे। फिर हर ग्राहक राम हो गया। यह क्रांति तो हुई। फिर ग्राहक-ग्राहक को रमा कहने लगे; साहिब कहने लगे। यह तो फर्क हुआ। लेकिन जो काम था, वह वैसाही चलता रहा।
कबीर के भक्त उनसे कहते थे... । हजारों उनके भक्त थे। उनसे कहते थे: "अब आप ये कपड़े बुनना बंद कर दें; शोभा नहीं देता। आपको कमी क्या है? हम हैं, हम सब फिक्र करने को तैयार हैं।" मगर कबीर हंसते। वे कहते कि जो प्रभु ने मुझे अवसर दिया है और जो करने की आज्ञा दी है, वह मैं करता रहूंगा। जब तक हाथ-पैर में बल है, जो मैं जानता हूं वह करता रहूंगा। फिर मुझे बड़ा आनंद है। फिर तुमने देखा नहींः वे जो बाजार में राम कभी-कभी मेरा कपड़ा लेने आते है, कितने प्रसन्न होकर जाते हैं। यह मेरी पूजा। यह मेरी आराधना।
गुण तो बदला लेकिन काम वही का वही रहा। तो कबीर की फकीरी का मतलबः घर-द्वार छोड़ कर भाग जाने से नहीं है। कबीर की फकीरी बड़ी आंतरिक है। बड़ी हार्दिक है। कबीर की फकीरी समझ की क्रांति है।
"मन लागो मेरा यार फकीरी में।"
तो फकीरी का अर्थ क्या? फकीरी का अर्थः जो है, उससे तृप्ति। जैसा है, उससे तृप्ति। और की आकांक्षा मर गई। परिग्रह के भाव मुक्ति हो गई। इसलिए कबीर कहते हैंः क्या मेरा क्या तेरा? शरम नहीं आती--कबीर कहते हैं--किसी चीज को अपनी बताने में? सब परमात्मा की है। सबै भूमि गोपाल की। तुझे बीच में अपना दावा करते शर्म नहीं आती? न तो कुछ लेकर आया, न कुछ लेकर जाएगा। और बीच में दावा कर लेता है? धन्यवाद दे परमात्मा को कि वस्तुओं के उपयोग का तुझे मौका दिया। लेकिन तेरा यहां कुछ भी नहीं है। और जब तेरा है ही नहीं, तो छोड़ेगा कैसे?
तो एक तो फकीर है, जो छोड़ कर भागता है; लेकिन छोड़कर भागने में तो "मेरा" था, यह भ्रांति बनी ही रहती है। मेरा नहीं था, तो छोड़ा कैसे!

दो भ्रांतियां हैं--एक पकड़ने की भ्रांति; एक छोड़ने की भ्रांति। असली फकीरी भ्रांति से मुक्ति का नाम है। न तो मेरा है कुछ, तो पकडूं कैसे? न मेरा है कुछ, तो छोडूं कैसे? छोड़ने वाला मैं कौन; पकड़ने वाला मैं कौन? जिसने मुझे भेजा, वही जाने; उसकी मरजी, जो चाहे करा ले।
"मन लागो मेरा यार फकीरी में।"
और एक बात खयाल में लेनाः "यार" की फकीरी। उस प्यारे से प्रेम लग गया, इसलिए फकीरी।
एक फकीरी है, जैसे जैन मुनि को फकीरी होती है। उस फकीरी में गणित है, प्रेम नहीं। उस फकीरी में हिसाब-किताब है, प्रेम नहीं है। उस फकीरी में वही पुरानी दुकान है। हिसाब लगा रहा हैः "इतने उपवास करूं, तो कितना पुण्य होगा! इतने व्रत रखूं, तो कितना पुण्य होगा! इतना-इतना पुण्य हो जाएगा, तो किस-किस स्वर्ग में जाऊंगा--पहले, कि दूसरे, कि सातवें?" मगर प्रेम वहां कुछ भी नहीं है।
एक और फकीरी है। कबीर उसी की बात कर रहे हैं। वह फकीरीः उसकी यारी से पैदा होती है; उसके प्रेम में पड़ने से पैदा होती है। और दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है, याद रखना। इसलिए जैन, तथाकथित जैन मुनि के चेहरे पर तुम आनंद की आभा न पाओगे। हिसाब पाओगे, गणित पाओगे, तर्क पाओगे; लेकिन मस्ती न पाओगे। बेखुदी न पाओगे। कोई झरना फूटा हो--ऐसा नहीं पाओगे। सब सूख गया--ऐसा पाओगे। वृक्ष में अब फूल तो नहीं लगते, यह तो सच है। अब पत्ते भी नही उगते, यह भी सच है। रूखा-सूखा वृक्ष खड़ा है, एैसा जैन मुनि है। बसंत नहीं आता अब। बसंत से सबंध टूट गया। पतझड़ से ही उसने नाता बना लिया।
सूफी फकीर है, उसकी फकीरी और ढंग की। उसकी फकीरी में प्रभु का प्रेम है। उसने संसार में कुछ छोड़ा नहीं है। अगर कुछ छोड़ना पड़ा है, अगर कुछ छूट गया है, तो वह उसके प्रेम से छूटा है।
जैसे एक मां अपने बेटे के लिए श्रम करती है। उसका प्रेम है, इसलिए बेटे के लिए कुछ निछावर करती है। तन-मन-धन--जो भी है--सब लगा देती है; फकीर हो जाती है। यह फकीरी बड़ी और है। इसमें एक रसधार है। यह प्रेम की फकीरी है। यह मरुस्थल जैसी नहीं है फकीरी। इसमें खूब फूल खिलते हैं और पक्षी गीत गाते हैं और झरने बहते हैं।
"मन लागो मेरा यार फकीरी में।" मैं परमात्मा के प्रेम में ऐसा पड़ गया हूं कि अब संसार को प्रेम कैसे करूं! वह तो धोखा होगा। वह तो परमात्मा के साा प्रवंचना होगी। उस एक के प्रेम में पड़ गया हूं; और सब प्रेम खो गए। अब धन में रस नहीं है। इसलिए नहीं कि धन को छोड़ने से पुण्य मिलेगा। धन में इसलिए रस नहीं कि सारा रस तो परमात्मा की तरफ बहा जा रहा है; अब बचा नहीं मेरे पास रस, जो मैं धन को दे सकूं; बचा नहीं रस, जो मैं पद को दे संकू; बचा नहीं रस, जो मैं किसी और दिशाओं में बाट सकूं। यह सारी धारा सागर की तरफ दौड़ रही है। अब और कहीं भागने का उपाय नहीं रहा।
फर्क खयाल में आता है? एक तो है फर्क--कि सम्हाल-सम्हाल कर चलो, कि कहीं कोई चीज खो न जाए--धन से बचो; स्त्री से बचो; बच्चों से बचो; आंखें चुराओं; भाग जाओ; जंगल में बैठ जाओ! क्योंकि भय है कि अगर इस संसार के जाल में पड़ गए, तो नरक में जाना पड़ेगा। एक घबड़ाहट है। इस संसार के प्रेम में अगर पड़ गए, तो स्वर्ग चूक जाएगा। एक प्रलोभन है, जो डरा हुआ है। यह फकीरी नकारात्मक फकीरी है।
कबीर की फकीरी विधायक है: न तो भय है नरक का और न लोभ है स्वर्ग का; लेकिन प्रेम लग गया परमात्मा से। ऐसा प्रेम लग गया कि अब दिल कहीं और जाता ही नहीं; बस, उस की तरफ दौड़ता है। संसार बचा ही नहीं; छोड़ने-पकड़ने की बात ही नहीं है।
तुम्हारा किसी से कभी प्रेम लगा? साधारण जीवन में भी किसी स्त्री, किसी पुरुष से प्रेम हो गया तो और सब ची.जें गौण हो जाती है, तत्क्षण गौण हो जाती हैं। अपने प्रेमी के लिए कुछ भी छोड़ना कठिन नहीं मालूम पड़ता; सब छोड़ा जा सकता है। और फिर भी छोड़ने का दंभ पैदा नहीं होता। यही महत्ता है प्रेम की, फकीरी की। नहीं तो छोड़ने का दंभ पैदा होता है। छोड़ने का दंभ तभी पेदा होता है, जब प्रेम पीछे न हो। प्रेम कभी दावा करता ही नहीं कि मैंने क्या

छोड़ा। किसी मां से पूछो तूने अपने बेटे के लिए क्या-क्या किया? वह इतना बताएगी कि क्या-क्या नहीं कर पाई। वह यह न बता सकेगी कि क्या-क्या किया-- कितनी रात जागी, कितनी रोई, चक्की पीसी, कि आटा पीसा, कि बच्चे को पालने के लिए क्या-क्या किया, कितना श्रम उठाया, कितनी मुश्किलें--यह वह गिनती नहीं गिना पाएगी। और अगर गिना दे, तो मां नहीं है। हां, किसी संस्था के सेक्रेटरी से पूछो, तो वह वह भी गिना देता है, जो उसने किया नहीं; बड़ी फेहरिश्त बनाता है। उसको कुछ प्रेम तो है नहीं। वह तो दावे पर ही जीता है। क्या-क्या किया है, वह गिनती गिनाता रहता है।
राजनेता जो कभी नहीं करते, उसकी गिनती गिनाते रहते हैं--यह-यह हो रहा है; यह-यह किया है। लम्बी फेहरिश्त होती चली जाती है। बड़े आंकड़े बिठाते रहते हैं।
रूस में क्रांति हुई, तो रूस के नेताओं ने अखबारों में खबरें छापीं कि रूस के गांवों में शिक्षा दुगुनी हो गई है। और जब खोज-बीन की गई, तो यह पाया गया कि इस सब का आधार... । एक स्कूल था एक गांव में, जिसमें एक बच्चा पढ़ता था क्रांति के पहले; अब दो बच्चे पढ़ते थे। दुगुनी हो गई शिक्षा! उस छोटे से स्कूल के आकड़ों को लेकर काफी शोरगुल मचा दिया। फिर पता ही नहीं चलता। आंकड़े जितना झूठ बोलते हैं, उतना और कोई चीज झूठ नहीं बोलती। लोग गरीब होते चले जाते हैं और अखबारों में आंकड़े निकलते रहते हैं कि देश की संपत्ति बढ़ रही है। लोग मर रहे है और नेता समझाए जाता है कि हमने कितना काम किया, हमने कितनी कुर्बानी की! झूठे आश्वासन देता जाता है, फिर झूठे वक्तव्य देता जाता है कि हमने यह-यह किया। और आंकड़े उसके समर्थन में हमेशा मौजूद हैं। यह प्रेम नहीं है।
परसों मुझे... । कलकत्ता से, किसी मुनि ने उपवास किए हैं, तो उत्सव मनाया जा रहा है, उसका मुझे निमंत्रण-पत्र मिला। चार लाइनों में बड़ा निमंत्रण-पत्र है। बड़ी चार लाइनों में बड़े-बड़े अक्षरों में उन्होंने जीवन में कितने व्रत-उपवास किए, उसका पूरा ब्यौरा है।
यह ब्यौरा क्या बताता है? ये व्रत-उपवास कुछ बताने की बात है? नहीं, मगर यह संपत्ति है जैन-मुनि की। यही उसका बैंक-बैलेंस है। इसी को लेकर वह खड़ा होगा जाकर सत्य के सामने। वह यह फेहरिश्त बताएगाः यह-यह करके आया हूं। मगर यह खाली, रिक्त, नकारात्मक फकीरी है।
कबीर जिस फकीरी की बात कर रहे हैं, वह विधायक है; वह प्रेम की फकीरी है।
"मन लागो मेरा यार फकीरी में।" वह फकीरी--जो परमात्मा के प्रेम से उतरती है, जो उसके प्रेम से पैदा होती है। संसार छोड़ना नहीं पड़ता; परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू हो गई, संसार छूटता चला जाता है। छोड़ने का दंभ भी पैदा नहीं होता, छोड़ने के घाव भी नहीं लगते। जैसे पका फल गिर जाता है वृक्ष से, ऐसी प्रेम की फकीरी है। और कच्चे फल को तोड़ लो, वह जबरदस्ती की फकीरी है। ऊपर से तो टूट भी जाओगे, लेकिन भीतर-भीतर संसार की ही सोचते रहोगे।
जब परमात्मा के प्रेम में कोई पूरा विक्षिप्त हो जाता है, पागल हो जाता है, दीवाना हो जाता है--तब असली फकीरी घटती है।
"जो सुख पायो राम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में।"
अब सवाल यह नहीं है कि अमीरी छोड़ने से सुख मिलेगा। बात बिल्कुल उलटी
हो गई है। राम-भजन से सुख मिला है, इसलिए अमीरी का सुख फीका हो गया है, दो कौड़ी का हो गया है।
तुम हाथ में कंकड़-पत्थर लिए जा रहे हो और कोई तुमसे कहता हैः छोड़ दो ये कंकड़-पत्थर; छोड़
दोगे, तो हीरा मिलेगा। अब अगर तुम छोड़ो ये कंकड़-पत्थर, तो इसी लोभ में छोड़ोगे कि हीरा मिल जाए। और छोड़ कर भी तुम चिल्लाते फिरोगेः "मैंने कितने कंकड़-पत्थर छोड़ दिए!" क्योंकि तुम्हारे लिए वे कंकड़-पत्थर नहीं थे; कंकड़-पत्थर होते तो तुम हाथ में लेकर ही क्यों चलते! तुम तो उनको हीरे समझते थे। तुम चिल्लाते फिरोगे कि मैंने इतने हीरे छोड़ दिए और असली हीरा अभी तक मुझे नही मिला। कितनी देर है? अब जल्दी होनी चाहिए। अन्याय हो रहा है।

एक दूसरी दशा हैः तुम कंकड़-पत्थर लिए जा रहे हो; राह के किनारे हीरा पड़ा मिल गया। कंकड़-पत्थर छूट जाएंगे; छोड़ने नहीं पड़ेंगे। गिर जाएंगे हाथ से। कब गिर गए, तुम्हे पता भी नहीं चलेगा। तुम लपक कर हीरे को उठा लोगे। वह असली फकीरी है।
संसार को छोड़ने से परमात्मा मिलता है--यह बात गलत है। परमात्मा के मिलने से संसार छूटता है--यह बात सही है। और इसे तुम खूब अपने हृदय में संजो कर रख लेना, क्योंकि इस पर सब कुछ निर्भर है, नहीं तो तुम एक रूखे मरुस्थल हो जाओगे। संसार भी छूट जाएगा और परमात्मा भी नहीं मिलेगा। मैंने हजारों साधु-संन्यासियों में यही दशा देखी है। हाथ के कंकड़-पत्थर भी छूट गए; उनके साथ कम से कम थोड़ी भ्रांति थी कि कुछ है, वह भी गया-- और हीरा तो मिला नहीं। क्योंकि हाथ के कंकड़-पत्थर छूटने से हीरे के मिलने का कोई भी संबंध नहीं है। हीरा मिल जाए, तो कंकड़-पत्थर छूट जाते हैं, क्योंकि हीरे को उठाने के लिए हाथ में जगह बनानी पड़ती है।
"जो सुख पायो राम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में।"
कबीर कहते हैंः अब तो रामभजन में रस बहा है, जैसा हृदय पुलकित हुआ है, वैसा पुलकित कभी नहीं हुआ था--धन में, पद में, प्रतिष्ठा में। वह बात गई; वह बात व्यर्थ हो गई--अनुभव से व्यर्थ हो गई।
ध्यान और धन को समझ लो। धन यानी बाहर की दौड़। ध्यान यानी अंतर्यात्रा,
धन यानी बहिर्यात्रा। धन यानी मेरे पास और हो जाए, और हो जाए, और हो जाए-- परिग्रह। और ध्यान यानी मैं शून्य हो जाऊं; मेरे भीतर कुछ भी नहीं न रह जाए। मैं मंदिर बन जाऊं--एक सूना मंदिर। और जिस मंदिर सूना होता है, उसी दिन परमात्मा की प्रतिमा विराजमान हो जाती है। प्रतिमा लानी ही नहीं पड़ती; शून्य ही पुकार लेता है पूर्ण को।
शून्य काफी है। तुमने शर्त पूरी कर दी; और कुछ तुम्हें नहीं करना होता है। फिर द्वार खोल दिए हैं; प्रतीक्षा भर करनी होती है। एक दिन अनायास तुम पाते होः परमात्मा उतरा है और तुम्हारा रोआं-रोआं रोशन हो गया; और तुम्हारे कण-कण में नये जीवन का आविर्भाव हुआ है। वसंत आ गया-ऐसा वसंत जो फिर कभी जाता नहीं। मधुरस बरसा। फिर यह वर्षा कभी बंद नहीं होती। समय से तुम छलांग लगा गए और कालातीत में प्रवेश हो गया।
धन यानी वस्तुएं; ध्यान यानी चेतना। धन यानी पर; ध्यान यानी स्व। धन यानी तुमसे जो अलग है; उसे तुम इकट्ठा कर सकते हो अपने चारों तरफ। तुम अपने चारों तरफ बड़ा ढेर लगा सकते हो, अम्बार लगा सकते हो। मगर तुम तुम ही रहोगे। तुम्हारा धन तुम में कोई भी फर्क नहीं लाता। कैसे लाएगा? धन बाहर है और तुम भीतर हो--दोनों का कहीं मिलन नहीं होता।
रुपये-पैसे को अपनी अंतरात्मा में ले जाने का कोई भी तो उपाय नहीं; नहीं तो लोग ले गए होते। उन्होंने अपनी अंतरात्मा रुपये-पैसे से भर ली होती। नोट ही नोट की गड्डियां लगा दी होती!
भीतर नोट जाता नहीं। नोट बाहर ही पड़ा रह जाता है। बड़े से बड़ा साम्राज्य भी बाहर पड़ा रह जाता है। और तुम्हारा असली प्रश्न, तुम्हारी असली समस्या भीतर है। तो जो साधन तुम जुटाते हो, उसका समस्या से मिलना ही नहीं होता। जो समाधान तुम करते हो, समस्या को काट ही नहीं सकता।
ध्यान का अर्थ है: मैं पहले यह तो जान लूं: मैं कौन हूं। मैं पहले यह
तो पहचान लूं कि यह क्या है जो मेरे भीतर बोलता, श्वास लेता, डोलता। यह कौन है? यह क्या है? यह कहां से है और किस तरफ जा रहा है?
"जो सुख पायो राम भजन में... ।" राम-भजन ध्यान की प्रक्रिया का नाम है। "सो सुख नाहिं अमीरी में।"
"भला बुरा सब को सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में।"
लोग क्या कहते हैं, इसकी चिंता न करो। क्योंकि लोग क्या कहते हैं, इसी
की चिंता कर-करके तुम परेशान हो। लोगों को ही देख-देख कर तुम पागल हुए जा रहे हो संसार में।
किसी ने बड़ा मकान बना लिया, अब तुम को बड़ा मकान बनाना है। अब तुमसे यह नहीं सहा जाता। यह तुम्हारे अहंकार को बड़ी चुनौती और चोट हो गई। कोई बड़ी

कार खरीद लाया; अब तुमको बड़ी कार खरीदनी है; उससे बड़ी कार खरीदनी है! यह तुम्हारे बरदाश्त के बाहर है मामला कि कोई तुमको ऐसा पीछे डाल दे।
तुमको एक ही पागलपन सवार है कि मेरे पास चीजें होंगी, तो मैं हूं। और मेरे पास बड़ी चीजें होंगी, तो मैं बड़ा हूं। मेरे पास धन का अम्बार ज्यादा होगा, तो मैं खास हो जाऊंगा, नहीं तो मैं ना-खास, साधारण, कोई मूल्य मेरा नहीं।
और दूसरों पर तुम धन लगाए हुए हो। तुम जब अच्छे वस्त्र पहन कर निकलते
हो, तो दूसरे कहते हैः सुंदर हैं वस्त्र, कहां से खरीदे? उनमें भी ईर्षा जगती है। दूसरे अच्छे वस्त्र पहन कर निकलते हैं, तुम में ईर्षा जगती है। मगर हम देख रहे हैं दूसरे को और हमें इसकी कोई फिकर ही नहीं कि हमारी असली जरूरत क्या है।
मनोवैज्ञानिक इस पर बड़ा अध्ययन करते हैं और बड़े चकित हैं कि आदमी को फिकर ही नहीं कि मेरी जरूरत क्या है। वह यह देखता है कि दूसरे क्या कर रहे हैं।
पड़ोसी ने कार खरीद ली, फिर चाहे तुम्हें अब अपने बच्चे की शिक्षा में कटौती करना पड़े, चाहे भोजन में कटौती करनी पड़े, चाहे कर्ज लेना पड़े, तुम्हें कार लेनी ही पड़ेगी। कार तुम्हारी जरूरत न थी। एक दिन पहले तक पड़ोसी ने नहीं खरीदी थी, तो तुमने कार के संबंध में सोचा ही नहीं था, तुम अपनी साइकिल पर बड़े मजे से चल रहे थे। अब जीवन संकट में आ गया--पड़ोसी कार ले आया! अब तुम्हें लेनी ही होगी। नहीं तो पड़ोसी ने तुम्हें बता दिया कि तुम कुछ भी नहीं हो; देखो मैं! अब यह उसकी कार का बजता हॉर्न तुम्हारी छाती को छेदेगा। तुम सोओगे नहीं, जागोगे नहीं, उठोगे नहीं, बैठोगे नहीं--एक ही बात सोचोगे। सूखने लगोगे। और मजा यह है कि इसकी तुम्हें कोई जरूरत नहीं है। पश्चिम में विज्ञापन की कला बहुत विकसित हुई है, पूरब में भी आती जाती है। विज्ञापन की कला का सारा राज यही है कि लोगों को यह भम्र दिलाने की कोशिश करो कि जो तुम्हारी जरूरत नहीं; वह तुम्हारी जरूरत है। लोगों ने सोचा ही नहीं कि यह उनकी जरूरत थी; विज्ञापन उनको बता देता है कि जरूरत है। पुराने अर्थशास्त्र का नियम था कि जहां-जहां मांग होती है, वहां-वहां पूर्ति होती है। नये अर्थशास्त्र का नियम हैः पूर्ति करो, मांग अपने से पैदा होती है। पहले चीज पैदा करो, विज्ञापन करो, खबर फैलाओ और चीज के पास लुभावने स्वप्न रचो, कविताएं बनाओ, और लोगों को यह भ्रम दो कि इस चीज के बिना उनका जीवन अकारथ है--और वे पीछे पड़ जाएंगे; वे पागल हो जाएंगे; वे जीवन के असली मूल्य छोड़ देंगे, जीवन की असली जरूरतें छोड़ देंगे और व्यर्थ की चीजें इकट्ठा करने में लग जाएंगे।
कबीर कहते हैंः "भला बुरा सबको सुन लीजै... ।"
इसकी फिकर ही मत करो कि लोग क्या कहते हैं। इसकी फिक्र की तो तुम कभी सत्य को न पा सकोगे, क्योंकि लोगों को सत्य से कोई प्रयोजन नहीं है। इसके कारण लोग कितना झूठ बोल रहे हैं। इसका हिसाब नहीं। क्योंकि दूसरे लोग कुछ दावे कर रहे हैं, तो तुम भी दावे करने लगते हो।
मैंने सुना है, दो मछलीमार बैठ कर बात कर रहे थे। एक मछलीमार ने कहा कि "कल तो हद्द हो गई- ऐसी मछली पकड़ी कि मुझ अकेले से खींची न जा सके; दस आदमी लगाने पड़े, तब कहीं मछली खिंच कर किनारे पर आ सकी।"
इतनी बड़ी मछली उस छोटी सी नदी में हो भी नहीं सकती--जिसके किनारे बैठ
कर वे बात कर रहें हैं। उस नदी में पूर आ जाए, इतनी बड़ी मछली वहां हो तो। दूसरे ने कहाः "यह कुछ भी नहीं है। दो दिन पहले मैंने कांटा डाला नदी में, मछली तो पकड़ में नहीं आई, एक लालटेन उलझ कर कांटे में आ गई और चमत्कार यह कि लालटेन पर लिखा हुआ थाः नेपोलियन के जमाने की! और अभी तक जल रही थी!" पहले आदमी ने कहा: "देखो, अगर तुम अपनी लालटेन का जलने का मामला बुझा दो, तो मैं भी अपनी मछली की मोटाई-लंबाई कम कर सकता हूं।"
लोग एक-दूसरे को देख कर झूठे दावे भी कर रहे हैं। जो उनके पास नहीं है। उसका भी दावा कर रहे हैं, दिखलावा भी कर रहे हैं। घर में भूखे हों, तो भी बाहर बड़े सज-संवर कर निकल रहे हैं। सारी दुनिया इतनी सज-संवर कर निकल रही

है; तुम न निकलोगे तो बड़ा बुरा लगेगा। और हर बात में सोच रहे हैं कि लोग क्या कहेंगे।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैंः "संन्यास तो लेना है, लेकिन गैरिक वस्त्र! लोग क्या कहेंगे!"
ये लोग कौन हैं? और मजा; हो सकता हैः जिनसे तुम डर रहे हो, वे तुमसे डरे हुए हैं; क्योंकि उनमें से भी कई मुझसे पूछते हैं कि संन्यास लेना है, मगर क्या करें लोग क्या कहेंगे!
ये लोग कौन हैं? किनसे तुम भयभीत हो? इनमें से कौन तुम्हारा साथ देने वाला है? तुम मरोगे, यही लोग तुम्हारी अरथी बांध कर, कब्र पर जाकर रख आएंगे। यही तुम्हें जला आएंगे चिता पर--यही लोग! और इनकी तुम जिंदगी भर चिंता करते रहे! इनकी चिंता के कारण तुम कभी जीए भी नहीं--अपनी निजता में; अपने स्वभाव में; अपनी सरलता में; अपनी निसर्गता में; अपनी सहजता में! तुम कभी जीए नहीं। तुम सदा उधार रहे--इन्हीं के भय से। तुम कभी वह न हो सके, जो होने को पैदा हुए थे। परमात्मा ने जो तुम्हें दिया था, उसे तुम कभी प्रकट न कर सके। लोक क्या कहेंगे! ...
कबीर का सूत्र खयाल रखनाः "भला बुरा सबको सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में।"
लोग हसेंगे। लोग कहेंगेः दौड़ो। महत्वाकांक्षी बनो। पद-प्रतिष्ठा लुट रही है, तुम क्या खड़े-खड़े देख रहे हो राह के किनारे? सम्मिलित हो जाओ। कुछ कमा लो, कुछ दिखा दो दुनिया को। कुछ कर लो।
लेकिन कबीर कहते हैं कि तुम इसकी फिकर मत करना; तुम तो अपनी भीतर की गरीबी में मस्त रहना। खाने-पीने को मिल जाए, कपड़ा मिल जाए, छप्पर मिल जाए-- बहुत। इससे ज्यादा चिंता में मत पड़ जाना। तो जो ऊर्जा बची है, उसे तुम परमात्मा की प्रार्थना में संलग्न कर पाओगे। तो हरि-भजन पैदा होगा। नहीं तो ऊर्जा तो यह संसार ही सब खा लेता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः "आप कहते हैं ध्यान करो; हम करते
भी हैं, लेकिन जैसे ही ध्यान करने बैठते हैं, झपकी आने लगती है। क्या करें?" वे समझते हैः जैसे ध्यान में कुछ बात है, जिसके कारण झपकी आने लगती है। तुम बिल्कुल थके-मांदे हो। तुम्हारी धन की दौड़ ने तुम्हे इतना थका दिया है कि जब तुम ध्यान करने बैठते हो, तो नींद न आए तो और क्या आए। कुछ बचा ही नहीं है। सब ऊर्जा बही जा रही है।
तुम ऐसी बालटी हो, जिसमें छेद ही छेद हैं। कुएं में डालते हैं, खड़बड़ाहट बहुत होती है। पानी में रहती है बालटी, तो भरी हुई भी दिखाई पड़ती है। जरा ही ऊपर पानी को खींचा कि बस पानी गिरना शुरू हो जाता है। जब तक तुम्हारे हाथ में आती है बालटी--खाली की खाली! शोरगुल बहुत मचता है, हाथ कुछ लगता नहीं।
तुम बिल्कुल थकी हालत में हो। इसी थकी हालत में तुम बैठ जाते हो-- परमात्मा को याद करने। तुम कहोगेः लेकिन दुकान पर नींद नहीं आती! तुम कहोगेः लेकिन चुनाव लड़ने जाते हैं, तब नींद नहीं आती! तुम कहोगे कि जब किसी के जूझ पड़ते हैं संघर्ष में, तब नींद नहीं आती। तो ध्यान में क्यों आती है? उसका कारण हैः ध्यान में कोई प्रतिस्पर्धा का उपाय नहीं है। ध्यान में तुम अकेले हो। और तुम्हारी
जिंदगी में सिर्फ धक्के-मुक्के से तुम चल रहे हो। ध्यान में अकेले हो जाते हो; कोई धक्का-मुक्की नहीं, कोई भीड़-भाड़ नही; कोई दूसरा नहीं है; आंख बंद की कि तुम अकेले रह गए। जब तुम दुकान पर बैठते हो, तो हजार दुकानें और भी हैं। उनकी वजह से ईर्ष्या है, वैमनस्य है, हिंसा है, आक्रमण है। उनकी वजह से चुनौती बनी रहती है, नींद नहीं लगती दुकान पर। नींद लगी, तो गंवा बैठोगे।
चुनाव लड़ रहे हो; अकेले तो नहीं लड़ रहे हो; दूसरा भी लड़ रहा है। वह दीवाने की तरह भाग रहा है। वह तुम्हें देख कर दीवाने की तरह भाग रहा है; तुम उसे देख कर दीवाने की तरह भाग रहे हो।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक कब्रगाह के पास खड़ा था--मरघट के पास। और एक बारात आती थी; थोड़ा ज्यादा पी गया था। बारात देखी; बैंड-बाजा,

घोड़े पर कोई बैठा है। उसने कहा--कुछ... ! शराब के नशे में उसे लगा कि मालूम होता है दुश्मन हमला कर रहा है। बड़ा उत्तेजित हो गयाः अब क्या होगा, कहां जाऊं, कैसे बचूं!
सोच-विचार में ही तो बारात करीब भी आ गई। बैंड-बाजा और जोर से... । और देखा कि वह तलवार भी लिए हुए है, जो दूल्हा बैठा है ऊपर। उसने कहा कि मारे गए! वह जल्दी से कूद कर, छलांग लगा कर जो
दीवाल थी कब्रिस्तान की, उसके भीतर घुस गया। वहां कब्र खुदी थी ताजी- ताजी; अभी आए नहीं थे कब्र के मेहमान। लोग लेने गए होंगे। वह जल्दी से उसमें लेट गया आंख बंद करके।
बारातियों ने देखा कि एक आदमी वहां खड़ा था; एकदम से उचका, दीवाल कूदा! कोई खतरा तो नहीं! कोई झंझट तो नहीं? यह आदमी क्या कर रहा है यहां! कोई दुश्मन तो नहीं है! तो उन्होंने बैंड-बाजा रोक दिया। वे सब आकर दीवाल से झांकने लगे--कि मामला क्या है! यहां देखा कि वह आदमी आंख बंद किए कब्र में पड़ा है। उनको और हैरानी हुई। भीतर घुसकर आए। चारों तरफ से कब्र घेर ली। अब कब तक अपनी सांस रोके रहे, मुल्ला ने आखिर कहा कि भाई, मैं श्वास लूं कि न लूं? तुम यहां आ कर किसलिए खड़े हो?
उन्होंने पूछाः "हम यह पूछना चाहते हैं कि तुम यहां कब्र में क्या रहे हो--जिंदा आदमी?"
उसने कहाः "यह भी खूब रही। मैं तुम्हारी वजह से यहां हूं; तुम मेरी वजह
से वहां हो! मैं तुम्हें देख कर भाग खड़ा हुआ; तुम मुझे देख कर यहां आ गए! यह भी खूब रही!"
मगर ऐसा ही चल रहा है।
कोई मुझसे पूछता हैः "मैं संन्यास कैसे लूं? लोग क्या कहेंगे!" और उन लोगों में से भी लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि हम संन्यास कैसे लें। और जब वे कहते हैं कि लोग क्या कहेंगे, तो वह पहला आदमी भी उन लोगों में सम्मिलित है।
एक-दूसरे के भय से जी रहे हो? यह भी कोई जीवन है? किसका भय? कैसा भय? जहां मौत आती है, वहां भय का अर्थ क्या है? जहां सब छिन जाना है, वहां चिंता छोड़ो लोगों की। जो तुम्हें ठीक लगे, जो तुम्हें
सुंदर लगे, जो तुम्हें सत्य लगे, जिसके साथ तुम्हारा मन रमे, जिसमें उतर कर तुम्हें शांति-आनंद मिले--उतर जाओ।
अभी मेरे एक पुराने परिचित श्री हरि किशन दास अग्रवाल चल बसे। वे तो वर्षों से मुझे जानते थे और जब भी आते थे, तभी कहते थे कि संन्यास तो लेना है, मगर पत्नी! बहुत उपद्रव मचाएगी। परिवार के लोग भी राजी नहीं हैं। आपके पास भी आता हूं तो इसमें भी नाराज हैं। लेना तो है एक दिन!"
और अब चल बसे। यह एक दिन आया ही नहीं। और जब चल बसे, तब पत्नी ने कोई बाधा न डाली और घर के लोगों ने भी कोई ऐतराज खड़ा न किया! पास-पड़ोस ने भी कोई झंझट न मनाई; जल्दी से जाकर जला आए। संन्यास से घबड़ाते रहे जिंदगी भर, फिर मौत आती है और सब ले जाती है।
संन्यास का इतना ही अर्थ हैः जो मौत तुमसे ले लेगी, उसे बचाओ ही मत। प्रतिष्ठा जाएगी, नाम जाएगा, तन जाएगा, धन जाएगा--सब चला जाएगा।
संन्यास का इतना ही अर्थ हैः जो मौत तुमसे ले लेगी, उसे तुम पकड़ो ही मत। और तब तुम्हारे जीवन में एक क्रांति घटित होती है। उसी क्रांति को कह रहे हैं कबीरः "कर गुजरान गरीबी में"।
नहीं तो महत्वाकांक्षा जला डालेगी। और महत्वाकांक्षा का कोई अंत नहीं है, कोई कुछ खरीद लाया, कोई कुछ खरीद लाया, कोई कुछ खरीद लाया--तुम उस सब के बीच पड़े हो। तुम मुश्किल में पड़े हो--खिंचे-पिसे जा रहे हो। मगर तुम्हें करना पड़ रहा है, क्योंकि पड़ोसी कर रहे हैं।
"प्रेम-नगर मे रहनि हमारी, भलि बनी आइ सबूरी में।"
कबीर कहते हैंः हम तो प्रेम-नगर में क्या प्रवेश कर गए, झंझटों से छूट गए।
"प्रेम नगर में रहनि हमारी... ।"

दो ही नगर हैं इस जगत में। एक नगर है--घृणा का, हिंसा का, प्रतिस्पर्धा का, महत्वाकांक्षा का, एम्बीशन का--जहां तुम हर दूसरे से टकरा रहे हो।
और हम छोटे-छोटे बच्चे में जहर डालना शुरू कर देते है। तुम्हारा बच्चा स्कूल गया नहीं कि तुम उसके पीछे पड़ जाते हो कि पहले नंबर आना। तुमने बुखार शुरू किया उसमें। तुमने जहर डाला उसमें। अब वह पहले नंबर के पीछे दीवाना रहेगा। तीस बच्चे हैं, एक ही पहला आ सकता है। जो उनतीस नहीं आएंगे वे जीवनभर के लिए दुख के घाव लिए चलेंगे; फफोले रहेंगे उनकी आत्मा में--कि हम पहले नहीं आ सके। और जो पहला आ गया, वह भी कुछ लाभ में नहीं है; अब वह बड़ी अड़चन में पड़ गया, वह पहला आ गया है। तो उसको अब जिंदगी भर अपने पहलेपन को बनाए रखना है; नहीं तो झंझट खड़ी होगी। जो पहला आ गया, वह अहंकार से भर जाता है; और जो पहले नहीं आ पाए, वे विषाद से भर जाते हैं। दोनों रोग हैं।
लेकिन यह जिंदगी भर का रोग है। छोटे बच्चों को लगा है, ऐसा ही नहीं है; बूढ़ों को भी यही लगा है। न हो तो तुम "मगरूरजीभाई देसाई" से पूछो! बयासी साल की उम्र में भी वही रोग लगा हुआ है। मरते-मरते तक, एक पैर कब्र में जाता हो तो वही रोग लगा हुआ है। वह रोग छूटता ही नहीं। महत्त्वाकांक्षा का भारी रोग है।
"प्रेम नगर में रहनि हमारी----।"
फिर एक और नगर है, वह है प्रेम का नगर; वहां महत्वाकांक्षा नहीं है, वहां किसी से स्पर्धा नहीं है। मैं अपनी मौज से रहता हूं, तुम अपनी मौज से हो। न मेरी तुम। े कोई स्पर्धा है, न तुम्हारी मुझ से कुछ स्पर्धा है; हम एक-दूसरे की तुलना करते ही नहीं।
जहां तुलना है, वहां घृणा है। जहां तुलना नहीं है, वहा प्रेम है। प्रेम स्वीकार करता है। कोई कवि है, कोई संगीतज्ञ है, कोई लकड़हारा है, कोई कुछ है, कोई कुछ है--प्रेम सब को स्वीकार करता है। वह विभाजन नहीं करता। वह ऐसा नहीं करता कि डाक्टर ऊपर है और लकड़हारा नीचे है। वह ऐसा नहीं कहता कि धनवान ऊपर है और गरीब नीचे है। कौन ऊपर और कौन नीचे? अपनी-अपनी मौज है जीने की। जो जैसा जीना चाहता है, वैसा जीए। मगर स्पर्धा की कोई भी जरूरत नहीं है।
दूसरे से स्पर्धा की, तो तुम संसार में हो तो तुम घृणा की नगरी में हो।
और किसी से स्पर्धा न की, अपनी मौज से जीए, तो तुम प्रेम की नगरी में प्रविष्ट हुए।
जो तुलना नहीं करता, वह किसी का दुश्मन नहीं है। क्योंकि उसका दुश्मन होने का कोई कारण नहीं है। जब तक तुम तुलना करते हो, तब तक तुम पड़ोसी नहीं हो सकते। किसके पड़ोसी होओगे तुम? पड़ोसी ही से संघर्ष चल रहा है। उसी को तो नीचा दिखाना है; उसी को तो चारों खाने चित्त कर देना है।
इस दुनिया को हमने दुश्मनों से भर दिया है, क्योंकि हम सब एक-दूसरे से
लड़ रहे हैं। अकारण! और यह अमूल्य जीवन का अवसर ऐसे ही व्यर्थ हुआ जा रहा है। यह लड़ने की जगह नहीं है, नाचने की जगह है। यह गीत गुन-गुनाने की जगह है। पैरों में घूंघर बांधो। हाथ में बांसुरी लो। प्रतिस्पर्धा छोड़ो।
"प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनी आइ सबूरी में।"
और सब्र सीखो। सबूरी सीखो। धीरज सीखो। प्रतीक्षा सीखो। जो जरूरी है,
वह तुम्हें परमात्मा देगा। जब जरूरी है--तब देगा। जैसा जरूरी है--वैसा देगा। यह श्रद्धा सीखो। छीना-झपटी मत करो। छीना-झपटी से कुछ मिलने वाला नहीं है। जो मिलता था, शायद वह भी न मिल पाए; छीना-झपटी में टूट जाए। राह देखो। सब्र करो।
प्रार्थना के दो ही सूत्र हैंः प्रेम और प्रतीक्षा। दोनों सूत्र इसमें आ गएः "प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनी आइ सबूरी में।"
अब तो हम मस्त हैं। अब जो होता है, सो ठीक होता है। क्योंकि वही करनेवाला है। मालिक सब देख रहा है। वही चिंता ले रहा है। हम अब चिंता नहीं रखते अपनी। सब उसके ही हाथों मे छोड़ दिया है। यही है समर्पण। यही है भक्त की दशा।

"हाथ में कूरी बगल में सोंटा, चारो दिसि जागीरी में।" और कबीर कहते हैं कि अब तो सारी दुनिया अपनी हो गई, जब से अपनी बनाने की चेष्टा न रही। चारों दिसि जागीरी में!
है कुछ नहीं; हाथ में भिक्षापात्र हैः कि बगल में सोंटा है; कुछ है नहीं खास पास--लेकिन चारों दिशाएं अपनी हैं।
जिस दिन से अपना बनाना छोड़ा, उस दिन से सब अपना हो गया। जिस दिन तुम एक आंगन का मोह छोड़ देते हो, सारा आकाश तुम्हारा हो जाता है। तुम नाहक ही अपने को छोटा किए हो। क्योंकि छोटे से तुमने अपने को बांध लिया है। जिस दिन तुम परमात्मा के हो जाते हो, परमात्मा का सब तुम्हारा हो जाता है।
"आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहा फिरत मगरूरी में।" एक दिन तो, यह तन तो मिट्टी में मिल जाएगा। कहा फिरत मगरूरी में!
फिर काहे के लिए अहंकार करते फिरना! जो मिट्टी में मिल जाना है, उसकी बात ही छोड़ो, उसकी चिंता ही छोड़ो; वह मिल ही जाएगा; वह मिला ही है। देर-अबेर गिर जाएगी यह देह, खो जाएगी मिट्टी में; इसका कुछ पता न चलेगा। उसके पहले जो थोड़ी-सी चेतना की तुम में ललक है, उसको जगा लो। उसे ऐसा बना लो कि जब देह मिट्टी में मिले, तो चेतना खो न जाए। चेतना की ज्योति आकाश में उड़े।
सारा धर्म इसी बात का विज्ञान है। देह तो मिटेगी, मगर देह का जो अवसर मिला है, इसमें तुम दूसरी देह पैदा कर ले सकते हो--जो नहीं मिटतीः सूक्ष्म; भाव-देह। यह देह तो जाएगी। इस देह का उपयोग कर लो--उस देह को बनाने में, जो कभी नहं जाती; जो अमृत की देह है।
मां और पिता से जो जन्म मिला है, वह तो मिट्टी की देह का है। लेकिन इस मिट्टी की देह में एक राज छिपा है। अगर तुम खोज लो उसकी कुंजी, तो तुम "अमृतस्य पुत्राः" हो जाओ, अमृत के पुत्र हो जाओ।
ऐसा ही समझो कि अंगूर में शराब छिपी है, लेकिन अंगूर खाने से कोई नशा नहीं आता। अंगूर में शराब छिपी है, लेकिन शराब बनानी पड़ेगी। छिपी जरूर है, लेकिन प्रकट करनी होगी, निचोड़नी होगी; प्रक्रिया से गुजारना होगा; एक रसायन से गुजरना होगा।
अंगूर जब रसायन से गुजर जाएगा, शराब बन जाएगा। अंगूर कितने ही खाओ, नशा नहीं चढ़ता। और
देहों में कितना ही रहो, परमात्मा का अनुभव नहीं होता। लेकिन देह में
से कुछ छिपा है, उसे प्रगट कर ले। उसी की रसायन धर्म है--उसकी ही अलकेमी। और तुमने खयाल कियाः अंगूर अगर रखे रहो, तो सड़ जाते हैं। ओर शराब जितनी पुरानी हो जाए, उतनी श्रेष्ठ हो जाती है। यह तुमने मजा देखा! यह गणित बिल्कुल उलटा हो गया।
अंगुरों को रख लो, तो सड़ जाएंगे; कल नहीं परसों फेंक देने पड़ेंगे; मिट्टी में वापस चले जाएंगे। और शराब अंगूर से ही निकली है, लेकिन शराब जितनी पुरानी होने लगेगी, उतनी बहुमूल्य होने लगेगी, उतनी अदभुत होने लगेगी। हजार वर्ष पुरानी शराब का जो मूल्य है, वह ताजी शराब का नहीं होता है। ताजी शराब साधारण है, क्योंकि जितने दिन टिक जाती है, जितना समय बीत जाता है, उतनी ही रासायनिक प्रक्रिया गहन हो जाती है; उतनी ही शराब ज्यादा शराब हो जाती है।
करीब-करीब ऐसा ही समझो। शरीर तो अंगूर है। यह तो सड़ेगा ही। इसके पहले शराब बना लो। फिर शराब नहीं सड़ती। उस शराब को ही आत्मा कहते हैं।
जीसस जब अपने शिष्यों से विदा होने लगे, तो उन्होंने सब को शराब के प्याले दिए--भेंट के लिए। अब जाते थे। और उन्होंने कहाः "इसे शराब मत समझना। समझो कि तुम मुझे पी रहे हो।"
शराब का प्रतीक क्यों चुना होगा जीसस ने? मेरी दृष्टि यही है कि इसलिए चुना कि देह अंगूर है और आत्मा शराब है। और देह के साथ गहरा नशा नहीं बन सकता है। टूट जाने वाले नशे बन सकते हैं, लेकिन न टूटने वाला नशा तो आत्मा के साथ बनता है। और जिसने आत्मा की शराब पी ली, वह परमात्मा का हो गया। फिर वहां एक बेखुदी आती है। फिर वहां एक मस्ती आती है। ऐसी मस्ती, जिसमें होश जाता नहीं, बढ़ता है।

"आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहा फिरत मगरूरी में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो साहब मिलै सबूरी में।"
सब्र में मिलते हैं साहब। शांत, मौन प्रतीक्षा में मिलते हैं साहब।
और जिसने साहब को पा लिया, वही जीया। और जिसने साहब को नहीं पाया, वह व्यर्थ ही जीया और व्यर्थ ही मरा। अंगूर तो रहे; शराब बन सकती थी, न बना पाया; उसके घर में सड़े हुए अंगूरों की दुर्गंध भर रह जाएगी।
नक्शे हस्ती मिटा रहा हूं मैं
अपनी बिगड़ी बना रहा हूं मैं
आशियाना सपुर्दे बर्क किया
वुसअतों में समा रहा हूं मैं
बालो पर से मिली है आजादी
आसमानों पे छा रहा हूं मैं
नाम का तेरा आसरा लेकर
अर्श से आगे जा रहा हूं मैं
दौलते दो जहां को ठुकरा कर
तेरे कदमों में आ रहा हूं मैं
नक्शे हस्ती मिटा रहा हूं मैं
जो अपने को मिटाना सीख जाए, अपने को मिटा ले--वही गरीब। "नक्शे हस्ती मिटा रहा हूं मैं!"
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैंः जो अपने को बनाने में लगे है; जो कहते हैः हम कुछ बन कर रहेंगे; और दूसरे लोग हैं: जो कहते हैंः हम अपने को मिटा कर रहेंगे।
तुम अपने को मिटाने वाले बनो। क्योंकि वहीं से परमात्मा आता है।
जीसस का वचन हैः जो अपने को मिटाएगा, वह बचा लेगा और जो बचाएगा वह मिट जाएगा।
नक्शे हस्ती मिटा रहा हूं मैं
अपनी बिगड़ी बना रहा हूं मैं
बड़े मजे का वचन हैः "अपनी बिगड़ी बना रहा हूं मैं!" अपने को मिटा रहा हूं और इसी तरह अपने को बना रहा हूं।
"आशियाना सपुर्दे बर्क किया।" अब तो अपना घोंसला भी बिजलियों को दे दिया, भेंट कर दिया है।
आशियाना सपुर्दे बर्क किया
वुसअतों में समा रहा हूं मैं
और जब से अपने घर को--छोटी सी देह को, छोसे से घोंसले को--दे दिया है बिजलियों को कि जो मर्जी हो करो, तब से मैं आकाश के विस्तार में समाया जा रहा हूं। अब कोई भय नहीं है।
जहां भय नहीं, वहां संकोच मिट जाता है; वहां विस्तार शुरू होता है। और हमने परमात्मा को जो सबसे प्यारा नाम दिया है; वह ब्रह्म है। ब्रह्म का अर्थ होता है: विस्तार--जो फैलता ही चलता जाता हैः वुसअत; विस्तार।
बालो पर से मिली है आजादी
आसमानों पे छा रहा हूं मैं
जिस दिन तुम देह से मुक्त हो जाते हो, उस दिन सारा आसमान तुम्हारा है। आसमान भी तुम्हारी सीमा नहीं है। तुम आसमान से बड़े हो। क्योंकि आसमान के पास चेतना नहीं है--और तुम्हारे पास चेतना है। चेतना सारे आसमान को अपने में समा ले सकती है।
नाम का तेरे आसरा लेकर
अर्श से आगे जा रहा हूं मैं
आकाश से भी आगे जा रहा हूं।
नाम का तेरे आसरा लेकर
दौलते दो जहां को ठुकरा कर
तेरे कदमों में आ रहा हूं मैं।
दो जहां--यह और वह; पृथ्वी और स्वर्ग--दोनों को जो ठुकराता है, वही उस प्रभु का प्यारा हो पाता है। "मन लागो मेरा यार फकीरी में!"

"समझ देख मन मीत पियरवा
आसिक हो कर सोना क्या करे।"
प्रेमी सो ही नहीं सकता, क्योंकि पता नहीं कब प्यारा आ जाए! कौन घड़ी आ जाए! किस पल आ जाए! कब आ जाए भाग्य का क्षण!"
प्रेमी सो नहीं सकता। तुमने अगर किसी को प्रेम किया है और प्रतीक्षा
की है, तो तुम समझोगे। रास्ते पर पत्ता खड़क जाता है और प्रेमी उठ आता है, द्वार खोलकर देखता हैः शायद, जिसकी प्रतीक्षा थी, वह आ गया! हवा का झोंका आता और प्रेमी जग जाता है। आकाश में बादल गरजते हैं--और प्रेमी उठ आता है: शायद!
एक ही बात अटकी है श्वास-श्वास में: कब प्यारा आता हो! साधारण जगत के प्रेम में भी यह घटता है और परमात्मा के प्रेम में तो बहुत घटता है।
खयाल करना, मनुष्य जाति ने अब तक परमात्मा तक पहुंचने के दो मार्ग खोजे हैं--एक है ध्यान, एक है प्रेम, एक का नाम ज्ञानयोग, एक का नाम भक्ति- योग।
ध्यान का अर्थ होता हैः जागरण सीखो। जिस दिन तुम जाग जाओगे, उस दिन प्रेम का अपने आप प्रस्फुटन होगा। इसलिए बुद्ध ने कहा हैः जिस दिन प्रज्ञा जगेगी, उस दिन करुणा अपने आप से आएगी। करुणा छाया की तरह आएगी। तुम ध्यान करो, करुणा तुम्हारे पीछे आएगी।
कबीर दूसरे मार्ग के राही हैं। कबीर कहते हैंः तुम प्रेम करो, जागरण अपने आप आ जाएगा; क्योंकि प्रेमी सो ही कैसे सकता है! तुम प्रेम करो, ध्यान छाया की तरह आएगा।
दोनों बातें सच हैं। अंडा ले आओ, तो मुरगी बन जाएगा; मुरगी ले आओ, तो अंडा रख देगी। दोनों बातें सच हैं। कहीं से भी शुरू करो--पर शुरू करो!
समझ देख मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे।
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्या रे।।
यह बड़ा अनूठा वचन है। "पाया हो तो दे ले प्यारे!" कबीर कहते हैंः अगर परमात्मा मिल गया हो, अगर जरा-सी भी उसकी झलक मिली हो तो बांट, जल्दी कर! रोक मत, क्योंकि एक गहरी बात है इसमें: जो मिलता है, अगर तुम उसे रोक लो, तो मर जाता है। जीवन प्रवाह में है। मिले तो दो। मिले तो बांटो।
संसार के नियम और अंतर्जगत के नियम अलग-अलग हैं, विपरीत हैं। यहां धन मिले तो तिजोरी में
जल्दी से बंद करो, नहीं तो कोई ले जाएगा। ऐसे उछालते मत फिरो, नहीं तो छिन जाएगा; ज्यादा देर न लगेगी। किसी को पता भी न चले, ऐसा करो।
पुराने लोग बड़े होशियार थे। गांव में अब भी जो अमीर आदमी होता है, उसका पता नहीं चलता देखने से कि वह अमीर है। रहता गरीब ही जैसा है। किसी को पता ही नहीं चलना चाहिए कि पैसा उसके पास है। नहीं तो खतरा है। चोर हैं, बदमाश हैं, लुटेरे हैं। राज्य की नजर चली जाए तो टैक्स है, और नेताओं को पता चल जाए तो चंदा! वह उस झंझट में पड़ता ही नहीं। वह ऐसा ही रहता है, जैसा एक गरीब आदमी है; उसके पास है ही क्या! वह पैदल चलता है। वह वैसा ही जीता है, जैसे और आदमी जीते हैं। यह तरकीब है--धन को छिपाने की। जमीन में गड़ा कर रखता है। उसको कभी भोगता नहीं, क्योंकि भोगोगे तो पता ही चल जाएगा। भोगोगे तो भोगोगे कहां? यहीं खरीदोगे न चीजें! यहीं लोगों के सामने गुजरोगे, तो मुश्किल हो जाएगी। तो धनी आदमी भी छिपा-छिपा कर चलता है।
यह तो बाहर का नियम है कि धन हो, तो छिपाना। भीतर का नियम यह है कि धन मिले--भीतर का धन यानी ध्यान; परमात्मा मिले, तो बांटना। क्योंकि भीतर अगर कुछ भी बचाया, तो जंग खा जाता है। और कुछ भी रोका, तो सड़ जाता है। धारा रुकी कि गंदी हुई। पानी स्वच्छ रहता है--बहता रहे।
तो यह सूत्र बड़े काम का हैः "पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय-पाय फिर खोना क्या रे।" अगर पा-पा कर बचा कर रखते गए, कंजूसी की, कृपणता की, तो फिर-फिर खो दोगे। मिले तो लुटाया।
कभी नसीब हुई है भिखारियों को खुशी?
हमेशा हाथ ही फैलाए जिंदगी गुजरी
लुटाए जा जो तेरे पास है लुटाए जा

कुशादा दस्ते सखी को नहीं है कोई कमी
जो दिल में प्यार की दौलत है तो लुटाए जा। तेरी सरिश्त में लाइन्तहा मोहब्बत है जहाने जीस्त की वुसअत तेरी वरासत है
जो दस्तो दिल को कुशादा न रहने देगा तू तो कुछ न पास रहेगा ये ऐसी दौलत है लुटाए जा, ये लुटाने से और बढ़ती है। रवां दवां है हर इक सिम्त को जवां लहरें कुशादा दिल को तेरे बेकिनार सागर में उठेंगे दिल से तेरे जितने प्रेम के बादल फलक से उतनी ही उतरेंगी मीठी बरसातें न हो जो प्रेम तो सागर भी सूख जाते हैं। अगर खुदा है कोई तो यही खुदा हो तेरा तू जिस्मो जान बसद शौक कर इसी पै फिदा सजूदे शौक तड़पते हैं गर जबीं में तेरी तू आस्ताने मुहब्बत पै अपने सर को झुका तू प्रेम पूजा में पा वहदते हकीकत को।
नजर से प्रेम की कसरत न देख वहदत को
खुदा के बंदों में तू देख उसकी सूरत को
वही है जल्वानुमां हर बशर के कालब में
वो तेरे सामने मौजूद है इबादत को
जिसे तू दैरो हरम में तलाश करता है।
अगर प्रेम मिले, तो बांटना। अगर प्रेम मिले, तो परमात्मा चारों तरफ मौजूद है, उसको समर्पित कर देना।
त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये।"
जो उससे तुम्हें मिले, वह उसी को लौटा देना। तो और मिलता रहेगा।
ऐसा ही समझो कि सागर से उठत हैं बादल, फिर बरसते हैं हिमालय पर, गंगाओं में बहते हैं फिर; और गंगाएं ले जाकर फिर सागर में उंड़ेल देती हैं। सागर से फिर उठते हैं बादल, फिर बरसते हैं हिमालय पर, फिर गंगाओं में जाते हैं, फिर सागर में उंड़ल जाते हैं। जीवन में एक वर्तुल है।
अगर गंगा सोचे कि ऐसा अपना पानी सागर में लुटा देना बड़ी नासमझी है-- गंगा कंजूस हो जाए, पूंजीवादी हो जाए और सोचे कि बंद रखो अपना; ऐसे तो मिट जाएंगे, बरबाद हो जाएंगे--तो उसी क्षण सिलसिला टूट जाएगा। फिर बादल नहीं उठेंगे। फिर गंगा में नया जल नहीं बरसेगा। और ध्यान रखना, गंगा गंदी होती जाएगी। आज नहीं कल गंगा सड़ जाएगी। ताजगी खो जाएगी, क्योंकि सागर उसे शुद्ध करता है। सारा कीचड़-कबाड़, पत्थर-मिट्टी, गंदगियां, गंदगियों से भरे नाले- नदियां, आदमी का सारा मल-मूत्र गंगा ले जाती है, सागर में डाल देती है। फिर बादल बने, तो मलमूत्र और गंदगी तो सागर की तलहटी में पड़ी रह गई, भाप बनी। गंदगी तो भाप नहीं बन सकती। भाप शुद्ध होकर उठी। फिर बादल बने। फिर गंगा को नया ताजा जल मिला। फिर नया जीवन उतरा।
ध्यान रखना, ऐसा ही प्रेम का वर्तुल है। उसे तोड़ना मत। जरा सा भी प्रेम मिले तो बांट देना। यह डर मन में मत लेना कि चुक जाएगा। यह डर मन में लिया कि निश्चित चुक जाएगा।
"कभी नसीब हुई है भिखारियों को खुशी?" भिखमंगे को खुशी नहीं मिल सकती, क्योंकि वह मांगता है और पकड़ता है। खुशी मिलती है--देनेवालों को। खुशी मिलती है--सम्राटों को। खुशी मिलती है--बांटने वालों को। बांटो--और मिलती है।
कभी नसीब हुई है भिखारियों को खुशी?
हमेशा हाथ ही फैलाए जिंदगी गुजरी।
लुटाए जा जो तेरे पास है लुटाए जा
कुशादा दस्ते सखी को नहीं है कोई कमी
जो दिल में प्यार की दौलत है तो लुटाए जा।

और घबड़ा मत, क्योंकि जहां से यह प्यार की छोटी सी किरण आई, वहां से और किरणें भी आएंगी। आस्था रख। श्रद्धा रख।
ऐसा ही समझो कि एक कुएं में पानी है; तुम पानी न पियो, तुम डरे रहो कि कहीं पानी चुक न जाए; तुम किसी को पानी न भरने दो; तुम कुएं को ढांक कर रख दो--तालों में, जंजीरों में; कुएं को कारागृह बना दो--तो तुम सोचते होः पानी बचेगा? सड़ जाएगा, जहर हो जाएगा। और ज्यादा दिन अगर पानी न निकाला, तो वह जो छोटे-छोटे झरने ताजे पानी को लाते थे कुएं में रोज-रोज, वे बंद हो जाएंगे, उन पर मिट्टी जम जाएगी। फिर नया पानी नहीं आएगा। और फिर इस कुएं का पानी पीना मत भूल कर। उससे मौत आएगी, जीवन नहीं आएगा।
ऐसे ही झरने हैं तुम्हारे भीतर। तुम परमात्मा से जुड़े हो। जैसे कुआं सागरों से जुड़ा है झरनों के माध्यम से--ऐसे हम सब उसी में अपनी जड़ें रोपे खड़े हैं। वह अनंत है। वहां से प्रेम आए तो कंजूसी मत करना; बांटना।
"दोनों हाथ उलीचिए, यही संतन को काम।" जो मिले, बांटना। गीत मिले, गीत बांटना। नृत्य मिले, नृत्य बांटना। बांटना जरूर।
जो दिल में प्यार की दौलत है तो लुटाए जा
तेरी सरिश्त में लाइन्तहा मोहब्बत है
तेरे स्वभाव में असीम प्रेम पड़ा है। घबड़ा मत। उदारता सीख।
तेरी सरिश्त में लाइन्तहा मोहब्बत है
जहाने जीस्त की वुसअत तेरी वरासत है
तुझे सारे अस्तित्व का खजाना मिला है। यहां कोई भी इस अर्थ में गरीब नहीं। कैसे गरीब हो सकता है? जहां सब के पीछे परमात्मा खड़ा हो; जहां सब के हाथों में परमात्मा का हाथ हो! तुमने अगर अपने को भिखारी बना लिया, तो वह तुम्हारी धारणा है, अन्यथा तुम सम्राट हो! शहनशाहों के शहनशाह! अन्यथा तुम स्वयं परमात्मा हो।
तेरी सरिश्त में लाइन्तहा मुहब्बत है
जहाने जीस्त की वुसअत तेरी वरासत है
जो दस्तो दिल को कुशादा न रहने देगा तू
तो कुछ न पास रहेगा यह ऐसी दौलत है
अगर बचाया तो कुछ भी न बचेगा। लुटाए जा, ये लुटाने से और बढ़ती है। यह प्रेम का सूत्र कबीर के इस वचन में हैः
पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय पाय फिर खोना क्या रे।
जब अंखियन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।।
तुम चौंकोगे कि अचानक इस सूत्र का यहां क्या अर्थ होगा? अर्थ है और गहरा अर्थ है।
कबीर यह बात कह रहे हैं कि जब प्रेम पैदा होता है, तो फिर क्या पूजा, क्या अर्चना? ये तो उनकी चीजें हैं, जिनके जीवन में प्रेम नहीं है। तो दीया लगा कर बैठे हैं, आरती बन कर बैठे हैं, किसी पत्थर की मूर्ति के सामने आरती घुमा रहे हैं! ये तो उनकी बातें हैं, जिनके जीवन में प्रेम नहीं हैं। ये पूजा और ये प्रार्थना सब झूठ हैं। ये औपचारिकताएं हैं।
जिसके जीवन में असली प्रेम हैं, वह तो लुटाएगा। वह कोई मंदिर-मस्जिद में जाएगा? किसी पत्थर की मूरत खोजेगा? जहां इतनी जिंदा मूर्तियां चलती- फिरती हों, जहां चारों तरफ परमात्मा न मालूम कितने रूपों में द्वार पर दस्तक देता हो--वहां तुम मंदिर और मसजिद में खोजने जा रहे हो! तुम होश में हो? तुम्हारे पास आंखें हैं या कि अंधे हो? तुम कहां खोजने जा रहे हो?
इन वृक्षों में भी वही है। इन वृक्षों को पानी दे दिया, तो प्रार्थना हुई। इन लोगों में भी वही है। इन से दो प्रेम के शब्द कहे, तो प्रार्थना हुई। इसलिए कहते हैंः "जब अंखियन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।"
जब नींद गहरी होती है, तो फिर कौन फिकर करता है कि राजमहल हो सोने के लिए और बड़ी शानदार मसहरी हो, बड़ा शानदार बिस्तर हो, मखमली गद्दे हों, तकिए हों--तब सोएंगे।
जिसको गहरी नींद आती है, वह पत्थर पर सिर रखकर सो जाता है, तो भी नींद आ जाती है। और जिसको नींद ही नहीं आती, वह सब आयोजन कर ले, महल बना ले, सुंदर

तकिए बना ले, गद्दे बना ले--और नींद नहीं आती, तो नहीं आएगी। गद्दे-तकिए कहीं नींद पैदा करते हैं?
भूख है तो रूखी-सूखी रोटी अमृत हो जाती है। और भूख नहीं है तो तुम कितने ही थाल सजाओ, सोने के थाल, हीरे-जवाहरात जड़े थाल, और कितने ही स्वादिष्ट भोजन बनाओ--मगर भूख नहीं है तो क्या करोगे?
प्रेम हो, बस काफी है; फिर यह अर्चना-पूजा, नमाज, मंदिर-मसजिद, गिरजे- गुरुद्वारे, इनकी बहुत चिंता नहीं करनी पड़ती। ये तो आयोजन हैं। ये तो तकिया-बिस्तर जैसे आयोजन हैं। नींद तो आती नहीं और चले मंदिर! प्रेम तो जगा नहीं, चले मस्जिद! तो वहां कवायद करके आ जाओगे, और क्या होगा! कवायद घर में ही कर ले सकते थे, इतने दूर जाने की जरूरत न थी। "जब अंखियन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।"
वे यह कह रहे हैं कि जहां प्रेम है, वहां विधि-विधान की कोई जरूरत नहीं। असली चीज हो गई, फिर विधि-विधान क्या!
इसलिए कबीर कहते हैं कि मेरा तो उठना बैठना ही परिक्रमा है। मैं खुद खाता-पीता हूं, यही भगवान के लिए लगाया गया मेरा भोग है। अब और मैं कोई परिक्रमा नहीं करता और मैं कोई पूजा नहीं करता। इसको उन्होंने सहज-योग कहा है।
असली का खयाल करो, नकली पर मत जाओ। लेकिन लोग नकली पर परेशान हैं। तुम इसकी फिक्र ही नहीं करते कि कैसे नींद आए। तुम इसकी फिक्र करते हो कि गद्दा-तकिया कैसे अच्छा हो जाए। गद्दे-तकिए से नींद के पैदा होने का कोई भी तो वैज्ञानिक संबंध नहीं है। तुम सम्राटों से पूछो, राजा-महाराजाओं से पूछो--जिनके पास गद्दे-तकिए हैं और नींद नहीं आती।
मजा तो यह है कि जैसे-जैसे गद्दे-तकिए अच्छे होते जाते हैं, वैसे-वैसे नींद मुश्किल होती जाती है। अमरीका में सब से ज्यादा नींद कम हो गई है; गद्दे-तकिए सब से ज्यादा अच्छे हो गए। विधि-विधान पर ज्यादा ध्यान हो गया। नींद का मूल रूप खो गया।
तुमने अक्सर देखा होगा कि अमीर आदमी की भूख खत्म हो जाती है। जब तक भोजन जुटा जाता है, तब तक भूख खत्म हो जाती है। गरीब आदमी के पास भूख होती है और भोजन नहीं होता। अब तुम्हें अगर दोनों में से चुनाव करना हो, तो गरीब की भूख चुन लेना; अमीर का भोजन मत चुनना। लेकिन अधिक लोग अमीर का भोजन चुनते हैं। वे कहते हैंः भूख में क्या रखा है, न लगी तो चलेगा। दवा ले लेंगे! मगर भोजन तो चाहिए।
तुम मूल को चूक जाते हो, गौण को पकड़ लेते हो; क्षुद्र को पकड़ लेते हो; व्यर्थ को पकड़ लेते हो। और ऐसी ही स्थिति धर्म के जगत में हो जाती है। विधि-विधान महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।
कोई शीर्षासन लगाए खड़ा है। मन को उलटा करना है, वे तन को उलटा किए खड़े हैं! वे सोचते हैं कि तन को उलटा करने से मन उलटा हो जाएगा! कोई फर्क न पड़ेगा। इतना सस्ता मामला नहीं है।
मन को जीतना है; वे तन को जीतने में लगे हैं। न मालूम कितनी कवायतें कर रहे हैं! न मालूम किस-किस ढंग से उलटे-सीधे शरीर को घुमा रहे हैं, फिरा रहे हैं! तुमने सत्य को कोई सरकस समझा है?
योग सरकस हो गया है--एक तरह के व्यायाम की व्यवस्था हो गई है। उसका मूल रूप खो गया। असली बात खो गई। ध्यान तो खो गया; आसन महत्वपूर्ण हो गए। क्षुद्र पर आदमी की पकड़ ऐसी है कि जहां भी उसे मौका मिल जाए, वह तत्क्षण क्षुद्र को पकड़ लेता है।
तकिया और बिछौना क्या रे... जब अखियन में नींद घनेरी।
कहै कबीर प्रेम का मारग, सिर देना तो रोना क्या रे।।
और कबीर कहते हैं यह प्रेम का मार्ग तो सिर देने का मार्ग है। इस पर शिकायत मत लाना। यहां शिकायत लाए तो तुम समझे ही नहीं बात। यह तो अपने को खोने का ही मार्ग है। यहां तो मिटना ही है। यह तो सूली चढ़ना है। रोना मत फिर कि अब यह खो गया, वह खो गया।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम प्रार्थना भी करते हैं, पूजा
भी करते हैं, ईमानदारी से भी रहते हैं--फिर भी गरीब हैं; और बेईमान अमीर

होते जा रहे हैं!" तो न तो इन्होंने पूजा की कभी, न इन्होंने प्रार्थना की कभी, और न ये जानते कि ईमानदारी का स्वाद क्या है! ये तो भयभीत लोग हैं। ये डरते हैं कि बेईमानी की तो कहीं फंस न जाएं! बस, इतना कारण है ईमानदार होने का। और कुछ तो कर नहीं सकते, जेब काट नहीं सकते, तो जाकर मंदिर में प्रार्थना कर आते हैं कि प्रभु हम तो नहीं कर सकते, तू ही कर दे हमारी तरफ से। लेकिन इनका दिल वही है।
ये भी चाहते वही हैं, जो बेईमान को मिल रहा है। बेईमानी नहीं कर पाते हैं, क्योंकि हिम्मत नहीं है। बिना बेईमानी किए भी। लेकिन, मांग वही है। यह कोई प्रेम का मार्ग न हुआ।
प्रेम के मार्ग पर चलने वाला तो कहता हैः तू मुझे मिटाए, तो मैं खुश हूं। तेरी इस अदा में भी मैं राजी हूं। तेरा जरूर कुछ राज होगा। तू मुझे मिटाता है, तो तेरा राज होगा।
एक सूफी फकीर रोज परमात्मा को धन्यवाद देता था कि मेरी जरूरतों का तुम बड़ा खयाल रखते हो; जब जो जरूरत होती है, तब पूरा कर देते हो।
उसके शिष्य उससे बड़े परेशान हो गए थे। क्योंकि कई बार वे देखते थेः यह बिल्कुल झूठी बात है। तीन दिन तक एक बार भोजन न मिला। और किसी गांव में लोगों ने ठहरने न दिया; पानी तक की मुश्किल पड़ गई; रेगिस्तानों में पड़े रहना पड़ा।
और जब तीसरे दिन फिर फकीर ने सांझ अपनी प्रार्थना की और हाथ आकाश की तरफ उठाए और कहाः "हे प्रभु, तू भी अदभुत है! मेरी जरूरत, जो जब जैसी हो, तू सदा पूरी कर देता है!" तब एक शिष्य से न रहा उसने कहा कि "सुनो जी, बहुत हो गया सुनते-सुनते! यह आप कह क्या रहे हो? तीन दिन से भूखे मर रहे हैं; पानी तक मिला नहीं। गांव में कोई शरण नहीं देता। और अभी भी तुम कहे चले जा रहे हो कि हे प्रभु, जो मेरी जरूरत हो, वह तू सदा पूरी कर देता है!"
उस फकीर ने कहा कि "हां, अभी भी कहे जा रहा हूं, क्योंकि तीन दिन से यही मेरी जरूरत थी कि मुझे रोटी न मिले, पानी न मिले और मुझे मरुस्थल में तड़फना पड़े। तीन दिन से यही मेरी जरूरत थी। तुमसे मैंने यह कब कहा कि वह मेरी जरूरतें पूरी कर देता है? मैंने यह कहा कि जो भी मेरी जरूरतें होती हैं, वह पूरी कर देता है। मैं भी नहीं जानता मेरी जरूरतें, वह मुझसे ज्यादा बेहतर जानता है। इसलिए मैं उससे कभी प्रार्थना नहीं करता कि तू ऐसा कर दे, वैसा कर दे। वह तो अपनी बुद्धिमानी उसके ऊपर रखनी होगी। मैं उससे इतना ही कहता हूंः तू जैसा करता है, वैसा ही करता जा। मेरी मत सुनना। कभी कमजोरी के क्षण में अगर मैं प्रार्थना करूं, तो दुत्कार
देना। तुझे जो करना हो, वही करना।
कहै कबीर प्रेम का मारग, सिर देना तो रोना क्या रे!

ये प्रेम ही तो माबूद सब खुदाओं का
यही तो देवता है सारे देवताओं का
इसी के दम से रवां कारवाने हस्ती है
यही है आखरी मकसद है सब दुआओं का
इसी को ढूंढ़ती फिरती है दिल की हर धड़कन।
न कर भरोसा कोई अक्ल पर जहानत पर
नमाजो तकवाओ कुर्बानिओ अबादत पर
कमाले हुस्न जवानिओ जोरे बाजू पर
भरोसा करना है तुझको तो कर मोहब्बत पर
न भूल कुश्तो पनाहे जहाने मोहब्बत है। जो तुझको सच्ची मोहब्बत है अपने प्यारे से लगाव जो है तुझे शोला रुख दुलारे से
तो दे अनाओ खुदी की तू पाक आहुति
मिला दे आज शरारे को तू शरारे से
जमाले यार के शोलों को फिर लपकने दे।
ये प्रेम ही तो माबूद सब खुदाओं का।

प्रेम सारे परमात्माओं का परमात्मा है। यही तो इष्ट-देवता है सब देवताओं का।
ये प्रेम ही तो माबूद सब खुदाओं का
यही तो देवता है सब देवताओं का
इसी के दमसे रवां कारवाने हस्ती है
यह जिंदगी का जो कारवां चल रहा है, इसके भीतर प्रेम का ही सिलसिला है। प्रेम से ही बंधी है यह पूरी जगती--यह पृथ्वी, ये चांद-तारे, यह सूरज, यह आकाश... ।
इसी के दमसे रवां कारवाने हस्ती है
यही तो आखरी मकसद है सब दुआओं का
सारी प्रार्थनाओं का मकसद क्या है? एक मकसद है कि प्रेम उत्पन्न हो जाए।
"इसी को ढूंढ़ती फिरती है दिल की हर धड़कन।" और तुम ढूंढ़ क्या रहे हो? दिल की धड़कन-धड़कन इसी को ढूंढ़ रही है।
"न कर भरोसा कोई अक्ल पर जहानत पर।" बुद्धि पर बहुत भरोसा मत करना, क्योंकि बुद्धि प्रेम की
दुश्मन है। हृदय पर भरोसा करना; सिर पर नहीं। सिर खोने को तैयार रहना। कबीर ने कहा हैः जो अपना सिर काटने को तैयार हो, वह मेरे साथ चले। "घर जो बारै आपना, चलै हमारे संग।"
न कर भरोसा कोई अक्ल पर जहानत पर
नमाजो तकवाओ कुर्बानिओ अबादत पर
और न भरोसा कर पूजा-पाठ, विधि-विधानों पर--उपवास-व्रत, त्यागों पर; क्योंकि वे भी सब बुद्धि की खोजी हुई तरकीबें हैं।
विधि-विधान सब बुद्धि ने खोजे हैं। हृदय तो एक ही विधि जानता है, एक ही विधान जानता है, हृदय का तो एक ही शास्त्र हैः प्रेम। इन दो छोटे शब्दों में सब आ गया। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।
नमाजो तकवाओ कुर्बानिओ अबादत पर
न कर भरोसा कोई अक्ल पर जहानत पर
"कमाले हुस्न जवानिओ जोरे बाजू पर।" और शक्ति पर भी भरोसा मत कर। संकल्प पर भी भरोसा मत कर। भरोसा करना है तुझको तो कर मुहब्बत पर--समर्पण पर, प्रेम पर।
"न भूल कुश्तो, पनाहे जहाने मोहब्बत है।" याद रख इस सारे अस्तित्व का आधार सिर्फ प्रेम है। सिर्फ प्रेम और कुछ भी नहीं।
जो तुझको सच्ची मुहब्बत है अपने प्यारे से
लगाव जो है तुझे शोला रुख दुलारे से
इस रोशनी से भरे स्रोत से अगर तेरा प्रेम है, तो एक ही प्रार्थना करः
"तो दे अनाओ खुदी की तू पाक आहुति"--तो अपने अहंकार को समर्पित कर दे
उस प्रकाश के स्रोत में।
"मिला दे आज शरारे को तू शरारे से।"--उस महाज्योति में अपनी छोटी ज्योति को मिला दे।
"जमाले यार के शोलों को फिर लपकने दे।"--और फिर परमात्मा की ज्योति जलने दे और तू भी जल उस ज्योति में।
खोना पड़ेगा स्वयं को। मिटाना पड़ेगा। शून्य होना पड़ेगा। वही अर्थ है गरीबी का।
"कहे कबीर प्रेम का मारग, सिर देना तो रोना क्या रे।"
सती को कौन सिखावता है, संग स्वामी के तन जारना जी।
प्रेम को कौन सिखावता है, त्याग मांही भोग का पावनाजी।।
अब तुम पूछोगेः यह प्रेम कहां से लाएं? कहां खोजें? किन कंदराओं में जाएं? किन पहाड़ों में, किन गुफाओं में? यह प्रेम कहां से लाएं?
कबीर कहते हैंः "सती को कौन सिखावता है, संग स्वामी के तन जारना जी।"
सती जब जल जाती है अपने पति के साथ, उसे किसने सिखाया? किस विश्वविद्यालय में उसे शिक्षा दी गई है?

कबीर यह कह रहे हैं कि प्रेम को तुम लेकर ही आए हो; वह तुम्हारा स्वभाव है। उसे कहीं खोजने नहीं जाना है; अपने ही भीतर झांको और पा लो।
प्रेम के साथ ही हम पैदा हुए हैं।
प्रेम हमारी प्रकृति है।
सभी बच्चे प्रेमपूर्ण होते हैं, फिर धीर-धीरे प्रेम खोता जाता है।
संसार की तरकीबें सीख लेते हैं; बेईमानियां सीख लेते हैं। संसार के धोखे सीख लेते हैं। संसार की जबरदस्तियां उनके ऊपर लाद दी जाती हैं। झूठा पाखंड सीख लेते हैं।
किसी बच्चे को कभी भूल कर मत कहना कि मैं तुम्हारी मां हूं, मुझे प्रेम करो; कि मैं तुम्हारा पिता हूं; कि मैं तुम्हारा पिता हूं। किसी को कभी इस तरह के वचन मत कहना, क्योंकि इनका मतलब यह होता है कि तुम प्रेम ऊपर से थोप रहे हो।
"मैं तुम्हारी मां हूं, मुझे प्रेम करो!" इसका क्या मतलब हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि बच्चे को प्रेम का कर्तव्य निभाना है। तो बच्चे की जो प्रेम की सहज क्षमता थी, वह तो दब गई; एक आदेश हो गया। मां है, तो करना ही पड़ेगा प्रेम। "करना ही पड़ेगा।" तो झूठा होगा, औपचारिक होगा। पिता है तो प्रेम करना ही पड़ेगा। यह नियम है। नियम से नहीं जिंदगी चलती।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने शादी की तो एक झंझटी स्त्री मिल गई। उसने मुल्ला को सब तरह से कब्जे में ले लिया। सोचा तो था कि पति बनने जा रहे हैं। सोचे तो थे मन में कि पति यानी परमात्मा। हो गए गुलाम! और बुरे गुलाम हो गए। वह छोटी-छोटी बात में आज्ञा देतीः ऐसा करना, ऐसा नहीं करना; यह नहीं कहना। यह भी बात देती। कहां जाना, कहां नहीं जाना--यह भी बता देती। एक दिन तो मस्जिद में मौलवी ने पूछाः "जो लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं, हाथ ऊपर उठा दें।" सब ने हाथ उठा दिया; मुल्ला ही बैठा रहा।
पूछा मौलवी नेः "बड़े मियां, आप हाथ नहीं उठाते? स्वर्ग नहीं जाना? सुना नहीं?
मुल्ला ने कहाः "सब सुन लिया, मगर टांग नहीं तुड़वानी।"
मौलवी ने पूछाः "स्वर्ग में टांग टूटने की बात सुनी कहां, पढ़ी कहां!"
उसने कहाः "पढ़ने-सुनने का सवाल नहीं है। जब घर से आने लगा, तो पत्नी ने कहाः मस्जिद से सीधे घर आना, नहीं तो टांगें तोड़ दूंगी। जाना तो स्वर्ग है, मगर टांगे नहीं तुड़वानी!"
फिर तो धीरे-धीरे पत्नी का कब्जा जैसे बढ़ता गया। वह तो लिस्ट देने लगी उसकोः यहां जाओ; यह करो, यह नहीं करो; यह बोलना; यह खरीद लाना; फलां जगह मत जाना। वह भी उसमें लिखा रहता। तो फेहरिश्त दे देती सुबह से।
फिर एक दिन ऐसा हुआ कि पत्नी पानी भर रही थी कुएं पर और गिर गई। चिल्लाई। मुल्ला भागा गया।
झांक कर देखा। पत्नी बोलीः "क्या खड़े-खड़े देख रहे हो? रस्सी लाओ, मुझे निकालो।"
मुल्ला ने कहाः "लेकिन फेहरिश्त में तो यह लिखा ही नहीं! यह मैं कैसे
कर सकता हूं?"
हम लोगों की सहजता को नष्ट कर देते हैं। आदेश--कि प्रेम करो!
पत्नी कहती हैः मुझे प्रेम करो, मैं पत्नी हूं। पति कहता हैः मुझे प्रेम करो, मैं पति हूं। जैसे कि प्रेम भी किया जा सकता है! प्रेम होता है, किया नहीं जाता। यह करने की वजह से होने की क्षमता नष्ट हो गई है।
कबीर ठीक कहते हैंः "सती को कौन सिखावता है, संग स्वामी के तन जारना जी।" पति के साथ चिता पर चढ़ जाना सती को किसने सिखाया है? उसी के हृदय से आया है। ऐसे ही जो परमात्मा के प्रेम में पड़ता है... । जब मनुष्य के प्रेम में लोग जल जाते हैं, तो परमात्मा के प्रेम का तो कहना ही क्या। बस प्रेम होता है, तो आदमी जलने को तैयार होता है। जलना सौभाग्य है। "प्रेम को कौन सिखावता है।
"त्याग मांही भोग का पावना जी।"
और प्रेम सदा त्याग करता है। इसलिए नहीं कि त्याग करना चाहिए। प्रेम
से त्याग होता है। तुम्हारा प्यारा बीमार है, तुम रात भर जाग कर बैठ जाते

हो। इसलिए नहीं कि प्रेम के कारण जाग कर बैठना चाहिए। "चाहिए" का प्रश्न ही कहां है? "चाहिए" गंदा शब्द है। कर्तव्य नहीं है यह। यह तुम्हारा आनंद है। यहां कहीं भी तुम्हें ऐसा भाव नहीं उठता कि मैं कोई एहसान कर रहा हूं। यह तुम्हारी सहज दशा है।
प्रेम त्याग करना जानता है। और जो प्रेम नहीं जानते, उनके त्याग झूठे हैं। प्रेम से जो त्याग आए, वही सच है।
"मन लागो मेरा यार फकीरी में।" उस प्रेम के प्रेम में पड़ गया हूं, तब
से फकीरी में रस आने लगा। उसके लिए छोड़ने को तैयार हो।
उपनिषदों का एक वचन हैः "त्येन त्यक्तेन भुजीथाः"--जिन्होंने छोड़ा, उन्होंने ही भोगा। बड़ा अपूर्व वचन है। उपनिषदों में इसके मुकाबले दूसरा कोई वचन नहीं। सब उपनिषद खो जाएं, यह एक वचन बच जाए, तो इसी से कुंजी मिल जाएगी। और सारे उपनिषद फिर से जन्माए जा सकते हैं। "त्येन त्यक्तेन भुंजीथाः।" जिन्होंने त्यागा, उन्होंने ही भोगा। यह बड़ा अपूर्व वचन है। या जिन्होंने भोगा, वे वे ही हैं जिन्होंने त्यागा।
अब त्याग और भोग को हम अक्सर उलटा समझते हैं। हम समझजे है: त्याग और भोग दुश्मन हैं। और यह सूत्र कुछ और कह रहा है। यह कह रहा है कि त्याग से ही भोग है। त्याग में ही भोग है।
यह कौन सा भोग है? यह किस भोग की बात कर रहे हैं? यह प्रेम में जो त्याग घटता है, उसमें बड़ा भोग है, बड़ा रस है, बड़ा आनंद है।
सती जब जल जाती है अपने पति के साथ, तो दुख से नहीं जलती--अहोभाव से जलती है; आनंद से जलती है; नाचते हुए। सती का अपने पति की चिता पर चढ़ना उसकी सुहागरात है। आज मिलन पूरा हुआ। पहले भी मिलन हुआ था, पहले भी सुहागरात आई थी, लेकिन वह तन ही तन की थी। आज तो तन गए; और आज तो भीतर का भीतर से मिलन हुआ। आज देह की बाधा भी न रही। यह उसके परम सौभाग्य का क्षण है।
तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा
वो बुत जो सामने मौजूद है इबादत को
वो बुत जो दैरो हरम में नहीं है पौशीदा
वो बुत कि जिसका नहीं है बुलंद आलामकाम
जो तुझ से दर फलक पर नहीं है जल्वानमां
दिमागो-दिल से नहीं है बईद जिसका खयाल
जो है नजर में हमेशा तेरी नजर तो उठा
वो महज नक्शे खयाली नहीं हकीकत है
वो जीता जागता माबूद है, उसे अपना
सरे नमाज उसी बुत के पावों में रख दे।
"तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा।" एक परमात्मा ही तुम्हारी स्मृति में रह जाए; एक वही अमूर्त तुम्हारी मूर्ति बन जाए।
"तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा।" और सब मंदिर-मस्जिद जाने दो।
सब मूर्तियां विदा करो। हृदय को खाली करो। कोई भी दूसरी मूर्ति तुम्हारे हृदय में हो तो बाधा रहेगी। सब आकृतियां जाने दो। तुम निराकार हो बैठे रहो, ताकि निराकार उतर सके। निराकार में ही निराकार उतरता है।
"तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा।" यही मोहम्मद ने कहा था।
मुसलामन गलत समझे। वे समझे कि मंदिरों में जाकर मूर्तियां तोड़नी हैं।
मोहम्मद ने कहा थाः मन के मंदिर में जो भीतर मूर्तियां है, वह हटा दो।
तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा।
वह बुत जो सामने मौजूद है इबादत को।
और वह सदा मौजूद है। जहां आंख करो, वहीं मौजूद है। उसकी ही मौजूदगी है;
और तो कुछ मौजूद ही नहीं है।
"वह बुत जो सामने मौजूद है इबादत को।" वह तैयार खड़ा है। तुम झुको, वह तुम्हें भर देने को तैयार खड़ा है। तुम झुको, वह तुम्हारी प्यास को बुझा देने को तैयार खड़ा है। वह अपनी झोली भरे रखा है कि जब भी झुको, तब तुम पर वर्षा कर दे।
"वह बुत जो दैरो हरम में नहीं है पौशीदा।" मंदिर-मस्जिदों में बंद नही
है परमात्मा।

वह बुत कि जिसका नहीं है बुलंद आलामकाम
वह तुझसे दर फलक पर नहीं है जल्वानमां
दिमागो-दिल से नहीं है बाईद जिसका खयाल
जो है नजर में हमेशा तेरी नजर तो उठा
न तो आकाश पर है, न पाताल में छिपा है, न मंदिर-मस्जिदों में छिप कर बैठ गया है।
जो है नजर में हमेशा तेरी नजर तो उठा
वह महज नक्शे खयाली नहीं, हकीकत है
और परमात्मा एक सपना नहीं है, कल्पना नहीं है; हकीकत है; हक है; सत्य है।
वह जीता जागता माबूद है, उसे अपना
सरे नमाज उसी बुत के पावों में रख दे
यह जो सारा ब्रह्मांड है, उसी के पैर हैं, उसी के चरण हैं। तुम कहां छोटी-छोटी आदमी की बनाई हुई मूर्तियों के पैर पकड़े बैठे हो!
आदमी ही बना लेता मूर्तियां, फिर खुद ही पैर पकड़ कर बैठ जाता है। खूब खेल कर रहे हो! अपने ही खिलौनों में उलझे हो!
सरे नमाज उसी बुत के पावों में रख दे
तू आज तोड़ दे सब बुत एक बुत के सिवा
ऐसा प्रेम कहीं से लाना नहीं होता; तुम्हारे भीतर है।
"सती को कौन सिखावता है, संग स्वामी के तन जारना जी।
प्रेम को कौन सिखावता है, त्याग मांही भोग का पावना जी।"
नहीं; ये सीखने की बातें नहीं है। तुमने जो सीख लिया, भूल जाओ। तुमने
जो सीख लिया, अनसीखा करो। यह तुम्हारे भीतर पड़ा है झरना। तुम्हारी सीख पत्थर की तरहै बैठ गई; इस झरने को रोके है, बहने नहीं
देती। जो तुम्हें सिखाया है--समाज ने, संप्रदाय ने, धर्मगुरुओं ने, राजनेताओं ने--हटाओ उस कचरे को! और तुम्हारे भीतर से उठेगी एक धारा-- जिसमें तुम बह जाओगे; जिसमें तुम डूब जाओगे। और जहां तुम डूब जाते हो, वहीं परमात्मा है।
मन लागो मेरा यार फकीरी में।
जो सुख पायो रामभजन में, सो सुख नाहि अमीरी में।
भला बुरा सब को सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में।
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनी आइ सबूरी में।
हाथ मे कूरी बगल में सोंटा, चारो दिसी जागीरी में।।
आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहा फिरत मगरूरी में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिलै सबूरी में।
समुझ देख मन मीत पियरवा, आसिक होकर सोना क्या करे।
पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय-पाय फिर खोना क्या रे।।
जब अंखियन में नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै कबीर प्रेम का मारग, सिर देना तो रोना क्या रे।।
सती को कौन सिखवाता है, संग स्वामी के तन जारनाजी।
प्रेम को कौन सिखवाता है, त्याग मांही भोग का पावना जी।।

आज इतना ही।

कहै कबीर मैं पूरा पाया
दसवां प्रवचन

एकांत की गरिमा

पहला प्रश्नः संत परमात्मा की खोज में समाज और परिवार को छोड़ कर जंगल में क्यों चले जाते हैं? कृपया समझाएं।

और जाएं भी तो कहां जाएं! और कोई स्थान भी नहीं है।
समाज और परिवार ने ही तुम्हें विकृत किया है; उससे ही मुक्त होना होगा। चाहे कोई वस्तुतः समाज को छोड़ कर चला जाए तो; या चाहे कोई मानसिक रूप से समाज को छोड़े तो, लेकिन समाज से मुक्त तो होना ही पड़ेगा। इस में भेद हो सकता है।
चरणदास छोड़ कर चले गए संसार; और कबीरदास संसार में रहे; इससे यह मत समझना कि
कबीरदास ने संसार नहीं छोड़ा। कबीरदास ने भी संसार छोड़ा; लेकिन संसार में रहते हुए छोड़ा।
संसार तो छोड़ना ही होगा। संसार की सीमा से तो मुक्त होना ही होगा। जो भीतर से मुक्त हो सके--हो जाए। उससे शुभ और कुछ भी नहीं। लेकिन जो पाएः अकेले भीतर से मुक्त होना असंभव है; बाहर से भी मुक्त होना पड़ेगा; अगर वैसा जरूरी मालूम पड़े, तो वह भी करना जरूरी है। लेकिन मुक्त तो होना ही होगा। तुम्हारे मन पर ये अंधकार की जो पर्तें हैं, समाज ने रखी हैं। तुम जब पैदा हुए थे, तो यह अंधेरा लेकर न आए थे। तुम जब
पैदा हुए थे, तो परमात्मा के साथ तुम्हारा रास चल रहा था। ये जो दीवालें उठाई हैं- समाज ने उठाई हैं, परिवार ने उठाई हैं, संस्कार ने उठाई हैं।
तुम जब आए थे, तो हिंदु की तरह नहीं आए थे। मुसलमान की तरह नहीं आए थे। जैन की तरह नहीं आए थे। तुम जब आए थे, तो कोई विचार लेकर नहीं आए थे; तुम जब आए थे, तो तुम्हारी कोई धारणा नहीं थी। तुम्हें यह भी पता नहीं था कि परमात्मा है या नहीं है। तुम न आस्तिक थे, न नास्तिक थे। तुम जब आए थे--कोरे कागज थे। फिर से कोरा कागज होना है। बिना कोरा कागज हुए तुम परमात्मा को न पा सकोगे। कोरा हो जाना ही परमात्मा को पाने का उपाय है। इसलिए तो कबीर शून्य की इतनी बात करते हैंः "गिरह हमारा सुन्न में।"
शून्य में घर बनाना है। उस शून्य को समाज, राजनेता, धर्मगुरु, पंडित, पुरोहित, शिक्षा--इन सब ने खूब भर दिया है। तुम्हारा कोरा हृदय बहुत गुद गया है। इस सब को धोकर साफ कर लेना है। इससे तुम मुक्त होओगे, तो ही जान पाओगे कि तुम कौन हो। नहीं तो तुम्हारी अपने से पहचान ही न होगी। ये हजार स्वर तुम्हारे भीतर बोलते रहेंगे कि तुम यह हो, कि तुम यह हो, कि तुम यह हो-- और तुम्हारा मूल स्वर इस आवाज, शोरगुल में पड़ा ही रह जाएगा; उसका पता ही न चलेगा।
तो तुम पूछते हो कि "संत परमात्मा की खोज में परिवार समाज छोड़ कर जंगल क्यों चले जाते हैं?" और कहां जाएं!
दो ही उपाय हैंः या तो यहीं रहें, तो भी छोड़ना तो पड़ेगा ही। फिर जल में कमलवत होना पड़ेगा।
रहो समाज में, लेकिन इसे ज्यादा गंभीरता से मत लो; खेल समझो। जैसे आदमी शतरंज खेलता है, तो लकड़ी के खिलौनों को राजा-वजीर मान लेता है। जब खेलता है, तो राजा-वजीर मान कर ही खेलता है। ऐसे ही खेलो; खिलाड़ी बनो। तब कहीं जाने की जरूरत नहीं। क्योंकि तुमने यहीं से मुक्त होने का रास्ता खोज लिया।
समाज में रहो, लेकिन अपने भीतर जीओ। जब मौका मिले, जल्दी से भीतर सरक जाओ। असली जंगल वहीं है। बाहर का जंगल थोड़ा सा सहयोग दे सकता है--भीतर के असली जंगल को खोज लेने में।
जंगल का क्या अर्थ होता है?--प्राकृतिक, स्वाभाविक, परमात्मा का बनाया हुआ; जैसा है वैसा। आदमी के हाथों का कोई निशान नहीं।

तो बाहर एक जंगल और भीतर का जंगल--कहीं भी जाओ, लेकिन जंगल तो जाना ही पड़ेगा। और तुम मुझ से पूछते हो तो मैं कहूंगा कि भीतर के जंगल में ही जाना। क्योंकि अक्सर ऐसा भी हो गया कि बाहर के जंगल में लोग जाकर बैठ गए और भीतर के जंगल में नहीं जा पाए। बाहर से जंगल में चले गए और वहां समाज की याद आती रही; परिवार की, प्रियजनों की, पत्नी की, पति की, बच्चों की, दुकान की--वही याद आती रही। तो तुम गए भी और कहीं न गए।
जैसे संसार में रह कर भी लोग मुक्त हो सकते हैं, ऐसे ही जंगल में रह कर
भी अमुक्त रह सकते हैं। जैसे संसार की भीड़ में खड़े होकर भी कोई चाहे तो अकेला हो सकता है; ऐसे ही जंगल के अकेलेपन में भी कोई चाहे तो संसार की पूरी भीड़ में घिरा रह सकता है। क्योंकि भीड़ मानसिक है।
मगर अगर तुम्हें लगे कि बाहर का जंगल भी सहयोग देगा भीतर के जंगल में,
तो कुछ हर्ज नहीं है। परमात्मा को खोजना ही है।
पर ध्यान रखनाः जिन्होंने जंगल में खोजा, वे भी एक दिन वापस लौट आते हैं। जंगल में वे अटके नहीं रह जाते। शायद प्रशिक्षण के लिए ठीक था। मगर महावीर जंगल गए, बुद्ध जंगल गए; लेकिन लौट तो आए समाज में। जो पाया था, उसे बांटने तो यहीं आ गए। तो चाहे यहां रह कर पाओ और चाहे कहीं रह कर पाओ, लुटाना तो यहीं होगा।
जैन-शास्त्र बहुत चर्चा करते हैं महावीर के जंगल जाने की। लेकिन इस बात की बिल्कुल चर्चा नहीं करते कि फिर महावीर लौट क्यों आए? अगर जंगल में ही सब था, तो वहीं रह जाते!
नहीं, वह तो प्रयोगमात्र था। वह जो समाज से छूटने के लिए एक व्यवस्था, विधि मात्र थी। दूर हट गए, ताकि सब तरह अपने में रम जाए। जब रम गए, जब कोई भय न रहा; जब यह पक्का हो गया कि अब दुनिया की कोई चीज डांवाडोल नहीं करेगी; धन सामने पड़ा रहेगा, तो भी लोभ मेरे भीतर नहीं उठेगा। कोई गाली भी देगा, तो मेरे भीतर अपमान नहीं जगेगा। और सुंदर से सुंदर व्यक्ति निकलेगा, तो मेरे भीतर वासना की तरंग न उठेगी। जब यह पक्का हो गया, तो अब क्या डर! लौट आए। तुम अपने में सोच लेना। अगर यहीं रह कर कर सको, इससे बेहतर कुछ भी नहीं। क्यों व्यर्थ आना-जाना कहीं? न कर सको, तो नंबर दो की बात है। तो चाहे कुछ दिन के लिए हट जाना पड़े एकांत में, हट जाना। मगर ध्यान रखना कि वह कुछ दिन का ही हो हटना। वह तुम्हारी आदत न बन जाए। ऐसा न हो कि अभी, तुम संसार पर निर्भर हो, कल जंगल पर निर्भर हो जाओ! क्योंकि जहां आदत है, वहीं बंधन है। जहां बंधन है, वहीं संसार है।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि बुरी आदत में भी लोग बंद होते हैं! अच्छी आदतों में भी बंद हो जाते हैं! कोई आदमी सिगरेट पीता है; हम कहते हैंः बुरी आदत है। और कोई आदमी सिगरेट की तरह ही माला जपता है, न जपे तो तलफ लगती है। जपता है माला, तो कुछ खास रस नहीं आता। सिगरेट पीने वाले को भी कुछ खास रस नहीं आता, नहीं जपता तो बेचैनी होती है। सिगरेट पीने वाले को भी, कुछ न पीए तो बेचैनी होती है।
हालांकि माला और सिगरेट बड़ी अलग-अलग बातें हैं। माला बहुत निर्दोष है, कोई नुकसान तुम्हें नहीं पहुंचाएगी। कितनी ही जपो, न तो क्षय रोग होगा, न कैंसर होगा। कोई माला इस तरह के उपद्रव नहीं कर सकती। लेकिन जहां तक गहरी बात का संबंध है, दोनों आदतें हो गई। आदतें हो गईं, तो दोनों बंधन हो गई।
जिसे मुक्त होना है, उसे किसी आदत का बंधन नहीं होना चाहिए। ऐसा न हो
कि संसार से तो भागो, फिर जंगल में जकड़ जाओ। फिर वहां से लौट न सको। फिर वादियों से, पहाडों से, वृक्षों से, पशु-पक्षियों से प्रेम हो जाए, तो वहीं परिवार बस गया।
परिवार के लिए आदमी ही होना जरूरी थोड़े है। एक कुत्ते से प्रेम बन सकता है और तब वही परिवार हो गया। यह भी हो सकता है कि जंगल के सन्नाटे से मोह लग जाए; तो जहां मोह है, वहां संसार है।
संसार से मुक्त होने का अर्थ क्या होता है? संसार से मुक्त होने का अर्थ होता हैः मन से मुक्त होना। मन यानी मोह, लोभ, काम, क्रोध इन सबका जोड़।

तुम जंगल में बैठे हो; सन्नाटा है; बड़े प्रसन्न हो। क्या यह प्रसन्नता बाजार में भी कायम रह सकेगी? रह सके, तो ही तुमने पाई। अगर बाजार जाकर खो जाए, तो पाई ही नहीं। यह पाना कुछ पाना हुआ? यह तो जंगल पर निर्भरता हुई। यह शांति और सन्नाटा जंगल का था, तुमने नाहक अपना समझ लिया। तुम्हारा जो है- तुम्हारे साथ रहेगा--जहां तुम रहो।
इसलिए पहली बात तो मैं सुझाऊंगाः कहीं जाना मत। क्योंकि यह सिर्फ आदत
का बदलना हो जाएगा। यहीं पहले प्रयोग कर लो। और हो सकता है...
पत्नी नहीं छोड़नी है, पत्नी के प्रति पत्नी-भाव छोड़ना है। मेरी-तेरी
का भाव छोड़ देना है। कौन किसका? चार दिन का संग-साथ है। अजनबी हैं हम सब यहां। राह पर मिल गए यात्री। साथ-साथ चल लिए थोड़ी देर। मगर इससे मोह मत बसा लेना। इससे ऐसा मत समझ लेना कि इस पत्नी के बिना जी न सकोगे; कि यह पत्नी तुम्हारे बिना न जी सकेगी। इस पत्नी पर कब्जा मत कर लेना। और न ही इस पत्नी को अपने पर कब्जा कर लेने देना। गुलाम मत बनना एक-दूसरे के। स्वतंत्र रहना। अपनी स्वतंत्रता को कायम रखना। और
दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करना। तो पत्नी विदा हो गई। फिर तुम रहो पत्नी के साथ, फिर कोई बाधा नहीं है।
दुकान पर बैठो। इस दुकान को भी परमात्मा का दिया हुआ आदेश समझो। उसने तुम्हें भेजा; यही उसकी मरजी होगी। यही करवाए, तो यही करेंगे। मगर करेंगे-- मालिक न बनेंगे। मालिक वही है। जिस दिन हटा लेगा दुकान से, उस दिन हट जाएंगे। जिस दिन दिवाला निकाल देगा दुकान का, उस दिन खड़े होकर हंसेंगे कि दिवाला निकल गया!
इपिटेक्टस यूनान में एक बड़ा संत हुआ। वह गुलाम था- एक सम्राट का गुलाम था। उन दिनों गुलाम होते थे। सम्राट को पता लगा कि यह तो बड़ा पहुंचा हुआ फकीर है और यह कहता है कि मैं शरीर नहीं हूं। सम्राट ने कहा, "परीक्षा करनी जरूरी है।" उसे बुलाया। दो पहलवान बुला कर उसका पैर मरोड़ने को कहा।
जब उन्होंने पैर मरोड़ा, तो वह फकीर बोला कि "देखो, मरोड़ तो रहे हो, लेकिन टूट जाएगा।" जैसे कि अपने से कोई लेना-देना नहीं। जैसे कि कोई और किसी चीज को मरोड़ता हो, और कोई कह दे कि भाई, टूट जाएगी। ज्यादा न मरोड़ो। ऐसे ही उसने कहा कि "मरोड़ तो रहे हो, मजे से मरोड़ो; मगर कहे देता हूं, पीछे पछताओगे; टूट जाएगी। यह टांग टूट जाएगी इतना मरोड़ोगे तो।"
लेकिन सम्राट ने कहाः "मरोड़े जाओ।" जब बिल्कुल टांग टूटने के करीब आ गई, चटकने लगी; उसने कहा कि "देखो, अभी भी समझ जाओ। अब जरा और आगे गए--कि गई।"
मगर अभी भी वह यह नहीं कह रहा है कि मेरी टांग मत तोड़ो। चिल्ला नहीं रहा है कि मुझे लंगड़ा कर दोगे! जब वह बिल्कुल तोड़ने लगे, तो उसने सम्राट से कहाः "सावधान, तुम्हारा गुलाम लंगड़ा हो जाएगा। तुम समझो। मेरा कुछ बिगड़ता नहीं है; नुकसान तुम्हारा है। फिर मुझसे मत कहना।"
लेकिन सम्राट तो पूरी परीक्षा लेने को ही था! उसने टांग तुड़वा दी। जब टांग टूट गई, तो फकीर हंसने लगा। उसने कहाः "हमने पहले ही कहा था। अब भोगो। मगर एक क्षण को भी तादात्म्य पैदा नहीं हुआ। यह नहीं कहाः मेरी टांग! बस, यही संसार में रहते हुए मुक्त रहने का सूत्र है।"
भूख है, तो उसकी। शरीर है, तो उसका। सब उसका। ऐसे अर्पण की भावदशा में जीओ, तो कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं।
यह भी बड़ा घना जंगल है। ये लोग भी चारों तरफ, वृक्षों ही जैसे हैं। यह भीड़-भाड़ भी, यह बाजार भी- यह भी बड़ा घना जंगल है। और जंगल क्या चाहिए! मगर अगर पाओ कि यह संभव नहीं है, इतने तुम समर्थ नहीं हो; इतने तुम बलशाली नहीं हो; समझो--पाओ कि कमजोर होः यह तुम से न हो सकेगा; इतने उलझन में जागना तुमसे न हो सकेगा। तुम्हें थोड़ी निश्चिंतता चाहिए, तो हट जाओ जंगल कुछ दिन के लिए। कुछ हर्जा नहीं है।
समझदार आदमी को वर्ष में महीने दो महीने के लिए, पंद्रह दिन के लिए जितनी सुविधा हो--हट ही जाना चाहिए। दो चार साल में मौका बना कर चार-छह महीने की छुट्टी लेकर जंगल हट ही जाना चाहिए। मगर जंगल की आदत मत बना

लेना। जंगल पहुंच कर फिर यह मत कहना कि अब मैं वापस नहीं आ सकता। क्योंकि यहां बड़ी शांति--और वहां बड़ी अशांति है।
शांति न तो यहां होती है और न वहां होती है। शांति भीतर होती है। जंगल
के गुलाम मत बन जाना। फिर मजे से जाओ।
तुम पूछते हो: "संत क्यों हट जाते हैं?" और क्या करें?
समाज ने विकृत किया है; समाज की छाया से थोड़ा दूर हट जाना उपयोगी हो सकता है।
मैं इसको कोई और ज्यादा मूल्य नहीं दे रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुमने बहुत बड़ा चमत्कार कर दिया--कि तुम जंगल चले गए। अगर तुमने मेरी बात ठीक समझी, तो मैं यही कह रहा हूं कि तुम नम्बर एक के बुद्धिमान आदमी नहीं हो; नम्बर दो के हो--दोयम। नंबर एक तो मैं जनक को कहता हूं, जो सिंहासन पर बैठे-बैठे सिंहासन से मुक्त हो गया। बुद्ध को नंबर दो कहता हूं; सिंहासन से हटना पड़ा पहले। भौतिक रूप से हटना पड़ा, तब बोध का जन्म हुआ। जनक को वहीं हो गया। बात वहीं समझ में आ गई। कहां जाना; कहां आना? जहां थे, वहीं रहते-रहते दीया जला दिया।
लेकिन मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि जबरदस्ती नंबर एक होने की कोशिश करना। नहीं हो सके, तो कोई अड़चन नहीं है। मुक्ति तो चाहिए ही; परमात्मा को तो पाना ही है। कैसे भी हो।
इसलिए जंगल वाले का मेरे मन में कोई बहुत समादर नहीं है। लेकिन इसका
यह मतलब नहीं कि मैं यह कहता हूं कि तुम संसार में ही रहना। चाहे परमात्मा से भी चूकना पड़े, मगर जंगल मत जाना; यह मेरा मतलब नहीं है। कोई उपाय न हो, तो करना।
जंगल जाना ऐसे है, जैसे सर्जरी। पहले डाक्टर दवा देता है। दवा से ठीक
हो जाए, तो ठीक। नहीं दवासे ठीक हो, तो फिर हाथ-पैर काटने पड़ते हैं। ऐसे ही अगर यहीं ठीक हो जाए, तो सब से बेहतर। यहां ठीक न हो, तो फिर सर्जरी; तो फिर जंगल चले जाना।

दूसरा प्रश्नः आप के आश्रम में यदि कोई एक ही साधना पद्धति हो, तो क्या साधकों को ज्यादा सुविधा नहीं होगी?

एक तरह के साधकों को होगी, जिनको वह पद्धति अनुकूल पड़ेगी। लेकिन वह तो छोटा सा अल्प मत होगा। यह द्वार सब के लिए है। यहां भिन्न-भिन्न वृत्ति, भिन्न-भिन्न ढंग, भिन्न-भिन्न रंग के लिए मार्ग है।
यही तो अड़चन अतीत में हो गई। इसी सुविधा के कारण तो दुनिया में इतने धर्म पैदा हो गए--इसी सुविधा के खयाल से।
तो जो भक्ति की विधि से चलेगा, वहां ज्ञान की चर्चा न होगी। जो ज्ञान
की विधि से चलेगा, वहां भक्ति की चर्चा न होगी। चर्चा तो दूर, जो ज्ञान की विधि से चलेगा, वह भक्ति का खंडन करेगा। क्योंकि ज्ञान की विधि को पूरी तरह हृदय में बिठाने के लिए वह खंडन जरूरी हो जाएगा। और जो भक्ति का समर्थक है, वह ज्ञान का खंडन करेगा।
तो सारे शास्त्र खंडनों से भर गए। और प्रत्येक पद्धति थोड़े से लोगों
के काम की है। इसलिए कोई धर्म सार्वलौकिक नहीं हो पाया। कोई धर्म सार्वभौम नहीं हो पाया। सब को जगह न बची उसमें।
अब जैसे जैन धर्म है। वह पुरुषार्थ का धर्म है; जो जिन लोगों को बहुत पुरुषार्थ में रस है, जिनके होने का ढंग पुरुष का ढंग है--आक्रमक--उनके लिए तो जमा। संकल्प का मार्ग है। लेकिन जिनका ढंग स्त्रैण है, जिनका ढंग समर्पण का है, जिनका रास्ता प्रेम का है, जिनके हृदय में बड़े भाव उदभूत होते हैं, उनके लिए नहीं जमा।
तो जो भक्त जैन घर में पैदा हो जाए--अभागा। क्योंकि उसे वहां मार्ग नहीं मिलेगा। और दूसरी तरफ जाने की सुविधा भी नहीं मिलेगी। क्योंकि बचपन से सुनेगाः भक्ति गलत है। बचपन से सुनेगा कि भक्त की तो बात ही छोड़ो; भक्तों के जो भगवान हैं कृष्ण, वे भी नरक में पड़े हैं! जैनों ने उन्हें नरक मे डाल रखा है। क्योंकि जैनों के हिसाब से यह तो बड़े राग की बात हो गईः

मोरमुकुट बांधे, पितांबर पहने, बांसुरी हाथ में लिए, गहनों से सजे! यह कोई वीतराग का ढंग है? महावीर नग्न खड़े है। यह है ढंग मोक्ष जाने का।
कृष्ण और महावीर को सामने खड़ा करो, तो किसी के मन में महावीर के प्रति सद्भाव उत्पन्न होगा कि यह है त्याग। सब छोड़ा। नग्न हुए। सब छोड़ा; घर-द्वार, धन-सम्पत्ति। यह है त्याग।
मगर किसी के मन में कृष्ण की मनमोहिनी सूरत बस जाएगी। कोई मस्त होने लगेगा--वे प्यारी आंखें देखकर। कोई डोलने लगेगा, वह बांसुरी का धुन सुन कर। वह कृष्ण के पैरों में बंधे घुंघरू सी के हृदय में बजने लगेंगे। कोई ऐसे मस्त हो जाएगा, जैसे बिना पिए शराब पी गया हो। महावीर उसे रूखे-सूखे लगेंगे। वह यह सोचेगाः अगर महावीर जैसे लोग मोक्ष जाते हैं, तो मुझे मोक्ष जाना ही नहीं। ऐसे सज्जन वहां खड़े होंगे जगह-जगह--नंग-धड़ंग; ऐसा मोक्ष, मुझे जाना ही नहीं। ऐसा सूखा-साखा मोक्ष क्या करेंगे?--खाएंगे, पीएंगे, ओढ़ेंगे--क्या करेंगे ऐसे मोक्ष को? आप ही लोग सम्हालो।
जहां कृष्ण हों, वहीं जाएंगे। भक्त तो कहेगाः अगर नरक में पड़े हैं, तो नरक ही जाएंगे। क्योंकि यह संगीत की वर्षा, यह समारोह, यह आनंद का झरना, यह गीत; कृष्ण के साथ नरक भी किसी को प्यारा लगेगा। और किसी को महावीर के साथ स्वर्ग में बैठ कर भी ऐसा लगेगा कि कहां फंस गए। अब कैसे इन सज्जन से मुक्ति पाएं! छुटकारा अब मोक्ष से कैसे हो?
तुम जरा सोचना। और दोनों में कोई भी गलत नहीं है। अपनी-अपनी वृत्ति, अपने-अपने रुझान, अपने-अपने व्यक्तित्व की बात है।
जो बुद्धि से सोचेगा, उसे महावीर जमेंगे। जो हृदय से सोचेगा, उसे कृष्ण जमेंगे। मगर हृदय भी है और बुद्धि भी है। और किन्हीं में हृदय प्रबल है और किन्हीं में बुद्धि प्रबल है।
तुम्हारी बात मैं समझा। तुम्हारा प्रश्न समझा। तुम पूछ रहे हो कि जब
आप अष्टवक्र पर बोलते हैं, तो फिर अष्टावक्र पर ही रुकें।
परसों ही किसी ने मुझे कहा कि हम तो समझे थे कि महागीता में सब मिल गया। अब हम जब संतों की बात सुनते हैं, तो हमें बड़ी बेचैनी होती है। अब हम क्या करें? हम तो समझे थे, अष्टावक्र की बात आपने कह दी--ब मिल गया। तो अपना साक्षीभाव सम्हालेंगे।
यह तो भक्त की बात तो साक्षी की है ही नहीं। भक्त तो कहता हैः लीनभाव, तल्लीन-भाव। साक्षी--ात ही गलत है। साक्षी का मतलबः खड़े होकर देखो। भक्त कहता हैः डुबकी लगाओ। कहां दूर खड़े हो कर देखोगे? भगवान को दूर खड़े होकर देखोगे?--ससे ज्यादा और कुफ्र क्या होगा? भगवान में तो डूब जाओ; बचो ही मत, लीन हो जाओ।
तो तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। तुम्हारे प्रश्न का प्रसंग भी मैं समझता हूं। तुम्हें अड़चन होती है।
कभी मैं भक्त पर बोलता; कभी ज्ञानी पर बोलता। कभी ध्यानियों पर बात करता; कभी प्रेमियों की बात करता। फिर उनमें भी बहुत-बहुत रूप हैं। ध्यान के भी अनेक ढंग हैं। ऐसे ही भक्ति के भी अनेक ढंग हैं। मैं सारे ढंगों की बात करता।
तुम कहते होः इस बगीचे में अगर एक ही तरह के वृक्ष होते तो ज्यादा सुविधा होती। मैं तुमसे कहता हूंः इस बगीचे में सब तरह के वृक्ष हैं। तुम्हें जो वृक्ष रुचे, उसके नीचे बैठ जाओ। लेकिन दूसरों के लिए भी यहां वृक्ष हैं। तुम्हें जो सुगंध रुचे, उसमें रम जाओ। किसी को बेले की सुगंध जंचती है, किसी को रजनीगंधा की। तुम जिससे मस्त हो जाओ। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें फूलों में उतना रस नहीं है, जितना पत्तों की हरियाली में है। तो यहां ऐसे पौधे भी हैं। जिनमें पत्तों का ही वैभव है; उनमें रम जाओ।
कुछ को छोटी-छोटी झाड़ियों में रस होता है। किन्हीं को उन वृक्षों में
रस होता है, जो आकाश में बादलों से गुफ्तगू करते हैं, चांद-तारों से हाथ मिलाते हैं। तो जिनकी जैसी मौज; जिनको जैसा खोजना हो।
यहां सब के लिए द्वार है। इस मंदिर में उतने द्वार हैं, जितने तरह के लोग हैं। वह पहली दफा सार्वभौम मंदिर है।

तुम्हारी अड़चन तुम्हारे कारण पैदा हो रही है। तुम्हें जो रुच जाए, उसमें डुबकी लो। मगर तुम्हारी अड़चन मेरे कारण नहीं है। तुम्हारी अड़चन यह कि तुम लोभ में पड़ जाते हो। तुम देखते हो कि अष्टावक्र में मजा आ रहा है। फिर सोचते हो कि अब ये कबीर भी आ गए, अब थोड़ा रस इनका भी ले लें। थोड़ा इनका भी करके देखें। तुम लोभ में पड़ जाते हो।
अगर तुम्हें अष्टावक्र में रस आ रहा है, तो भूलो कबीर को। कबीर से क्या लेना-देना! बकने दो इस जुलाहे को, जो बके। तुम इसमें पड़ो ही मत। और मैं कुछ भी कहूं... । क्योंकि मैं सिर्फ तुमसे नहीं बोल रहा हूं, औरों से भी बोल रहा हूं--जिनके लिए यह जुलाहा ही द्वार बनने वाला है। कुछ हैं जिनके हृदय कबीर से ही उमंग से भरेंगे। कुछ हैं, जिनके हृदय में कबीर का ही तानपूरा बजेगा; उनको अष्टावक्र नहीं जंचेगा। बहुत फीका मालूम पड़ेगा। कहां कबीर की तरंग; कहां कबीर की तरन्नुम, कहां कबीर का तेवर, कहां कबीर की क्रांति! अष्टावक्र की बातें ऐसी लगेंगीः पोली-पोली; ठीक; दार्शनिक; लफ्फाजी मालूम पड़ेगी। कबीर का सोंटा जब सिर पर पड़ेगा, तो पता चलेगा कि यह रहा कोई आदमी! किसी को जमेगा कबीर।
जिसको कबीर जम जाए, वह छोड़े फिकर अष्टावक्र की।
और ध्यान रखनाः मैं जब किसी पर बोलता हूं, तो मैं भूल जाता बाकी को। फिर मेरा सारा ध्यान, सारे प्राण उसी से संलग्न हो जाते हैं।
जब कबीर पर बोल रहा हूं तो कबीर ही मेरे लिए सब कुछ हैं। उस बीच तुमने अगर किसी और का नाम लिया: बुद्ध का, महावीर का, कृष्ण का, क्राइस्ट का, तो मैं एकदम धक्के देकर उनको बाहर निकाल देता हूं। उस समय फिर मेरे मन में कबीर के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।
हां, जब बुद्ध पर बोलूंगा, तो कबीर को कहीं कोई जगह न मिलेगी। वह कितना
ही दरवाजा खटखटाएं, दरवाजा उनके लिए नहीं खुलेगा। वे कहेंगे कि पहले हमें इतना प्यार से बुलाया था; अब हम आना चाहते हैं खुद। तो भी उनको कहा जाएगा-- कि रुको; अपना समय आने दो।
तुम्हारी अड़चन मैं समझा। यह द्वार सब के लिए है। तुम लोभ में न पड़ोगे,
तो कोई कठिनाई न होगी। तुम सब प्रक्रियाएं करके भी देख लो, एक दफा, खासकर तो दो प्रक्रियाओं में डूब कर देख लो, क्योंकि वे मूल है--प्रेम और ध्यान; भक्ति और ज्ञान। आत्मा और परमात्मा।
या तो देख लो ध्यान कर के; पूरी शक्ति लगा कर ध्यान करके देख लो। एक छः महीने ध्यान में डुबकी लो; भूल जाओ भक्ति को। और फिर छह महीने भक्ति में डुबकी लो; भूल जाओ ध्यान को। फिर निर्णय हो जाएगा। दोनों में जो रास आ जाए। जिससे तुम्हारी वीणा बजने लगे। जिससे तुम्हारा आकाश खुल जाए। जिससे तुम्हारे जीवन में पंख लग जाएं। फिर चुन लो। फिर बार-बार बदलने की कोई जरूरत नहीं है।
लोभ में पड़ने की भी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि भक्ति से पहुंचो तो वहीं पहुंचते हो; और ध्यान से पहुंचो तो वहीं पहुंचते हो। पहुंचना तो वहीं है, मंजिल तो एक है। मार्ग अनेक हैं।
और मेरा सम्मान सब के प्रति है--सब तरह के लोगों के प्रति; सब मार्गों
के प्रति। क्योंकि जहां से मैं खड़े होकर देख रहा हूं, वहां से मुझे सभी मार्ग एक ही बिंदु पर अंत होते दिखाई पड़ते हैं। जिस शिखर से खड़े होकर मैं देख रहा हूं, वहां बाएं से आने वाली पगडंडियां भी आ गई हैं; दाएं से आने वाली पगडंडियां भी आ गई हैं; राजपथ भी आ गया है। हवाईजहाज से उड़कर जो आए हैं, वे भी आ गए है। पैदल चलते जो आए है, वे भी आ गए हैं। घुड़सवार भी आ रहे हैं। सब तरह के लोग आ रहे हैं।
पहाड़ बड़ा है; चारों तरफ से मार्ग आते हैं। सब तरफ से यात्री चढ़ रहे हैं। और जो मार्गों पर हैं, उन्हें यह दिखाई नहीं पड़ सकता कि दूसरे मार्ग भी वहीं ले जा रहे हैं, जहां हम जा रहे हैं।
मार्ग पर चलने वाले को ऐसा ही लगता है कि मेरा मार्ग ही ठीक होगा। यह उसे मानना ही पड़ता है। नहीं तो वह चल ही न पाएगा। उसे मानना पड़ता हैः मेरा ही मार्ग ठीक। इसी आग्रह को बताने के लिए वह दूसरों को कहने लगता है कि तुम्हारा मार्ग गलत। हिंदू गलत; यह गलत, वह गलत। मेरा मार्ग ठीक।

वह असल में तुमसे झगड़ा नहीं कर रहा है। वह अपने मन को समझा रहा है। उसके भीतर लोभ पैदा होता है कि कौन जाने यह पड़ोस में जो आदमी जा रहा है, यह मुसलमान, कहीं इसका मार्ग ठीक न हो! यह कुरान की आयतें गा रहा है, कहीं यही ठीक न हो। मैं यह क्या कर रहा हूं--राम-राम, राम-राम! पता नहीं... ! उसे डर लगता है। डर लगता है तो अपनी आत्म-रक्षा के लिए वह चिल्लाता हैः बंद करो अल्लाह-अल्लाह चिल्लाना। इससे कुछ भी न होगा।
खयाल करना यह वह आत्म-रक्षा के लिए कह रहा है। उसे पता नहीं कि उससे होगा कि नहीं। उसे यह भी पता नहीं कि मैं जो कर रहा हूं, इससे होगा। जब तक हुआ नहीं है, तब तक कैसे पता होगा? और जब हो गया, फिर तो बात ही खतम हो गई। जब तक नहीं हुआ है, तब तक संदेह बना ही रहता है। इस संदेह के निवारण के लिए वह जोर से चिल्लाता है कि तुम गलत हो।
खयाल रखनाः वह कहना यह चाहता है कि मैं सही हूं। वह यह नहीं कहना चाहता कि तुम गलत हो। तुम्हारे गलत होने का उसे क्या पता!
हिंदू--कुरान गलत हैः यह कैसे जानेगा? इसे जानने के लिए पहले तो कुरान में खूब डुबकी लगानी चाहिए। कुरान की यात्रा करनी चाहिए। कुरान की मान कर चलना चाहिए, तभी पता चलेगा न कि गलत है।
तुम कभी बैठे नहीं हवाईजहाज में; तुम कहते होः बैलगाड़ी सही है। हवाईजहाज वहां ले जा नहीं सकता; बैलगाड़ी ही ले जाती है; यह तुम कैसे कहोगे? एक दफा बैठो; एक दफा जाकर देखो।
जिन्होंने अनेक मार्गों से चल कर देखा, जैसे रामकृष्ण ने, लौट-लौट कर
हर बार कहा कि सभी मार्ग वहीं पहुंचा देते हैं।
जो पहुंचा है, उसने देखा है कि सभी मार्ग वहां पहुंचा देते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम पर करुणा के कारण पहुंचा हुआ पुरुष भी नहीं कहता। क्योंकि तुम अजीब हो। तुम्हारी कमजोरी बड़ी अजीब है।
महावीर जब पहुंच गए, तो उनको दिखाई पड़ा होगा कि भक्त भी आ गए हैं। उन्होंने देखा होगाः यह कृष्ण भी आ गया है, यह बांसुरी बजा रहा है। उस शिखर पर उन्होंने कृष्ण को भी पाया होगा। उन्होंने देखा होगाः लाओत्सु भी विश्राम लगाए बैठा है। उन्होंने
देखा होगा कि रामचंद्रजी भी अपना धनुषबाण लिए चले आ रहे हैं। यह मामला क्या है?
अगर महावीर यह कहें, अपने पीछे से आने वाले लोगों से, कि सब आ गए हैं,
तो इस बात का बहुत डर है कि वे जो महावीर के पीछे आ रहे हैं, वे लोभ में पड़ जाएं। वे कहने लगें कि जब सभी जा रहे हैं, तो फिर क्या फिकर। तो हम इस मार्ग चले जाएं, उस मार्ग चले जाएं। हो सकता है, वे इतनी दुविधा में पड़ जाएं--और इतने मार्ग हैं--कि चुनाव ही मुश्किल हो जाए। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएं।
उनकी कमजोरी को ध्यान में रखकर महावीर कहे चले जाते हैं कि यही मार्ग लाता है। और कोई नहीं आता।
कृष्ण भी कहे चले जाते हैं; राम भी कहे चले जाते हैंः आओ इस मार्ग पर। कृष्ण कहते हैं: सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकम शरणम व्रज। सब छोड़। सब धर्म छोड़; मेरी शरण आ। बस, यही शरण ले जाती है।
जीसस कहते हैंः "जो मुझ से जाएगा, वहीं पहुंचेगा। मैं हूं द्वार। जो मुझ से नहीं जाएगा, वह पछताएगा।"
इसका यह मतलब नहीं है कि जीसस से जो नहीं गया है, वह नहीं पहुंचा। मगर जीसस... । जिन मित्र ने प्रश्न पूछा है, उसी तरह के लोगों के कारण ऐसा कह रहे हैं। लेकिन इस में एक तो सुविधा है कि मार्ग पर जो लोग आते हैं, उनको निश्चिंतता रहती है। मगर एक दूसरा खतरा है। निश्चिंतता तो रहती है, मतांधता भी पैदा होती है।
और अब हम देख सकते हैं कि पांच हजार साल के इतिहास में फायदा तो कम हुआ है। इस बात से, नुकसान ज्यादा हुआ है। चले तो लोग कम; दूसरे गलत हैं--यह सिद्ध करने में ज्यादा लगे। इसलिए मैंने पूरी प्रक्रिया बदली।
मैं तुम से कहता हूंः सभी मार्ग सही हैं। अब खतरा पैदा होगा; तुम अगर लोभ में पड़े तो खतरा पैदा होगा।

जब मैं कहता हूं कि सभी मार्ग सही है, तो मैं कह रहा हूं: तुम जिस मार्ग पर हो, वह भी सही है। असल में मार्ग नहीं पहुंचते, चलने वाले पहुंचते हैं, मार्ग नहीं ले जाते, चलने वाले जाते हैं। चलो किसी भी मार्ग पर; चलते रहो; पहुंचोगे। मगर अगर चलने में दुविधा आ गई, तो कोई भी मार्ग नहीं ले जाता। मार्ग कैसे ले जाएगा? मार्ग कोई अपने आप थोड़े ही जाता है; तुम्हारे चलने से जाता है।
कभी-कभी ऐसा हो जाता हैः चलने वाले हिम्मतवर लोग बिना मार्ग के भी पहुंच जाते हैं--खाई-खंदों, पहाड़ों को पार कर के जहां कोई कभी नहीं चला। और कमजोर लोग, काहिल लोग, सुस्त लोग, राजपथों पर बैठे रहते हैं, वहीं डेरा लगा देते हैं, वहीं जम जाते हैं। मील के पत्थर के पास ही समझते हैं: दिल्ली आ गई; मंजिल आ गई। वहीं बैठ जाते हैं।
यहां सब तरह के लोगों के लिए सुविधा है। मैं चाहता हूंः कोई मंताधता जगत में न हो।
सलाम हो तेरी गलियों पे ऐ वतन कि जहां
ये रस्म आम है कि जो चाहे सर उठा के चले।
कोई भी शर्त बजुज बजाय एतिहात नहीं
कोई सम्हल के चले, कोई लड़खड़ा के चले।
कोई शर्त नहीं है तुम पर; कोई सम्हल के चले, कोई लड़खड़ा कर चले। कोई ध्यान से चले, होश से चले; कोई प्रेम की मदिरा पी कर चले।
यहां सब को सुविधा है।
तुम अपना मार्ग चुन लो। दूसरे को भूल कर गलत मत कहना। यह हक तुम्हारा नहीं है। अपना मार्ग चुन लो--और चलते चलो।
कोई लड़खड़ा कर चल रहा हो, तो यह मत कहना कि मैं ध्यान का पथिक हूं; सम्हल
कर चलो, शर्त मत लगाना। क्योंकि लड़खड़ाने वाले भी पहुंच गए है, कभी-कभी तो सम्हल कर चलने वालों से जलदी पहुंच गए हैं। क्योंकि लड़खड़ाने वालों को भगवान सम्हालता है। सम्हालने वालों को भगवान नहीं सम्हालता। वे खुद ही सम्हले हैं!
इसलिए तो बुद्ध और महावीर के धर्म में भगवान की कोई जगह नहीं है। कोई जरूरत नहीं है। वे खुद ही सम्हले हैं।
जीसस ने कहा है: जैसे कोई गडरिया सांझ को लौटता है; आकर गिनती करता है। हजार भेड़ों में और तो सब हैं, नौ सो निन्यानबे हैं, एक भेड़ कहीं रास्ते में खो गई। तो उन नौ सौ निन्यानबे भेड़ों को पहाड़ पर, खतरे में, एकांत में छोड़ कर उस एक भेड़ को खोजने चला जाता है!
अंधेरी रात, लालटेन लेकर खोजता है; जंगल-जंगल आवाज लगाता है। फिर जब भेड़ को पा लेता है, तो जीसस ने कहा--मालूम है क्या करता है? उसको कंधे पर रख कर लौटता है।
इन नौ सौ निन्यानबे भेड़ों को कभी पता ही नहीं चलेगा कि गडरिए के कंधे
पर बैठने का मजा क्या है। ये कभी भटकी ही नहीं, तो इनको कंधे पर बैठने का मौका भी न मिलेगा।
वह जो होश से चलता है, वह भी पहुंचता है। मगर उसे परमात्मा के कंधे पर बैठने का मौका नहीं मिलता। वह मजा तो भक्त का है, वह जो लड़खड़ा कर चलता है; वह जो डगमगा कर चलता है, उसको तो भगवान को सहारा देना ही पड़ता है। देना ही पड़ेगा।
जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, मां का सहारा कम होता जाता है। जितना बच्चा छोटा और असहाय होता है, उतना ज्यादा सहारा होता है।
ध्यानी प्रौढ़ है; प्रेमी असहाय है। अस्तित्व उसके लिए मां बन जाता है। भक्त तो बालक ही रहता है। वह अपने बालवत भाव को छोड़ता ही नहीं। इसलिए तो भक्त रोता रहता है। बच्चों जैसा, पुकारता रहता है। कभी भगवान को पिता कहता है; कभी भगवान को मां कहता है। तुम उसकी पुकार समझो।
जब भक्तों ने भगवान को मां और पिता कहा है, तो क्या कहा है? इतना ही कहा है कि हम बालक हैं। हमारा अपना बल क्या! हम अपने पैर से तो चल न पाएंगे। हम तो गिर ही जाएंगे। हम तो उठते हैं और गिर जाते हैं। तू सम्हालेगा, तो सम्हलेंगे। तेरे सम्हाले ही सम्हलेंगे।

ये दोनों ढंग हैंः या तो तुम सम्हल जाओ। तुम सम्हल जाओ, तो जरूरत ही नहीं। ठीक है। बात खतम हो गई। सम्हालना ही था। तुम्हीं सम्हल गए।
तुमने खयाल कियाः मां का प्रेम उस बच्चे के प्रति ज्यादा होता है, जो
सब से ज्यादा कमजोर होता है। यह बिल्कुल अर्थशास्त्र के विपरीत है बात।
लेकिन अर्थशास्त्र और प्रेम के शास्त्र विपरीत हैं। होना तो प्रेम उसके प्रति चाहिए, जो सब से बलवान है; सब से बुद्धिमान है; सब से कुशल है। नहीं, लेकिन मां जानती है कि वह तो बुद्धिमान है, बलवान है, अपनी फिक्र कर लेगा। उसको जरूरत नहीं है।
वह जो कमजोर है, वह उतना बुद्धिमान भी नहीं है; जिसके भटक जाने की ज्यादा संभावना है; जो कहीं गिर पड़ेगा; मां उसकी फिकर लेती है।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि बीमार बच्चे मां के लिए ज्यादा प्यारे हो जाते हैं--स्वस्थ बच्चों की बजाय।
परमात्मा का अनुभव उन्हीं को मिलेगा, जो असहाय हो कर लड़खड़ाते हैं। इसलिए बुद्ध और महावीर के धर्म में परमात्मा की जगह नहीं, क्योंकि बुद्ध और महावीर को परमात्मा का अनुभव मिलने का मौका नहीं आया। जरूरत न थी। वे खुद ही परमात्मा हो गए। उन्होंने अपने भीतर की चेतना को इतना प्रज्वलित कर लिया कि किसी और अस्तित्व के सहारे का कोई कारण न रहा। आ गए आखिरी मंजिल पर; लेकिन परमात्मा घटा ही नहीं कहीं। वे स्वयं परमात्मा होकर आ गए। परमात्मा का अनुभव तो भक्त को होता है। जैसे प्रेम का अनुभव प्रेमी
को होता है। प्रेमी का अनुभव प्रेम में होता है। भक्ति में भगवान का अनुभव है।
और मैं तुम से यह नहीं कहता कि इन दोनों अनुभवों में कौन सा चुनना चाहिए। नहीं, मैं तुम से यह कहता हूंः जो तुम्हें रास पड़े; जो तुम्हे प्रीतिकर लगे।
सलाम हो तेरी गलियों पे ऐ वतन कि जहां
ये रस्म आम है कि जो चाहे सर उठा के चले।
एक न एक दिन तुम समझोगे। इन जिन प्रक्रियाओं को मैं गतिमान कर रहा हूं, किसी दिन तुम इन प्रक्रियाओं को सलाम करोगे कि हमारा बड़ा समादर है इस बात के लिए।
"कोई भी शर्त बजुज बजाय एतिहात नहीं।" किसी पर कोई शर्त नहीं लादी जा रही है यहां। किसी पर जबरदस्ती कोई ढांचा नहीं बिठाया जा रहा है। स्वतंत्रता यहां की हवा है। किन्हीं भी बहानों से किसी को परतंत्र नहीं बनाया जा रहा है। मोक्ष के मार्ग पर कैसी परतंत्रता? कैसे बहाने?
यहां कोई भी तुम्हारे लिए जंजीरें नहीं दी जा रही हैं; तुम्हारी जंजीरें तोड़ी जा रही हैं।
कोई भी शर्त बजुज बजाय एतिहात नहीं
कोई सम्हल के चले, कोई लड़खड़ा के चले।
और मैं मानता हूं, यही संभावना है भविष्य के धर्म की। गए पुराने दिन-- हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्धवाले, झगड़े वाले मतांध दिन गए। वे सब धर्म अब करीब-करीब मुर्दा हैं; अरथी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब एक बिल्कुल और तरह की दुनिया पैदा हो रही है, एक और नये तरह के धर्म का सूत्रपात जगत में हो रहा है, जहां लोग धार्मिक होंगे--ईसाई, हिंदू, बौद्ध, मुसलमान नहीं। मंदिर, मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे रहेंगे, लेकिन पुरानी मतांधता चली जाएगी। जिसकी जहां मौज हो। कोई सम्हल कर चले, कोई लड़खड़ा के चले।
एक-एक घर में सभी धर्मों के लोग होने चाहिए, क्योंकि एक-एक घर में सभी वृत्तियों के लोग हैं। एक बाप और एक मां से
पैदा हुए पांच बेटे भी एक जैसे नहीं होते। तो पांचों हिंदू कैसे हो सकते हैं? पांचों मुसलमान कैसे हो सकते हैं? पांचों इतने भिन्न हैं, हर बात में भिन्न हैं! एक गणित में कुशल है; एक काव्य में कुशल है; तब तुम जिद नहीं करते कि तुम पांचों बेटे एक ही बाप के हो; तुम्हारा बाप गणितज्ञ है, तुम पांचों को गणितज्ञ होना चाहिए।
नहीं, तुम इस तरह की मूढ़ता की बात नहीं कहते। तुम जानते हो कि यह बात मूढ़ता की है। बाप गणितज्ञ है, तो हो, मगर पांचों बेटों का गणितज्ञ होना

आवश्यक तो नहीं। गणितज्ञ होना खून में से कोई आता नहीं। इन में से कोई कवि है, कोई गणितज्ञ है, कोई संगीतज्ञ है, कोई नर्तक है--कोई कुछ और हे। तुम इन सब को मौका देते हो। लेकिन धर्म के मामले में तुम्हारी जिद बड़ी जड़ता से भरी है। तुम कहते होः तुम पांचों को मुसलमान, पांचों को हिंदू, पांचों को जैन होना पड़ेगा। क्योंकि तुम जैन घर में पैदा हुए, मुसलमान घर में पैदा हुए! यह बात बड़ी नासमझ की है।
तुम जीवन में इतनी स्वतंत्रता देते हो कि कोई गणितज्ञ हो सकता है, कोई कवि... । ये बड़ी विपरीत बातें हैं। क्योंकि कहां गणित और कहां कविता! इनका कोई मेल नहीं है, तालमेल नहीं है। गणित की कोई कविता नहीं होती, कविता का कोई गणित नहीं होता। गणित चलता है तर्क से; कविता होती है अतर्क। गणित विरोधाभासों से बचता है; कविता विरोधाभास खोजती है। कविता का प्राण ही विरोधाभास है--पैराडाक्स है। कविता की वही पंक्ति काव्यपूर्ण हो जाती है, जहां विरोधाभास खड़ा हो जाता है।
कविता की आंख सौंदर्य की परख से है। कविता का प्राण प्रेम है। गणित का--हिसाब-किताब है। गणित में बुद्धि का पूरा फैलाव है, लेकिन हृदय के रस को जरा सी भी जगह नहीं।
अब ये दो व्यक्ति हैं; एक ही बाप से पैदा हुए हैं। इनमें से तुम कहते होः दोनों हिंदू हो जाएं; दोनों जैन हो जाएं। बात गलत है। जिसके भीतर कविता उठी है, यह कबीर से राजी हो सकेगा या कि मीरा से राजी हो सकेगा। और जिसके भीतर गणित बहुत साफ है, यह बुद्ध और महावीर से राजी हो सकेगा।
एक नई हवा, एक नया माहौल, एक नया वातावरण चाहिए--जहां यह पुरानी जिद चली जाए; जहां धर्म जबरदस्ती न थोपा जाता हो; जहां प्रत्येक व्यक्ति अपनी मौज से अपना धर्म चुने।
जिस दिन एक-एक घर में पांच-पांच सात-सात धर्मों के लोग होगें, उस दिन दुनिया जरूर सुंदर होगी। उस दिन दुनिया में बड़ा प्रेम पैदा होगा। तुम्हारा एक बेटा मंदिर जाता है; एक बेटा मस्जिद जाता है। कभी तुम्हारा बेटा तुम्हें मस्जिद आने का निमंत्रण देता है, क्योंकि वहा कोई उत्सव है। और कभी तुम्हारा एक बेटा तुम्हें मंदिर आने का निमंत्रण देता है कि आज कृष्ण की जन्माष्टमी है, कि कुछ और है। तुम ज्यादा समृद्ध होओगे। तुम्हारे जीवन में ज्यादा आयाम होंगे, ज्यादा आकाश होगा, ज्यादा दिशाएं होंगी।
यह जड़ता है कि एक घर में गीता रखी है और एक घर में कुरान रखी है। दोनों अधूरे रह गए। कुरान और गीता साथ ही साथ होने चाहिए। हां, कोई कुरान पढ़े, कोई गीता पढ़े।
ऐसी मेरी दृष्टि है। और मुझ लगता है यही दृष्टि भविष्यवाणी है।

तीसरा प्रश्नः एक मस्ती छा रही है, लेकिन भय लगता है कि कहीं यह खो तो
न जाएगी!

भय स्वाभाविक है, क्योंकि अब तक तुमने जो मस्तियां जानीं, वे सब खो गईं। तुम्हारे जीवन का सार-निचोड़ यही है। कभी एक स्त्री के प्रेम में पड़े और क्षण भर को लगाः बड़ी मस्ती छा रही है। और जाग भी न पाए थे कि चली गई। कभी पद के पीछे दौड़े और लगा कि बड़ी मस्ती छा रही है। पद मिल भी न पाया था कि हाथ खाली हो गए।
ऐसे तुमने बहुत बार बहुत सी झूठी मस्तियां जानी है! इसलिए यह स्वाभाविक है। यह जो संन्यासी की मस्ती तुम पर छा रही है, इसमें भी शक उठे कि कहीं यह भी तो न खो जाएगी! मगर यह खोने वाली मस्ती नहीं। और जो खो जाए, तो जानना कि यह संन्यास की मस्ती थी ही नहीं। इसमें और ही बात रही होगी। कुछ धोखा हो गया।
यूं दिल को छोड़ कर निगहे-नाज झुक गई
छुप जाए कोई जैसे किसी को पुकार के
क्या कीजिए, कशिश है कुछ ऐसी गुनाह में
मैं वरना यूं फरेब में आता बहार के!

हर बार तुम जानते हो कि वसंत आता है, बहार आती है। और हर बार तुम जानते
हो कि पतझड़ आता होगा। फिर भी बार-बार धोखा खा जाते हो। कुछ कशिश है--गुनाह में भी, पाप में भी कुछ कशिश है। कितनी बार तुमने कहा नहीं, अपने मन से कि बस अब बहुत हो गया, अब और किसी स्त्री में रस न लूंगा; बात खतम हो गई। कितनी बार तुमने नहीं सोचा कि अब और पुरुष में रस नहीं रहा; चुक गया। देख लिया सब। और फिर एक दिन घड़िया भी नहीं बीत पातीं और फिर रस जगता मालूम पड़ता है! क्षणभंगुर है जान कर भी मन बार-बार जकड़ जाता है। उसके पीछे कारण है। कारण है कि यहां क्षणभंगुर ही तो मिलता है; शाश्वत की तो कभी झलक नहीं मिलती। तो करे क्या?
यहां दो ही विकल्प मालूम पड़ते हैंः या तो क्षणभंगुर सुख को भोगते रहो
और बार-बार रोते रहो, पछताते रहो, विषाद में गिरते रहो।
हर बार आए शिखर भोग का और हर बार आता है विषाद और एक खाई की तरह घेर लेता अंधकार। एक तो विकल्प यह है।
और दूसरा विकल्प यह है कि खाई में ही पड़े रहो; क्षण भर को भी छोड़ दो; क्षणभंगुर को भी छोड़ दो। वह बात भी जंचती नहीं; क्योंकि चलो, क्षणभंगुर ही सही; कुछ तो है। कभी तो वसंत आता है। कभी तो आंखों में सपना छाता है। कभी तो थोड़ी देर के लिए मस्त हो जाते हैं। माना कि थोड़ी देर ही टिकती है यह बात। लेकिन करें तो और क्या करें। यही है बस।
लेकिन अगर संन्यासी की या ध्यान की या भक्ति की मस्ती छाने लगी, तो तुम पाओगेः इस जगत में जगत से कुछ ज्यादा है; और इस जगत में क्षणभंगुर ही नहीं है; इस जगत में कभी-कभी शाश्वत की किरण भी उतरती है। निश्चित उतरती है। क्योंकि कबीर ने जो पाया... । कहै कबीर मैं पूरा पाया--वह फिर कभी खोया नहीं। बुद्ध ने जो पाया, फिर बयालीस साल जिंदा थे, लेकिन एक क्षण को नहीं खोया। मैं गवाह हूं। इधर पिछले पच्चीस वर्षों मे एक क्षण को नहीं खोया है-- जो पाया है।
यह जो घट रहा है, यह बहुत नया है। भय लगता है, क्योंकि पुराने अनुभव क्षणभंगुर के हैं। और यह शाश्वत घट रहा है। और भय लगना स्वाभाविक है, इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भय के कारण तुम अपने को अपराधी समझ लेना बिल्कुल स्वाभाविक है।
हर बार संपत्ति हाथ में आई और कचरा साबित हुआ। इस बार फिर संपत्ति हाथ में आई है। भय लगता है कि पता नहीं, यह भी तो कोरा ही साबित न होगा! एक सपना फिर।
नहीं, यह सपना सिद्ध नहीं होगा। अगर यह ध्यान से उत्पन्न हो रही है मस्ती या भक्ति से उत्पन्न हो रही है यह मस्ती, तो यह सपना सिद्ध नहीं होगा। अगर तुम ही कोशिश कर-कर के इसको पैदा कर रहे हो, तो यह मिट जाएगा। तुम्हारा किया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता। जो आता है, उतरता है ऊपर से-- तुम्हें भर लेता है अंगपाश में, जो तुम्हारे किए से नहीं आता, वहीं शाश्वत है। जो तुम्हारे कृत्य से आता है, वह शाश्वत नहीं है।
तुम्हारा किया हुआ--तुम्हारे मिट्टी के हाथों से बनाया हुआ, कैसे शाश्वत हो सकता है? यह देह क्षणभंगुर है। सत्तर साल--तो भी क्षणभंगुर है। इस देह से तुम जो बनाओगे, वह क्षणभंगुर होगा। तुम एक पत्थर की मूर्ति बनाओ, मजबूत से मजबूत पत्थर लाओ--ग्रेनाइट लाओ, उसकी मूर्ति बनाओ वह भी मिटेगी। हाथ ही बनाने वाले मिट्टी के थे; कर्ता ही मिट्टी का था, तो कृत्य कहां से शाश्वत हो सकता है!
तुम जो करोगे, वह तो क्षणभंगुर रहेगा।
मेरी शिक्षा का मूल यही है कि तुम मिटो--तुम करो मत; तुम खोओ; तुम जगह खाली करो।
यही तो कबीर ने कल कहा--कि तुम गरीब हो रहो। गरीब हो रहो मतलब--शून्य हो जाओ। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है--ऐसे हो जाओ। कर गुजरान गरीबी में।
तुम बिल्कुल शून्य हो जाओ। मेरे पास कुछ भी नहीं है; एक भिक्षापात्र मात्र--खाली--और वहीं तुम अचानक पाओगे--तुम्हारे शून्य को भरने कोई उतर रहा है। पूरा--पूर्ण उतर रहा है। यह अवतरण है। यह तुम्हारा कृत्य नहीं है।

तुम सिर्फ गवाह होते हो इसके--कि तुम में उतरा। यह तुम्हारे मन से निर्मित नहीं होता। यह तुम्हारा मन जब नहीं होता, तभी होता है।
अगर यह मस्ती उतर रही है; इतना ही खयाल रखना। क्योंकि कई बार तुम ऐसे झूठे हो गए हो कि उतरती भी नहीं; तुम ढोंग करने लगते हो। ढोंग नहीं टिकेगा। कई बार ऐसा हो जाता है कि लोग इतने ज्यादा अनुकरणशील हो गए हैं-- बंदरों की तरह हो गए हैं- कि एक को होता है, तो उनको होने लगता है।
कई बार मैं देखता हूंः एक आदमी मस्ती में डोल रहा है; उसके पास बैठे- बैठे दूसरा ऐसे ही डोलने लगता है। क्योंकि उसे यह लगता है कि इधर लोग मस्ती में डोल रहे हैं। मैं नहीं डोला, तो लोग समझेंगे... ।
एक मित्र के साथ मैं बंगालियों की एक संगत में गया। वहां बंगाली में भजन गाए जा रहे थे। और बंगालियों में बड़ा भक्ति का भाव है। मृदंग बज रही थी। और चैतन्य की मैंने चर्चा की थी; फिर चैतन्य के वे गीत गा रहे थे; और नाच रहे थे।
मेरे साथ जो सज्जन गए थे, वे बंगाली जानते नहीं। मैं बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि वे भी डोलने लगे। और ओठ भी हिलाने लगे! जैसे वे भी भजन में भाग ले रहे हैं।
मैंने जरा गौर से उनको... बगल में ही बैठे थे... गौर से सुनने की कोशिश की, तो वे अनर्गल बक रहे हैं। कुछ भी उसका मतलब नहीं है।
जब रास्ते में लौटते वक्त हम दोनों अकेले रह गए; मैंने उनसे पूछा कि "यह मामला क्या था! आप ऐसी शुद्ध बंगाली बोल रहे थे!" वे बोले, "कहां की बंगाली और कहां का क्या? पगलों की जमात! और मैंने देखाः अपन ऐसे सम्हले बैठे रहो, तो लोग समझेंगे कि ये बुद्धू कहां से आ गए? और फिर लोग यह भी समझेंगे कि इसको बंगाली भी नहीं आती! और मस्ती भी नहीं आती! तो मैं तो ऐसे ही ढोंग कर रहा था। तो मैं ऐसे ही ओठ हिला रहा था। कुछ भी बोल रहा था--धीरे- धीरे; तो कोई पकड़े भी नहीं। और वहां तो इतना शोरगुल मचा है, इतने पगले थे कि वहां कौन... पता चलने वाला कि कौन बंगाल बोल रहा है, कौन गुजराती बोल रहा है! वे सज्जन गुजराती थे!
कई बार ऐसा हो जाता है--कि तुम ऐसे नकलची हो गए हो, तुम्हें इतनी भी निष्ठा नहीं रही है कि जो न होता हो, तो न करो।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि छोटी-छोटी बातों में भी हम अपने से नहीं जीते।
एक आदमी को खांसी आ जाए, तुम पाओगे कि अनेक को खांसी आने लगी! एक आदमी
उठ कर पेशाब करने चला जाए, दूसरे भी चले! ये अभी बैठे थे; अभी इनको पता ही नहीं था। इनको कुछ खयाल ही नहीं था। मगर तत्क्षण एक सज्जन ने इनको सुझाव दे दिया। सुझाव इन पर पकड़ जाता है।
इससे सावधान होना; इस वृत्ति से सावधान होना; नहीं तो कई बार तुम मस्ती झूठीं भी कर सकते हो। वह न टिकेगी। कभी नहीं टिकेगी। आने दो मस्ती को। उतरने दो मस्ती को।
खिजां की खुश्क रगों में न रह सके जो जवां
जो आए और चली जाए वो बहार ही क्या
न होशियारी के लम्हों में रह सके कायम
जो सर पे चढ़ के उतर जाए वो खुमार ही क्या
जबाने खल्क तक आया न नाराए मन्सूर
जबां पे अपनी जो रह जाए वो पुकार ही क्या न पीना कैदे मकानो जमा से हो आजाद
तरे मश्के शौक है इसमें भला खुमार ही क्या जो मस्तियों के सहारे जीए वही हुशियार
जिसे होश का तकिया वो वादाख्वार ही क्या
न बालो पर ही जलाए न आरजूए चमन
वो आशियां पे हुई बर्क शोलाबार ही क्या
जो सैले अश्क में अपने बहा सका न गुनाह
हुआ वो आसिए कमजर्फ अश्कबार ही क्या
जो रोया- और अपने रोने में पाप न बहा सका, वह रोया--यह बात ही फिजूल।

"जो सैले अश्क में अपने बहा सका न गुनाह।" जब बाढ़ आ गई हो आंसुओं की; अपने से आ गई हो; आंख में कुछ मिर्च इत्यादि लगाकर ले आए, तो काम नहीं होगा। जो भाव से उठी हो बाढ़, प्रामाणिक हो, वस्तुतः हो, हृदय उमड़ आया हो, घुमड़ आया हो, हृदय के मेघ आंखों से बरसने लगे हों।...
"जो सैले अश्क में अपने बहा सका न गुनाह।"... तो फिर पाप बचते नहीं। इसलिए भक्त को फिकर नहीं है कि मेरे पिछले जन्मों के पाप कैसे कटें। वह जानता है; रोना पर्याप्त है। ये आंसू सब बहा ले जात हैं--सब गर्द-गुबार; सब पाप-गुनाह; सब भूलें-चूकें। जो हृदयपूर्वक रोया, वह शुद्ध हुआ।
जो सैले अश्क में अपने बहा सका न गुनाह
हुआ वो आसिए कमजर्फ अश्कबार ही क्या
वह पागल आंसुओं में डूबा ही नहीं। उसे आंसुओं की बाढ़ आई ही नहीं।
तो आंसुओं की कसौटी यही है, अगर वे सच्चे हों, तो तुम्हारे पीछे एक पुण्य की आभा छोड़ जाएंगे।
कभी किसी भक्त को अगर रोते देखा है, तो तुम पीछे देखोगे--उसके चेहरे पर
एक दुसरी ही आभा। आया था कुछ, जाता कुछ और है।
यहां मैं रोज देखता हूं। जब कोई हृदयपूर्वक रो लेता है, तो ऐसी ताजगी, ऐसा कुंवारापन उस पर उतरता है, जो अनूठा है। वह परमात्मा में नहा जाता है। तुम कहते भी हो कि हम कुरबानी को तैयार हैं; तुम कहते भी हो कि हम पतंगे हैं, और जलना चाहते हैं; मगर उड़ते बड़े
दूर-दूर हो। लपट के करीब नहीं आते।
न बालो पर ही जलाए न आरजूए चमन
वो आशियां पे हुई बर्क शोलाबार ही क्या।
और न तो आशियां जला--न घर जला। न पैर जले, न पंख जला। कुछ भी न जला। और तुम कहते हो कि मेरे घोंसले पर बिजली गिरी! जब बिजली गिरती है, तो तुम बचते ही नहीं। मस्ती ही बचती है, तुम नहीं बचते।
जब असली मस्ती आती है, तो सिर्फ मस्ती होती है, मस्त नहीं होता। वही कसौटी है।
जो मस्तियों के सहारे जीए वही हुशियार
जिसे होश का तकिया वो वादाख्वार ही क्या।
जिसे इतनी भी याद रह जाए कि यह मस्ती है; कि मैं मस्त हो रहा हूं--जिसे इतना भी भेद रह जाए, वह अभी पूरा मस्त नहीं हुआ। अभी मस्ती बाहर-बाहर है। अभी मस्ती द्वार-दरवाजे तोड़ कर भीतर प्रविष्ट नहीं हुई।
जब मस्ती भीतर प्रविष्ट होती है, तो यह भी किसे याद रह जाता है कि मैं मस्त हूं। मस्ती इतनी होती है, हिसाब-किताब कौन रखे!
न पीना कैदे मकानो जमां से हो आजाद
तो मश्के शौक है इसमें भला खुमार ही क्या
कई बार हम झूठी शराबें पी लेते हैं।
समझो। मुझे सुनते हो। मैं जो कह रहा हूंः कभी-कभी तो उस कहने के सौंदर्य के कारण तुम मस्त हो जाते हो। मगर वह असली मस्ती नहीं। कभी-कभी तो कहने का ढंग तुम्हें डुला देता है। वह असली मस्ती नहीं। जो मैं कह रहा हूं, वह जो सार है उसमें, जब वह तुम्हारे हृदय पर चोट करेगा... ।
कहने के ढंग में क्या रखा है? कोई कितना ही लाख अच्छे ढंग से कहे; कितने ही अच्छे सुंदर शब्दों का उपयोग करे; शैली व्यवस्थित हो, काव्यपूर्ण हो; तो भी कुछ नहीं। अगर भीतर प्राण न हो, तो सजी हुई लाश है। और सजी हुई लाश, चाहे हीरे-जवाहरातों से सजी हो, तो भी एक गरीब जिंदा आदमी के सामने दो कौड़ी की है। जिंदगी असल बात है।
तो मेरे शब्दों से प्रभावित मत होना। शब्दों के भीतर जो संदेश है, वह
जब तुम्हें छुए... ।
जबाने खल्क तक आया न नाराए मंसूर
जबां पे अपनी जो रह जाए वो पुकार ही क्या
और जब मस्ती आती है, तो बांध तोड़कर आती है, जैसे मंसूर को आई थी--कि चिल्लाने लगाः अनलहक--कि मैं परमात्मा हूं।

मंसूर के गुरु जुन्नैद ने कहाः पागल मंसूर, मुझे भी पता है। मेरे और शिष्यों को भी पता है। कुछ तुझे ही पता नहीं चल गया है पहली बार। लेकिन जबान बंद रख। क्योंकि यह मुल्क पागलों का है; यहां खतरा हो जाएगा।
लेकिन मंसूर जब मस्ती में आता, तो भूल ही जाता कि गुरु ने क्या कहा। वह फिर चिल्लाने लगताः अनलहक।
गुरु ने कई बार समझाया। कहते हैं, सात बार समझाया। फिर गुरु ने कहा कि "तू छोड़ दे यह जगह। तेरे साथ हम भी झंझट में पड़ेंगे।"
अब इसमें जरा शक होता है कि जुन्नैद को इतना क्या डर है! जुन्नेद कहता हैः मुझे भी पता है।
जबाने खल्क तक आया न नाराए मंसूर
जबां पे अपनी जो रह जाए वो पुकार ही क्या
कहता हैः मुझे पता है, लेकिन यह आती नहीं जबान के बाहर। जिसको यह पता
है कि मैं ब्रह्म हूं; अब यह भी क्या डर कि मुसलमान नाराज हो जाएंगे; कि फांसी लगा देंगे; कि कौन क्या कहेगा; कि कोई झंझट आएगी। यह भी क्या डर! मंसूर जब भी मस्त होता, तो वही आवाज निकलती। फिर तो गुरु ने निकाल दिया मंसूर को। मंसूर चरण छूकर विदा हो गया। गांव-गांव भटकता रहा। मगर वह आवाज तो गूंजती ही रही।
मंसूर भी जब होश-हवास में होता था, तो नहीं कहता था। लेकिन ऐसी भी घड़ी आती थी, जब बाढ़ आ जाती--कि मंसूर रह ही न जाता, परमात्मा ही बोलता। फिर मंसूर क्या करे! फिर मंसूर पकड़ा गया।
जब मंसूर पकड़ा गया, तो खलीफा ने मंसूर के गुरु को कहा कि "तुम लिख कर दो प्रमाणपत्र कि यह आदमी नास्तिक है, काफिर है, क्योंकि यह जो बातें कह रहा है वह कुफ्र की हैं।
कहते हैं जुन्नैद ने वह भी लिख कर दिया। फिर मंसूर को फांसी हुई। लेकिन मंसूर को तो इससे कुछ फर्क ही न था।
जिस दिन जेलखाने में मंसूर को लेने गए सिपाही, तो वह मस्ती में था। उस वक्त अनलहक का नाद उठ रहा था; ब्रह्मनाद गूंज रहा था। जो लेने गए थे, वे सुध-बुध खो गए। वहां वर्षा हो रही थी। वे भी ठिठके खड़े रह गए। घड़ियां बीत गई। सम्राट तक खबर पहुंची कि जो लेने गए हैं, वे भी ठिठके खड़े हैं। वहां कुछ अपूर्व घट रहा है। वहां मंसूर कुछ ऐसी पुकार दे रहा है कि उनकी हिम्मत नहीं होती उसको पकड़ कर बाहर निकालने की कोठरी के।
और सिपाही भेजे गए, और जल्लाद भेजे गए। फिर उन्होंने खींचने की कोशिश की, मगर मंसूर मस्ती में था। जब कोई मस्ती में हो, तो परमात्मा होता है। वे नहीं खींच पाए उसे बाहर। फिर तो खलीफा घबड़ाया। उसने कहा, "फिर जुन्नैद को ही लाओ। शायद वह ही कुछ कर सके।"
जुन्नैद आया। जुन्नैद ने कहा, "देख, मैं तेरा गुरु हूं। मेरी सुन। तू अपनी मस्ती के बाहर आ।" तो मंसूर ने गुरु की आवाज सुन कर आंख खोली। जैसे ह मस्ती के बाहर आया, फिर खींचा जा सका।
मस्ती में तुम जब होते हो, तब तुम परमात्मा होते हो। तुम होते ही नहीं।
शुरू-शुरू में झरोखे आएंगे मस्ती के, फिर धीरे-धीरे मस्ती थिर होती जाती है। फिर धीरे-धीरे तुम्हारी श्वास बन जाती है, धड़कन बन जाती है।
तुम जब तक हो, तब तक मस्ती अभी पूरी नहीं। और जो आए और चली जाए, वह सच्ची मस्ती नहीं।
"खिजां की खुश्क रगों में न रह सके जो जवां।"... पतझड़ भी हो रहा, तो भी जिसको मस्ती आ गई, उसको वसंत ही होता है। मौत भी आ रही हो, तो जिसको मस्ती आ गई हो, उसको जीवन ही होता है। दुख की घटाएं छाएं तो भी जिसको मस्ती आ गई, उसको आनंद की बिजलियां ही चमकती है।
खिजां की खुश्क रगों में न रहे सके जो जवां
जो आए और चली जाए वो बहार ही क्या।
ऐसा भी वसंत है, जो आता है, तो फिर जाता नहीं। मैं उसी वसंत की बात कर रहा हूं। शायद हवा का कोई झोंका उसी वसंत के फुलों की कुछ सुगंध को तुम तक ले आया है। अतीत के अनुभवों की फिकर छोड़ो। इस सुगंध में डूबो। इस सुगंध से

दोस्ती बनाओ। इस सुगंध के साथ श्रद्धापूर्वक चलो। इसका हाथ गहो--यह जहां ले जाए--जाओ। होशियारी मत करना।
जो होशियारी के लम्हों में रह सके कायम
जो सर पे चढ़ के उतर जाए वो खुमार ही क्या।
यह जादू उतरने वाला जादू नहीं है। मगर सब कुछ तुम पर निर्भर है। यह तुम्हारे पास से आता है। तुम आने दोगे, तो आएगा। तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लोगे, तो क्या करेगा!
ऐसा ही समझो कि सुरज निकला है और तुम दरवाजे बंद किए अपने कमरे में बैठे हो। तो सूरज निकला है, निकला रहें; तुम अंधेरे में बैठे--सो अंधेरे में बैठो।
तुम और भी व्यवस्था कर सकते हो कि दरवाजा बंद कर के बैठे हो; शायद किसी रंध्र से सूरज की कोई किरण भीतर आ जाए, तो तुम आंख भी बंद किए बैठे हो। तुम चाहो तो और उपाय कर सकते हो। आंख पर एक काली पट्टी भी बांध सकते हो। तो सूरज बरसता रहेगा चारों तरफ और तुम अंधेरे में रहोगे। तुम्हारी आमावस आमावस ही रहेगी।
परमात्मा जब उतरता है, तो द्वार-दरवाजे खोल देना। यही श्रद्धा का अर्थ है--कि जब वह आए, तो तुम स्वागत करना।
तुम्हारा अतीत तुम्हारे विपरीत जाएगा। तुम्हारा अतीत कहेगाः सावधान, तुम बहुत धोखे खा चुके हो। संदेह करवाएगा। तुम्हारा अतीत कहेगा कि पहले भी ऐसे बहुत मौके आए। लेकिन सच में ऐसा मौका कभी नहीं आया।
तुम जरा गौर से देखोः अतीत में तुमने कभी पहले ऐसी मस्ती जानी थी? अगर ऐसी मस्ती जानी थी और चली गई, तो यह मस्ती असली मस्ती नहीं है। यह वह मस्ती नहीं है, जिसकी मैं बात करता हूं।
नहीं, तुमने अतीत में यह मस्ती कभी जानी नहीं। यह पहली दफा उतरी है। मस्तियां तुमने जानी थीं--कभी धन की, कभी पद की, कभी अहंकार की, लेकिन यह मस्ती तुमने कभी जानी नहीं थी। यह संन्यास की मस्ती है। यह पहली दफा आई है। यह अपूर्व है। यह तुम्हारे अनुभव में पहले कभी नहीं आई थी। इसलिए पुराने अनभुवों के संदेह इस पर मत लगाना अन्यथा तुम विकृत कर दोगे।
चलो इसके साथ। डूबो इस मस्ती में। यह खुमार टिकने वाला है। यह रंग टिकेगा। यह रंग पक्का है।
कबीर ने कहा हैः मेरे गुरु ने मेरी चदरिया पक्के रंग में रंग दी है। कबीर ने कहा है बाद में कि अब तो मैं भी रंगरेज हो गया हूं; लोगों की चदरिया पक्के रंग में रंगता हूं।
यह उतरने वाला रंग नहीं हैं; यह उतरने वाला खुमार नहीं हैं; यह उतरने वाली मस्ती नहीं हैं। मगर सब तुम पर निर्भर है। तुम आए हुए धन को भी खो सकते हो। यह धन शाश्वत का है, सनातन का है। मगर तुम इनकार करना चाहो, तो तुम मालिक हो इनकार करने को। तुम अपने दरवाजे बंद कर सकते हो।
दरवाजे खुले रखना। अतीत खींचेगा। अतीत कहेगा कि सावधान, कुछ भूल-चूक
न हो जाए। लेकिन अतीत की बातें असंगत हैं, क्योंकि यह नया हो रहा है। यह पहले हुआ ही नहीं हैं। इसलिए अतीत से कोई संदर्भ इस नई स्थिति में काम का नहीं है।
यह प्रेम नया, यह शैली नई, यह सुबह नई, इसमें जाओ। यह बढ़ेगा। तुम मिटोगे--यह बढ़ेगा। तुम छोटे होते जाओगे, यह बड़ा होता जाएगा। एक दिन तुम पाओगेः तुम छोटे-छोटे होते-होते खो गए; सिर्फ मस्ती बची। उसी मस्ती का नाम परमात्मा है--या कहो समाधि।

चौथा प्रश्नः आज की और भविष्य की नारी के लिए सती का क्या मूल्य है? आज
की स्त्री भी सती की ऊंचाई को छू सके, इसके लिए क्या आवश्यक है?

पूछा है स्वामी योग चिन्मय ने। किसी स्त्री को पूछने दो। पुरुष होकर
ये प्रश्न तुम्हें उठे क्यों? पुरुष होकर तुम्हें प्रश्न उठना चाहिए कि स्त्रियां तो इतनी सती हुई, पुरुष कैसे सती हो? इतनी स्त्रियां अपने प्रेमियों की याद में चिता पर चढ़ गईं, कोई पुरुष कैसे चढ़े?

नहीं; चिन्मय यह नहीं पूछते, क्योंकि उसमें झंझट है। उसमें चिन्मय को चढ़ना पड़े किसी चिता पर। स्त्रियां कैसे चढ़ें--इसमें रस है उनका। सभी पुरुषों का इसमें रस रहा।
स्त्रियों का सती होना तो बड़ी महिमा की बात है, लेकिन पुरुषों का इसमें उत्सुकता लेना बड़ी हिंसा की बात है। जघन्य अपमान है।
यह तुम्हारे मन में सवाल क्यों उठता है? पुरुष क्यों स्त्री को चिता
पर चढ़ाना चाहे?
अगर यह प्रश्न प्रेम को समझने के लिए उठा है, तो पुरुष की तरफ से तो पुरुष को यही पूछना था कि मैं भी कैसे चढ़ूं? इतनी स्त्रियां चढ़ गईं प्रेम में, कब वह घड़ी आएगी जब कभी पुरुष भी चढ़ेगा?
पुरुष ने बड़ी ज्यादती की है। पुरुष ने स्त्रियों के साथ ऐसा व्यवहार किया है जैसे वह संपत्ति है। कहते हैं इस देश में--स्त्री संपत्ति। तो जब पुरुष मर गया तो उसको डर है कि मेरी संपत्ति को कोई और न भोग ले। तो वह चाहता है कि वह उसी के साथ जल मरे। यह पुरुष का अहंकार है और कुछ भी नहीं। जीते जी भी उसने बंधन बना कर रखा था कि उसकी स्त्री किसी और की तरफ कभी प्रेम की आंख से न देख ले। मर कर भी उसको बेचैनी है। वह मर कर भी डर रहा है कि अब मैं तो चला, कहीं मेरी स्त्री किसी के प्रेम में न पड जाए!
यह डर भी यही बता रहा है कि प्रेम तो हुआ ही नहीं था। प्रेम ही होता, तो
भय कैसा? प्रेम ही होता तो ईर्ष्या कैसी? प्रेम-व्रेम तो कुछ था नहीं; यह एक तरह का अधिकार था। स्त्री परिग्रह थी पुरुष का। अब मरकर भी कब्जा रखना चाहता है! यह तो हद्द हो गई! मुर्दा जिंदा पर कब्जा रखना चाहे!
लेकिन समाज पुरुषों का था। तो पुरुषों ने स्त्रियों को समझाया कि पति परमात्मा है। पुरुष ही समझा रहे हैं स्त्रियों को--कि पति परमात्मा है! और स्त्रियां मान कर बैठ गईं कि पति परमात्मा है। हालांकि पति में परमात्मा जैसा कुछ नहीं दिखाई पड़ता।
सच तो यह है कि अगर परमात्मा भी पति जैसा है, तो स्त्रियां उससे भी डरने लगेंगी। पति में परमात्मा जैसा कुछ नहीं दिखता; मगर घबड़ाहट हो सकती है कि कहीं परमात्मा में पति जैसा कुछ न हो।
पुरुषों ने बड़ी हिंसा की है। मनुष्य-जाति के प्रति पुरुषों के अपराध जघन्य हैं। उसमें सती एक जघन्य अपराध है।
मैंने सती की महिमा कही--स्त्री की तरफ से। पुरुष की तरफ से यह महिमा मैं नहीं कह सकता हूं।
तुम प्रसन्न हुए होगे; चिन्मय प्रसन्न हुए होंगे--कि यह बात ठीक! यह दिल को बड़ी राहत देती है कि कोई स्त्री जब हम मर जाएंगे और चिता पर चढ़ाए जाएंगे, कोई स्त्री हमारी चिता पर कूद कर मरेगी। यह दिल को बड़ी राहत देती है--कि अहा, हम भी कुछ पुरुष थे! कि क्या गजब के पुरुष थे--कि जिंदा भी स्त्री हमारी दीवानी रही और मरे, तब भी हमारे साथ मरी।
नहीं; मैं सती "प्रथा" के पक्ष में नहीं हूं। सती-भावना के जरूर पक्ष में हूं। कोई स्त्री को मौज आ जाए... वह अपने आनंद से, अपनी मस्ती से; उसको ऐसा लगे--उसके ही भीतर से लगे। न तो उस पर कोई सामाजिक दबाव होना चाहिए... । और सामाजिक दबाव बड़े सूक्ष्म होते हैं; बड़े परोक्ष होते हैं।
अगर समाज प्रशंसा भी करता है सती की, तो वह भी दबाव है। उसका मतलब है
कि अगर यह मर जाएगी पति के साथ, चिता पर चढ़ कर, तो समाज प्रशंसा करेगा। अगर नहीं मरेगी, तो प्रशंसा नहीं करेगा। तो सतियों के चौरे बनाए जाते हैं। सतियों की समाधियां बनाई जाती हैं। यह तरकीब है, यह प्रचार है; यह इस बात का प्रचार है कि और स्त्रियां, समझ लो। कि अगर चौरा बनवाना हो, यह करना पड़ता है। अगर समाधि बनवानी हो, फूल चढ़वाने हों, तो यह करना पड़ता है!
और जो स्त्रियां यह नहीं करतीं, उनके किसी न किसी तरह के बदचलन होने
का शक तो होता ही है--कि तुम्हारा पति मर गया, तुम यहां क्या कर रही हो? तुम किसके लिए बैठी हो? अगर अपने प्राण-प्यारे से प्रेम था, तो जाओ उसके साथ; अब तुम्हें यहां रहने का क्या अर्थ है? तुम्हारा अर्थ उसके साथ था। उसकी जिंदगी तुम्हारा अर्थ थी।

यह बात गलत है। यह प्रचार गलत है। और अगर यह प्रचार सही है, तो फिर दूसरी तरफ से भी बात होनी चाहिए। तो पुरुष को भी वही करना चाहिए, जो वह स्त्री से चाहता है। लेकिन पुरुष दूसरा ही काम करते हैं। स्त्री मरती भी नहीं है, तब से सोचते हैं कि कब मर जाए, कैसे मर जाए; इससे कैसे झंझट छूटे! मर ही रही होती है अस्पताल में, तब ही बैठ कर उसी के पास बैठ कर खाट पर, सोचते हैं कि अब किससे विवाह कर लें। मरघट पर जाते हैं--पत्नी को विदा करने--और वहां चर्चा शुरू हो जाती है कि अब इनका विवाह कहां हो जाए! कैसे हो जाए!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। मरते वक्त उसने कहा, "नसरुद्दीन, एक बात पूछनी है। सिर्फ एक आश्वासन दे दो।"
मुल्ला थोड़ा डरा कि यह मरने के वक्त कहीं ऐसा आश्वासन न ले ले झंझट का। उसने कहा,"पहले तू बता, कि क्या आश्वासन है?" उसने कहा, "बस छोटा सा आश्वासन है; कोई बड़ी बात तुम से नहीं मांगती। इतना ही चाहती हूं कि... । यह तो मुझे पता है कि मेरे मरते ही तुम विवाह करोगे। उसका आश्वासन नहीं मांगती--कि मत करो, क्योंकि वह तो तुम्हारे लिए संभव नहीं होगा।"... स्त्रियां अपने पतियों को जानती हैं--इनसे क्या संभव होगा, क्या संभव नहीं होगा।
"तो यह नहीं मांगती मैं। यह मांग ज्यादा हो जाएगी। सिर्फ इतना ही मांगती हूं कि मेरे कपड़े, मेरे गहने तुम जो दूसरी स्त्री घर में लाओ, वह उपयोग न करे। उससे मेरी आत्मा को बड़ा दुख होगा।"
मुल्ला ने कहाः "तू बिल्कुल बेफिकर रह। एक तो मैं शादी करने वाला नहीं; और दूसराः रेहाना को तेरे कपड़े बैठेंगे भी नहीं।"
एक तो मैं शादी करने वाला ही नहीं, और दूसरे रेहाना को तेरे कपड़े आएंगे भी नहीं।--ऐसा पुरुष चित्त है। पुरुष ने स्त्रियों को देवी बनाना चाहा, ताकि देवियों का ठीक से शोषण किया जा सके। पुरुष ने स्त्रियों को कभी अपने समान नहीं माना।
या तो देवी... ! ऊपर रख देता है आसमान में। यह भी तरकीब है शोषण की, क्योंकि जिसको तुम
देवी बना लो, फिर उसको व्यवहार करना पड़ता है देवी की तरह। और या पशु।
...

तो तुम तुलसीदास में दोनों तस्वीरें पा सकते हो: या तो देवी बना कर बिठाल दिया--सीता को बना दिया देवी। और या शूद्रों, ढोलों, पशुओं के साथ गिनती करवा दी। "ये सब ताड़न के अधिकारी... ।"
शूद्र गंवार ढोल पशु नारी
ये सब ताड़न के अधिकारी
इन सब की कुटाई-पिटाई होनी चाहिए। एक तरफ यह--कि जैसे ढोल को पीटो तो बजता है, ऐसे ही पत्नी को पीटो तो ही ठीक रहता है। नहीं तो वह बस में नहीं रहती। जैसे पशुओं की पिटाई करनी चाहीए, तो ही कब्जे में रहते हैं। जैसे शूद्रों को... ।
अब यह शूद्रों की इतनी पिटाई चलती है मुल्क में, इसमें तुम्हारे तुलसीदास जैसे लोगों का हाथ है। वह जो गांव का ग्रामीण ब्राम्हण किसी शूद्र के झोपड़े में आग लगा देता है, उसको तुम न रोक पाओगे, जब तक ये तुलसीदास हावी हैं। तुलसीदास की जब तक विदाई नहीं होती, तब तक उसको नहीं रोक पाओगे। क्योंकि उसको यही तो जहर मिला है बचपन से, सुनने को। यही तुलसीदास का रामचरितमानस पढ़-पढ़ कर तो इस मुल्क का मानस भ्रष्ट हुआ है।
और दूसरी तरफ यह भी मजा है कि देवी भी... ! तो बड़ी हैरानी होती है लोगों
को कि मामला क्या है? एक तरफ स्त्री को देवी बना देते हैं; बड़ी ऊंचाई पर रख देते हैं। और एक तरफ बिल्कुल नीचे, पैर की जूती बना देते हैं! मगर इन दोनों बातों का मतलब एक ही हैं। ये दोंनो तरकीबें हैं शोषण की।
सीता को देवी बना कर जो व्यवहार राम से करवाया गया सीता के प्रति, वह सम्यक व्यवहार नहीं हैं।
वाल्मीकि ने जब राम युद्ध के बाद जीत जाते हैं और सीता अशोक वाटिका से मुक्त होती है, तो जो शब्द राम ने कहे हैं सीता के प्रति, बड़े अभद्र हैं।

राम ने कहे, या नहीं--यह सवाल नहीं है। वाल्मीकि ने जो कहलाए; वे शब्द अभद्र हैं।
राम ने यह कहा है कि हे स्त्री, इस बात को खयाल में रख कि युद्ध मैं तेरे लिए नहीं लड़ा। तेरा मूल्य ही क्या है! यह युद्ध तो मैं रघुकुल की प्रतिष्ठा के लिए लड़ा हूं।
फिर अग्नि परीक्षा... ! लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि पुरुषों ने कभी
यह न सोचा कि सीता उतने दिन राम से अलग रही; ठीक; चलो अग्नि-परीक्षा। राम भी उतने दिन अलग रहे। इनकी अग्नि-परीक्षा की बात नहीं उठी कभी।
दोनों को एक ही साथ अग्नि में चढ़ जाना था। दोंनों की परीक्षा हो जाती। मामला साफ हो जाता। लेकिन सीता की अग्नि-परीक्षा! और राम की?
नहीं; पुरुष हमेशा अपने को बाहर रखता है नियम के। सब नियम स्त्री के लिए हैं; सब स्वतंत्रता पुरुष के लिए है!
यह समाज पुरुषों ने बनाया; शास्त्र पुरुषों ने रचे; इसका सब ढांचा उनका है।
सीता यह भी नहीं कहती कि और महाराज, आप? आप इतने दिन अलग थे; न मालूम कहां के
बंदरों इत्यादि के साथ--किस-किस के साथ रहे? क्या किया! क्या नहीं किया? आपके बाबत क्या... ? आप भी चढ़ो।
नहीं; मगर देवी यह कैसे कहे! देवियां ऐसे वचन नहीं बोल सकतीं। देवियां
तो हमेशा वही करती हैं, जो बिल्कुल ठीक है। रत्तीभर यहां-वहां चूक नहीं करतीं।
तो सीता का परम आदर... । लेकिन आदर भी तरकीब है शोषण की।--तो चढ़ो। तो चढ़
गई बेचारी।
मगर उससे भी कुछ हाल नहीं हुआ। उससे भी कुछ हल नहीं हुआ! अग्नि- परीक्षा भी बहुत कुछ काम नहीं आई।
एक धोबी ने शक पैदा कर दिया! तुम सिर्फ इतना ही सोचते रहे हो कि अग्नि- परीक्षा ले ली। अब भी भरोसा नहीं था राम को? एक धोबी शक पैदा कर दे!
मगर ध्यान रखनाः धोबी भी पुरुष है। यह धोबन ने नहीं किया है शक पैदा;
यह पुरुष का जाल है।
तो सीता को फिर फिंकवा दिया। जैसे सीता तो दूध में पड़ी हुई मक्खी जैसी है। इसका कोई मूल्य ही नहीं; कोई कीमत ही नहीं; कोई गरिमा नहीं।
अगर राम को ऐसा ही लगता था कि प्रजा में मेरे प्रति संदेह पैदा नहीं होना चाहिए... । एक व्यक्ति में संदेह पैदा हुआ है, तो ठीक था, अपना राजपद छोड़ देते। चले जाते सीता को जंगल लेकर। कहते कि जहां मुझ में श्रद्धा नहीं है, मेरी पत्नी में श्रद्धा नहीं है, वहां मै नहीं रहूंगा। यह तो बात समझ में आती थी।
लेकिन लोग इसका बड़ा गुनगान करते हैं कि मर्यादा पुरुषोत्तम! कि देखो,
एक धोबी के कहने से सीता को छोड़ दिया!
सीता को छोड़ दिया, लेकिन राजपद नहीं छोड़ा। यह को सीधी-सी बात है कि राजपद छोड़ देते कि ठीक है; बात खतम हो गई। जिस प्रजा में मुझ पर भरोसा नहीं, मैं हट जाता हूं।
सीता को छोड़ने की तो बात ही क्यों उठती है! नहीं, लेकिन राजपद मूल्यवान है। सीता में क्या रखा है! स्त्री तो संपत्ति है। स्त्री की कुर्बानी दी जा सकती है--हर किसी चीज पर।
फिर भी सीता देवी है, इसलिए कुछ कह नहीं सकती, इसलिए जंगल चली जाती है। गर्भस्थ नारी को जंगल भेजते हुए राम को जरा भी कठिनाई नहीं होती! यह पुरुषों का जाल है।
राम ने ऐसा किया या नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। राम ने क्या किया, मुझे पता नहीं। राम कभी हुए कि नहीं, इससे भी कुछ लेना-देना नहीं। मगर यह पुरुषों को जाल है।
ये सब शास्त्र पुरुष रचते हैं और अपने हिसाब से रचते हैं। इसमें राजनीति है।

तो या तो स्त्री को देवी बना कर रखो, ताकि वह ऐसा कोई काम कर ही न सके; सोच भी न सके। और पुरुष को बिल्कुल मुक्त रखो।
हम कहते हैः पुरुष पुरुष है। पुरुष पुरुष है--इसका क्या मतलब? इसका मतलब--पुरुष को सब सुविधा है।
पुरुष भूल करे, तो हम कहते हैं--आखिर पुरुष है। तुम देखते होः वेश्याएं हैं दुनिया में। वेश्य नहीं हैं। क्यों? क्योंकि पुरुष को वेश्याओं की जरूरत है; स्त्री के लिए तो सवाल ही नहीं। पुरुष पत्नी भी रखे और गांव में वेश्या भी है। वह सुविधा उसको है--कि वह चला जाए दूसरी स्त्रियों को भोगने।
लेकिन वेश्य नहीं हैं दुनिया में; पुरुष नहीं हैं, जो कि वेश्या का काम कर रहे हों। क्योंकि यह तो हम मान ही नहीं सकते। स्त्री तो देवी है। उसको कहीं ऐसी जरूरतें पड़ती हैं। यह तो पुरुष को ही पड़ती हैं जरूरतें!
यह भी बड़ी मजे की बात है! स्त्री को हम सुविधा नहीं देते--किसी तरह की।
जिंदा में नहीं देते; मरने पर भी नहीं देते।
तो मैंने जो सती की महिमा कही, वह स्त्री की तरफ से कही; पुरुष की तरफ
से नहीं। मेरी इस बात को समझने में भूल मत कर लेना। मैं तुलसीदास का हामी नहीं हूं।
पूछते हैं योग चिन्मयः आज की और भविष्य की नारी के लिए सती का मूल्य है? आज की स्त्री भी सती की ऊंचाई को छू सके... ।
क्यों ऊंचाई स्त्री को ही छूनी है! तुम्हें ऊंचाई नहीं छूनी? तुम भी
तो छूओ! स्त्रियां बहुत छू चुकीं ऊंचाई; अब उनको जरा नीचाई भी छूने दो।
उनको आदमी बनने दो। अब यह मजा तुम भी तो लो ऊंचाई छूने का।
नहीं; यह प्रश्न गलत है; पुरुष की तरफ से गलत है। तुम फर्क समझ लेना।
यह किसी स्त्री ने पूछा होता, तो मैंने कुछ और कहा होता। यह किसी पुरुष ने पूछा है, इसलिए मेरी कोई सहानुभूति नहीं है इसमें।
सती की महिमा है; निश्चित महिमा है। इसलिए नहीं कि स्त्री पुरुष पर समर्पित होती है, बल्कि इसलिए कि प्रेम और समर्पण की महिमा है। काश! पुरुष भी ऐसा कर सके, तो महिमा और बढ़ जाएगी।
यह भी एकंगा रहा; असंतुलित थी यह बात। स्त्रियों ने पुरुषों को बुरी तरह पराजित किया है इसमें। बड़े से बड़े पुरुष भी छोटे पड़ गए।
साधारण से साधारण स्त्री भी प्रेम के मामले में पुरुष को बहुत पीछे छोड़ जाती है।
लेकिन यह होना चाहिए सहज; न कोई सामाजिक दबाव, न कोई सामाजिक--परोक्ष-- संस्कार। जो स्त्री अपने को समर्पित कर दे, वह धन्यभागी है। लेकिन जो समर्पित न करे, वह अपमानित नहीं होनी चाहिए।
जो समर्पित न करे, यह उसकी मौज है; अपमान विदा होना चाहिए।
जब से सती की प्रथा का सम्मान हुआ, तभी से विधवा अपमानित हो गई। विधवा
का मतलब ही यह है: जो सती होने से रुक गई है।
अपमान क्या है विधवा का? विधवा का अपमान यही है कि जहां सौ स्त्रियां सती हो रही थीं, वहां कुछ स्त्रियां सती नहीं हुईं। फिर धीरे-धीरे नहीं सती होने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ती गई। उनका अपमान बढ़ता गया। सती होना ही चाहिए उन्हें; फिर तो यह नीति न रही। यह जबरदस्ती हो गई। यह तो कोई पुलिस का कानून हो गया--कि सती होना ही चाहिए!
सती होनी ही चाहिए--का सवाल नहीं है। यह तो प्रेम का आविर्भाव है।
घटे--तो परम सौभाग्य। न घटे--तो अपमान कुछ भी नहीं।
मेरे नापने का ढंग यह है कि सती का होना न घटे, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। कौन मरना चाहता है। किसलिए मरे? और इस पुरुष से प्रेम था; कल किसी और पुरुष से प्रेम हो सकता है; मरने की जरूरत क्या है।
बिल्कुल स्वाभाविक है सती न होना; इसमें अपमान जरा भी नहीं है; प्राकृतिक है। यही प्राकृतिक है। तुम्हें एक भोजन का शौक था; फिर आज वह भोजन मिलना बंद हो गया, तो तुम मर थोड़े ही जाओगे। तुम दूसरा भोजन तलाशोगे। तुम्हें एक ढंग के कपड़ों में रस था; आज वे कपडे नहीं मिलते; नहीं बनते; मिल

बंद हो गई। तो तुम कोई नंगे थोड़े फिरने लगोगे! तुम कोई दूसरे कपड़े चुनोगे। यह भी हो सकता है कि उतने सुंदर कपड़े न हों वे, जितने बंद हो गई मिल से आते थे, मगर फिर भी क्या करोगे! नंबर दो के कपड़े स्वीकार करोगे। हो सकता है उनकी याद भी आती रहेगी। मगर फिर भी क्या करोगे!
अगर मरूस्थल में तुम मर रहे हो और शुद्ध पानी नहीं मिले, तो तुम गंदा पानी भी पीने को राजी हो जाओग। करोगे क्या? इसका यह मतलब नहीं कि तुम शुद्ध पानी के खिलाफ हो। तुम जानते हो कि मजबूरी है।
पति से तुम्हारा प्रेम था; वह चल बसा। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि तुम दूसरा पति खोज लो। इसमें जरा भी अपमान नहीं है। यह मेरी दृष्टी है। लेकिन अगर कोई स्त्री या कोई पुरुष... । (दूसरे के बाबत मुझे संदेह है... ।) अगर समर्पित होना चाहे, तो यह बड़ी पारलौकिक बात है। इसका सम्मान होना चाहिए; लेकिन जो न करे, उसका अपमान नहीं होना चाहिए।
न करने में पाप नहीं है; करने में पुण्य है। करने में बड़ी महिमा है। मगर आए हृदय से; उठे भीतर से। प्रेम का ही कृत्य हो; संस्कार का नहीं-- शास्त्र का नहीं, समाज का नहीं।
यह प्रेम ही तुम्हें कह दे कि अब मेरे होने में क्या अर्थ! जिसके साथ आनंद जाना था, जिसके साथ जीवन जाना था, जिसके साथ जीवन काशृंगार और सौंदर्य था, वह गया; मैं भी विदा लेता हूं। अब अकेले होने में कोई अर्थ नहीं रहे।
मगर ऐसा समझा-बुझा कर नहीं अपने को--कि अब क्या सार, अब क्या जीएंगे; कि
अब कौन भोजन लाएगा, अब कौन रोटी का इंतजाम करेगा; अब कहां तलाशेंगे इस उम्र में दूसरे आदमी को; लोग क्या कहेंगे! ये हेतु अगर उसमें हों, तो वह आत्महत्या है--सती होना नहीं। सती और आत्महत्या में फर्क है।
सती का अर्थ हैः अब जीना तो आत्महत्या होगी; अब मरने में जीवन है। और आत्महत्या का अर्थ है कि "अब जीने में बड़ी मुश्किल होगी, झंझटें आएंगी; कभी जिंदगी में कमाया नहीं। स्त्री कभी गई नहीं कमाने। नौकरी नहीं की; अब कहां नौकरी करूंगी! किसके दरवाजे भीख मांगूंगी? बच्चों को बड़ा करना है; कैसे होगा; क्या होगा? यह झंझट बहुत बड़ी है; इससे तो बेहतर मर जाओ।" यह आत्महत्या है।
आत्महत्या की प्रशंसा नहीं हो सकती। आत्महत्या तो हिंसा है और पाप है।
न कोई सती हो--यह स्वाभवाविक। कोई सती हो जाए--यह पारलौकिक। सती होने
का आदर्श समझाया नहीं जाना चाहिए, सिखाया नहीं जाना चाहिए--अनसीखा आना चाहिए। और यह उतना ही पुरुष के लिए लागू है, जितना स्त्री के लिए लागू है। यह एक तरफा नहीं हो सकता। एक तरफा हो तो अन्याय है।

अखिरी प्रश्न: जीवन का अर्थ क्या है?

जीवन में अपने आप अर्थ होता नहीं; अर्थ हमें डालना होता है। जीवन तो
एक अवसर है; डालोगे, तो अर्थ हो जाएगा।
जीवन तो ऐसे है, जैसे कोरा कैनवास; उस पर चित्र रंगोगे, तो अर्थ आ जाएगा। तुम्हारी कुशलता पर अर्थ निर्भर होगा। एक पिकासो बनाएगा चित्र, तो लाखों का हो जाएगा। शायद तुम बनाओ, तो लाखों का न हो।
अर्थ जीवन में उतना होता है, जितना हम डालते हैं।
जीवन अपने में खाली है; जीवन कोरा अवसर है। संभावना सब है; यथार्थ कुछ
भी नहीं है। इसलिए अक्सर लोग सोचते हैंः जीवन व्यर्थ है! क्या अर्थ?
मेरे पास आते हैं पूछने कि क्या है जीवन में अर्थ? वे इस तरह सोच रहे हैं कि अर्थ कोई रेडीमेड चीज है--कि यहां रखी है; आपको तैयार मिलनी चाहिए! पचा-पचाया भोजन है।
नहीं; अर्थ सृजनशीलता से उत्पन्न होता है। कुछ गीत रचो; कुछ मूर्ति बनाओ; कुछ नाचो। कुछ प्रेम करो। कुछ ध्यान करो। कुछ खोजो। कुछ जिज्ञासा में उतरो। और तुम पाओगेः अर्थ आना शुरू हुआ।

और जितना बहुआयामी तुम्हारा व्यक्तित्व हो, जितनी अनंत-अनंत खोजें तुम्हारे जीवन को घेर लें; जितना तुम्हारा दुस्साहस होगा--अभियान पर निकलने का उतना ही अर्थ होगा।
इसी जीवन में कोई बुद्ध हो जाता है--कोई कबीर; और कोई ऐसे ही धक्के खाते-खाते मर जाता है।
अर्थ है नहीं; अर्थ पैदा करना है।
ठंडा हुआ ये जिस्म तो रह जाएगी बस खाक
उठ गर्मिए इन्फास को इक शोला बना ले।
तू मौत के सन्नाटे में कुछ सुन न सकेगा।
आवाज के दिल की अभी इक नारा बना ले।
कुछ देख न पाएंगी जो बंद हो गईं आंखें तू कसरते अनवार को इक जल्वा बना ले।
उठ जाएगा पर्दा तो यहां कुछ न रहेगा नज्जारगिए शौक को इक परदा बना ले।
इक लम्हा है वो जिसमें अजल और अबद गुम कुल उम्र का हासिल वही एक लम्हा बना ले।
इक नगमा है वो जिसमें समा जाते हैं सब सुर
हस्ती को तू अपनी वही इक नगमा बना ले।
इक नुक्ता है वो अरसाए कोनौन है जिसमें
तू वसअते दिल को वही इक नुक्ता बना ले।
इक शोला है वो नूरे अहद है जो सरापा
खूने रंगे जां को वही इक शोला बना ले।
कुछ करो। "ठंडा हुआ ये जिस्म तो रह जाएगी बस खाक। उठ गरमिए इन्फास को
इक शोला बना ले।"
इन सांसों का थोडा उपयोग कर लो। इन सांसों में दौड़ती गरमी का कुछ उपयोग कर लो। यह जो खून है दौड़ता हुआ तुम्हारे प्राणों में, इसका कुछ उपयोग कर लो। यह जो धड़कन है, इसका कुछ उपयोग कर लो। यह जो चेतना का दीया तुममें जल रहा है, इसका कुछ उपयोग कर लो। जल्दी ही सब खाक रह जाएगी। हां, जो उपयोग कर लेंगे, वे उड़ चलेंगे। खाक यहां पड़ी रह जाएगी और हंस चलेगा दूसरे देश।
ठंडा हुआ ये जिस्म तो रह जाएगी बस खाक
उठ गर्मिए इन्फास को इक शोला बना ले।
तू मौत के सन्नाटे में कुछ सुन न सकेगा।...
अभी कान है, अभी कुछ कर लो। सुनने की कला सीख लो। श्रवण की कला सीख लो।
अभी आंखें हैं; देखने की कला सीख लो।
तू मौत के सन्नाटे में कुछ सुन न सकेगा
आवाज को दिल की अभी इक नारा बना ले।
अभी दिले में कुछ है, भजन उठा लो इससे, या गाली उठा लो। तुम पर निर्भर है--अर्थ तुम पर निर्भर है। या तो गाली जगा लो। यही सांसें गाली बन जाएंगी।
और भजन को उठने दो--हरिभजन को उठने दो; राम की याद आने दो।
कुछ देख न पाएगी जो बंद हो गई आंखे
तू कसरते अनवार को इक जल्वा बना ले।
इसके पहले कि आंख बंद हो जाएं, जो देखने योग्य है, उसे देख लो। वह देखने योग्य चारों तरफ मौजूद है। वह फूलों में छिपा है; दरियाओं में छिपा है; झरनों में छिपा है। वह सब तरफ मौजूद है। वह लोगों में छिपा है। इसके पहले कि आंखे बंद हो जाएं, अदृश्य को देख लो। फिर तुम्हारे जीवन में अर्थ होगा।
"इक लम्हा है वो जिसमें अजल और अबद गुम... ।" एक ऐसा क्षण है समाधि का, ध्यान का जहां न आदि है और न अंत है।
इक लम्हा है वो जिसमें अजल और अबद गुम
कुल उम्र का हासिल वही इक लम्हा बना ले।
बस, वही एक क्षण तुम्हारे जीवन का कुल हासिल होगा; वही जीवन की उपलब्धि है। उस क्षण को पा लेना, जहां प्रारंभ और अंत एक हो जाते हैं; जहां

स्रोत और गंतव्य एक हो जाते है; जहां--जहां से हम आए हैं और जहां हम जा रहे हैं--दोनों एक साथ प्रकट हो जाते हैं, उस क्षण को ही पा लेंगे, तो अर्थ है। इक लम्हा है वो जिसमें अजल और अबद गुम
कुल उम्र की हासिल वही इक लम्हा बना ले।
इक नगमा है वो जिसमें समा जाते हैं सब सुर...
एक ऐसा गीत तुम में पड़ा है, छिपा पड़ा है; जैसे बीज में वृक्ष छिपा पड़ा होता है, ऐसा एक नगमा तुम में छिपा पड़ा है।
इक नगमा वो जिसमें समा जाते हैं सब सुर
हस्ती को तू अपनी वही इक नगमा बना ले।
छेड़ो अपनी वीणा के तार। जगाओ। ऐसे बैठे-बैठे मत कहो कि जीवन में अर्थ क्या है।
ऐसे बैठे-बैठे कोई भी अर्थ नहीं है; अनर्थ ही अनर्थ है। कुछ करो। अभी
जी रहे हो; इस जीवन की ऊर्जा का कोई सक्रिय उपयोग करो। बन सके हो तुम नगमा। "इक नुक्ता है वो अरसाए कोनौन है जिसमें"... एक छोटा सा बिंदू तुम्हारे भीतर है, जिसमें सारा जगत छिपा हुआ है।--पिंड में ब्रह्मांड; तुम्हारे अणु में विराट छिपा है। "तू वसअते दिल को एक नुक्ता बना ले।"

वही छोटा सा शून्य बिंदु तुम बना जाओ। तुम बिंदु बन जाओ, तो सिंधु बनने का उपाय शुरू हो जाता है।
ऐसे बाहर बैठे-बैठे राह मत देखते रहो भिखारी की तरह कि कोई आएगा और तुम्हारी झोली में जीवन का अर्थ डाल जाएगा।
कोई नहीं आया है, न आएगा। किस की प्रतीक्षा कर रहे हो? उठो; कुछ करो।
इस उठने और करने का नाम ही संन्यास है। उठो--तो पा लोगे। एक दिन तुम भी कह सकोगेः "कहै कबीर मैं पूरा पाया।"
मैं तुमसे कहता हूंः कहै कबीर मैं पूरा पाया।
एक दिन तुम भी कह सकोगे। यह तुम्हारी क्षमता है। यह तुम्हारे लिए चुनौती है।
जीवन में अर्थ भीख में नहीं मिलता; जीवन में अर्थ जगाना होता है। जन्म देना होता है अर्थ को।
अर्थ हो सकता है, मगर अपने आप नहीं होगा। राह मत देखो।
भिखमंगे खाली आते, खाली जाते। खाली तो तुम आए हो, लेकिन खाली जाना जरूरी नहीं है। भर कर जा सकते हो।
ये सारे सूत्र उसी अर्थ को जगाने के लिए हैं।

आज इतना ही।